आधुनिक

यूरोप का इतिहास

(१७८९ से आज तक)

(Modern Europe Since 1789)

लेखक

विद्याधर महाजन एम० ए० (आनर्ज़) पी-एच० डी०

भूतपूर्व प्राध्यापक, इतिहास विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी कालेज, नई दिल्ली तथा

Author of India Since 1526 British Rule in India Ancient India, The Delhi Sultanate Muslim Rule in India England Since 1688 Constitutional History of India Modern Europe Since 1789 etc

तथा

सावित्री महाजन एम० ए०

१९७०

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

दिल्ली नई दिल्ली जालन्धर लखनऊ

बम्बई कलकत्ता मद्रास हैदराबाद पटना

एस० चन्द एण्ड कम्पनी
रामनगर नई दिल्ली ५५

शाखाएँ

फव्वारा दिल्ली — माई हीरा गेट जालन्धर
अमीनाबाद पार्क लखनऊ — १८ लैमिंगटन रोड बम्बई ७
२ गणेशचन्द्र एवेन्यू कलकत्ता १३ — ३ माउण्ट रोड मद्रास २
सुल्तान बाजार हैदराबाद — [illegible] पटना

पहला संस्करण 1961
दूसरा संस्करण 1965
तीसरा संस्करण 1970

मूल्य १४.००

एस० चन्द एण्ड कम्पनी रामनगर नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित
[illegible] प्रिंटिंग रामनगर नई दिल्ली में मुद्रित

आदरणीय

श्री श्यामलाल जी गुप्ता

को

सस्नेह समर्पित

तीसरे सस्करण की प्रस्तावना

यूरोप के इतिहास का अध्ययन प्रत्येक भारतवासी के लिये आवश्यक है क्योंकि उसके अध्ययन म हम अनुमान लगा सकते हैं कि किस प्रकार देश उन्नति करते हैं। ससार की वतमान स्थिति का ठीक ठीक पता भी यूरोप के इतिहास से मिल सकता है। वतमान युग म कूपमण्डूक बन कर न कोई प्राणी और न कोई देश जी सकता है। प्रत्येक देश को दूसरे देशों की शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये अन्यथा सवनाश होने का डर ही रहेगा।

इस पुस्तक के नये सस्करण म बहुत कम सशोधन किये गये हैं परन्तु पिछले कुछ वर्षों म ससार म हुई घटनाओं का वणन कर दिया गया है।

III M १०
लाजपत नगर
नई दिल्ली
२६ १ ७०

विद्याधर महाजन
सावित्री महाजन

पहले संस्करण की प्रस्तावना

लोग कहते हैं कि इतिहास के अध्ययन का कोई लाभ नही परन्तु हम इससे सहमत नही हैं। हमारी अपनी धारणा है कि अपने देश के इतिहास के पठन-पाठन से अपने देश की कमजोरियो का पता लगता है और भविष्य मे उनसे बचने के लिए प्रेरणा मिलती है। दूसरे देशो के उज्ज्वल इतिहास को पढ कर उत्साह पैदा होता है और कार्य करने के लिए शक्ति मिलती है। यह एक बहुत बडा लाभ है जिसके साथ किसी और चीज की तुलना नही की जा सकती।

शताब्दियो के बाद हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है। देश को स्वतन्त्र कराने के लिए हमारे पूर्वजो ने बहुत कष्ट सहे और अब हमारा यह कर्तव्य है कि हम उस स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए अपने जीवन की बलि लगा दें। यह तभी हो सकता है यदि हम अपने तथा दूसरे देशो के इतिहास का अध्ययन करें। ऐसा करने से हम किसी देश अथवा जाति से मार न खायेंगे और हमारा देश दिन प्रतिदिन उन्नति की ओर आगे बढ़ेगा।

हमारा विचार है कि आधुनिक यूरोप का इतिहास समस्त ससार के लिए बहुत शिक्षाप्रद है और ससार के जिन देशो ने उन्नति आजकल की है उन सबने यूरोप से ही प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त किया है। इसी उद्देश्य को आगे रखकर यह पुस्तक हिन्दी मे प्रकाशित की जा रही है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है और इस पुस्तक का हिन्दी मे प्रकाशन अनिवार्य था। हम आदरणीय श्री श्यामलाल जी गुप्ता के बहुत आभारी हैं। उन्होने इस पुस्तक को छापने मे हमारी बहुत सहायता की है यह पुस्तक उन्ही को भेंट की गई है।

यह पुस्तक भारत के विद्यार्थियो को यूरोप के इतिहास का पर्याप्त ज्ञान देने के लिए लिखी गई है। पुस्तक को सब प्रकार से उपयोगी बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है परन्तु यदि कोई सज्जन किसी त्रुटि अथवा भाव की ओर निर्देश करेंगे तो धन्यवाद के साथ उनके सुझाव को स्वीकार किया जायगा और आगामी संस्करण मे संशोधन कर दिया जायगा।

१६ मार्च १९६१ — विद्याधर महाजन
III एम० — सावित्री महाजन
२० [illegible] नई दिल्ली

विषय-सूची

(CONTENTS)

मानचित्रों की सूची

(LIST OF MAPS)

अध्याय १

फ्रांस-क्रान्ति से पूर्व का यूरोप

(Europe on the Eve of the French Revolution)

सन् १७८९ में दो ऐसी घटनाएँ घटीं, जिनका संसार में महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहली घटना थी फ्रांस में क्रान्ति का फूटना और दूसरी थी संयुक्तराज्य अमेरिका में संविधान का प्रचलित होना। जहाँ दूसरी घटना से संसार में संगठन और विस्तार की भावना के युग का आरम्भ हुआ वहाँ पहली घटना ने विश्व को अव्यवस्था के गर्त में फेंक दिया।

फ्रांस की क्रान्ति के फूटने के साथ-ही-साथ 'यूरोप का इतिहास एक राष्ट्र, एक घटना और एक व्यक्ति का इतिहास बन गया। वह राष्ट्र फ्रांस, वह घटना फ्रांस की क्रान्ति और वह व्यक्ति नेपोलियन है।' इससे पूर्व कि फ्रांस की क्रान्ति के विषय में कुछ कहा जाय, यूरोप की महत्त्वपूर्ण घटना से पूर्व के यूरोप की स्थिति का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

साधारणतः यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन यूरोप की बागडोर रईसों के हाथों में थी। यह बात केवल उन देशों पर ही लागू नहीं होती जहाँ राजाओं की शासन प्रणाली थी, अपितु उन पर भी लागू होती है जहाँ प्रजातन्त्रात्मक शासन चलता था। वेनिस का प्रजातन्त्र एक विशिष्ट वर्ग द्वारा शासित था। यही प्रणाली स्विट्ज़रलैण्ड में भी चालू थी। इंगलैण्ड में भी जहाँ संसद् शक्तिशाली थी, सत्ता जनता की अपेक्षा बड़े जमींदारों के हाथों में थी। जनसाधारण का तो कोई मूल्य ही न था। यही दशा अन्य यूरोपीय देशों यथा आस्ट्रिया, हंगरी, प्रशिया, रूस, फ्रांस, स्पेन और पोलैण्ड इत्यादि की भी थी। अधिकांश यूरोपीय देशों के शासक स्वेच्छाचारी थे। यद्यपि अठारहवीं सदी में उन्हें उदार स्वेच्छाचारी शासक कहा जाता था। जनता को अपने देश के शासन में कोई अधिकार प्राप्त न था। उन्हें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता न थी। उनकी प्रत्येक इच्छा शासकों की इच्छा पर निर्भर रहा करती थी। लगभग *यूरोप भर में मुजारों की प्रथा का बोलबाला था।*

उस युग में यूरोप के शासक दगाबाज और आचारहीन थे। अठारहवीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र काफी सीमा तक गिर चुका था। फ्रेड्रिक महान जैसा व्यक्ति भी मेरिया थिरेसा के पिता चार्ल्स षष्ठम का वचन देने पर भी सिलेसिया का प्रदेश हड़पने में नहीं हिचका था। रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया ने सामूहिक रूप से पोलैण्ड के अस्तित्व को समाप्त करने का षड्यन्त्र रचा था। यह वह समय था जब अड़ोस-पड़ोस के निर्बल राष्ट्रों को समाप्त करके अपने देश की सीमाओं को बढ़ाने का पागलपन प्रायः सभी राजा लोगों में पनप रहा था। 'जाति और राष्ट्रों की सीमाओं

का कोई मूल्य नहीं रह गया था। प्रो० हौलण्ड रोज के अनुसार 'वंशाधिकार और सन्धि प्रतिज्ञा को इसाइयत फलने के समय जो पवित्रता प्राप्त थी वह नष्ट हो गई और उसके स्थान पर राज्य-कूटनीति को मान्यता दी गई जिसका मुख्य उद्देश्य राज्य की सीमा का विस्तार और मण्डियों को हथियाना था। प्रो० हजन के अनुसार 'प्राचीन यूरोप की व्यवस्था जिन सिद्धान्तों पर आधारित थी उन्हीं के प्रति विद्रोह उठ खड़ा हुआ। व्यवस्था कानून और सन्धियों के प्रति श्रद्धा इसके मूल आधार थे।

लगभग यूरोप भर में विशेष अधिकार प्राप्त वर्ग समाज में थे। इनमें से कुछ वर्गों को तो कर देना ही न होता था और कुछ नाममात्र का कर देकर छुटकारा पा जाते थे। इस प्रकार टैक्स का सारा भार विशेष अधिकारों से हीन लोगों पर आ पड़ता था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यूरोप का सम्पूर्ण समाज सामन्तशाही प्रणाली पर आधारित था और जागीरदार अपने क्षेत्रों में एक छोटे सम्राट की तरह शासन करते थे। मुजारों की दशा दीन थी। उन्हें खेती का कार्य सौंप दिया जाता था और उपज से प्राप्त धन का बहुत बड़ा भाग जागीरदारों की जेबों में पहुँचता था। किसी के शब्दों में 'यूरोपीय समाज के ढाँचे का निचला भाग दुःखद दासता की शृंखलाओं से जकड़ा था। या यों कहें कि वह अरक्षित और अविकसित मानवों का एक ऐसा झुण्ड था जिसके लिए विकास और प्रगति के सभी मार्ग बन्द थे।' कतिपय लोगों को ही विशेषाधिकार प्राप्त थे शेष समाज असमानता और अव्यवस्था से पीड़ित था। यूरोप के जनसाधारण में जाग्रति लेशमात्र को न थी। यही स्थिति एक लम्बे अर्से तक बनी रही।

धार्मिक दृष्टि से पश्चिमी यूरोप और मध्य यूरोप मुख्य रूप से अव्यवस्थित था। उत्तर में प्रोटेस्टेण्ट और दक्षिण में रोमन कैथोलिक थे। मध्य में स्विटजरलैण्ड और हालैण्ड की जनता प्रोटेस्टेण्ट थी। पोलैण्ड के लोग कैथोलिक थे। पूर्वी यूरोप में यूनानी पंथ ने रूस और बलवान राज्यों पर अपना प्रभाव जमा रखा था। यहूदी यूरोप भर में फैले हुए थे। कहीं-कहीं तो उनसे अच्छा व्यवहार होता था किन्तु प्रायः उन्हें यातनाएँ पहुँचाई जाती थी।

यूरोप धार्मिक मतभेद से अछूता न था। विभिन्न धर्मों के अनुयायी भी राष्ट्र एक हो सकते हैं यह भावना उन दिनों जोर पकड़ रही थी। मनुष्य मात्र की चिन्ता की जाना चाहिए यह भावना भी घर जमा रही थी। वैज्ञानिक खोज की लगन ने भी इस भावना को बल दिया। धर्मान्धता क्रमशः घट रही थी।

रोमन कैथोलिक चर्चों पर आक्रमण होते थे। इस प्रकार इनकी शक्ति क्षीण हो गई थी। १७६३ में एक रोमन कैथोलिक धर्माधिकारी द्वारा लिखित— On the Present State of Church and the Lawful Authority of the Roman Pontiff नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में धर्माधिकारियों (Bishops) पर पोप के अधिकार का विरोध किया गया। जोजफ द्वितीय पर इस पुस्तक का बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने चर्च का अपने अधिकार में कर लिया।

१७७३ में पोप ने जेसुइटों के विरुद्ध बहिष्कार घोषणा (Bull) की

वापस लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। १७५६ में जेसुइटसों (Jesuits) को पुर्तगाल से निकाल दिया गया। १७६४ में उनके मत का फ्रांस में दमन किया गया। १७६७ में उन्हें स्पेन, सिसली और पारमा से निकाल दिया गया। १७७३ में पोप ने जेसुइटसों के मत का समाप्त कर दिया। केवल रूस और प्रशिया में ही इन लोगों को शरण मिली।

जर्मनी (Germany)—राजनैतिक दृष्टि से यूरोप के बहुत से देश अपनी राज्य-सीमाओं का विस्तार करने तथा सत्ता हथियाने में लीन थे। जर्मनी असंगठित तथा निर्बल था। यूरोप में ३६० से भी अधिक सर्वाधिकार-सम्पन्न राष्ट्र थे और उन्हें परस्पर जोड़ने वाली कड़ी उनका 'पवित्र रोम साम्राज्य' (Holy Rome Empire) का सदस्य होना था। पवित्र रोम साम्राज्य का सम्राट् कई शताब्दियों से आस्ट्रिया-हंगरी देश का सम्राट् ही होता रहा था। पवित्र रोम साम्राज्य के अन्तिम प्रबन्ध के लिए एक शाही राज्य परिषद् थी किन्तु यह किसी भी कार्य के कर सकने में समर्थ न थी। वाल्टेयर ने कहा है कि यह पवित्र रोम साम्राज्य न तो पवित्र है और न ही रोम का है और न यह कोई साम्राज्य ही है। जर्मनी का सम्पूर्ण शासन आस्ट्रिया और प्रशिया के लोग चलाते थे और दोनों ही परस्पर घोर शत्रु थे।

प्रशिया (Prussia)—फ्रेड्रिक महान् के शासन काल १७४० से १७८६ तक प्रशिया की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी। इसी सम्राट ने ही साइलेसिया (Silesia) पर अधिकार किया था। आस्ट्रिया के राज्यारोहण युद्ध (War of Succession) तथा सप्तवर्षीय युद्ध के समय मेरिया थिरसा के प्रयत्न करने पर भी और घोर कठिनाइयों के विपरीत फ्रेड्रिक इस प्रदेश पर अधिकार बनाये रहा। यद्यपि सम्राज्ञी कैथराइन महान् सारे पोलैण्ड पर अधिकार करना चाहती थी। फ्रेड्रिक ने आस्ट्रिया को अपने साथ मिला कर रूस को पोलैण्ड का कुछ भाग देने के लिए बाध्य कर दिया। परिणामतः १७७२ में जब पहली बार पोलैण्ड का विभाजन हुआ तो फ्रेड्रिक ने पश्चिमी प्रशिया का प्रदेश अपने हिस्से के रूप में प्राप्त किया। पश्चिमी प्रशिया की सहायता से फ्रेड्रिक ने पूर्वी प्रशिया पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार अपने अन्य प्रदेशों से मिलाकर प्रशिया की प्रादेशिक एकता की स्थापना की। फ्रेड्रिक ने आस्ट्रिया को बवेरिया पर अधिकार करने से रोककर उसके बदले बेल्जियम पर अधिकार कर लिया। उसने जर्मन-सामन्त संघ (Frustenband or League of Geraman Princes) की स्थापना इस उद्देश्य से की कि जर्मनी में आस्ट्रिया की शक्ति की प्रगति को रोका जा सके। अन्य देशों से व्यवहार करने में फ्रेड्रिक नितान्त सिद्धान्तहीन था। वह निजी स्वार्थ की नीति का समर्थक था और उसने अपनी नीति के विषय में कहा है "जो कुछ तुम प्राप्त कर सकते हो करो। तुम उस समय तक गलती पर नहीं हो जब तक तुम्हें प्राप्त वस्तु लौटानी न पड़े।

यदि हम ईमानदार बने रहने से कुछ प्राप्त होता है तो हम ईमानदार ही बने रहेंगे किन्तु यदि धोखा देना ही आवश्यक हो तो हम विश्वासघाती बन जाना चाहिए।" साइलेसिया की विजय के विषय में उसने कहा है 'मेरे सैनिक तैयार थे

और मेरा बटुआ भरा था। साइलेसिया वह प्रदेश था जो ब्राण्डनबर्ग वंश (House of Brandenberg) के लिए अत्यन्त लाभदायक था।

गृह-नीति के दृष्टिकोण से फ्रेडरिक ने अपने देश की आर्थिक स्थिति में उन्नति की। उसने दलदल से भरे प्रदेशों में से पानी निकलवाकर खेती की वृद्धि की। उसने नई नहरें बनवाई। आर्थिक सहायता देकर उद्योग को बढ़ावा दिया। अपने देश की आर्थिक उन्नति के लिए दिन रात अथक परिश्रम किया। वह धार्मिक सहिष्णुता की नीति को मानता था और वह तुर्कों को भी यदि वे उसके देश की उन्नति में साधक हो सकते तो स्थान देने को तैयार था।

७४ वर्ष की आयु में जब फ्रेडरिक की मृत्यु हुई तो उसने एक दुगुने क्षेत्र वाला और दुगुनी से अधिक जनसंख्या वाला राज्य छोड़ा। वह अपने को राष्ट्र का प्रथम सेवक मानता था किन्तु उसे समस्त जर्मनी की अपेक्षा प्रशिया के हित का अधिक ध्यान था। वह जर्मन भाषा को एक रूखी बड़बड़ाहट मानता था। इतना कुछ होने पर भी वह सारे जर्मनी में एक महान् राष्ट्रीय नेता माना जाता था। जनता उसका उतना ही सम्मान करती थी जितना कि उससे पूर्व उसने लूथर का किया था।

यद्यपि फ्रेडरिक ने यूरोप अथवा संसार पर शासन नहीं किया किन्तु फिर भी वह अपने युग का सबसे महान सम्राट माना जाता था। उसके सिद्धान्त और उदार स्वेच्छाचारी शासन के [illegible] को लगभग आधे तत्कालीन शासकों ने आदर सहित [illegible] [illegible] किसान [illegible] कहे थे— अब संसार पर कौन शासन करेगा।

१७८६ में फ्रेडरिक महान् की मृत्यु के पश्चात् फ्रेडरिक विलियम द्वितीय गद्दी पर बैठा। वह एक न्यून बुद्धि और अस्थिर प्रकृति का व्यक्ति तथा रूस और आस्ट्रिया दोनों का खिलौना था। १७८९ में जब फ्रांस में क्रान्ति हुई तो वह फ्रांस के मामलों का [illegible] के मामलों में अधिक दिलचस्पी लेता था।

आस्ट्रिया-हंगरी (Austria Hungary)—आस्ट्रिया-हंगरी में हैप्सबर्ग वंश का शासन था। उनका सम्राट ही पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट था। किन्तु इस राज्य का [illegible] विस्तृत [illegible] तथा साम्राज्य में अनेक जातियों के होने के कारण [illegible] [illegible]। जाति धर्म और भाषा [illegible] के कारण उनमें संगठन नहीं [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] मिलान और आस्ट्रिया के [illegible] के मध्य [illegible] का [illegible] [illegible]।

१७४० से १७८० तक मारिया थेरेसा आस्ट्रिया पर शासन करती रही। [illegible] [illegible] [illegible] थी। [illegible] आधुनिक [illegible] की महिला शासकों में [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] विक्टोरिया से की जा सकती है। उसका [illegible] [illegible] था किन्तु वास्तविक शासक वह स्वयं थी। वह दयालु [illegible] और [illegible]। [illegible] जर्मन [illegible] और [illegible] जातियों [illegible] के [illegible] से [illegible] थे। [illegible] [illegible] के [illegible] पर उसकी प्रजा उसका हाथ चूमने के लिए [illegible] हो [illegible] था। वह एक [illegible] शासक और उत्साही सुधारक थी।

इसके ही शासन-काल में पहली बार आस्ट्रिया की सेना ने कदम मिलाकर चलना सीखा था। फ्रेडरिक महान् ने भी इस बात को माना कि उसके द्वारा किये गये कार्य पुरुष के योग्य थे। यह सच है कि सैलेसिया को प्रशिया ने छीन लिया, किन्तु उसने इसे पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयत्नों में कसर नहीं छोड़ी। पोलण्ड के बँटवारे के समय उसे भी हिस्सा मिला।

जोजफ द्वितीय इसका उत्तराधिकारी बना जो १७६५ में अपने पिता के देहान्त के बाद पवित्र रोम-साम्राज्य का सम्राट बना। १७८० में यह अपनी माता की मृत्यु के पश्चात आस्ट्रिया के प्रदेशों का स्वामी बना। वह एक उदार स्वेच्छाचारी राजा था। वह उद्यमी और समझदार था। वह अपनी प्रजा की उन्नति के लिए दिन रात प्रयत्न करता था।

उसका ध्येय जाति, धर्म और भाषा के भेदों से मुक्त आस्ट्रिया के सारे प्रदेशों को एक सूत्र में बाँध देना था। साम्राज्य की भिन्न भिन्न जातियों को सुगठित करके एक आस्ट्रियन राष्ट्र के रूप में बाँधना ही उसका उद्देश्य था। उसने साम्राज्य के भागों की प्राचीन सीमाओं को तोड़ कर सारे साम्राज्य को तेरह प्रदेशों में बाँटकर प्रत्येक प्रदेश का शासन एक सेनापति को सौंप दिया। प्रदेशों को जिलों और नगरों में बाँटकर सभी प्रदेशों में एक जैसी शासन-व्यवस्था स्थापित की। जर्मन भाषा सारे साम्राज्य की राज्य भाषा घोषित की गई। न्याय प्रणाली का नये सिर से संगठन किया गया। सारे देश के लिए एक ही न्याय विधान लागू कर दिया गया और जनता को न्याय के समक्ष समानता, लेख की स्वतन्त्रता तथा धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की गई। उसने बड़ी संख्या में स्कूल बनवाये। उसने जागीरदारों और धर्माधिकारियों के विशेषाधिकार समाप्त करके सबसे भूमि की आय का १३ प्रतिशत कर लेना आरम्भ कर दिया। उसने चर्च को अपने अधिकार में लेकर उस पर से पोप के नियन्त्रण को कम कर दिया। शिक्षा के क्षेत्र में धर्माधिकारियों का नियन्त्रण कम कर दिया। अपने साम्राज्य में उसने भूदास की प्रथा (serfdom) समाप्त कर दी।

उसके सुधार बिना लोगों की भावना तथा परिस्थितियों का ध्यान किये शीघ्रता में लागू किये गये। प्रजा इन सुधारों के लिए तैयार नहीं थी। जोजफ द्वितीय ने यह शेखी मारी कि उसने दार्शनिकता को अपने साम्राज्य का निर्माता बनाया है। किन्तु ऐसा करके उसने बड़ी भारी भूल की। उसे यह जानना चाहिए था कि दार्शनिक विचार जन-साधारण के क्रियाशील जीवन में बहुत ही कम स्थान पाते हैं। जोजफ द्वितीय द्वारा स्थापित बुद्धिमत्तापूर्ण महान सिद्धान्तों के स्तर तक ऊँचा उठना जनसाधारण के लिए बिल्कुल असम्भव कार्य था। परिणामतः उसके सारे सुधार असफल रहे। साम्राज्य को सगठित करने के उसके प्रयत्नों के कारण साम्राज्य लगभग छिन्न-भिन्न हो गया। आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य एक बहुमुखी साम्राज्य था और इसको एकजातीय साम्राज्य बनाना असम्भव कार्य था। जोजफ द्वितीय ने असम्भव कार्य करना चाहा। आश्चर्य नहीं कि वह इस कार्य में असफल रहा किन्तु अपनी मृत्यु के पहले उसने बड़े साहस से सुधार-सम्बन्धी अपने सम्पूर्ण आदेश लौटा लिये। किन्होंने

हा है कि इस सुधारक के जीवन का सबसे साहसपूर्ण कार्य यह था कि उसने अपना म्पूर्ण कार्य उल्टा लौटा लिया।

जोजफ द्वितीय के विषय में कहा गया है कि "उसे खाना पीना या मनोरंजन रना भी नहीं आता। वह सरकारी सूचना-पत्रों के अतिरिक्त कुछ पढ़ता भी नहीं।" तना करने पर भी वह असफल रहा क्योंकि जैसा फ्रेड्रिक महान ने कहा 'उसने हले कदम के बजाय दूसरा कदम पहले उठाया। स्वयं जोजफ ने अपनी कब्र पर लखने के लिए यह कहा कि यहाँ वह राजा सोया है जो सब प्रकार की सद्भावनाओं ' होने पर भी प्रत्येक कार्य में जो भी उसने किया असफल रहा।

जोजफ द्वितीय की परराष्ट्र-नीति का भी उल्लेख करना चाहिये। उसकी रराष्ट्र-नीति का मुख्य ध्येय हैप्सबर्ग वंश की जर्मनी में सर्वोच्च सत्ता स्थापित करना था अपने साम्राज्य की सीमाओं का पुनर्गठन करना था। जोजफ द्वितीय ने रूस को ारे पोलण्ड पर अधिकार करने से रोकने के लिए पोलण्ड के प्रथम विभाजन के मय प्रशिया का साथ दिया। इसे रूस और प्रशिया के साथ इस लूट का माल भी मिला। वह तुर्की से बुकोविना लेने में भी सफल रहा। १७१३ की संधि के अनुसार ेलण्ड सीमान्त के दुर्गों में सेना रखता था किन्तु जोजफ ने होलण्ड को इन दुर्गों का अधिकार छोड़ने पर बाध्य किया। प्रशिया के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए उसने रूस से गठबन्धन किया। उसने आस्ट्रियन-नीदरलैण्ड को बावेरिया से बदलने का यत्न भी किया किन्तु प्रशिया के विरोध के कारण वह ऐसा करने में असफल रहा। उसने तुर्की को छिन्न भिन्न करने के विचार से तुर्की के विरुद्ध युद्ध छेड़ा। किन्तु प्रशिया के विरोध के कारण वह अपने कार्य में सफल न हो सका। प्रशिया इंग्लैण्ड और हालैण्ड ने तुर्की की सहायता के लिए त्रिगुट संधि की। ल्यूपोल्ड (Leopold) ्वितीय जो आस्ट्रिया के सिंहासन पर १७९० में बैठा १७९१ में युद्ध से हट गया।

फ्रांस क्रान्ति के पूर्व आस्ट्रिया के साम्राज्य में अत्यन्त बेचैनी थी। यह केवल फ्रांस की क्रान्ति में ही नहीं अपितु रूस और प्रशिया के पोलैण्ड सम्बन्धी षडयन्त्रों में भी दिलचस्पी रखती थी। फ्रांस क्रान्ति के लिए यह द्विविधा लाभदायक थी।

रूस (Russia)—१७६२ से १७९६ तक कैथरीन महान् रूस पर शासन करती रही। वह एक चतुर और कूटनीतिज्ञ महिला थी और पीटर महान् के पदचिह्नों पर चल रही थी। वह एक उदार स्वेच्छाचारी शासिका थी। वह यूरोप के विचारकों की संगति में प्रसन्न रहती थी और दिदरो (Diderot) जैसे साहित्यिकों की संरक्षिका थी। उसने एक दृढ़ शासन-प्रणाली की स्थापना की किन्तु जनसाधारण की स्थिति के विषय में वह परवाह नहीं करती थी। जनसाधारण का किसी भी क्षेत्र में स्वतन्त्रता नहीं था। उसके आदेश ही सबके कानून थे।

उसकी विदेश-नीति पोलैण्ड और तुर्की के विरुद्ध था। १७६८ में रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया। तुर्क पराजित हुए और उन्हें मोलडाविया और वालाशिया का प्रदेश छोड़ना पड़ा। १७७४ में कुचुक—कनाडजी (Kutchuk—Kainardji) की सन्धि होने पर यह युद्ध समाप्त हुआ। इस सन्धि के कारण रूस को

अज़ोफ्फ और अन्य बहुत से स्थान प्राप्त हुए जिसके कारण कैथरीन को काला सागर (Black Sea) के उत्तरी तट और अज़ोफ्फ सागर (Sea of Azoff) पर अधिकार प्राप्त हुआ। काला सागर रूसियों की जहाजरानी के लिए खुला था। क्रीमिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। रूस ने तुर्की में अपना राजदूत नियुक्त किया। रूसी प्रजा को फिलिस्तीन के तीर्थ स्थानों पर यात्रा करने की छूट मिल गई। तुर्की में बसे हुए यूनानी ईसाइयों की रक्षा के लिए रूस को तुर्की के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हुआ। रूस और तुर्की की यह सन्धि अधिक समय तक नहीं चल सकी। १७८७ में पुन युद्ध आरम्भ हो गया। इस अवसर पर कैथरीन ने जोज़फ द्वितीय से तुर्की को समाप्त करने के लिए मेल कर लिया। १७९१ में आस्ट्रिया को इंगलण्ड प्रशिया और पवित्र देश (होलीलैण्ड Holyland) के त्रिमुखी गठजोड़ के कारण इस युद्ध से अलग होना पड़ा। रूस किसी प्रकार अकेला ही इस युद्ध को लड़ता रहा जो १७९२ में जेस्सी (Jassy) की सन्धि होने पर समाप्त हुआ। इस सन्धि के द्वारा तुर्की को क्रीमिया पर रूस का अधिकार मानना पड़ा। डेनिस्टर नदी तक के काला सागर के उत्तरी तट के प्रदेश पर तुर्की का अधिकार समाप्त हो गया।

कैथरीन का पोलण्ड के १७७२ १७९३ और १७९५ के तीनों विभाजनों में बड़ा हाथ था। उसकी प्रथम योजना सारे पोलण्ड को अधिकार में रखने की थी किन्तु उसे आस्ट्रिया और प्रशिया को १७७२ के विभाजन में पोलण्ड का कुछ भाग देना ही पड़ा। १७९३ के विभाजन में आस्ट्रिया को कुछ नहीं मिला किन्तु प्रशिया को थोड़ा-सा भाग मिला। १७९५ के विभाजन में यद्यपि आस्ट्रिया और प्रशिया को थोड़ा-सा प्रदेश मिला किन्तु रूस का भाग सबसे अधिक था। इस बात को मानने से इनकार नहीं किया जा सकता कि कैथरीन ने यूरोप में रूस की प्रतिष्ठा बहुत ऊँची कर दी। उसकी सफलताएँ उसके ही शब्दों में संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कही जा सकती हैं—'मैं रूस में एक गरीब लड़की के रूप में आई रूस ने मुझे बहुत दहेज दिया, किन्तु मैंने उसका यह ऋण अज़ोव (Azov), क्रीमिया और यूक्रेन देकर उतार दिया है।'

ब्रिटेन (Great Britain)—हनोवर वंश इंगलैण्ड पर राज्य करता था। स्थापन-कानून (Act of Settlement) के अनुसार, साम्राज्ञी ऐनी की मृत्यु के पश्चात् १७१४ में जार्ज प्रथम इंगलण्ड के सिंहासन पर बैठा। १७२७ में उसका पुत्र जार्ज द्वितीय गद्दी पर बैठा और उसने १७६० तक राज्य किया। जार्ज प्रथम और द्वितीय के शासन-काल में ही विग सामन्तशाही का इंगलण्ड में राज्य था। इसी अवधि में मन्त्रिमण्डल प्रणाली की एक ठोस आधार पर स्थापना हुई। वालपोल के समय में प्रधान मन्त्री का पद अस्तित्व में आया। इंगलैण्ड को जेनकिन्ज युद्ध, आस्ट्रिया का उत्तराधिकार-युद्ध और सप्तवर्षीय युद्ध लड़ना पड़ा। १७६० में जब जार्ज तृतीय गद्दी पर बैठा उस समय सप्तवर्षीय युद्ध जारी था। वह १८२० तक राज्य करता रहा। वह अपने पिता और दादा दोनों से भिन्न था। उसका जन्म और लालन-पालन इंगलण्ड में हुआ था, और वह इसे बड़ा सम्मान और महत्त्व देता था।

कहा है कि इस सुधारक के जीवन का सबसे साहसपूर्ण कार्य यह था कि उसने अपना सम्पूर्ण कार्य उल्टा लौटा लिया।

जोजफ द्वितीय के विषय में कहा गया है कि "उसे खाना पीना या मनोरंजन करना भी नहीं आता। वह सरकारी सूचना-पत्रों के अतिरिक्त कुछ पढ़ता भी नहीं।" इतना करने पर भी वह असफल रहा क्योंकि जैसा फ्रेडरिक महान् ने कहा "उसने पहले कदम के बजाय दूसरा कदम पहले उठाया।" स्वयं जोजफ ने अपनी कब्र पर लिखने के लिए यह कहा कि "यहाँ वह राजा सोया है जो सब प्रकार की सदभावनाओं के होने पर भी प्रत्येक कार्य में जो भी उसने किया असफल रहा।"

जोजफ द्वितीय की परराष्ट्र-नीति का भी उल्लेख करना चाहिये। उसकी परराष्ट्र-नीति का मुख्य ध्येय हैप्सबर्ग वंश की जर्मनी में सर्वोच्च सत्ता स्थापित करना तथा अपने साम्राज्य की सीमाओं का पुनर्गठन करना था। जोजफ द्वितीय ने रूस को सारे पोलण्ड पर अधिकार करने से रोकने के लिए पोलण्ड के प्रथम विभाजन के समय प्रशिया का साथ दिया। इसे रूस और प्रशिया के साथ इस लूट का माल भी मिला। वह तुर्कों से बुकोविना लेने में भी सफल रहा। १७१३ की संधि के अनुसार हॉलैण्ड सीमान्त के दुर्गों में सेना रखता था किन्तु जोजफ ने हॉलैण्ड को इन दुर्गों का अधिकार छोड़ने पर बाध्य किया। प्रशिया के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए उसने रूस से गठबन्धन किया। उसने आस्ट्रियन-नीदरलैण्ड को बावेरिया से बदलने का प्रयत्न भी किया किन्तु प्रशिया के विरोध के कारण वह ऐसा करने में असफल रहा। उसने तुर्कों को छिन्न भिन्न करने के विचार से तुर्की के विरुद्ध युद्ध छेड़ा। किन्तु प्रशिया के विरोध के कारण वह अपने कार्य में सफल न हो सका। प्रशिया इंग्लैण्ड और हॉलैण्ड ने तुर्कों की सहायता के लिए त्रिमुख संधि की। ल्युपॉल्ड (Leopold) द्वितीय जो आस्ट्रिया के सिंहासन पर १७९० में बैठा १७९१ में युद्ध से हट गया।

फ्रांस क्रान्ति के पूर्व आस्ट्रिया के साम्राज्य में अत्यन्त बेचैनी थी। यह केवल फ्रांस की क्रान्ति में ही नहीं अपितु रूस और प्रशिया के पोलैण्ड सम्बन्धी षडयन्त्रों में भी दिलचस्पी रखती थी। फ्रांस क्रान्ति के लिए यह द्विविधा लाभदायक थी।

रूस (Russia)—१७६२ से १७९६ तक केथरीन महान् रूस पर शासन करती रही। यह एक चतुर और कूटनीतिज्ञ महिला थी और पीटर महान् के पदचिह्नों पर चल रही थी। वह एक उदार स्वेच्छाचारी शासिका थी। वह यूरोप के विद्वानों की संगति में प्रसन्न रहती थी और डिडरोत (Diderot) जैसे साहित्यिकों की संरक्षिका थी। उसने एक दृढ़ शासन प्रणाली की स्थापना की किंतु जनसाधारण की स्थिति के विषय में वह परवाह नहीं करती थी। जनसाधारण को किसी भी क्षेत्र में स्वतन्त्रता नहीं थी। उसके आदेश ही सर्वत्र कानून थे।

उसकी विदेश-नीति पोलण्ड और तुर्की के विरुद्ध थी। १७६८ में रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ किया। तुर्क परास्त हुए और उन्हें मोलडाविया और वालाशिया का प्रदेश छोड़ना पड़ा। १७७४ में कुचुक—कैनार्डजी (Kutchuk—Kainardji) की संधि होने पर यह युद्ध समाप्त हुआ। इस संधि के कारण रूस को

अजोफ और अन्य बहुत से स्थान प्राप्त हुए जिसके कारण केथरीन को काला सागर (Black Sea) के उत्तरी तट और अजाफ सागर (Sea of Azoff) पर अधिकार प्राप्त हुआ। काला सागर रूसिया की जहाजरानी के लिए खुला था। क्रीमिया की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। रूस ने तुर्की में अपना राजदूत नियुक्त किया। रूसी प्रजा का फिलिस्तीन के तीर्थ-स्थानों पर यात्रा करने की छूट मिल गई। तुर्की में बसे हुए यूनानी इसाइयों की रक्षा के लिए रूस को तुर्की के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हुआ। रूस और तुर्की की यह सन्धि अधिक समय तक नहीं चल सकी। १७८७ में पुन युद्ध आरम्भ हो गया। इस अवसर पर केथरीन ने जोजफ द्वितीय से तुर्की का समाप्त करने के लिए मेल कर लिया। १७९१ में आस्ट्रिया को इगलण्ड प्रशिया और पवित्र देश (होलीलैण्ड Holyland) के त्रिमुखी गठजोड़ के कारण इस युद्ध से अलग होना पड़ा। रूस किसी प्रकार अकेला ही इस युद्ध को लड़ता रहा जो १७९२ में जस्सी (Jassy) की सन्धि होने पर समाप्त हुआ। इस सन्धि के द्वारा तुर्की को क्रीमिया पर रूस का अधिकार मानना पड़ा। डेनिस्टर नदी तक के काला सागर के उत्तरी तट के प्रदेश पर तुर्की का अधिकार समाप्त हो गया।

केथरीन का पोलण्ड के १७७२ १७९३ और १७९५ के तीनों विभाजनों में बड़ा हाथ था। उसकी प्रथम योजना सारे पोलण्ड का अधिकार में रखने की थी किन्तु इसे आस्ट्रिया और प्रशिया को १७७२ के विभाजन में पोलण्ड का कुछ भाग देना ही पड़ा। १७९३ के विभाजन में आस्ट्रिया को कुछ नहीं मिला किन्तु प्रशिया को थोड़ा-सा भाग मिला। १७९५ के विभाजन में यद्यपि आस्ट्रिया और प्रशिया को थोड़ा-सा प्रदेश मिला किन्तु रूस का भाग सबसे अधिक था। इस बात को मानने से इनकार नहीं किया जा सकता कि केथरीन ने यूरोप में रूस की प्रतिष्ठा बहुत ऊँची कर दी। उसकी सफलताएँ उसके ही शब्दों में संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कही जा सकती हैं— मैं रूस में एक गरीब लड़की के रूप में आई रूस ने मुझे बहुत दहेज दिया, किन्तु मैंने उसका यह ऋण अजोव (Azov) क्रीमिया और यूक्रेन देकर उतार दिया है।

ब्रिटेन (Great Britain)—हनोवर वंश इगलण्ड पर राज्य करता था। स्थापन-कानून (Act of Settlement) के अनुसार साम्राज्ञी ऐनी की मृत्यु के पश्चात् १७१४ में जार्ज प्रथम इगलण्ड के सिंहासन पर बैठा। १७२७ में उसका पुत्र जार्ज द्वितीय गद्दी पर बैठा और उसने १७६० तक राज्य किया। जार्ज प्रथम और द्वितीय के शासन-काल में ही विग सामन्तशाही का इगलैण्ड में राज्य था। इसी अवधि में मन्त्रिमण्डल प्रणाली की एक ठोस आधार पर स्थापना हुई। वालपोल के समय में 'प्रधान मन्त्री' का पद अस्तित्व में आया। इगलैण्ड को जेनकिन्ज युद्ध, आस्ट्रिया का उत्तराधिकार-युद्ध और सप्तवर्षीय युद्ध लड़ना पड़ा। १७६० में जब जार्ज तृतीय गद्दी पर बैठा उस समय सप्तवर्षीय युद्ध जारी था। वह १८२० तक राज्य करता रहा। वह अपने पिता और दादा दोनों से भिन्न था। उसका जन्म और लालन-पालन इगलैण्ड में हुआ था, और वह इसे बड़ा सम्मान और महत्त्व देता था।

प्रारम्भ से ही वह अपना व्यक्तिगत शासन स्थापित करना चाहता था। १७६१ म पिट ने त्याग पत्र दे दिया और १७६१ से १७६३ तक जार्ज का मित्र लार्ड बुटे (Lord Bute) प्रधान मन्त्री रहा। १७६३ से १७७० तक उसने विग-वर्ग के लोगो म मतभेद पैदा करने की नीति अपनायी और साथ-साथ अपने विश्वस्त मित्रो को शासन की शिक्षा भी देता रहा। अपने ध्येय मे सफल होने पर १७७० म उसने लार्ड नार्थ को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया और वह इस पद पर १७८२ तक बना रहा। इस अवधि म उत्तरी अमेरिका के उपनिवेशो मे अंग्रेजो के सम्बन्ध जटिल हो गये और अमरिका मे स्वातन्त्र्य युद्ध आरम्भ हो गया। इंगलण्ड परास्त हुआ और १७८३ म वरसाइ (Versailles) की सन्धि के अनुसार अमेरिका के उपनिवेशो की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। दिसम्बर १७८३ मे युवा पिट (Pitt the Younger) को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया गया और उसने यह पद थोड़ी अवधि छोड़कर १८०६ तक सभाला। १७८९ म जब फ्रांस क्रान्ति शुरू हुई युवा पिट इंगलण्ड म सर्वाधिकार सम्पन्न था। औद्योगिक तथा कृषि क्रान्तियां इंगलण्ड म प्रगति कर रही थी जिनके कारण इंगलण्ड उद्योग और कृषि की पैदावार मे यूरोप का नेतृत्व कर रहा था। फ्रांस को नियति के विधान के अनुसार इंगलण्ड से घोर विरोध प्राप्त होना था।

पोलण्ड (Poland)—सोलहवी शताब्दी मे पोलण्ड एक शक्तिशाली राष्ट्र था और १६८३ म तुर्को से वियाना का उद्धार कराने का श्रेय पोलण्ड का ही है। उसने केवल जर्मनी को ही नही अपितु सारे यूरोप को तुर्को के प्रभुत्व से बचाया। अठारहवी शताब्दी म उसका पतन आरम्भ हुआ और इस शताब्दी के अन्त तक यूरोप के मान चित्र मे उसका नाम मिट गया। इसके अनेक कारण थे।

पोलण्ड म राजा का चुना जाता था परिणामत प्रत्येक राजा की मृत्यु के पश्चात् बहुत षडयन्त्र होते और पड़ोसी देशो को पोलण्ड के आन्तरिक मामलो म हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त होता रहता था। महान् शक्तियो के पोलण्ड म अपने गुट थे जिनके हितो का वे प्रतिपादन करते थे। इन गुटो की स्वामि भक्ति अपने देश के हितो की अपेक्षा अपने विदेशी संरक्षको के प्रति रहती थी। प्रत्येक राजा के चुनाव के समय पोलण्ड के सामन्तो को विशेष सुविधाए प्राप्त हो जाती और यह चक्र प्रत्येक बार राजा के चुनाव के समय चलता था। शिष्ट वर्ग को बहुत बड़ी सख्या म सुविधाए और विशेषाधिकार मिल जाते थे परिणामत राजा की स्थिति बड़ी दुर्बल हो जाती थी। पुनश्च विदेशी राजकुमारो का पोलण्ड का राजा चुना जाना पोलण्ड के लिए बड़ा मुसीबत थी। चुने हुए राजा लोग अपने साथ अपने प्रदेशो का स्वामित्व भी लाते और इनके कारण पोलण्ड को व्यर्थ म ही यूरोप की कूटनीति म घिसटना पड़ता था।

पोलण्ड म एक और दुर्भाग्यपूर्ण परिपाटी थी जिसे स्वतन्त्र मत (Liberum Veto) कहते थे। इस परिपाटी के अनुसार पोलण्ड के मन्त्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को दूसरे के किसी भी प्रस्ताव को रद्द कर देने का अधिकार प्राप्त था। परिणामत ... कोई प्रस्ताव सदन म सर्वसम्मति के बिना पारित नही हो सकता था। सर्वसम्मति

प्राप्त करना इसलिए असम्भव था क्योंकि विदेशी राष्ट्र सरलता से कुछ सामन्तों को अपने साथ मिलाकर किसी भी प्रगतिशील कानून को रद्द करा सकते थे। यह परिपाटी अत्यन्त मूर्खतापूर्ण थी और पोलैण्ड के लिए घातक सिद्ध हुई। किन्तु सामन्त लोग अपनी शान, घमण्ड और परिणामों पर विचार न करने के कारण इसे बनाये रखना चाहते थे।

पोलैण्ड में घोर असमानता थी। एक ओर सामन्तों को सब प्रकार की सुविधाएँ और विशेषाधिकार प्राप्त थे, दूसरी ओर गरीब किसानों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। परिणामतः समाज में घोर कटुता फैली थी। इन परिस्थितियों में पोलैण्ड में एकता नहीं थी अतः देश की शक्ति क्षीण होती गई। धार्मिक मतभेदों के कारण भी पोलैण्ड के देशभक्तों को कठिनाइयाँ बढ़ी। पोलैण्ड के कैथोलिक प्रोटेस्टेण्टों पर बड़ा अत्याचार करते थे। जाति भेद भी पोलैण्ड के समाज में एकता की कमी का एक कारण था। पोलैण्ड में बहुत-से ऐसे तत्त्व थे जो अपनी स्वतन्त्रता के लिए विदेशों का सहारा और सहायता ढूँढते थे। दुर्भाग्य से पोलैंड की सीमा में भौगोलिक एकता नहीं थी और इसके अनेक प्रदेश अपने को देश का भाग नहीं मानते थे। पोलैंड की सीमा निर्धारित करने के लिए कोई पर्वत अथवा नदी नहीं थी। इस कारण उसके लिए विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करना बड़ा कठिन था। पोलैण्ड के दुर्भाग्य से अठारहवीं शताब्दी में उसके पड़ोसी दशा के शासक सिद्धान्तहीन व्यक्ति थे। फ्रेड्रिक महान् और कैथरीन महान् दोनों ही अपने व्यवहार में पूर्णतः सिद्धान्तहीन थे। इस कारण इसमें आश्चर्य नहीं कि इन दोनों के हाथों पोलैण्ड का नाश हुआ।

फ्रेड्रिक महान् और कैथरीन महान् दोनों की आँखें पोलैंड पर गड़ी थीं। प्रारम्भ के तौर पर उन्होंने सेक्सनी वंश को पोलैण्ड के सिंहासन पर बैठने के अधिकार से वंचित करने का प्रयत्न किया। १७६३ में जब पोलैण्ड के राजा आगस्टस तृतीय का देहान्त हुआ उन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ। दोनों ने ही पोलैण्ड के सामन्तों पर अपने मनोनीत व्यक्तियों को राजा चुनने के लिए जोर डाला। पोलैण्ड का नया राजा स्टेनलॉस पोनियाटोवस्की (Stanislaus Poniatowsky) कैथरीन का बड़ा कृपापात्र था। पोलैण्ड के सिंहासन पर अपना मनोनीत व्यक्ति बैठाकर पोलैण्ड के विभाजन की तैयारियाँ शुरू हुईं। पोलैण्ड के देशभक्तों को रूस का प्रभाव अखरा और उन्होंने उसकी रोक के लिए एक संगठन किया। रूस और पोलैण्ड में युद्ध छिड़ गया और रूस पोलैण्ड की शक्ति तोड़ने में सफल रहा। फ्रेड्रिक ने पोलैण्ड के विभाजन का प्रस्ताव रखा, किन्तु कैथरीन सारे पोलैण्ड को अपने पास रखना चाहती थी, इसलिए उसने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। किन्तु जब रूस और तुर्की का युद्ध छिड़ा उस समय फ्रेड्रिक को अवसर प्राप्त हुआ। जब आस्ट्रिया और प्रशिया ने गठजोड़ किया तो रूस पोलैण्ड के विभाजन को मान गया। १७७२ में प्रथम विभाजन हुआ। इस विभाजन में रूस को लिथानिया तथा लियोनिया का कुछ भाग मिला जिससे रूस की सीमा डीवीना और डैनीपर नदी तक विस्तार हुआ। प्रशिया को पश्चिमी प्रशिया तथा आस्ट्रिया को जिप्स तथा लाल रूस (गैलेसिया) का प्रदेश प्राप्त हुआ। मेरिया

थिरेसा के व्यवहार के विषय में फ्रेड्रिक ने व्यंग्य से कहा था कि वह रानी तो है किन्तु अपना भाग ले ही लेती है।

१७७२ के विभाजन के पश्चात् पोलण्ड रूस पर निर्भर हो गया और पोलण्ड के देशभक्त कुछ समय तक रूस और प्रशिया के मेल के कारण कुछ नहीं कर सके। १७८१ में प्रशिया और आस्ट्रिया में मेल होने के कारण जो कि पोलण्ड के लिए प्रशिया की अपेक्षा अधिक मित्रतापूर्ण था हालत कुछ सुधरी। १७८७ में रूस और तुर्की में युद्ध हुआ। १७८८ में रूस और आस्ट्रिया की महत्त्वाकांक्षाओं को रोकने के लिए त्रिमुखी सन्धि (Triple Alliance) हुई। १७८८ में पोलण्ड की संसद की बैठक हुई जिसमें कुछ सुधार करने का निश्चय किया गया। दुर्भाग्य से सुधार-कार्य में इस कारण देर हुई कि पोलण्ड का राजा रूस से डरता था तथा सामन्त सुधारों का विरोधी था। प्रशिया ने भी विरोध किया। १७९१ के सुधार के अनुसार पोलण्ड के राजा का पद सैक्सानी (Saxony) वंश में वंशक्रमानुगत होना था। पोलण्ड के राजा को शासन और सेना का नियन्त्रण करना था। स्वतन्त्रमत (Liberum Veto) की प्रणाली का समाप्त कर देना सबको धार्मिक सहिष्णुता प्रदान करना इत्यादि था। रूस इन सुधारों से अप्रसन्न था और इसलिए पोलण्ड के विरुद्ध अभियान की तैयारी शुरू की। रूस ने आस्ट्रिया और प्रशिया को फ्रांस की क्रान्ति में दिलचस्पी लेने के लिए उत्साहित किया जिससे कि पोलण्ड में मनमानी की जा सके। प्रशिया ने भी पोलण्ड के प्रति मित्र भाव त्याग दिया। इससे पोलण्ड को बड़ा बुरा लगा। आस्ट्रिया का रुख मैत्रीपूर्ण था। इस वातावरण में रूस ने पोलण्ड पर आक्रमण किया और उसे परास्त किया। पोलण्ड को अपनी सुधार-योजना समाप्त करनी पड़ी। उसे आस्ट्रिया और प्रशिया से कोई सहायता नहीं मिली इसलिए उसका रक्षा का युद्ध समाप्त हो गया। १७९३ में दूसरी बार पोलण्ड का विभाजन हुआ। आस्ट्रिया को कुछ नहीं मिला। रूस को पूर्वी पोलण्ड जिसमें मिन्स्क पोडोलिया वाल्हीनिया छोटा रूस थे मिला तथा प्रशिया को डेंजिग थार्न पोजन जेनीजन और कलिश मिले। रूस को प्रशिया से दुगुना प्रदेश और चार गुनी प्रजा प्राप्त हुई। इस विभाजन में इन शक्तियों की लज्जाजनक स्वार्थपरता और परस्पर अविश्वास नग्न रूप में प्रकट हो गया। आस्ट्रिया ने इस विभाजन पर घोर नाराजगी प्रकट की जो उसकी सम्मति के बिना हुआ और जिसके कारण रूस की सीमाएं आस्ट्रिया के प्रदेशों तक फैल गई। आस्ट्रिया और प्रशिया के सम्बन्धों में तनाव आ गया।

रूस ने पोलण्ड में अपनी शक्ति को बढ़ाया और पोलण्ड का राजा वारसा में स्थित रूस के राजदूत का एजेण्ट हो गया। पोलण्ड की प्रजा को यह विभाजन बहुत बुरा लगा और गुप्त सभाओं की स्थापना हुई जिसमें पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त करके सुधार किये जायें। अनेक स्थानों पर विद्रोह हुआ और अनेक स्थानों से रूसियों को निकाल दिया गया। १७९४ में रूस ने माँग की कि पोलैण्ड की सेना भंग कर दी जाए किन्तु इस माँग को ठुकरा दिया गया। बहुत स्थानों पर विद्रोह हुआ और रूसियों को निकाल दिया गया। रूस ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया और पराजित किया। सब विरोधी तत्त्वों का दमन कर दिया गया। इस प्रकार १७९५ में पोलण्ड

का तीसरा विभाजन हुआ। इस विभाजन में रूस को गैलीसिया और डुना का तराई के बीच लगभग २००० वर्गमील का क्षेत्र प्राप्त हुआ। आस्ट्रिया को गैलीसिया का शेष प्रदेश तथा क्रैको का लगभग १००० वर्गमील का क्षेत्र प्राप्त हुआ। प्रशा को वारसा तथा बग और डेनीपर नदी के बीच का लगभग ७०० वर्गमील का प्रदेश मिला। जनवरी १७९७ की एक संधि के अनुसार रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने मिलकर यह घोषणा की कि "पोलण्ड के राज्य की याद दिलाने वाली सब वस्तुओं को नष्ट कर देना आवश्यक है।

गुडाला (Guedalla) के मतानुसार पोलण्ड का विभाजन यूरोप की कूटनीति का एक घोर लज्जाजनक नग्न कार्य था। यह लज्जाजनक इसलिए था क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार और न्याय के विरुद्ध था। यह नग्न इसलिए था क्योंकि जिन देशों ने इस लूट में साझा किया उन्हें इससे कोई बल प्राप्त नहीं हुआ। पोलैण्ड की जनता ने कभी भी विभाजन को स्वीकार नहीं किया और बीसवीं शताब्दी में जब तक उन्हें स्वतन्त्रता नहीं मिली वे निरन्तर घोर संघर्ष करते ही रहे। रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया तीनों के पेटों में पोलण्ड के टुकड़े बिना हजम हुए स्वतन्त्र बने रहे। पोलण्ड का विभाजन एक घोर पापाचार का उदाहरण है। किन्तु इन महान शक्तियों द्वारा पोलण्ड में हस्तक्षेप के कारण फ्रांस की क्रांति को सहायता मिली। फ्रांस अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने में इसलिए सफल रहा, क्योंकि उसके शत्रु पोलण्ड के मामले में परस्पर विरोधी होने के कारण उसके विरुद्ध कोई समुचित कदम नहीं उठा सकते थे।

इटली (Italy)—इटली इस काल में एक भौगोलिक शब्द था और यह बहुसंख्यक राज्यों में बंटा हुआ था। उत्तर में सवाय और सारडीनिया के सामन्तशाही राज्य जिनोआ और वेनिस के दो गणतन्त्र और मिलान परमा माडना (Modena) और लुक्का की चार जागीरें थीं। दक्षिण में टुस्कने की जागीर रोम नेपल्स सिसली को मिलाकर पोप का राज्य था। १७६९ में कोर्सिका फ्रांस ने ले लिया था।

स्पेन के उत्तराधिकार के पश्चात् इटली में स्पेन के स्थान पर आस्ट्रिया ने एक प्रभावशाली शक्ति का स्थान प्राप्त कर लिया। आस्ट्रिया का मिलान पर सर्वाधिकार सम्पन्न शासन था। सम्राट फ्रांसिस ने टुस्कने हथिया रखा था। परमा मोडेना और लुक्का पर आस्ट्रिया का बहुत-सा नियन्त्रण था। आस्ट्रिया की भूखी आँखें वेनिस पर भी लगी थीं। यह सत्य है कि इटली के राज्य स्वतन्त्र थे किन्तु इनका कोई महत्त्व नहीं था। वेनिस और जिनोआ की शान समाप्त हो चुकी थी। पोप की जागीरें सारे यूरोप में सबसे बुरी शासित थीं। नेपल्स बहुत ही पिछड़ा हुआ था। किन्तु टुस्कने समस्त यूरोप में सबसे श्रेष्ठ शासित राज्य था। १७३७ में मरिया थिरेसा के पति फ्रांसिस को यह उत्तराधिकार में मिला। उसका कार्य उसके पुत्र लियोपोल्ड (१७६५-१७९०) ने जारी रखा। मुजारे की प्रथा समाप्त कर दी गई और सामन्तों के अधिकार सीमित कर दिये गए। धार्मिक न्यायालय प्रथा

(Inquisition) का समाप्त कर दिया गया। चर्च के न्यायालयों के अधिकार कम कर दिये गये। यातनाएं देना बन्द कर दिया गया। वार्षिक आय लेखा प्रकाशित किया जाने लगा। इस प्रकार टुस्कने इटली और यूरोप के लिए प्रकाश-स्तम्भ बन गया।

इटली की स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण बात सवाय वंश की सतत वृद्धि थी। यह सत्य है कि सवाय या सारडीनिया इटली में किसी प्रगति का नेतृत्व नहीं कर सकता था किन्तु उसने अपनी सामरिक और भौगोलिक स्थिति से लाभ उठाना सीख लिया था। कभी वह एक तो कभी दूसरी शक्तियों से गठजोड़ करता और इसलिए कभी कभी स्वयं नष्ट होने की स्थिति में फँस जाता था। किन्तु किसी-न किसी प्रकार यह अपने प्रदेशों का इकट्ठा करके उज्ज्वल भविष्य की आशा करने लगा।

किसी फ्रांसीसी लेखक ने कहा है कि 'इटली में सात या आठ सभ्यता के केन्द्र हैं। एक अत्यन्त साधारण-सा कार्य टयुरीन वेनिस मिलान जिनोआ बालोग्ना फ्लारेन्स रोम या नेपल्स में भिन्न भिन्न प्रकार से किया जाता है। वेनिस स्पष्ट और विलासी है किन्तु टयुरीन बुरी तरह आडम्बर लिप्त है। मिलान का विनोद जिनोआ की नीचता से टक्कर लेता है। बालोग्ना वाले उत्तेजना लगन उदारतायुक्त और कभी कभी ढीठ होते हैं। नेपल्स वाले क्षणिक मौज के दास है।

स्पेन (Spain)—सोलहवीं शताब्दी में चार्ल्स पंचम और फिलिप द्वितीय के शासन-काल में स्पेन एक महान देश था। सत्रहवीं शताब्दी के काल में वह एक द्वितीय श्रेणी की शक्ति रह गई। प्रतिक्रियाशील शक्तियां देश की भाग्य विधाता बन गई। स्पेन के उत्तराधिकार के युद्ध के पश्चात् फ्रांस के लुई चौदहवें के प्रपौत्र को स्पेन का शासक माना गया। १७६१ के सप्तवर्षीय युद्ध में स्पेन ने फ्रांस का साथ दिया। एनसेनाडा और पटिनो जैसे मन्त्रियों ने बहुत से सुधार किए। चार्ल्स तृतीय के शासन काल में और सुधार हुए जिनके अनुसार न्याय प्रणाली में सुधार हुए डाकू डालने वालों का दमन किया गया। धार्मिक दण्ड विधान की कड़ाई को हल्का कर दिया गया जेसुइटों को देश निकाला दिया गया और देश की आर्थिक उन्नति हुई। देश के बौद्धिक जीवन को प्रोत्साहन दिया गया। नया राजा चार्ल्स एक दुर्बल और अस्थिर व्यक्ति था।

पुर्तगाल (Portugal)—जोजफ प्रथम के मन्त्री पाम्बल ने बहुत से सुधार किए जिनके अनुसार उद्योगों में उन्नति हुई शिक्षा को प्रोत्साहन मिला और उसे धर्म निरपेक्ष (Secular) बनाया पादरियों के अधिकारों को कम कर दिया गया और धर्म दण्ड प्रथा के क्षेत्र को कम किया गया।

Suggested Readings

Bourne H G	*The Revolutionary Period in Europe 1763—1815*
Bruun G	*The Enlightened Despots*
Fisher H A L	*A History of Europe*
Gottschalk L R.	*The Era of the French Revolution 1715—1815*
Goldsmith M	*Frederick the Great*

Grant and Temperley	*Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries*
Hayes C J H	*A Political and Cultural History of Modern Europe Vols I & II*
Johnson A	*The Age of the Enlightened Despots*
Ketelbey C D M	*A History of Modern Times*
Lowell	*Eve of the French Revolution*
Macaulay (Lord)	*Essay on Frederic the Great*
Marriott J A R & Robertson C G	*The Evolution of Prussia*
Phillips W A	*Modern Europe*
Robinson & Beard	*Readings in Modern European History*

किसान को जागीरदार धर्माधिकारी तथा सम्राट के प्रति बहुत से अनुदान देने होते थे। साधारणतः उसे जागीरदार के खेतों में सप्ताह में तीन दिन काम करना पड़ता था। फसल की कटाई के समय सप्ताह में पाँच दिन काम करना पड़ता था। किसान की मृत्यु पर उसके परिवार को दुगुना राजस्व देना पड़ता था। खेत के बिकने पर प्राप्त धन का पंचमांश जागीरदार को जाता था। किसान को चर्च के लिए भी अपनी आय का दशमांश देना पड़ता था जो वर्ष में लगभग उसकी कुल वार्षिक आय के बारहवें भाग से पन्द्रहवें भाग तक होता था। सम्राट को दिया जाने वाला कर इन सबसे अधिक था। खेती-कर (Land tax or Taille) इन सबमें अधिक महत्त्वपूर्ण था। यह कर निर्धारित नहीं था किन्तु किसान के खेतों और घर की कीमत के अनुसार लगाया जाता था। वास्तव में कर उगाहने वाले पदाधिकारी अधिक-से-अधिक जितना उनके हाथ लगता छीन ले जाया करते। खेती का धरती पर लगाई गई कर प्रणाली के कारण किसानों की हालत बड़ी खराब हो गई। उगाही करने का काम सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को मिलता था जो नीलामी का दाम राज्य में जमा कर देता और फिर किसानों को तंग करके अपने को मालामाल करने का प्रयत्न करता। किसानों की चमड़ी उतार ली जाती थी। सारा राजस्व किसानों का ही देना पड़ता था क्योंकि जागीरदार और धर्माचार्य राज्य को कुछ नहीं देते थे। किसानों का आयकर (Vingtieme) भी देना पड़ता था। यह लगभग सब प्रकार की आय का पंचमांश होता था। जागीरदार बहुत थोड़ा देते थे और धर्माचार्यों को बिल्कुल छूट थी। एक अन्य कर नमक-कर (Gabelle) था। यह कर सब प्रकार के करों से निकृष्ट था। सरकार के पास नमक के सर्वाधिकार थे। और सात वर्ष की आयु में बड़े सब लोगों को नमक की निर्धारित मात्रा खरीदनी पड़ती थी जो लगभग सात पौण्ड होती थी। नमक असली कीमत से दस गुनी कीमत पर मिलता था। किसी भी व्यक्ति को नमक के झरनों पर पानी पीने तथा समुद्र-जल से खाना बनाने का अधिकार नहीं था। फिर नमक का मूल्य सब स्थानों पर भिन्न था जिनसे प्रजा को बड़ी कठिनाई होती थी। एक और कर सड़क-कर था। सड़कें बनाना किसानों का कर्तव्य था और उन्हें वर्ष में कई सप्ताह अपने पड़ोस के प्रदेशों में सड़कें बनानी और मरम्मत करनी पड़ती थी।

अनुमान किया जाता है कि इन सब करों का भुगतान करने के बाद ग्राम के किसान के पास उसकी कमाई का केवल बीस प्रतिशत भाग जीवन-यापन के लिए शेष रहता था। फ्रांस के कुछ थोड़े प्रदेशों के किसान इन सब करों को देकर सुख से रह सकते थे किन्तु बाकी सारे देश में उनकी हालत इतनी दुःखमय थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। खूब अच्छी फसल होने पर भी उन्हें रोटियों के लाले पड़े रहते थे। सूखा, गरमी या लम्बी सरदी होने पर वे समाप्त हो जाते थे। भूखे किसान अपनी भूख मिटाने के लिए घास और जड़ें खाते और हजारों भूख से मर जाया करते। कोई भी उनकी दशा पर विचार करता प्रतीत नहीं होता था। किसान ठीक ही कहता था कि ग्राम की जनसंख्या के दस भागों में नौ भाग भूख में और दसवाँ भाग अजीर्ण से मरता है।

किसान बड़ी मुसीबत में थे। धरती के बँटवारे की फ्रांस की सामन्तशाही प्रणाली अत्यन्त दमनपूर्ण थी और उन सब चीज़ों का, जिनके द्वारा उनके साधारण अधिकार छीने जाते, किसान विरोध करते थे। उन्होंने विशेष बाड़-लगान तथा गाँवों की सामूहिक धरती के बँटवारे का विरोध किया। इनके द्वारा बड़े जागीरदारों को लाभ था। अठारहवीं शताब्दी में महँगाई के कारण भी उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। साधारण दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के दाम १७२६ से १७४१ के काल की अपेक्षा १७८५ से १७८९ में कहीं अधिक थे। दामों के चढ़ने से उन लोगों को सब से अधिक कठिनाई हुई, जो मुश्किल से गुज़ारा कर पाते थे। किसानों द्वारा खाये जाने वाले अन्न के दाम उच्च वर्ग द्वारा खाये जाने वाले गेहूँ से भी ऊँचे चढ़ गये।

बुर्जुआ अथवा मध्य श्रेणी के लोग भी फ्रांस के अधिकार-हीन वर्ग में ही थे। इस वर्ग में शिक्षक, वकील, डाक्टर, साहूकार और व्यापारी थे। आर्थिक व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में यह वर्ग बड़ा शक्तिशाली था। इसी वर्ग से राज्य को मन्त्री, न्यायाधीश, कर उगाहने वाले और अन्य धंधे वाले प्राप्त होते थे। इनके पास धन और बुद्धि दोनों ही थी। इसी वर्ग के लोग संसार के विभिन्न भागों में यात्रा करते और सब प्रकार से जागरूक थे। उन पर फ्रांस के दार्शनिकों का गहरा प्रभाव था और परिणामतः वे प्राचीन परिपाटी द्वारा दिये गये निम्न स्थान को अपनाने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। पुरानी राज्य शासन प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह में इस वर्ग के लोग ही जनता के नेता बने।

प्रो० साल्वेमिनी के अनुसार अठारहवीं शताब्दी के द्वितीय भाग में फ्रांस का समाज एक प्राचीन नगर के समान था जो कि किसी रूपरेखा या नियम के बिना उत्पन्न हुआ और भिन्न भिन्न युगों के तरीकों द्वारा अनेक प्रकार की वस्तुओं से बना हुआ था। प्राचीन और अप्रचलित भवन नये और गिरते ढाँचों में परस्पर मिले हुए थे। प्रायः सभी निवासी श्रमी, मध्य-वर्गीय और विशेषाधिकारी भी असंतुष्ट थे।

सरकारी कर्मचारी भ्रष्ट और खराब नीति के शिकार हो गए थे, जिसके विरुद्ध देश का विद्रोह करना आवश्यक था यदि उसे सामन्तशाही अन्धकार में पुनः बचाना था। विशेषाधिकारियों ने खजाने को लूटा, शासन व्यवस्था ने देश की आर्थिक स्थिति को उलट पुलट कर दिया। वे बिना देखे रसातल के किनारे तक पहुँच गए और परस्पर कलह करते हुए डूबने वाले थे।

फ्रांस जाति उनके स्वयं के विनाश और सामन्तशाही के प्रत्येक कार्य को नष्ट करने के लिए मजबूर थी। आशा करते थे कि राजा परम्परानुगत सामन्तशाही विरोधी नीति को अपनायेगा जोकि प्राचीन समय में उसके वंश का गौरव थी। अन्त में बेकार प्रतीक्षा से थककर उन्होंने सामन्तशाही के अन्तिम अवशेषों को, राजशाही को, जोकि उनकी समर्थक थी, उखाड़ फेंका और आधुनिक समाज पर एक नया प्रजातन्त्र स्थापित किया।

नेपोलियन बोनापार्ट के शब्दों में फ्रांस की क्रान्ति समूचे राष्ट्र द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त वर्गों के विरुद्ध एक सामूहिक विद्रोह था। फ्रांस का सामन्त वर्ग

यूरोप के अन्य सामन्तो की तरह उन पर बर्बर आक्रमणो के काल से चला आ रहा था जिन्होंने रोम का साम्राज्य छिन्न भिन्न कर दिया था। फ्रांस में सामन्त लोग प्राचीन फ्रैंक और बरगण्डियन जिरगा के प्रतिनिधि थे और अन्य प्रजाजनों का गॉल (Gaul) कबील से निकास था। सामन्तशाही प्रणाली से सिद्धान्त रूप से यह बात सर्वमान्य हो गई कि अचल सम्पत्ति का अन्य भू-स्वामी का होना आवश्यक है। देश के सारे राजनीतिक अधिकारों का सामन्त और धर्माचार्य ही प्रयोग करते थे। किसानों को धरती कमाने पर लगाकर दास बना दिया गया था।

"ज्ञान और सभ्यता के विकास से जनसाधारण मुक्त हो गये। नवीन परिस्थितियों से उद्योग और व्यापार की उन्नति हुई। अठारहवीं शताब्दी में धरती राष्ट्र धन और सभ्यता के वरदानों का उपभोग जनसाधारण के अधिकार में था। इस समय भी सामन्त और जागीरदार विशेषाधिकार भोगी वर्ग था। उच्च और माध्यमिक न्यायालय उनके अधिकार में थे। वे विभिन्न नामों और प्रकारों की आड में अनेक विशेषाधिकारों का उपभोग करते थे। राष्ट्र द्वारा लगाये करों से उन्हें छूट प्राप्त थी तथा देश के सर्वोच्च पदों पर उनका एकाधिकार था।

इन सब बुराइयों ने जनसाधारण को विद्रोह के लिए प्रोत्साहन दिया। क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य सब प्रकार की विशेष सुविधाओं और अधिकारों की समाप्ति जागीरदारों की अदालतों की समाप्ति जनसाधारण की पूर्व दासता की याद दिलाने वाले सारे सामन्तशाही अधिकारों को नष्ट करना बिना किसी प्रकार के भेदभाव के सब सम्पत्तियों और सब नागरिकों पर एक समान राष्ट्र के करों का लगाना और प्राप्त करना था। समस्त नागरिकों को अपनी योग्यता पसन्द और अवसर के अनुसार राज्य के सब पदों को प्राप्त करने का अधिकार देना था। (Mind of Napoleon p 65)।

(२) दूषित शासन प्रणाली (Rotten Administrative System)—फ्रांस की क्रान्ति का दूसरा कारण देश की दूषित शासन प्रणाली थी। सम्राट देश का स्वामी था और वह स्वच्छानुसार राज्य करता था। लुई चौदहवें के अनुसार सम्पूर्ण प्रभुत्व के अधिकार मुझमें निहित हैं कानून बनाने की शक्ति केवल मुझ में है मेरी प्रजा केवल मेरे साथ है सारे राष्ट्रीय अधिकार और राष्ट्रीय हित सिद्धान्त रूप से मेरे द्वारा संग्रहीत हैं तथा मेरे ही हाथों में हैं। इस प्रकार की प्रणाली किस प्रकार दृढ़ हो सकती थी! आश्चर्य नहीं कि जन-साधारण का जीवन उस समय दुःखमय था। सम्राट देश के विभिन्न प्रदेशों का दौरा करने नहीं जाता था। परिणामतः उसका प्रजा से सम्पर्क टूट गया था। उसे लोगों के दुःखों और आवश्यकताओं का कोई ज्ञान नहीं था। सम्राट का सारा ध्यान राजधानी पर केन्द्रित रहता था जहाँ राज दरबार की चहल-पहल में भाग लेने के लिए सामन्तों की भीड़ जुटी रहती थी। लुई पन्द्रहवें के राज्यकाल में राज्य का हानि पर उसका रखना (mistresses) का प्रभाव था। लुई सोलहवें के शासनकाल में महारानी मेरी एन्टोईनेट राजकाज में हस्तक्षेप करती थी। कहा जाता था कि राजदरबार राष्ट्र की कब्र बन गया है।

दरबार के दायरे में १८ हजार व्यक्तियों का जमघट था जिनमें से १६ हजार सम्राट और उसके परिवार की सेवा में रहते थे। शेष दो हजार दरबारी थे जो नित्य विलासिता में व्यस्त रहते थे और सम्राट से कृपा प्राप्त करके अपने घरों को मालामाल करने में व्यस्त रहा करते थे। महलों के निवासी अपने को देवताओं के प्रिय समझते थे। सम्राट, सम्राज्ञी, शाही बालक, भाई और बहिन तथा सम्राट के अन्य सम्बन्धियों के अलग अलग नौकर चाकर थे। कहा जाता है कि महारानी के निजी ५०० सेवक थे। उन्नीस सौ घोड़ों और दो सौ गाड़ियों से भी अधिक गाड़ियाँ शाही घुड़साल में थीं जिनका वार्षिक खर्च लगभग चार करोड़ डालर था। राज्य की मेज की कीमत ही १½ लाख डालर से अधिक थी। फ्रांस की क्रान्ति के पूर्व इस महान् अपव्यय का अनुमान २० करोड़ डालर प्रतिवर्ष लगाया जाता है।[1]

देश की शासन प्रणाली घोर असमताजनक थी। प्रशासन के अनेक विभागों का कार्य अथवा अधिकार-क्षेत्र निर्धारित नहीं था। विभिन्न अवसरों पर फ्रांस को जिलों में बाँटा गया और अधिकारी नियुक्त किये गये। ये अधिकारी नाममात्र के थे। राज्यपालों के अधिकार में सूबे भी थे, जिन्हें उन्होंने न्याय-क्षेत्र, शिक्षा-क्षेत्र तथा धार्मिक क्षेत्रों में बाँट रखा था। इस प्रकार कार्य और अधिकार-क्षेत्रों के परस्पर उलझे होने के कारण भी लोगों का कष्ट अधिक हो गया होगा।

न्याय प्रणाली भी बड़ी अव्यवस्थित थी। समस्त देश के एक समान कानून नहीं थे। देश के भिन्न भिन्न भागों में अलग अलग कानून लागू थे। यदि एक स्थान पर जर्मन कानून लागू था तो दूसरे स्थान पर रोमन कानून का प्रचलन था। अनुमान है कि देश में लगभग चार-सौ न्याय प्रणालियाँ प्रचलित थीं। न्याय-संहिता लैटिन भाषा (Latin) में लिखी हुई थी इसलिए जन साधारण उसे समझ ही नहीं सकते थे। कानून निर्दय न्यायहीन थे और साधारण से अपराध पर कठोर से कठोर दण्ड दिया जाता था। शारीरिक यातना दण्ड का मुख्य अंग था। चक्र के नीचे

---

१ प्रो० सालवेमिनी के मतानुसार 'उनमें से बहुतों को यह तक पता नहीं था कि उनकी कितनी आय [illegible] उनकी आदत थी। [illegible] अपनी शान के विरुद्ध समझता था कि वह [illegible] वस्तुएँ या उनके [illegible] व्यवस्था। [illegible] करना उनका अपना। [illegible] ने [illegible] से कहा, [illegible] कहा जाता है कि [illegible] कर्ज है।' [illegible] उत्तर दिया [illegible] कहूँगा और उसका [illegible] ।

"स्वाभाविक है कि [illegible] ४ ०० ००० [illegible] हो चुका था। [illegible] ६ ०० ००० [illegible] से [illegible] दो बार [illegible] की [illegible] पूरा [illegible] हो चुका था, [illegible] हो चुका था। (The French Revolution, pp 20-21)

पीस कर हड्डियां तोड़ देना अथवा नाक या कान काटना तथा भी दण्ड थे। इनमें कोई नियमित दण्ड विधान नहीं था। प्रभावशाली व्यक्ति के इशारे पर किसी भी व्यक्ति को कैद में डाल दिया जाता था। इसके लिए एक आज्ञा पत्र (Lettre de Cachet) ही किसी को अनन्त काल तक बिना मुकदमा चलाये कैदखाने में डाल रखने के लिये पर्याप्त था। कानूनी एकत्रीकरण आज्ञाओं का कोई विधान नहीं था। वोलटेयर और मिराबो जैसे महान् व्यक्तियों को भी अन्य साधारण व्यक्तियों के समान कैद कर लिया गया था। अव्यवस्था केवल न्याय प्रणाली में ही नहीं अपितु न्यायालयों में भी थी। फ्रांस में शाही कचहरी सैनिक कचहरी, आर्थिक कचहरी तथा धर्म-न्यायालय थे। इन अनेक प्रकार के न्यायालयों के कार्य और अधिकार-क्षेत्र के उलझे होने के कारण भी प्रजा को अवश्य ही कष्ट रहा होगा। फ्रांस में एक और अद्भुत परिपाटी थी जिसे Noblesse de la robe अर्थात् चोगे वाले सामन्त कहा जाता था। ये लोग जीवन भर के लिए न्यायाधीश होते थे। इनके पद बेचे और खरीदे जाते थे। क्योंकि ये लोग अपने पद खरीदते थे ये बड़े बड़े जुर्माने करके अपनी जेबें भरते थे। इनकी संख्या लगभग पचास हजार थी। यह वर्ग निश्चित रूप से समाज के लिये अभिशाप था। मूलतः यह न्याय के सिद्धान्तों को झुठला देता था। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भार और माप के अलग अलग नाम और दाम थे। इनके मानदण्ड का अन्तर एक गांव से दूसरे गांव जाने पर ही लग जाता था।

क्रान्ति के समय फ्रांस की सेना में ३५,००० अफसर थे जिसमें १,१७१ जनरल थे और १,३५,००० सिपाही। अफसरों पर ४६ मिलियन वार्षिक का खर्च होता था यद्यपि केवल ५,००० ही सक्रिय सूची पर थे। सारी सेना का व्यय कुल ९४ मिलियन के बराबर था।

नापने और तोलने के बाटों के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न नाम और विभिन्न मूल्य थे। कभी कभी यह असमानता इतनी अधिक तेज हो जाती थी जबकि कोई एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जाता था।

फ्रांस में Parlements कहे जाने वाले न्यायालय बड़े प्राचीन न्यायालय थे और ये छोटे न्यायालयों के निर्णय पर पुनर्विचार करते थे। अठारहवीं शताब्दी के समाप्ति काल में फ्रांस में इस प्रकार के १३ न्यायालय थे। प्रत्येक न्यायालय में कार न्यायाधीशों का संघ था जिनके पदाधिकारी धीरे धीरे वंशानुगत उत्तराधिकारी होने लगे थे।

पार्लिमेंट न्यायालयों को कुछ राजनैतिक अधिकार भी दिए हुए थे। इन्हें शाही घोषणाओं और आज्ञाओं को पंजीबद्ध करने के अधिकार प्राप्त थे। वे इन आज्ञाओं को पंजीबद्ध करने से इन्कार करके सम्राट पर दबाव डाल सकते थे। एक शक्तिशाली राजा उनसे और प्रकार निपट सकता था किन्तु दुर्भाग्य से लुई चौदहवें के बाद फ्रांस में कोई योग्य सम्राट नहीं हुआ। १७७१ में लुई पन्द्रहवें ने इन न्यायालयों को समाप्त कर दिया किन्तु १७७४ में लुई सोलहवें ने इन्हें पुन चालू कर दिया। ये न्यायालय इस प्रकार दूसरी बार स्थापित होकर शाही मन्त्रियों को तंग करने की तथा

आर्थिक सुधारों में हेरफेर करने की स्थिति में हो गये तथा साथ-साथ वे अपने आपको जनता के अधिकारों और स्वतन्त्रता के रक्षक घोषित करने लगे।

फ्रांस के कुछ राज्यों में प्रतिनिधि प्रादेशिक सभायें थीं जिनकी बैठकें नियत समय के पश्चात् हुआ करती थीं। ये सभायें स्थानीय प्रशासन के उत्तरदायित्व को केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधियों से मिलकर निभाती थीं। इन्हें कुछ आर्थिक सुविधायें प्राप्त थीं जिन्हें वे सुधारवादी अर्थ मन्त्रियों के विरुद्ध सफलता से बचाये रखते थे। इन्हें नये करों की अदायगी करने में यह छूट थी कि वे एक नियत राशि वार्षिक अनुदान के रूप में दे सकते थे। परिणामतः वे पूरा कर देने से बच जाते थे। राज्य के करों का अनुमान तथा वसूली का कार्य उन प्रादेशिक सभाओं के पदाधिकारियों को सौंपा हुआ था। स्थानीय व्यय के लिए विशेष कर लगाये जाते थे। ये सभाएँ जागीरदारों अथवा धर्माचार्यों के नियन्त्रण में थीं और इनका रूढ़िवादी तथा प्रतिक्रियावादी होना स्वाभाविक था। वे ऐसे किसी भी सुधार को जिसमें उनके विशेषाधिकारों को चोट पहुँचे पसन्द नहीं करते थे।

करों की उगाही का प्रबन्ध अत्यन्त त्रुटिपूर्ण था। राज्य अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से राजस्व की वसूली नहीं करता था। यह अधिकार सबसे ऊँची बोली देने वाले को दिया जाता था। परिणामतः ठेकेदार राज्य को एक नियत राशि देकर प्रजा से जितना धन वे ऐंठ सकते वसूल करते थे। यद्यपि प्रजा का शोषण होता था तो भी सरकार को कोई लाभ नहीं था। कर लगान की प्रणाली बहुत गंदी थी। इससे देश में अत्याचार और दमन बढ़ गया। सामन्तों, जागीरदारों और धर्माचार्यों द्वारा कर न देने के कारण सारा भार गरीब सर्वहारा-वर्ग पर ही पड़ता जिसके कारण जनता में बड़ा असन्तोष था। फ्रांस के समूचे शासन-यन्त्र की सफाई की बड़ी आवश्यकता थी।

(२) लुई चौदहवें के उत्तराधिकारी (Successors of Louis XIV)—



लुई चौदहवें

शान्ति का एक कारण लुई चौदहवें के उत्तराधिकारियों का अयोग्य होना भी था। इस विलासी सम्राट ने अपने उत्तराधिकारियों के लिए आर्थिक दिवालियापन की स्थिति विरासत में छोड़ी। कहा जाता है कि मृत्यु शय्या पर पड़े हुए लुई ने अपने प्रपौत्र लुई पन्द्रहवें को यह उपदेश दिया कि मेरे बच्चे अपने पड़ोसियों के साथ शान्ति से रहने का प्रयत्न करना मेरे युद्ध करने के शौक की अथवा मेरे अपव्यय की नकल मत करना। प्रजा को शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा देने का प्रयत्न करके वह पाप कर दिखाना जो मैं पूरा करने में असमर्थ रहा। यह प्रसिद्ध है कि यह बिल्कुल व्यर्थ रहा और उसने लोगों को सुख देने की अपेक्षा उन पर युद्ध और विलासिता के कारण अधिक कठिनाइयाँ लाद दीं। वह कहा करता था मेरे बाद प्रलय होगी।

लुई पन्द्रहवें के शासन के विषय में पेरिस में आस्ट्रिया के राजदूत काम्टे डे



लुई पन्द्रहवाँ

मर्सी ने सम्राज्ञी मेरिया थेरसा को लिखा 'दरबार में अन्याय गड़बड़ और दुष्कार्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रशासन के अच्छे सिद्धान्तों का पालन करने का कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। प्रत्येक चीज भाग्य पर छूटी हुई है। राष्ट्रीय विषयों की अपमानजनक दशा ने अवर्णनीय घृणा और हतोत्साहिता को पैदा किया है जबकि उन लोगों की चालबाजियां जो मौजूद रहते हैं, केवल अव्यवस्था फैलाती हैं। पवित्र कार्यों को नियमितता नहीं मिलती जबकि अपमानपूर्ण आचरण का सहन किया जाता है।'

डा० जी० पी० गूच के मतानुसार लुई पन्द्रहवें ने अपने देशवासियों को एक कुशासित असंतुष्ट और निराशाग्रस्त फ्रांस बसीयत में दिया। दूर से देखने पर प्राचीन शासन-व्यवस्था ऐसी ठोस मालूम होती थी जैसे बेस्टाइल, किन्तु मरम्मत न होने के कारण इसकी दीवारें गिर रही थीं और नीवें हटते जाने के चिह्न छोड़ रही थीं। निरंकुश राजतन्त्र विशेषाधिकारी सामंतवर्ग, असहिष्णु चर्च बलात् कारपोरेशन, पार्लियामेंट्स सभी अलोकप्रिय हो चुकी थीं और सेना, जो कभी फ्रांस की शान थी भी रासबाख के पतन से पतित हो चुकी थी। यद्यपि गणराज्यवाद का तनिक विचार था, राजतन्त्र की मर्यादा लगभग उड़ चुकी थी।

(Louis XV The Monarchy in Decline, p 244)

लुई सोलहवाँ (१७७४ ९३) बीस वर्ष की आयु में सम्राट बना। परिस्थितियों को सँभालने में उसकी असमर्थता और विवशता का अनुमान उसके ही शब्दों से लगाया जा सकता है कि, 'ऐसा प्रतीत होता है कि दुनिया मेरे ऊपर गिर रही है। हे भगवान्! मुझ पर कितना बोझ है और इन्होंने मुझे कोई भी शिक्षा नहीं दी।' शर्मीला और झेंपू होने के कारण वह मसद की बैठकों की अध्यक्षता भी नहीं कर सकता था। वह आलसी और कम अक्ल था। ताले बनाना और महल की खिड़की से हिरनों का शिकार करना उसके मनोरंजन के साधन थे। भले ही वह एक अच्छा नागरिक होता किन्तु उस समय जब उसके देश के सामने गम्भीर कठिनाइयाँ थीं, वह राजा होने के बिल्कुल अयोग्य था। एक समकालीन लेखक का लेख है कि "कोई भी उस पर विश्वास नहीं करता क्योंकि उसमें आत्म विश्वास है ही नहीं। उसे शासन-कला से तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। यह तथ्य मलिशर्बस (Malesherbes) का त्यागपत्र स्वीकार करते समय लुई के शब्दों से प्रकट होता है कि "तुम बड़े भाग्यशाली हो। काश मैं भी त्यागपत्र दे सकता!'—

मेरी एनटाईनिट (Marie Antoinette) (१७५५ ९३)—मेरी एनटाईनिट आस्ट्रिया-हंगरी की महारानी मेरिया थिरेसा की पुत्री थी। लुई सोलहवें से उसका विवाह करने का उद्देश्य आस्ट्रिया और फ्रांस में मैत्री करा देना था। वह सुन्दर उदार और चंचल थी। वह कुशाग्रबुद्धि, शीघ्र निर्णय करने वाली तथा कठोर इच्छाशक्ति वाली थी। किन्तु उसमें गम्भीरता से विचार करने की तथा गुण परखने की शक्ति नहीं थी। उसने फ्रांस की प्रजा के स्वभाव का तथा समय की प्रगति का नहीं

समझा। शाही परिवार में पैदा होने के कारण वह सर्वहारा-वर्ग के दृष्टिकोण को नहीं समझ पाई। वह अपव्ययी घमण्डी जिद्दी असंयमी तथा विलास प्रिय थी। उसने बहुत-सी गलतियाँ कीं जिसके कारण फ्रांस की प्रजा उससे घृणा करने लगी। सप्त वर्षीय युद्ध में वह फ्रांस के अपमान का जीवित प्रतीक थी। वह लोभी व्यक्तियों का केन्द्र थी जो सब प्रकार के सुधारों के विरोधी थे।

उसके सगे भ्राता सम्राट जोजफ द्वितीय ने मेरी एनटाईनिट के विषय में कहा है "मेरी प्रिय बहिन मैं निस्संकोचता के साथ कहता हूँ जिसके लिए मैं तुम्हारे प्रति अपने स्नेह तथा तुम्हारे कल्याण में अपनी रुचि के लिए अधिकारी हूँ। जो मैंने सुना है तुम अनेकों बड़ी समस्याओं में अपने को ग्रस्त कर रही हो जिनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है और जिनके बारे में तुम्हें कोई ज्ञान नहीं। चालबाज और चापलूस व्यक्तियों से घिरी हो जो तुम्हारे हृदय में केवल अहंकार और चमकने की इच्छा ही को नहीं जागृत करते हैं बरन उनसे ईर्ष्या और दुर्भावना उत्पन्न होती है। ऐसा आचरण तुम्हारी प्रसन्नता पर बुरा प्रभाव डाल सकता है और आगे या पीछे तुम्हारे और राजा के बीच गम्भीर परेशानी उत्पन्न कर सकता है जिससे उसका तुम्हारे प्रति मान व प्यार घटेगा और जनता के प्रति प्रेम को भी कम करेगा मेरी प्रिय बहिन तुम मन्त्रियों को उनके पदों से हटाने में एक को निकालने और उसकी जगह दूसरे को देने में यह देखने में कि तुम्हारा मित्र किसी मुकद्दमे में जीते या कोर्ट की ओर से कोई नयी और अपव्ययी नियुक्ति कराने में संक्षेप में विषयों पर इस तरह विवाद करने में जो तुम्हारी स्थिति के अनुकूल नहीं अपना प्रयोग क्या करती हो? क्या तुमने कभी यह भी सोचा कि फ्रांस की सरकार या राजतन्त्र के विषयों में हस्तक्षेप करने का तुम्हें क्या अधिकार है? तुमने क्या अध्ययन किया है तुमने क्या ज्ञान प्राप्त किया है जिससे तुम अपनी राय को महत्व देती हो विशेषकर ऐसे मामलों में जिनके लिए विशाल अनुभव की आवश्यकता है। एक आकर्षक युवा स्त्री की तरह तुम केवल अपव्ययिता के विषय में अपने शृङ्गार के विषय में अपने मनोरंजन के विषय में सोचती हो जो न पुस्तकें पढ़े न एक मास में दस मिनट से ज्यादा किसी गम्भीर बात को सुने जो कभी सोच विचार न करे न कभी यह सोचे कि किये हुए काम या कहे हुए शब्द का क्या परिणाम होगा? तुम केवल क्षणिक आवेग के साथ काम करती हो जिसे तुम्हारे विश्वसनीय पदाधिकारीगण तीक्ष्ण करते रहते हैं ... एक मित्र के परामर्श को सुनो यह सारी चालबाजियाँ छोड़ दो सार्वजनिक विषयों में अपने को हटा लो और केवल राजा के स्नेह और विश्वास पाने के योग्य होने की ओर ध्यान करो ... के हेतु कुछ प्रयत्न किया करो अपने मस्तिष्क को ऊँचा करो। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रत्येक स्त्री का अपने निजी घर में यही काम होना है।

(४) फ्रांस के दार्शनिक (French Philosophers)—फ्रांस की क्रान्ति का एक अन्य कारण फ्रांसीसी दार्शनिकों के उत्पन्न होने थे। मॉण्टेस्क्यू वाल्टेयर और

तथा उस काल के बौद्धिक महामानव थे, मांटेस्क्यू (१६८९-१७५५) एक शिष्ट और प्रसिद्ध वकील था। वह इतिहास का विद्वान् गम्भीर तीव्र मानव-समाज का गम्भीर विद्यार्थी था। उसकी लेखन-शैली तीखी और चुभन वाली थी। उसके लेख केवल काल्पनिक नहीं अपितु गम्भीर और युक्ति युक्त विचारों का परिणाम थे। इनमें गम्भीरता, उच्च विचार, वैधानिक विश्लेषण तथा मधुर भाषा होती था। उसने नए दार्शनिकता का आन्दोलन चलाया तथा व्यंग्य और आलोचना का सहारा लेकर प्राचीन शासन प्रणाली (Ancien Regime) पर इतनी तीव्रता से आक्रमण किया कि शासन की नींव हिल गई। वह वैधानिक प्रणाली की सरकार का समर्थक था और कानून की सर्वसत्ता में विश्वास रखता था। उसका मत था कि सत्ता के विभाजन के बिना स्वतन्त्रता असम्भव है। वैधानिक न्यायिक तथा क्रियात्मक अधिकार आवश्यक रूप से भिन्न भिन्न शक्तियों में बँटे होने चाहिएँ तभी जनता को स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। इन तीनों प्रकार के अधिकारों में किन्हीं दो अथवा तीनों के एक ही शक्ति के हाथ में होने के परिणामस्वरूप अनाचार बढ़ जायगा। मॉटेस्क्यू ने शासन यन्त्र का नियन्त्रण करने वाले सिद्धांतों का विश्लेषण करके फ्रांस की शासन प्रणाली के प्रति श्रद्धापूर्ण प्रतिष्ठा को समाप्त कर दिया।



मॉंटेस्क्यू

उसका महान् ग्रन्थ विधि की आत्मा (Spirit of the Laws) जो बीस वर्ष के परिश्रम का परिणाम था १७४८ में प्रकाशित हुआ। कहा जाता है कि अठारह महीने में इसके बाईस संस्करण निकले। यह राजनीति दर्शन का अध्ययन था जिसमें भिन्न प्रकार की शासन की प्रणालियों की विवेचना थी। प्रचलित प्रणालियों और परिपाटियों में दैनिक आचरण का उल्लेख कर उसने उनका वनस्पति शास्त्रवेत्ता की तरह विश्लेषण किया।

प्रो० सालवेमिनी के मतानुसार, 'स्पिरिट ऑफ दि लॉज' ने शिक्षित जनों में वैधानिक और राजनीतिक अध्ययनों के विषय में एक अभिरुचि उत्पन्न कर दी। समाज विज्ञान का साहित्य के क्षेत्र में स्थान दिया और अन्य किसी रचना की अपेक्षा समाज वैधानिक व दार्शनिक साहित्य प्रेम का एक ऐसा वातावरण उत्पन्न करने में सहायता प्रदान की जिसने परवर्ती शताब्दी में क्रांतिकारी सिद्धांतों को फलने-फूलने के योग्य बनाया।' (The French Revolution, p. 64.)

दूसरा महापुरुष वाल्टेयर (१६६४-१७७८) था। गद्य पद्य इतिहास नाटक, उपन्यासों के माध्यम से उसने देश की परिपाटियों, विश्वासों और अनाचारों की आलोचना की। उसने निर्दयता से इनकी त्रुटियों को नंगा कर दिया। वह इनकी मूर्खताओं का उपहास करता था। 'उसकी दुर्लभ और बहुमुखी हाजिर-जवाबी सूक्ष्म व्यंग्य विनाशकारी आलोचना उसके जीवन के गहरे अध्ययन का देशवासियों के मस्तिष्क पर बहुत गहरा प्रभाव था। उसने दार्शनिक आन्दोलन को जन-साधारण तक पहुँचाया। उसमें स्वयं कई कमियाँ थीं और उसकी कृतियों में भी दोष थे फिर भी उसने अपने देशवासियों को मूर्खता से घृणा करना और बुराइयों से बचना सिखाया। फ्रांस का चर्च उसके खण्डन का मुख्य लक्ष्य था। उसने ईसाइयों की धर्मान्धता और रूढ़िवाद पर कठोर आक्रमण किया और धार्मिक सहिष्णुता का समर्थन किया। क्योंकि हम सब त्रुटियों और बेवकूफियों में फँसे हुए हैं इसलिए हम एक-दूसरे को अपनी बेवकूफियों के लिए क्षमा कर देना चाहिये। भगवान् की पूजा करो और अच्छे आदमी बनो। इन साहित्यिक गुणों के कारण वाल्टेयर के ग्रंथों और लेखों को बहुत लोग पढ़ते थे और इसमें आश्चर्य नहीं कि अपने युग में उसका फ्रांस में बड़ा प्रभाव था।



वाल्टेयर

वाल्टेयर यूरोप के इतिहास का महापण्डित था और उसके नाम से उस युग को याद किया जाता है। हम वाल्टेयर युग के विषय में उसी प्रकार चर्चा करते हैं जिस प्रकार लूथर और इरास्मस के युग को याद करते हैं। उसे बादशाह वाल्टेयर के नाम से पुकारा जाता था। विश्वख्याति प्राप्त करके वह विश्व के इतिहास में जाना गया। वह सारे जीवन भर एक योद्धा रहा। वह दिन में बादल की तरह गरजा और रात्रि में अग्निपुंज की तरह दमका। वह कभी थकता नहीं था। वह बड़ा दिलचस्प और मस्त हो कर सलाह देने वाला रहा। वह अत्याचार को किसी भी रूप और प्रकार में सहन नहीं करता था। वह दलितों की खातिर संघर्ष के लिए सर्वदा तैयार रहता था। वह उदार-शासन-चाही शासन का समर्थक था तथा प्रजातन्त्र से उसे

कोई लगाव नहीं था। वह कहा करता था 'मुझे एक मित्र का शासन अनेक चूहों के राज्य से अच्छा लगता है।

फ्रांस के जिस दार्शनिक का प्रभाव सबसे अधिक था वह था रूसो (१७१२-१७७८)। उसे भूगोल का अध्ययन और विश्लेषण पसंद नहीं था। उसे विद्या और कला के प्रचार में कोई रुचि नहीं थी। उसके मतानुसार अध्ययन, ज्ञान और संस्कृति मनुष्य को गिरा देती हैं। सब समाज बनावटी है। राजनीति के सब प्रकार अत्याचारी और बुरे हैं। मनुष्य स्वतंत्र पैदा होकर भी सर्वत्र दासता में जकड़ा दिखाई पड़ता है। समाज का वातावरण मनुष्य की प्राकृतिक स्वच्छता को नष्ट कर देता है। उसके गुणों का मन्दा करके उसके सारे पापों और दुखों का उत्तरदायी है। आश्चर्य नहीं कि रूसो ने जन-साधारण से अपील की, 'समाज के बनावटी ढाँचे को, गंदी इच्छाओं और यातना-


रूसो

पूर्ण मन से भर संसार की व्यवस्था के नाम से पुकारे जाने वाले अत्याचार का नाश कर दो और उसकी जड़ उखाड़ फेंको। इसकी असमानताओं को गिराकर समान बना दो। इसके पाप को समाप्त कर दो और इसकी शान बाने अपमान को, उखाड़ फेंको। इसके अपमान का विरोध करो, मनुष्यों को आदि काल की सादगी अपनाने दो जब कर दो इसके अपमान का विरोध करो, समता की बेड़ियाँ तोड़ डालो। मनुष्यों को आदि काल की सादगी अपनाने दो, जैसा प्राकृतिक स्वभाव ही उन पर शासन करते थे, जब वे अबोध और अज्ञानी थे, जैसा प्रकृति ने उन्हें बनाया था, और उन्हें अमर दैविक आदर्शों द्वारा प्रेरित तक के महान जीवन के उच्च आदर्शों को प्राप्त करने दो।"

आगे, क्या हमारे समाज में सारे लाभ केवल धनी और सत्ताधारियों के लिए नहीं हैं? क्या सारी चित्ताकर्षक सेवायें केवल उन्हीं के लिए सुरक्षित नहीं हैं? क्या सारी विलासिताएं उन्हीं की सम्पत्ति नहीं हैं? यदि एक प्रभावशाली व्यक्ति अपने साहूकारों को धोखा देता है या अन्य दुष्टतापूर्ण काम करता है तो क्या उसे कानून के सम्मुख विशेष उन्मुक्ति नहीं मिल सकती? यदि वह हिंसा या हत्या का दोषी है तो क्या सारा मामला शान्त नहीं कर दिया जाता और छः महीना के बाद कोई जिक्र तक नहीं होता? लेकिन जब इसी व्यक्ति को लूट लिया जाता है, तो सारी

पुलिस चल पड़ती है और उस निर्दोष को सताया जाता है जिस पर सन्देह किया जाता है। यदि एक धनी व्यक्ति को किसी भयानक स्थान से गुजरना पड़े तो उसे विशाल संरक्षक दल दिया जाता है। यदि उसकी गाड़ी का धुरा टूट जाय तो सारे लोग उसकी सहायता के लिए भाग पड़ते हैं। यदि उसके द्वार पर शोर हो तो उसके एक शब्द पर सन्नाटा छा जाता है। यदि उसके द्वार पर कोई गाड़ीवाला रुक जाय तो उसके नौकर उस पर मार की वर्षा करते हैं। इन सुविधाओं का उसे कुछ देना नहीं पड़ता क्योंकि धनी लोगों को इन छोटी-मोटी चीजों का प्रयोग करने के लिए अपने धन को व्यय करने की आवश्यकता नहीं। लेकिन गरीब व्यक्ति का दृश्य कितना भिन्न है! समाज जितनी अधिक दया उसे देता है उसे वह उतना ही कम पाता है। उसके लिए सारे द्वार बन्द रहते हैं जबकि उन्हें खुला रखना उसके अधिकार में है। यदि मान में एक बार भी न्याय लेने की आवश्यकता पड़े तो अन्य लोगों की अपेक्षा इस कृपा को पाने की उसे बहुत ज्यादा कोशिश करनी पड़ती है। यदि किराये की गाड़ी मँगाना हो या सैनिक टैक्स वसूल करना हो तो सबसे पहले उसे ही लिया जाता है। उसे केवल अपने ही भार नहीं उठाने पड़ते वरन् वे भी उठाने पड़ते हैं जो उसके पड़ोसी उसकी पीठ पर लाद देते हैं। यदि वह किसी दुर्घटना का शिकार हो जाय तो सभी उसे उसके भाग्य पर छोड़ देते हैं। यदि उसकी गाड़ी उलट जाय तो वह सामन्त के नौकरों के उस अपमान से नहीं बच सकता जो जल्दी से पास से निकलना चाहते हैं। आवश्यकता के समय सारी निःशुल्क सहायता से वह वंचित रहता है क्योंकि उसमें उसे अदा करने की क्षमता नहीं। और उस पर और भी अधिक दुःख पड़ता है यदि दुर्भाग्यवश उसकी आत्मा शुद्ध है उसके पास एक सुन्दर पुत्री या ममताधारी पड़ोसी है उसे हानि उठानी पड़ती है। कुछ शब्दों में हम दोनों वर्गों के बीच सामाजिक सम्बन्धों को इस प्रकार रख सकते हैं तुम्हें मेरी आवश्यकता है क्योंकि तुम धनी हो और मैं निर्धन हूँ इसलिए हम आपस में एक समझौता कर लें मैं तुम्हें अपनी सेवा करने की आज्ञा दूँगा यदि तुम्हें आज्ञाएं देने में मुझे जो कष्ट होगा उसके बदले में तुम मुझे वह सब दोगे जो तुम्हारे पास है।

रूसो ने उस प्राकृतिक राज्य की कल्पना की है जिसमें लोग सदाचारी समान और स्वतन्त्र थे। उसने इस बात की विवेचना की है कि सामाजिक समझौते (Social Contract) में किस प्रकार राज्य की उत्पत्ति होती है और प्रकृति का राज्य समाप्त हो जाता है। उसने जनता की सर्वाधिकार-सम्पन्नता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। प्रत्येक व्यक्ति उस सम्पन्नता का अधिकारी था। क्योंकि सर्वाधिकार जनता में निहित है कोई भी सरकार अथवा राजा उनसे इस अधिकार को नहीं छीन सकता है। प्रजा को सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार है। रूसो वर्तमान की सारी मान्यताओं का विरोधी था और इस प्रकार उनकी नींव पर आघात करता था। उसके ग्रन्थों ने लोगों पर बड़ा स्थायी प्रभाव डाला। उसने स्वतन्त्रता के प्रति लोगों में उत्साह को पैदा किया। उसके सामाजिक समझौता (Social Contract) सिद्धान्त ने क्रान्ति का प्रसार किया और उसकी आग को सुलगाया। यह सिद्धान्त जैकोबिन (Jacobin) दल का मूलमन्त्र बना और इस मत का मुख्य प्रचारक रोब्सपियरे (Robes

pierre) बना। लार्ड मार्ले ने रूसो के प्रभाव का अनुमान इन शब्दों में बताया है 'प्रथम उसने शब्द कहे जिन्हें वापस नहीं लौटाया जा सकता, तथा इनसे वह आशा का दीप जलाया गया जिसे कभी भी बुझाया नहीं जा सकता। पहले उसने जन साधारण को तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की बुराइयों का ज्ञान कराया, सभ्यता की महानता को मानव समाज के एक बहुत बड़े अंग के लिए नगण्य बना दिया। दूसरे अपनी प्रभावशाली वाणी और तेजस्वी धारणाओं से असंख्य मनुष्यों के हृदय में वे भाव जगाये और फ्रांस में इतनी शक्ति फूँक दी और निद्रित अवस्था से जगाया जो मृत्यु की तरह सारे देश के जीवन पर छाई जा रही थी।'[1]

प्रो० हेज़न (Hazen) के शब्दों में, 'क्रान्ति दार्शनिकों के कारण नहीं हुई अपितु राष्ट्रीय जीवन की बुराइयों परिस्थितियों तथा सरकार की त्रुटियों के कारण हुई। कुछ भी हो ये विद्वान् क्रान्ति का एक निमित्त थे, क्योंकि उन्होंने क्रान्ति के नेताओं के एक गुट को शिक्षित किया, उनमें कुछ गहन सिद्धान्तों को जमाया, उन्हें वाक्य, सिद्धान्त और तर्क दिये उन्हें कुछ शक्तिशाली विचार प्रदान किए और इस प्रकार की आशा दिखलाई जो इस सारे समय से प्रकट है। यद्यपि उन्होंने क्रान्ति नहीं की किन्तु उन्होंने इसके कारणों को विद्वत्तापूर्ण रूप से नंगा कर दिया उनका सारा ध्यान उन पर आकर्षित किया, इन पर विवाद करने पर बाध्य किया और उनकी घृणा को जगाया।'

इन तीन महापुरुषों के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे विचारक भी थे और क्योंकि उनके लेखों ने भी लोगों के विचारों को प्रभावित किया उनका उल्लेख भी आवश्यक है। दिदरो (Diderot) उस विश्व ज्ञान कोष (Encyclopaedia) का सम्पादक था, जिसमें अनेक लेखकों ने लेख दिये थे। उसके विचार मौलिक थे। वह चतुर वार्ता में संकोचहीन और महान विचारक तथा अद्भुत और कल्पनाशील व्यक्ति था। उसमें लोगों को अपने विचारों का समर्थक बनाने की महान् आकर्षण शक्ति और अगाध लगन थी। मानव समाज की उन्नति करने की उसे बड़ी तीव्र लगन थी।

हेल्वेशियस (Helvetius) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि स्वार्थ ही मनुष्यों के विचारों और चरित्रों को बनाता है और आनन्द की प्राप्ति ही उनका चरम लक्ष्य है।

---

[1] प्रो० सालवेमिनी के मतानुसार, 'रूसो कोई वास्तविक क्रान्तिकारी नहीं था। यदि वह क्रान्ति के समय तक जीवित रहता, तो वह अपनी शिक्षाओं को लागू किये जाने का ज्ञान प्राप्त कर या तो दिल का धक्का खाकर मर जाता या अपना गला घोंट लेता। फिर भी उस अत्याचारपूर्ण और पतनशील समाज में, जहाँ सभी असन्तुष्ट थे और विद्रोह को सिद्ध करने के लिए अनन्त दलीलें प्रयुक्त की जा सकती थीं, यह स्वाभाविक था कि सावधानी के विषय में रूसो की राय शुरू रूप से निकल जाती और एक उत्तम सुधार के लिए उसकी इच्छा, जन्म व धन के विशेषाधिकारों के विरुद्ध उसका कड़ा विरोध और समानता के लिए प्रेम तथा असमानता पर घृणात्मक क्रोध से भरपूर उसके पृष्ठ अधिक मात्रा में प्रशंसित होने चाहिए। ज्यों ही लोगों का अपनी परम्परागत संस्थाओं में विश्वास समाप्त हो गया और नागरिक विशेषाधिकारग्रस्त वर्गों तथा राजा के विरुद्ध सफलतापूर्ण संघर्ष के लिए तैयार हो गए, तो रूसो का लोकराज्य सत्ता का मन्त्र क्रान्ति में सम्मान का नारा बन गया।" (The French Revolution pp 78—79)

हालबक (Holbach) ने राजाओं की दुश्चरित्रता और जनता की दासता की निन्दा की। उसके विचारानुसार नास्तिकता और भौतिकवाद ही जीवन के दो मौलिक सिद्धान्त हैं। उसके शब्दों में धर्म और राजनीतिक त्रुटियों ने सारे ब्रह्माण्ड को एक आँसुओं की घाटी बना डाला है।

क्युसिनाय (Quesnai) और टुर्गो (Turgot) जैसे व्यक्ति सुधारों के समर्थक और इतिहास के अध्ययन को तुच्छ समझते थे। वे स्वतन्त्रता के प्रतिपादक तथा व्यक्ति के अधिकारों को जन-साधारण के हितों के समक्ष गौण मानते थे। वे राष्ट्रीय शिक्षा को राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रमुख आवश्यक वस्तु मानते थे। उनके विचार में सारे कर खेती पर ही लगाने चाहिये क्योंकि यह राष्ट्र धन का मुख्य आधार है। वे स्वतन्त्र व्यापार, स्वतन्त्र खेती और स्वतन्त्र उद्योग के समर्थक थे किन्तु स्वतन्त्रता के लिए उनके हृदय में कोई प्रेम नहीं था।

विश्वकोष के सम्पादकों की प्रमुख देन यह थी कि वे अन्याय से घृणा करते थे, दासता, कर लगाने में असमानता, न्याय प्रणाली में भ्रष्टाचार और युद्ध की उपयोगिता के घोर विरोधी थे। वे सामाजिक प्रगति तथा औद्योगिक विकास के स्वप्न देखा करते थे।

मलेट (Mallet) के मतानुसार इन तीन प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा बोये गये बीज उपजाऊ धरती पर पड़े। फ्रांस की क्रान्ति से तुरन्त पहिले जो व्यवस्था थी वह यद्यपि स्पष्ट नहीं थी तो भी वह घोर असन्तोष की द्योतक थी। मानव की जन्मजात महानता और तत्कालीन समाज के प्रति घोर घृणा उस युग के विचारों में ओतप्रोत थी। लगभग सारे यूरोपीय देशों में सूक्ष्मदर्शियों ने भावी परिवर्तन के लक्षण देखे—वह परिवर्तन जिसका मानव-समाज के कल्याण के लिये वे स्वागत करने के लिए तैयार थे। विचारक और वक्ता दोनों ही कल्पना, उत्सुकता, निःस्वार्थपरता और असीम आशा से भरे हुए थे। (The French Revolution)

क्रापाटकिन के विचार में अठारहवीं शताब्दी के विचारक उस समय की स्थिति से असन्तोषपूर्ण समाज की नींवों को काफी समय से खोखली कर रहे थे जिसमें राजनीतिक सत्ता और धन का विशाल भाग कुलीन वर्गों व पादरियों के पास था जबकि जनता शासक वर्गों की दृष्टि में भार उठाने वाले पशुओं की तरह थी। विवेक की प्रधान सत्ता घोषित कर मानवीय स्वभाव में विश्वास का उपदेश देकर उन्होंने उन संस्थाओं का भ्रष्टाचार घोषित कर दिया जिन्होंने मनुष्य को दासता पर उतार दिया था लेकिन फिर भी इस विश्वास के साथ कि यदि उन्हें स्वतन्त्रता फिर से मिल गई तो वह सारे गुण प्राप्त कर लेंगे—उन्होंने मानव जाति के लिए नए क्षेत्र खोल दिए। जन्म के भेदभाव को न मानकर मनुष्यों के बीच समानता की घोषणा कर, चाहे राजा हो या किसान प्रत्येक नागरिक से कानून के प्रति आज्ञापालन की माँग कर उन्होंने राष्ट्र की इच्छा को अभिव्यक्त करने की कल्पना की जबकि उसका सृजन जनता के प्रतिनिधियों ने किया था। अन्त में स्वतन्त्र व्यक्तियों के बीच प्रसंविदा की स्वतन्त्रता और कर और सामन्ती मर्यादाओं व दासता के उन्मूलन की माँग कर ऐसे सारे दावे

सामने रख कर और उन्हें प्रश्न चिन्तन की विभिन्नताओं पद्धति व प्रणाली के साथ सम्बद्ध कर विचारकों ने निस्सन्देह क्रमशः जन मनुष्यों के दिमागों में पुराने शासन के पतन को तैयार कर दी थी।

(The Great French Revolution pp 12)

प्रो० थॉमसन के अनुसार फ्रांस के दार्शनिकों और १७८९ में हुई क्रांति के बीच कभी दूर का और परोक्ष का सम्बन्ध है। उन्होंने क्रांति का उपदेश नहीं दिया। वे लोग किसी भी ऐसे राजा की सहायता करने के लिए तैयार थे जो इनका संरक्षण करने और इनकी शिक्षा मानने के लिए तैयार होता। पुनः उनके समर्थक भी क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील अथवा चाहने वाले नहीं थे। स्वयं उनमें बहुत से पूँजीपति, वकील, व्यापारी स्थानीय सम्माननीय व्यक्ति थे जिनकी स्थिति अन्य लोगों से कहीं अच्छी थी। दार्शनिकता के सिद्धान्त का प्रयोग क्रांति के समय में ही हुआ और इसका प्रयोग भी इस प्रकार के कार्यों के लिए किया गया जिन्हें स्वयं इस सिद्धान्त के जन्मदाता घृणा करते। उनकी शिक्षाओं को बाद में महत्त्व प्राप्त हुआ। यदि क्रांति के प्रारम्भ में उनका कुछ प्रभाव था तो केवल इस कारण कि उन्होंने तत्कालीन सारी सामाजिक व्यवस्था के प्रति एक आलोचनात्मक और खण्डनपूर्ण विचार धारा को जन्म दिया। उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर प्राचीन व्यवस्था को गिराने के लिए जनता को तैयार किया था। १७८९ में फ्रांस की जनता को बिना इच्छा के क्रान्तिकारी बना देने के लिये सबसे बड़ा कारण उस समय की क्रान्तिपूर्ण परिस्थिति थी। इस परिस्थिति को लाने के लिए दार्शनिक सिद्धान्त का कोई महत्वपूर्ण भाग नहीं था।

(५) आर्थिक स्थिति (Financial Condition)—फ्रांस की क्रान्ति का कारण तत्कालीन सरकार की आर्थिक स्थिति भी थी। यह सत्य है कि क्रांति का मूल आधार आर्थिक था और दार्शनिकता ने उसे प्रवाह प्रवाहित किया उसकी मुख्य शक्ति आर्थिक थी। आर्थिक कारण ही क्रांति की वास्तविक नींव थे। लुई चौदहवें के युद्धों ने फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था को बिगाड़ दिया था और उसकी मृत्यु के समय देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। यद्यपि उसने लुई पन्द्रहवें को आर्थिक स्थिति को सुधारने और युद्ध से बचे रहने का उपदेश दिया पर उसने इसकी उपेक्षा की। उसने अपने महलों और रखैलों पर ही धन का अपव्यय नहीं किया अपितु अनेक युद्धों में भाग लेने का दुस्साहस किया। उसने पोलैण्ड के उत्तराधिकार के युद्ध में भाग लिया। उसने आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध में भाग लिया। सप्त-वर्षीय युद्ध में भी उसे बहुत व्यय करना पड़ा। जिस समय लुई सोलहवाँ राजसिंहासन पर बैठा फ्रांस की हालत दिवालिया हो गई थी किन्तु इतने पर भी फ्रांस ने अमरिका के स्वातन्त्र्य-युद्ध में भाग लिया। यह सत्य है कि फ्रांस ने सप्तवर्षीय युद्ध के अपमान का बदला इंग्लैंड से लिया किन्तु इस युद्ध में भाग लेने से फ्रांस की आर्थिक स्थिति बुरी तरह डगमगा गई। इस बात को नहीं झुठलाया जा सकता कि फ्रांस द्वारा अमरिका के स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने से उत्पन्न हुई जटिल आर्थिक स्थिति ने ही फ्रांस में क्रांति उत्पन्न की।

फ्रांस की आर्थिक हालत बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण थी। देश की चालीस प्रतिशत सम्पत्ति के स्वामी जागीरदार और धर्माधिकारी देश के कोष में कुछ भी नहीं देते थे। परिणामतः राजस्व का सारा भार सर्वहारा-वर्ग पर ही पड़ता था। इससे बड़ी कटुता उत्पन्न हुई। राष्ट्र पर ऋण का भार बहुत ही बढ़ गया और यह अनुमान किया जाता है कि उस समय यह ४८६७४७८००० लीवर था। १७८८ में ४७२४१५५४९ के राजस्व में से देश को २३६९९९९९८ लीवर वार्षिक सूद के रूप में देना पड़ता था।

अनुमान किया जाता है कि पुरातन शासन (Ancien Regime) की समाप्ति पर राजस्व का तीन चौथाई भाग सुरक्षा पर तथा पहले युद्धों के ऋणों का निपटान में व्यय होता था। राष्ट्र के व्यय का इन भारी मदों को बिना देश की सुरक्षा और राष्ट्र की ऋण निपटान की प्रतिष्ठा को चोट पहुँचाए घटाना असम्भव था। व्यय में कटौती केवल नागरिक खर्च में ही की जा सकती थी जो १७८८ में राष्ट्र व्यय का केवल २३ प्रतिशत था। सम्राट के खर्च में भी जो राष्ट्र-व्यय का ६ प्रतिशत था कटौती करने में कोई सहायता नहीं मिलती थी। केवल आमूलचूल परिवर्तन ही देश की स्थिति का सुधार सकता था।

१७७४ में लुई सोलहवें ने तुर्गो को वित्त मन्त्री नियुक्त किया। तुर्गो फ्रांस में एक निर्धन प्रान्त का प्रतिनिधि था। उसने प्रगतिशील अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों का प्रयोग करके इस प्रदेश को धनवान बना लिया था। उसने अनुभव किया कि यदि केन्द्रीय सरकार के व्यय में वार्षिक कमी का चलन किया गया तो इसका परिणाम देश को दिवालिया बना देगा। उसने अपना कार्यक्रम थोड़े शब्दों में बताया : अधिक कर्जा नहीं, अधिक कर नहीं और दिवालियापन बन्द हो। उसे मितव्ययिता और राष्ट्र धन की वृद्धि करके देश की आर्थिक स्थिति का सुधार करने की आशा थी। यह केवल तभी उद्योग और व्यापार में स्वतन्त्रता देकर ही हो सकता था। तुर्गो वास्तव में राज्य के खर्च का बोझ कम करके कर्जे को घटाने में सफल हुआ। किन्तु इस प्रयत्न में उसके अनेक शत्रु बन गए। वे सब के सब उच्च वर्गों की शत्रुता मिला। उन्होंने मेरी एन्टोइनेट से मिलकर सम्राट पर दबाव डाला कि तुर्गो को निकाल दे। यद्यपि सम्राट ने यह घोषणा की थी कि मैं और तुर्गो ही दो व्यक्ति प्रजा से प्रेम करते हैं फिर भी उसने वित्त मन्त्री को १७७६ में पदच्युत करके अपने लिए कठिनाइयों को निमन्त्रण दिया।

१७७६ में जिनेवा के एक साहूकार नेकर (Necker) को तुर्गो का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। नेकर ने सराफा में उच्च कर शक्ति प्राप्त की थी। मितव्ययिता करते समय उसे बड़े विरोध का सामना करना पड़ा। यह पहला व्यक्ति था जिसने देश के आय-व्यय का लेखा प्रकाशित किया। इससे पूर्व यह लेखा गुप्त रखा जाता था। दरबारी समाज में इस लेख के प्रकाशित होने के कारण बड़ा क्षोभ हुआ क्योंकि इससे यह पता लग गया कि दरबारियों की पेन्शन और भत्तों पर कितना व्यय होता है। १७८१ में नेकर को पदच्युत कर दिया गया।

नकर के बाद उसका उत्तराधिकारी कैलाने (Calonne) बना। वह एक नम्र व्यक्ति था। उसका उद्देश्य सबको प्रसन्न करना था। दरबार के सदस्यों को केवल अपनी इच्छा ही प्रकट करनी होती थी और कैलान उसे पूरा कर देता। कलान का आश्चर्यजनक ऋण लेने का सिद्धान्त था। उसके शब्दों में 'जो व्यक्ति उधार लेना चाहे उसे धनी दिखाई देना चाहिए और धनी प्रतीत होने के लिए उसे खूब खर्च करके दूसरों की आँखें चौंधिया देनी चाहियें। उसके सिद्धांत के परिणामस्वरूप धन पानी की तरह बहाया गया। तीन वर्ष में वह ३० करोड़ डालर का ऋण प्राप्त कर सका। उसकी भूलों और कार्यों का परिणाम यह हुआ कि अगस्त १७८६ तक शाही कोष बिल्कुल खाली हो गया और देश में कोई भी ऐसा मूर्ख नहीं था जो राज्य को ऋण देता। जब कलान ने विशेषाधिकार प्राप्त और सवहारा-वर्ग दोनों पर समान कर लगाने का प्रस्ताव रखा तो उसे पदच्युत कर दिया गया। सम्राट ने एक और व्यक्ति को भी कोषाध्यक्ष बना कर परखा, किन्तु वह भी आर्थिक स्थिति को दृढ़ नहीं कर पाया।

१७८७ में आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के उद्देश्य से लुई सोलहवें ने प्रमुख व्यक्तियों की एक सभा बुलाई। उसे आशा थी कि ये लोग विशेषाधिकारी वर्गों पर कर लगाए जाने के लिए सहमत हो जायेंगे। किन्तु जागीरदार लोग सम्राट पर यह कृपा करने के लिए तैयार नहीं थे और इसलिये यह सभा भंग कर दी गई। सम्राट ने नये ऋण उठाने का प्रयत्न किया किन्तु पेरिस की संसद ने नये ऋण अथवा कर लगाने से मना कर दिया। संसद ने एक अधिकार घोषणा तैयार की जिसके अनुसार वैधानिक रूप से आर्थिक अनुदान केवल जनता के प्रतिनिधि (Estates General) ही दे सकते थे। सरकार ने पेरिस की संसद के विरुद्ध कार्यवाही करके इसे भंग कर दिया। वहाँ गुनगपाडा मचा और सैनिकों ने न्यायाधीशों को कैद करने से मना कर दिया। जनता की भीड़ ने संसद की बहाली की माँग की। (१६१४ १७८९) इन परिस्थितियों में सम्राट को झुकना पड़ा और १७५ वर्ष बाद संसद के चुनाव करने की आज्ञा दी। यह आज्ञा १७८८ में फ्रांस का अग्रदूत थी।

प्रो० गुडविन के अनुसार '१७८९ की फ्रांस की क्रांति के कारण, जिसको कि दुर्गा ॥ नहा, मध्यमवर्ग के राजनैतिक असन्तोष में नहीं अपितु फ्रांस के प्रतिक्रियावादी सामन्तवर्ग की महत्वाकांक्षाओं में ढूँढने चाहिएँ। यद्यपि क्रांति में राजनैतिक सत्ता की स्थापना और मध्यमवर्ग की आर्थिक अवस्था में सुधार हुआ किन्तु १७८७ से १७८८ के काल में सामन्तवर्ग ने बुर्बान (Burbon) राज राजाओं की सुधारवादी नीति का विरोध करके जिसके द्वारा उनके विशेषाधिकारों पर आघात होता था क्रान्ति की गति को बल प्रदान किया। जुलाई १७८८ में लुई सोलहवें द्वारा १६१४ में निष्क्रिय संसद के चुनाव की आज्ञा देना इस बात का परिचायक था कि सम्राट धर्माचार्यों और न्यायाधीशों के सामूहिक निरन्तर दबाव के सम्मुख झुक गया। विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को आशा थी कि संसद के चुनाव प्रचलित परिपाटी के अनुसार वर्गों के आधार पर होंगे जन-संख्या के आधार पर नहीं होंगे

और वे प्रत्याशित सुधारों को रोकने में सफल हो जायेंगे तथा सम्राट पर बलवल का दबाव डालकर अपनी विजय को स्थायी बना लेंगे। इस भ्रमपूर्ण अनुमान ने क्रांति की सम्भावना को और भी दृढ़ बना दिया। यदि सामन्तवर्ग सब वर्गों की आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकारों की एकता को मान लेते तो उस समय क्रांति सरलता से टल जाती।

फ्रांस की क्रांति के सच्चे निर्माता (Real Makers of the French Revolution)—यह सर्वमान्य है कि फ्रांस की क्रान्ति तीसरे वर्ग से प्रारम्भ हुई किन्तु इस विषय में कि इसे किसानों अथवा मध्यमवर्ग ने प्रारम्भ किया मत भेद है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि फ्रांस के किसान अत्याचार से ऊब कर विद्रोह करने पर उतारू हो गये। किन्तु प्रो० हिरेंशा (Hearnshaw) इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके मतानुसार फ्रांस के किसानों की अवस्था जर्मनी, स्पेन रूस और पोलण्ड के किसानों से कहीं अच्छी थी। उनके दुःखों का मूल कारण राजनैतिक अधिकारों से वंचित होना नहीं अपितु उन पर लादे गये करों का असहनीय भार था। उनमें क्रान्ति करने के लिए बुद्धि ही नहीं वरन् शक्ति भी न थी। प्रगतिशील मध्यमवर्ग ही इसका कर्णधार था। किसान केवल इसके अनुगामी थे। मध्यमवर्गी लोगों पर फ्रांस के दार्शनिकों की विचारधारा का गहरा प्रभाव था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि फ्रांस का मध्यमवर्ग ही इस क्रान्ति का निर्माता था।

क्रांति फ्रांस में ही क्यों? (Why Revolution broke out in France?)—यह तथ्य उल्लेखनीय है कि पश्चिमी यूरोप के अधिकांश देशों में किसानों पर राजाओं की स्वेच्छाचारिता और अत्याचारों का प्रहार होता था। फ्रांस की जनता ही कुछ विशेष रूप से पीड़ित नहीं थी। किन्तु फिर भी क्रांति पश्चिमी यूरोप के किसी अन्य देश में न होकर फ्रांस में ही हुई। इसके अनेक कारण हैं। अन्य देशों के जागीरदारों को अधिकारों के साथ कुछ कर्तव्य भी पूरे करने होते थे। वे राजा की सेना में नौकरी करते तथा अपने अधिकृत प्रदेशों में शान्ति व व्यवस्था बनाये रखते थे। फ्रांस का सामन्तवर्ग बुरी तरह बिगड़ा हुआ था। एक ओर उन्हें करों में छूट थी और दूसरी ओर उनके सारे कर्तव्य सम्राट ने ले रखे थे। परिणामतः अन्य देशों में सामन्तशाही एक वास्तविकता थी और फ्रांस में इसकी शक्ति पूर्ण तया नष्ट हो गई थी। इन परिस्थितियों में प्रजा को उनके विशेषाधिकार चुभते थे। यह प्रणाली अव्यवस्था बन गई और इसी कारण इसका नाश हुआ। १७८९ की क्रान्ति इनके विरुद्ध असन्तोष के रूप में फूट पड़ी।

दूसरा कारण फ्रांस में प्रगतिशील मध्यमवर्ग की स्थिति थी जो यूरोप के अन्य देशों में नहीं थी। इस वर्ग के सदस्य आर्थिक रूप से सबल थे किन्तु यह वर्ग अधिकारहीन था। इनके पास धन और बुद्धि दोनों थे और इस कारण ये राज्य मार्ग में रही हुई असमानता को मानने के लिए तयार नहीं थे। उनके विचारों पर रूसो, वाल्टेयर और मान्टेस्क्यू की दार्शनिकता का प्रभाव था अतएव वे इन सामन्तवादी प्रथाओं के उत्पीड़नों को दृढ़ता से अपनाने के पश्चात अपनी दशा को

सहन करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें अपनी अपमानजनक स्थिति में कोई न्याय नहीं दीख पड़ता था। रूसो का 'सामाजिक समझौता" (Social Contract) का सिद्धान्त क्रान्ति का मूलमंत्र और पवित्र ग्रंथ माना गया। फ्रांस के दार्शनिकों ने जनता के सम्मुख वह आदर्श रखा, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व बलिदान कर सकते थे। इस प्रकार का वातावरण फ्रांस के सिवा अन्य किसी भी देश में नहीं था। यद्यपि यूरोप के अन्य देशों के अधिकारहीन वर्ग दुःखी थे किन्तु उनके सम्मुख न कोई आदर्श थे और न कोई नेता थे जो वर्तमान व्यवस्था को चुनौती दे सकते। परिणामतः यूरोप के अन्य किसी भी देश में क्रांति नहीं हुई।

एक अन्य कारण भी था जिसके कारण यूरोप के किसी अन्य देश में क्रान्ति न होकर फ्रांस में ही हुई। यह सत्य है कि क्रांति का तात्कालिक मुख्य कारण आर्थिक था तथा दार्शनिकता द्वारा संचालित गाड़ी में आर्थिक दुर्व्यवस्था का ईंधन भरा गया। राज्य की वार्षिक आय राज्य द्वारा लिये जाने वाले ऋण के ब्याज से भी कम थी। इस अवस्था में राजकाज चलाना असम्भव था। धन प्राप्त करने के उद्देश्य से संसद् बुलानी पड़ी और इसके कारण क्रांति हुई। यूरोप के अन्य किसी भाग में ऐसी स्थिति नहीं थी। यद्यपि प्रजा दुःखी थी वह अत्याचार सहन करती रही, उसमें विद्रोह करने का साहस नहीं था।

प्रो० साल्वेमिनी के अनुसार चाहे पहले-पहल यह तथ्य कितना ही विचित्र प्रतीत हो फ्रांस अन्यों की अपेक्षा काफी अच्छी स्थिति में था। मुख्यतः यह फ्रांस के सामाजिक जीवन में प्रचलित अधिकपक्षीय दशाओं के कारण था कि यूरोप में अन्य स्थानों की अपेक्षा फ्रांस में क्रांति फल गई। फ्रांस के मध्य वर्ग—अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक धनी व अधिक शिक्षित और समाज के उच्च वर्गों से अधिक निकट सम्पर्कयुक्त तथा अपनी जीवन शैली में सामन्त वर्ग से बहुत कम भिन्न और भिन्नताओं में बहुत कम अलग—उन अन्यायों से बड़ी तीव्रता से परिचित थे जिनने उन्हें राजनीतिक प्रभावों और सम्मानों से वंचित कर रखा था और भौतिक व नैतिक शक्ति से भरपूर जिसका अभी तक दूसरों में अभाव था उन्हें सार्वजनिक जीवन में वह स्थान पहले मिलना चाहिए था जिसके वे अधिकारी थे। इसके अतिरिक्त अन्य देशों में जैसे रूस, जर्मनी, डेनमार्क या हंगरी जहाँ कि कृषकों को सामन्ती दासताओं ने बुरी तरह दबा रखा था, वे सविनय समानता व स्वतन्त्रता के विचारों को ग्रहण करने में बहुत पीछे थे। इसके विपरीत फ्रांस में प्रत्येक भूमिधारी कृषक अपने को उस धरती का स्वामी समझता था जिसे वह अपनी नाक का पसीना गिराकर प्राप्त करता था और अपने को उस सामन्ती अत्याचार से बचाने और अपनी सम्पत्ति को निर्दयी कर-व्यवस्था से मुक्त करने के लिए ही उसे क्रांति का सहारा लेना पड़ा। इसके अतिरिक्त फ्रांस में प्रभावी व धर्मसत्ताधारी सामन्त कृषकों के साथ जितना उपेक्षापूर्ण व्यवहार करते थे इतना अन्यत्र कहीं नहीं था और फ्रांस शाही कृपाओं को पाने की लूट-मार में केंद्रीय सत्ता के इर्द गिर्द घूमना शुरू कर दिया था किसी और जगह विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच ऐसी गहरी खाई नहीं थी

जिसे फ्रांस के राजतन्त्र ने अपने केंद्रीयकृत नियंत्रण से सामंती हाथों में स्थानीय शासन को छीनकर बनाया था। अन्य देशों में पाशविक अर्द्धसभ्य सामंत अपनी जागीर पर निर्वाह करते थे अपनी राजनीतिक क्रियाएं सम्पन्न करते थे न्याय का प्रबन्ध करते थे [और जनसाधारण पर आने वाली आपत्तियों की देखरेख भी करते थे। यदि कृषकों पर अत्याचार किया जाता था तो अपने सामन्त के कठोर नियमों का उन्हें भी संरक्षण प्राप्त होता था और उसके विशेषाधिकार भी इतने उत्तरदायित्वों के कारण उचित समझे जाते थे। अन्त में फ्रांस में केवल राजधानी ही ने इतना अधिक महत्व प्राप्त कर लिया था कि वह राष्ट्र के सारे राजनीतिक व प्रशासकीय जीवन का केन्द्र बन गयी थी इसलिए जब क्रान्तिकारी सेनाओं ने पेरिस पर अधिकार जमा लिया, तो सारा राज्य उनके हाथ लग गया। अन्य राष्ट्रों में प्रशासकीय केंद्रीयकरण अभी तक या तो बिल्कुल नहीं था या प्रारम्भिक स्तर पर था और प्रान्तीय जीवन लगभग स्वाधीनतापूर्ण था। एक क्षेत्र में उठने वाली बेचैनी नेपल्स देश का परेशान नहीं कर सकती थी और मुख्य केन्द्र में होने वाली अव्यवस्था का प्रान्तों पर बहुत कम प्रभाव पड़ता था और वहाँ जो प्रशासन का संचालन करते थे उन्हें राजधानी से आने वाले सारे आदेशों सहायताओं या अन्य सहायकों की प्रतीक्षा करने पर बाध्य नहीं होना पड़ता था। फ्रांस में प्रान्तों में कभी महान् गड़बड़ का राजधानी पर लगभग आंशिक प्रभाव पड़ता था जबकि पेरिस में वह सारे राजनीतिक ढाँचे पर घातक चोट करती थी और उसका धक्का सारे राज्य पर पड़ता था। (The French Revolution pp 188-89)

पुनः प्रो० साल्वेमिनी के शब्दों में पेरिस अपने पाँच लाख से अधिक लोगों के साथ सबसे अधिक खतरनाक नगर था। केन्द्रीकृत प्रशासन के विकास के साथ राजधानी ने धनी और निर्धन दोनों ही प्रकार के लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था जो अपना भाग्य आज़माना चाहते थे। इन सब लोगों की तरह-तरह की जरूरतें पूरी करने के लिए नई-नई इमारतें व कारखाने बने जिनमें प्रान्तों से आने वाले मजदूरों और कृषकों की बाढ़ को स्थान मिल गया। जनसंख्या की ऐसी वृद्धि से खुश होकर किन्तु घबड़ा कर (इससे चिन्तित होकर कि इतने बड़े नगर का प्रबन्ध करना है किन्तु आय के अतिरिक्त साधनों की खोज पर प्रसन्न होकर) सरकार एक ओर कृपाओं व विशेषाधिकारों के बाँटने और दूसरी ओर इस बाढ़ को रोकने के लिए ऊटपटांग रुकावटें लगाने में डावाँडोल हो गई। लेकिन राजा की अनुमति से या उसके बिना यह दानव बढ़ता ही गया जिसके भीतर क्रान्तिकारियों की एक सेना फलती फूलती गई जो पुराने फ्रांस को नष्ट करने में एक अत्यधिक प्रभावकारी यन्त्र सिद्ध हुई। क्रान्ति के समय फ्रांस के स्वामी यह शिकायतें करते थे कि श्रमिक सरकार को आदेश दे रहे हैं और विरोध करने के लिए संगठन बना रहे हैं अपने तिरस्कारपूर्ण व्याख्यानों तथा अपमानजनक पत्रों में ऐसा मालूम होता है कि वे सोचते हैं जैसे कि प्रत्येक वस्तु की उन्हें अनुमति प्राप्त है। (The French Revolution p 37)

फ्रांसीसी क्रान्ति की इंगलैंड की क्रान्तियों से तुलना (French Revolution compared with English Revolutions)—फ्रांस की क्रान्ति की १६४२-४८

की प्यूरिटन क्रान्ति (Puritan Revolution) तथा स्वर्ण क्रान्ति (Glorious Revolution) से तुलना की जा सकती है। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि इंगलैण्ड की इन क्रान्तियों के लक्ष्य मुख्यतः राजनैतिक थे। इनका उद्देश्य राजा की स्वेच्छाचारी शक्ति पर नियन्त्रण करके सारे अधिकार जनता की प्रतिनिधि मानी जाने वाली ब्रिटिश संसद् को सौंप देना था। दूसरी ओर, फ्रांस की क्रान्ति का उद्देश्य राजनैतिक नहीं, अपितु सामाजिक था। यह सत्य है कि फ्रांस की जनता को भी राजनैतिक अधिकार नहीं थे किन्तु उन्हें इसकी परवाह नहीं थी। फ्रांस की जनता युग युगान्तर से सामन्तशाही प्रणाली की अभ्यस्त थी इसलिए वह केन्द्रित स्वेच्छाचारी शासन के प्रति उदासीन थी। जनता देश की असमानता के कारण दुःखी थी। इसी लिए फ्रांस की क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य असमानता को नष्ट कर देना था और यही उसकी मुख्य सफलता भी थी।

१६८८ में हुई इंगलैंड की क्रान्ति का रूप प्राचीन और सुरक्षात्मक था। 'अधिकार घोषणा' (Bill of Rights) के द्वारा स्वर्ण क्रान्ति (Glorious Revolution) में जो प्रजा को प्राप्ति हुई वह कोई नई वस्तु नहीं थी। अतीत के संघर्षों से उसका रूप विशेष प्रकार से भिन्न नहीं था। राजा को स्वेच्छाचारी व्यवहार की अपेक्षा देश में प्रचलित कानूनों के अनुसार व्यवहार करने को बाध्य कर दिया गया था। किन्तु फ्रांस की क्रान्ति मूलतः क्रान्तिकारी और विध्वंसात्मक थी। इसने प्राचीन शासन प्रणाली को जड़ से नष्ट कर दिया।

क्रोपोटकिन के मतानुसार, 'सामन्ती अधिकारों के उन्मूलन करने और सामुदायिक भूमियों को वापस लेने के कारण जिन्हें सत्रहवीं शताब्दी से स्वामियों, धनानी व धमनानों ग्रामीण सम्पूनों से प्राप्त कर लिया था, किसानों का विद्रोह ही उस महान क्रान्ति का सार व नींव है। इसी के ऊपर अपने राजनैतिक अधिकारों के लिए मध्यमवर्ग का संघर्ष विकसित हुआ। इसके बिना क्रान्ति कभी इतनी परिपूर्ण नहीं होती जितनी कि फ्रांस में हुई। ग्रामीण जिलों के विशाल विद्रोह ने, जो जनवरी १७८९ के बाद शुरू हुए, और जो १७८८ में भी थे और पाँच वर्षों तक चलते रहे, ही क्रान्ति को इस योग्य बना दिया कि वह नाश का महान कार्य पूरा कर सके जिसके लिए हम उसके ऋणी हैं। इसी ने क्रान्ति को इतना निश्चित कर दिया कि वह समानता की प्रणाली के प्रथम लक्षण स्थापित करे, फ्रांस में गणतन्त्रीय भावना उत्पन्न करे जिसे तब से अब तक कोई भी न दबा सका, ग्रामीण साम्यवाद के महान् सिद्धान्तों की घोषणा करे जिन्हें हम १७९३ में प्रकाश में आता देखते हैं। निस्सन्देह यह विद्रोह ही वह वस्तु है जो फ्रेंच क्रान्ति को सच्चा चरित्र प्रदान करती है और इसे इंगलैंड की १६४८-९७ की क्रान्ति से पूर्ण रूप से भिन्न बनाती है।

'नौ वर्षों के काल में, वहाँ भी मध्यवर्गों ने राजतन्त्र की सर्वोच्च सत्ता व दरबारी पार्टी के राजनीतिक विशेषाधिकारों को तोड़ डाला। किन्तु उससे आगे, इंगलैंड की क्रान्ति का विशेष लक्षण यह था कि प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार के लिए संघर्ष हुआ, जिससे वह अपने मतानुसार किसी भी धर्म का पालन करे, अपने व्यक्तिगत

विचार के अनुसार बाइबिल की व्याख्या करे अपने निजी पुरोहित चुने—संक्षेप में, व्यक्ति को यह अधिकार मिले कि वह अपनी सर्वश्रेष्ठ सुविधानुसार मानसिक व धार्मिक विकास कर सके। इसके अतिरिक्त इसने प्रत्येक ग्राम और उसी के फलस्वरूप प्रत्येक नगर, के स्वाधीनता के अधिकार को मान्यता दी। लेकिन जहाँ तक सामन्ती ऋणों और पदवियों के उन्मूलन या सामुदायिक भूमियों को पुन लेने का संबध है इगलैंड में कृषकों के विद्रोह ने उतना सामान्य ध्येय नहीं बनाया जितना कि फ्रांस में हुआ। और यदि क्रामवेल के अनुचरों ने कुछ दुर्गों को गिरा दिया जो सामन्तवाद के सच्चे गढ़ थे तो दुर्भाग्यवश इन अनुचरों ने न तो उन नेतियों को आघात पहुँचाया जो स्वामी अपने सामन्ती भू भाग पर दिखाया करते थे और न सामन्ती न्याय करने के अधिकार पर कोई चोट की जो स्वामी अपने सेवकों पर प्रयोग कर सकते थे। इगलिश क्रान्ति ने केवल यही किया कि उसने व्यक्ति के कुछ कीमती अधिकारों को खोना किन्तु इसने स्वामी की सामन्ती सत्ता का नाश नहीं किया इसने केवल उसे सगठित किया जबकि भूमि के ऊपर इसके वही अधिकार बने रहने दिए जो आज तक चले आ रहे हैं।

निस्सन्देह इगलिश क्रान्ति ने मध्यमवर्ग को राजनीतिक सत्ता बनी रहने दी किन्तु यह सत्ता भी भूमि पर जमी सामन्ती जनसख्या का भाग देकर प्राप्त हुई थी। यदि क्रान्ति ने इगलैंड के मध्यम वर्ग का उनके व्यापार व वाणिज्य के लिए एक समृद्धिशाली युग प्रदान किया तो यह समृद्धि भी इस शर्त पर प्राप्त हुई थी कि इसमें मध्यमवर्ग इतना लाभ न कमा सके कि वह भूमि पर जमे सामन्त वर्ग के विशेषाधिकारों पर आघात कर सकें। इसके विपरीत मध्यम वर्गों ने, कम-से कम मूल्य की दृष्टि से इन विशेषाधिकारों को बढ़ाने का काम किया। बधनकारक नियमों (Enclosure Acts) के साधनों से उन्होंने इस सामन्ती वर्ग को इतनी सहायता पहुँचाई कि वे सामुदायिक भूमियों को वैधानिक अधिकार में ले सकें। इन्हीं कानूनों ने कृषक जनसख्या को निर्धनता में उतारा था भूमि के स्वामियों की कृपा पर उसे रख दिया था और उनकी विशाल सख्या को नगरों में जाने पर विवश कर दिया था जहाँ श्रमिक वर्ग के रूप में वह मध्यमवर्गीय उत्पादकों की कृपा पर आश्रित हो चुकी थी। इगलिश मध्यमवर्गों ने सामन्तवर्ग को इस योग्य भी बना दिया था कि वह अपनी भूमिगत सम्पत्ति के साधनों को बहुत विशाल बनाकर नाभाजन कर सकें केवल असहय मालगुजारी द्वारा ही नहीं वरन अपनी राजनैतिक और स्थानीय न्याय सबधी सत्ता दूसरों को जिसकी स्थापना वह अपने सामन्ती न्याय के अधिकार के नये रूपों में आधान कर सकें। उन्होंने यह भी सहायता पहुँचाई कि वे भूमि के नियमों द्वारा अपना मान दुगना या दस गुना कर सकें। ऐसे कानून बनायें जो सम्पत्ति का निश्चय रोक भूमि पर एकाधिकार जमा दें जिनकी आवश्यकता अधिकाधिक उस जनसख्या को हो रही थी जिसका व्यापार तथा वाणिज्य नगरों में बढ़ रहा था।

अब हम जानते हैं कि फ्रेंच मध्यमवर्गों विशेषकर उच्च मध्यमवर्ग जो व्यापार व वाणिज्य में सलग्न थे ने अपने क्रान्ति में इगलिश मध्यमवर्गों की नकल करना चाही। वे जनता की कीमत पर राजसत्ता व सामन्त सत्ता के साथ समझौता अपनी इच्छा से कर

बैठते, किन्तु वे इसमें सफल न हुए क्योंकि भाग्यवश इंगलैंड की क्रांति की अपेक्षा फ्रांस की क्रांति का आधार कहीं अधिक व्यापक था। फ्रांस में क्रांति का उद्देश्य केवल यह नहीं था कि धार्मिक स्वतन्त्रता, या व्यक्ति के लिए कोई व्यापारिक या औद्योगिक स्वतन्त्रता या कुछ मध्यमवर्गीय लोगों के हाथ स्थानीय स्वशासन की बागडोर देने के लिए विद्रोह किया जावे। सबसे अधिक, यह तो कृषकों का विद्रोह था लोगों का भूमि पर पुनः अधिकार जमाने के लिए और उसे उन सामन्ती भारों से मुक्त करने के लिए आंदोलन था जिन्होंने इसे दबा रखा था और क्योंकि इसमें आर-पार एक व्यक्तिवादी लहर मौजूद थी—व्यक्तिगत रूप से भूमि पर अधिकार जमाने की इच्छा—इसमें साम्यवादी तत्त्व भी निहित था—सारे राष्ट्र का भूमि पर अधिकार—एक ऐसा अधिकार जो १७९३ में निधन वर्गों की ओर की घोषणा में प्रकट हुआ।" (The Great French Revolution pp 95 7)

Suggested Readings

Acton	*Lectures on the French Revolution*
Aldington	*Voltaire*
Aulard A	*Political History of the French Revolution*
Bello H	*The French Revolution*
Brinton C C	*A Decade of Revolution 1789—99*
Cobban A	*The Debate on the French Revolution (1789—99) 1945*
Cobban A	*Rousseau and the Modern Sta[illegible] 1934*
Dickens	*A Tale of Two Cities*
Du'ros L	*French Soci ty in the Eighteenth Century*
Goodwin	*The French Revolution 1953*
Goo h [illegible] P	*Maria Theresa and Other Studies 1951*
Gootschalk Louis	*The Era of the French Revolution (1715—1815) 1929*
Lowell E. J	*The Eve of the French Revolution*
Made in	*The French Revolution*
Mathews	*The French Revolution*
Mathiez A	*The French Revolution 19 8*
Kropotkin	*Th Great French Revolution*
Lefebvre [illegible]	*The French Revolution*
Salvemini C	*The French Revolution 1954*
Shackleton Robert	*Montesquieu*

राष्ट्रीय-सभा का कार्य (१७८९-९१)

(Work of the National Assembly—1789 91)

भूमिका (In roductory)—जब लुई सोलहवाँ (१७७४ ९३) फ्रांस की आर्थिक समस्या को नहीं सुलझा सका तो उसने संसद् बुलाने का निर्णय किया। १७८९ की बसन्त ऋतु में चुनाव हुए और प्राचीन परिपाटी और शाही आदेशों के अनुसार प्रतिनिधियों ने अपने प्रदेशों की अवस्था के विषय में सूचना-पत्र (Reports) तैयार किये तथा अपने प्रतिनिधियों और सरकार को उस विषय में सिफारिशें भी कीं। इन सूचना पत्रों को काहियर (Cahiers) कहा जाता था और इनकी भाषा क्रान्तिकारी नहीं थी। ये सम्राट के प्रति स्वामि भक्ति तथा विश्वास प्रकट करते थे। किसी एक सूचना पत्र में भी संघर्ष का लेशमात्र वर्णन नहीं था। मूल रूप से इन पत्रों में उस युग की नवीन राजनैतिक विचारधारा भरी थी और शासन-यन्त्र तथा समाज में गहरे सुधारों की मांग की गई थी। तीसरे वर्ग के सूचना पत्रों ने देश में प्रचलित सामाजिक असमानताओं को हटाने पर बहुत जोर दिया। अन्त में राष्ट्रीय एकता और संगठन पर भी बहुत जोर दिया गया था।

यह उल्लेखनीय है कि समाज के तीन विभाग थे। पहला विभाग सामन्त-वर्ग दूसरा धर्माचार्य-वर्ग और तीसरा विभाग अधिकारहीन मध्यमवर्गीय कारीगरों और किसानों का प्रतिनिधित्व करता था। पहले तीनों विभागों की बैठकें अलग अलग होती थीं और प्रत्येक के प्रतिनिधि एक-सी संख्या के थे। किन्तु १७८९ में तीसरे विभाग को सामन्त-वर्ग और धर्माचार्य-वर्ग दोनों की संख्या के बराबर प्रतिनिधित्व दिया गया। भविष्य में जो महत्वपूर्ण कार्य इस विभाग को करना था वह इस बात से सिद्ध हो गया।



सईम

तीसरे विभाग की मनोदशा का पादरी सईस (Abbe Sieyes) द्वारा लिखित एक लेख से जो फ्रांस की क्रांति के तुरन्त पहले प्रकाशित हुआ, प्रकट होता है।

सीयस ने प्रश्न किया— तीसरा विभाग क्या है ?
उत्तर— सब कुछ।
प्रश्न— राजनीति में अब तक इसकी क्या स्थिति रही ?
उत्तर—' कुछ भी नहीं।'
प्रश्न— 'इसकी क्या इच्छा है ?'
उत्तर—' कुछ बनने की।

संसद् का अधिवेशन ५ मई १७८९ को हुआ और तीनों विभागों के अधिवेशन अलग अलग हुए। किन्तु तीसरे विभाग के सदस्यों ने यह घोषणा की कि १७८९ की संसद एक सामन्तशाही सभा नहीं बल्कि फ्रांस की जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली सभा है। यह माँग की गई कि अधिवेशन में तीनों विभाग एक साथ बैठें और मतदान वर्ग के अनुसार होने की अपेक्षा सदस्यों की संख्या के अनुसार होना चाहिए। सामन्त और धर्माचार्य इस माँग के विरोधी थे। परिणामतः कार्य रुक गया। १७ जून, १७८९ को तीसरे विभाग ने अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया।

२० जून १७८९ को तीसरे विभाग के सदस्य अपने भवन में जाने लगे किन्तु उन्होंने सैनिकों का मार्ग रोके पाया। पूछताछ करने पर उन्हें बताया गया कि भवन में एक विशेष शाही अधिवेशन होने वाला है और उसके प्रबन्ध के लिए भवन को बन्द कर दिया गया है। कुछ समय तक सदस्य समझ न पाये कि क्या किया जाये। किन्तु कुछ समय के पश्चात् वे एक निकट के भवन में, जहाँ टैनिस खेली जाती थी, चले गये और वहाँ इतिहास प्रसिद्ध अधिवेशन किया। बैली (Bailly) की अध्यक्षता में उन्होंने प्रसिद्ध टैनिस-कोर्ट (Tennis Court) शपथ ग्रहण की। एक सदस्य को छोड़कर शेष सभी सदस्यों ने यह शपथ ली 'हम कभी अलग नहीं होंगे और जब तक देश में विधान की स्थापना नहीं हो जाती तब तक जहाँ भी परिस्थितियों में आवश्यक होगा बार-बार इकट्ठे होते रहेंगे।

२३ जून १७८९ को शाही अधिवेशन हुआ। सम्राट ने तीसरे विभाग के प्रस्तावों को अवैध और गैर-कानूनी घोषित किया। यह भी आज्ञा हुई कि तीनों विभागों के अधिवेशन अलग अलग हों। सम्राट सामन्तों और धर्माचार्यों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। किन्तु तीसरे विभाग के सदस्य भवन से बाहर नहीं गये। अधिवेशन अधिकारी (Master of Ceremonies) ने उन सदस्यों से कहा "आपने सम्राट की आज्ञा सुन ली है। सम्राट् की आज्ञा है कि तीसरे विभाग के सदस्य भवन से चले जायें।' भवन के द्वार पर कुछ सैनिक भी दिखाई पड़े। तीसरे विभाग के सदस्यों को भवन से निकाल देने का प्रबन्ध किया गया था। उस समय तीसरे विभाग के एक सदस्य मिराबो (Mirabeau) ने सीधे अधिवेशन अधिकारी के सामने जाकर गरज कर कहा "जाओ और अपने स्वामी को जाकर कह दो कि हम यहाँ जनता की इच्छा से आये हैं और जब तक छुरी की नोक से हमको नहीं हटाया जायगा हम यहाँ से नहीं जायेंगे। मिराबो के प्रस्ताव पर सब सदस्यों ने यह घोषणा

प्राप्त करने का सकल्प किया। ११ जुलाई १७८९ को वरसाई और पेरिस मे बहुत सी सेना बुलाई गई। सुधारों के समर्थक नेकर और उसके उन साथियों को जो सुधारों के पक्ष मे थे पदच्युत कर दिया गया। नेकर को तुरत देश छोड जाने की आज्ञा हुई।

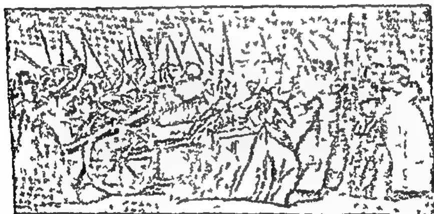
पेरिस के नागरिक अपने प्रिय मंत्री नेकर के निकाले जाने से सहमत नही हुए। यह भी भय था कि सम्राट राष्ट्रीय सभा का दमन करने के लिए शक्ति का प्रयोग करेगा। इन परिस्थितियो मे बस्टाइल (Bastille) मे बडा दगा हुआ जिसे शासन के विरुद्ध विद्रोह का प्रतीक माना गया। इसे १४ जुलाई १७८९ को जानकर भूमिसात कर दिया गया। फ्रास मे बस्टाइल का पतन स्वतन्त्रता की विजय माना गई।

प्रा० गुडविन के मतानुसार सारे क्रांति-काल मे बस्टाइल के पतन जैसी सम्मुख और व्यापक गहर परिणामो वाली अन्य कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। इसने फ्रास मे शाही स्वेच्छाचारिता का अंत राजनैतिक सत्ता के राष्ट्रीय सविधान को हस्तान्तरित करने तथा किसानो को विद्रोह करने के लिए भडकाकर सामतशाही के पतन का द्वार खोल दिया। इस दिन की समाचार पत्रो तथा लोगो पर लगे प्रतिबधो से मुक्त कर दिया और इस प्रकार जनमत-समर्थक पत्रकारिता को प्रोत्साहन मिला जिसका राजनैतिक परिणाम आगामी अक्टूबर की क्रान्ति-यात्रा मे पूर्णता से प्रकट हुआ। इस घटना से पेरिस के नागरिक शासन मे बडी महत्त्वपूर्ण क्रांति हुई जिससे क्रमश शासन-तंत्र का विकेन्द्रीकरण हो गया। काउन्ट-द आरतोइस (Count d Artois) के नेतृत्व मे प्रतिक्रियावादी सामत देश छोडकर भागने लगे और परिणामस्वरूप उन शक्तियो को बल मिला जिनके कारण विदेशी हस्तक्षेप और यूरोप के देशो से युद्ध का युग आरम्भ हुआ था। थोडे समय के लिए पेरिस के समाचारो मे विदेशी सेना की अच्छी प्रतिक्रिया हुई। द लोने (da Launay) और द फ्लेसेल्स (de Flesselles) पर लिया गया प्रतिशोध तथा जन-समूह की वीरता का बुरा प्रभाव हुई तथा सामूहिक लूटपाट न होने का सभी ने आदर किया। इस दुर्ग के पतन को केवल फ्रास मे ही नही अपितु सारे ससार मे स्वतन्त्रता के नव-जन्म का परिचायक माना गया।

प्रा० सालवेमिनी के मतानुसार बस्टील (Bastille) पर अधिकार ने सारे ससार के उदार सम्मिलित भाव [redacted] महान उत्साह उत्पन्न कर दिया। रहस्यमय छोटा दुर्ग जिसको अत्याचार के साथ—जहाँ अनेक अधिक राजनैतिक बन्दी सड़ते पडे थे और जहाँ से एक सर्वव्यापक सरकार पेरिस के नागरिको के विद्रोह के प्रयासो को देख सकती थी—पुरानी सर्वसत्तावादी शासन का प्रतीक मालूम होता था। वे सब जिन्हें शासन से घृणा थी उन्होने इसके पतन मे स्वतन्त्रता का अवश्यम्भावी उत्थान देखा।
(The French Revolution p 129)

यद्यपि सम्राट ने पेरिस से सेना वापस बुला ली विद्रोहियो की सेना को मान्यता दे तथा नेकर को पुन पदस्थापन कर दिया तो भी लोगो का सन्तोष नही हुआ।

देहातो म किसानो ने विद्रोह किया, सामन्तो के दुर्गो को लूट कर उनके सब उपाधि चिह्नो को विशेष रूप से नष्ट कर दिया। सामन्तो को मार दिया गया उनके दुर्गो को नष्ट कर दिया गया। अक्टूबर १७८९ म वरसाइ म पेरिस समाचार पहुँचा कि कुछ वीट सनिक टुकडियो को, जिन्ह वहा बुलाया गया था दावत दी गई। इस अवसर पर तिरगे ध्वज को परो-तले रौंदा गया राष्ट्रीय सभा के प्रति धमकियाँ दी गई। सम्राज्ञी ने अपनी उपस्थिति द्वारा इन नीचतापूर्ण कार्यो का अनुमोदन किया। पेरिस की स्त्रियो ने तावें ले जाकर वरसाई पर चढाई कर दी और सम्राट सम्राज्ञी तथा राजकुमार को अपने साथ ले रास्ते भर चिल्लाती रही कि हमने नानवाई, नानवाई की बीवी और छोटे रसोई बनाने वाले छोकरे को पकड लिया है। अब हम रोटी मिलेगी" (We have the baker and the baker's wife and the little cook boy—now we shall have bread)। इस प्रकार के तनावपूर्ण उपद्रवो और सघर्षों से पूर्ण वातावरण मे १७८९ से १७९२ तक राष्ट्रीय सभा ने अपना काय किया।



स्त्रियो का वरसाई पर प्रयाण

राष्ट्रीय सभा का काय (Work of the National Assembly)—(१) राष्ट्रीय सभा का प्रथम महत्त्वपूर्ण काय सामन्तशाही जागीरदारी तथा वग विशेष अधिकारो को समाप्त करना था। ४ अगस्त १७८९ को लफायेट (Lafayette) ने सम्बोधित एक जागीरदार ने सभा म कहा कि किसानो द्वारा जागीरदारो और उनकी सम्पत्ति पर आक्रमण करने का एक कारण अन्याय पर आधारित असमानता था। उसने कहा कि इसका निराकरण किसानो का दमन करने म नहीं, अपितु असमानताओ की जो इसकी जड हैं दूर करने से होगा। एक प्रस्ताव पारित हुआ, जिसके अनुसार सब पर एक जैसा कर लगाया जाना था। जागीरदारो और जागीरदारो म तथा धर्माचार्यो और धर्माचार्यो म अपने अपने विशेषाधिकार और सुविधाएँ त्यागने के लिए होड लग गई। इस प्रकार के वातावरण म निरकुश-कानून और जागीरदारों की

अन्तिम रूप से समाप्त कर दिया गया और मुजारदारी समाप्त हुई। धर्माचार्यों ने दशमांश छोड़ दिया। पदों का विक्रय बन्द हो गया। सूक्ष्म रूप से वर्गों नगरों और प्रान्तों के सब विशेषाधिकार एक ही लहर में बह कर नष्ट हो गये। यह सब रक्तस ४ अगस्त १७८९ की रात्रि को हुआ। सब बिखरे हुए सूत्र इकट्ठे कर दिये गए और इस में सामन्तशाही समाप्त कर दी गई। जो काम टुर्गट और नेकर नहीं कर सके उसे राष्ट्रीय सभा ने किया। आलोचक कहते हैं कि विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों ने अपने अधिकारों का समर्पण करने में कोई बलिदान की भावना नहीं दिखाई। जनता ने इनके विशेषाधिकार और उपाधि-सम्बन्धी सारे पत्र इत्यादि नष्ट करके अपना मार्ग साफ कर लिया था। विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग किसानों के विद्रोह के कारण अपने सारे अधिकार स्वतः ही खो चुका था। पेरिस के महाधर्माध्यक्ष (Archbishop of Paris) के सुझाव पर राष्ट्रीय सभा ने लुई सोलहवें को फ्रांस की स्वतन्त्रता का पुनःसंस्थापक (Restorer of French Liberty) घोषित किया।

प्रो० गुडविन के मतानुसार अपने सामन्तशाही अधिकारों तथा आर्थिक छूटों का जागीरदारों और धर्माध्यक्षों द्वारा चार अगस्त की रात्रि को त्याग करना कोई स्वयं उदारता के कारण नहीं था। भय चालों और सन्देह ने ही बहुत से सदस्यों को इस बात के लिए प्रेरित किया। वह प्रसिद्ध अधिवेशन एक संसदीय षड्यन्त्र था जिसकी योजना एक दिन पहिले ब्रिटन क्लब (Breton Club) में एक क्रान्तिकारी गुट ने तैयार की थी। योजना इस प्रकार थी कि उस सन्ध्या को उदार जागीरदार गुट आंशिक रूप से सामन्तशाही अधिकारों के समर्पण का प्रस्ताव करेगा तथा उस समय आशा की गई कि इस प्रस्ताव के विरोधी अनुपस्थित होंगे। इस प्रस्ताव का रखने का काम ड्यूक द एग्विलियों (Duke de Aiguillon) पर छोड़ा गया और यह आशा की गई कि देश के सबसे बड़े भूस्वामी होने के कारण उनका उदाहरण अन्य जागीरदार प्रान्तीय जमींदारों को अपना समर्थक बना लेगा। वास्तव में ड्यूक की इस चाल को वाइकाउण्ट डी नोलिस (Viscount de Noailles) समझ गया और उसने यह प्रस्ताव रखा कि सभा को पूर्ण आर्थिक समानता और जागीरदारी के सारे कर पूरे देश की जनता पर लगाने चाहिए। केवल व्यक्तिगत सेवा इत्यादि के समझौता को छोड़कर। व्यक्तिगत सेवा के समझौता के विषय में विस्कॉउण्ट ने प्रस्ताव किया कि इसे पूर्णतः समाप्त कर देना चाहिए। ड्यूक के प्रस्ताव की अपेक्षा विस्काउण्ट का प्रस्ताव ही सभा ने स्वीकार किया और फिर अभूतपूर्व बलिदानों की झड़ी लग गई। इस भक्ति के उत्साह की बहती भावना में विशेषाधिकारों के प्रतिनिधियों ने मानो होड़ बन कर प्रस्ताव रखे कि देश के सारे पदों को प्राप्त करने का अधिकार सभी नागरिकों के लिए समान होना चाहिए। जमींदारों के सारे अधिकार शिकार के विशेष अधिकार न्यायालय तथा अन्य विभागों के पदों का विक्रय समाप्त हो। इस द्वन्द्व के बारे में हेजमाण्ट ने इनसे भी अधिक प्रभावशाली और नाटकीय प्रस्तावों का वर्णन किया है कि डौफिन (Dauphine) के प्रतिनिधियों ने अपने सारे क्षेत्रीय

(Municipal) संघीय (Corporate) तथा प्रादेशिक (Provincial) अधिकारों का त्याग किया था। "अधिवेशन की कार्यवाही सम्राट के प्रति स्वामिभक्ति-पूर्ण अभिनन्दन तथा फ्रांस की स्वतन्त्रता का पुनःसंस्थापक की उपाधि देकर समाप्त हुई।

अपनी उत्तेजना के कारण राष्ट्रीय सभा के सदस्य लक्ष्य से कहीं आगे जा पहुँचे और शान्ति से विचार करने पर विशेषाधिकार-वर्ग को बाद में अपने बलिदानों की सीमा को कम और कहीं-कहीं इनके लिए संघर्ष करने के लिए तैयार होना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि जब ५ अगस्त से ११ अगस्त के बीच सैद्धान्तिक निर्णयों को वैधानिक रूप दिया जाने लगा मध्यमवर्गी रूढ़िवाद और कानूनी सुरक्षा के रूप में सामन्तशाही के बहुत से दृढ़ अंग सुरक्षित हो गये जिन्हें चार अगस्त की रात्रि को शीघ्रतापूर्वक समाप्त कर दिया गया था। इस प्रकार विशेषाधिकारों का जनाजा एक ऐसा धोखा सिद्ध हुआ (St Bartholomew of privilege came to be a misnomer)। यद्यपि प्राचीन राज्य छिन्न भिन्न कर दिया गया किन्तु सभा की यह घोषणा कि सामन्तशाही शासन पूर्णतः नष्ट कर दिया गया है एक धोखा था। अंतिम संस्थिति में धर्माचार्यों का दशमांश समाप्त हुआ किन्तु सामन्तशाही के सब से बड़े भाग जो परस्पर में समझौते (Contactual) से सम्बन्धित थे उन्हें पूरा करने की शर्त रखी गई थी। जब तक आपस के विचार विनिमय द्वारा उनका निपटारा की शर्तें तय नहीं होतीं उस समय तक वे यथापूर्व दिये जाने थे। किसानों का भ्रम दूर हो गया और जब सम्राट ने इस अपूर्ण सामाजिक क्रान्ति को अपनी स्वीकृति देने से मना कर दिया तो सभी ने अपने को बड़ी कठिन स्थिति में पाया।

(२) राष्ट्रीय सभा का दूसरा महान् कार्य था मानव के अधिकारों की घोषणा (Declaration of the Rights of Man)। इस घोषणा पत्र में रूसो की दार्शनिकता की छाप थी तथा इंगलैंड और अमरिका के वैधानिक विधानों की धाराएँ थीं। यह काल की क्रान्ति की आधारशिला बना और उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी की राजनैतिक विचारधारा पर इसका प्रभाव रहा। इसमें कहा गया था कि फ्रांस की जनता के प्रतिनिधि, जिनसे राष्ट्रीय सभा बनी है यह विश्वास करते हुए कि अज्ञानता, भूल या मानव अधिकारों की उपेक्षा ही जनसाधारण के दुर्भाग्य तथा शासन में भ्रष्टाचार के मूल कारण हैं इस बात का निश्चय करते हैं कि एक पवित्र घोषणा-पत्र में मानव के पवित्र और अक्षुण्ण अधिकारों को लिख दिया जाय जिससे कि यह घोषणा-पत्र सर्वदा सामाजिक संस्था के सब सदस्यों के सम्मुख रहने के कारण वे इन अधिकारों और कर्तव्यों का ध्यान दिलाता रहे, तथा संवैधानिक और कार्यकारिणी सत्ताओं के कार्यों की सर्वदा उन राजनीतिक धाराओं के उद्देश्यों से तुलना की जा सकती है। इस कारण इनका सबसे अधिक सम्मान हो तथा नागरिकों की माँगें अब सरल, निर्विवाद सिद्धान्तों पर आधारित हो गई हैं और ये सब से संविधान की रक्षा तथा सर्वसाधारण के कल्याण के लिए प्रयोग में लाई जाएँ।

राष्ट्रीय सभा ने निम्नलिखित मानव अधिकारों तथा नागरिकों के अधिकारों

की घोषणा की—

१ सब मानव स्वतन्त्र उत्पन्न हुए तथा रहते हैं और उनके अधिकार समान हैं। सामाजिक सम्मान केवल सर्वसाधारण की उपयोगिता पर ही आधारित किया जा सकता है।

२ प्रत्येक राजनैतिक संगठन का उद्देश्य मानव के प्राकृतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना है। ये अधिकार स्वतन्त्रता सम्पत्ति सुरक्षा और दमन का विरोध हैं।

३ स्वतन्त्रता उन सब कार्यों के करने में है जिनके करने से अन्य लोगों को हानि न पहुँचे।

४ स्वतन्त्र रूप से विचार और सम्मति का आदान प्रदान मनुष्य के सभी अधिकारों में श्रेष्ठ है।

५ कोई भी व्यक्ति दोषी बन्दी या पकड़ा नहीं जायगा सिवाय उन तरीकों के कि जिनका कानून में उल्लेख है।

६ क्योंकि सम्पत्ति अमूल्य और पवित्र अधिकार है किसी को भी सम्पत्ति से उस समय तक वंचित न किया जाय जब तक कि कानून द्वारा सर्वसाधारण की आवश्यकता स्पष्ट रूप से न बता दी गई हो और वह भी इस अनुबन्ध पर कि सम्पत्ति के स्वामी को पहले सूचना दी जा चुकी हो तथा उचित रूप से उसकी क्षतिपूर्ति कर दी गई हो।

७ कानून सर्वसाधारण की इच्छा की अभिव्यक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वयं अथवा अपने प्रतिनिधि के द्वारा इसके बनाने में भाग लेना आवश्यक है।

८ सर्वाधिकार-सम्पन्नता राष्ट्र में निहित है और कोई संस्था अथवा व्यक्ति उस सत्ता का प्रयोग नहीं कर सकता यदि यह अधिकार उसे राष्ट्र ने नहीं दिया है।

९ जनता को राष्ट्र-कोष के नियन्त्रण का अधिकार है।

१० राज्य के सारे पदाधिकारी जनता के प्रति उत्तरदायी हैं।

प्रो० थाम्पसन के मतानुसार प्रथम यह एक घोषणा एक उत्प्रेरक और सामान्य सिद्धान्तों की व्याख्या था जिसके आधार पर फ्रांस की नेशनल असेम्बली ने फ्रांस की प्रशासन-व्यवस्था को सुधारने की आशा की। दूसरे यह एक अधिकारों की घोषणा थी कर्तव्यों की नहीं। यह नये दावों का एक समर्थन और राजनैतिक, सामाजिक व वैधानिक अधिकारों का वक्तव्य था जिसे इसके निर्माताओं ने एक स्वच्छ शासन निर्माण के लिए अनिवार्य समझा। तीसरे इस व्यक्ति के अधिकारों की घोषणा कहा गया—ऐसा वक्तव्य जिसका आशय सर्वव्यापी प्रयोग था और जिसके निश्चित रूप से बहुत दूर के अभिप्राय थे। इसका निर्माण केवल फ्रांस के ही लिए नहीं हुआ वरन् सभी मनुष्यों के हित के लिए हुआ था जो स्वतन्त्र होना चाहते थे व अपने

को सामन्ती विशेषाधिकारों तथा निरंकुश राजतन्त्र के तुलनात्मक भारों से मुक्त करना चाहते थे। मौलिक फ्रेंच क्रान्ति का सर्वव्यापीवाद महान महत्त्व की चीज थी। अंतिम व पूर्ण अर्थ में, यह व्यक्ति व नागरिक के अधिकारों की घोषणा थी और यद्यपि इसके शीर्षक के अन्तिम तीन शब्दों का त्याग किया जाता है किन्तु वे इसके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग में से हैं। इन सविनय अधिकारों का सावधानी के साथ स्पष्ट किया गया था जिन्होंने ग्रंथ अममव्नी में प्रधान मध्यमवर्गों के तत्कालीन उद्देश्यों को अत्यधिक पक्के रूप से पुष्ट किया—सब के लिए कानून की दृष्टि में समानता लोक-सेवाओं में सब नागरिकों के लिए समानता स्वेच्छाचारी दण्ड व निरोध से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, भाषण व प्रकाशन की स्वतन्त्रता और सबसे ज्यादा राष्ट्रीय करों के भारों का समान वितरण और व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा। इन दावों को इसने दो सामान्य सिद्धान्तों पर आश्रित किया— यह कि सब की राज्यसत्ता का सिद्धान्त राष्ट्र ही में अनिवार्य रूप से आश्रित है। और यह कि कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है। यही सिद्धान्त—जिनका आशय सर्वव्यापी आवरण था—यदि स्वीकार हो जायें तो साफ तौर से समाज की पुरानी व्यवस्था की नींव का ही नष्ट कर देंगे और यूरोप में सभी जगह राज्य को अव्यवस्थित कर देंगे। फ्रांस में अपने प्रत्येक पड़ौसी के लिए (ब्रिटेन को भी मिलाकर) यह घटनाओं की आभ्यन्तरिक चुनौती थी। फ्रांस के एक इतिहासकार ने इस घोषणा को 'पुराने शासन का प्रमाण पत्र' कहा है। वस्तुतः सारी उन्नीसवीं शताब्दी में यह उदारवाद का घोषणा-पत्र बना रहा।

'इस पर भी यह घोषणा जैसे कि यह ऊपर से देखने से प्रतीत हो उसकी अपेक्षा कम काल्पनिक और अधिक वास्तविकतावादी है। उदारवाद का एक उद्देश्य-पत्र होने के नाते इसके छूटे हुए भाग महत्त्वपूर्ण हैं। इसने आर्थिक जोखिम या व्यापार की स्वतन्त्रता का कोई वर्णन नहीं किया जो इसके पूँजीवादी निर्माताओं को इतना प्रिय था, क्योंकि पिछली व्यवस्था ने हाल के वर्षों में पहले ही से गिल्डों का दमन किया था और अनाज के व्यापार पर से नियन्त्रण हटा दिए थे। इसने शिक्षा सम्बन्धी सुरक्षा सामाजिक सुरक्षा या सभा और संस्थाओं के अधिकारों के विषय में कुछ भी नहीं कहा यद्यपि बहुतों का यह होना था कि इनका कितना अधिक महत्त्व है क्योंकि यह विषय पुरानी शासन-व्यवस्था के नाश के तत्कालीन उद्देश्यों की दृष्टि में कम महत्त्वपूर्ण थे। यद्यपि इसने सर्वव्यापी होने का प्रयत्न किया, इसने व्यापक होने की चेष्टा नहीं की। इसने जान-बूझ कर कर्तव्यों की घोषणा को हटा दिया और वह त्रुटि १७९५ तक न सुधर सकी। इसमें अत्यधिक उदारवादी सिद्धान्तों का बड़ी सावधानी के साथ विवरण दिया गया था। प्राकृतिक अधिकारों का प्रयोग इस आवश्यकता से सीमित है कि दूसरों को भी उन्हीं अधिकारों के आनन्द का विश्वास दिलाया जाय। उचित रूप से कानून केवल उन्हीं कार्यों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है जो समाज के लिए हानिकारक हैं। मत की स्वतन्त्रता इस उपबन्ध से सीमित है कि इससे कानून द्वारा स्थापित लोकव्यवस्था में गड़बड़ नहीं पड़नी चाहिए और इसका दुरुपयोग भी नहीं होना चाहिए। सम्पत्ति तक की पवित्रता लोक आवश्यकता की स्पष्ट अनिवार्यता के आधीन है। (Europe Since Napoleon pp 10-11)

इस घोषणा पत्र को प्रजातन्त्रीय तथा गणतन्त्रीय विचारों के विकास के इतिहास में एक अनोखा तथ्य तथा आधुनिक काल का धर्म ग्रन्थ कहा गया है।

प्रो० हजन के अनुसार इस घोषणा पत्र के लेखकों की यह आशा कि यह विश्व के लिए एक शान्ति दूत होगा कोरी अनिश्चयोक्ति नहीं थी। जहाँ कहीं भी मनुष्य मानव अधिकारों की चर्चा करता है उसके मन में फ्रांस का यह घोषणा-पत्र होता है। बहुत समय बीता यह घोषणा फ्रांस देश की सीमा को लाँघ चुकी है। विश्व के लगभग प्रत्येक कोने में इसका अध्ययन नकल और आलोचना हो चुकी है। यह आधुनिक संसार के राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन में एक निर्विवाद तथ्य रहा है। पिछली शताब्दी में स्वतन्त्रता के इच्छुक अनेकों राष्ट्रों ने अपने भौतिक सिद्धान्तों का नाम भी इस घोषणा में पाया है।

प्रो० साल्वमिनी के विचार में यदि किसी अभौतिक रचना से हमारा आशय किसी ऐसी वस्तु से है जिसे केवल सिद्धान्त तक ही सीमित रखा जा सकता है और यह वास्तविकता के साथ नहीं चल सकती तो अधिकारों की घोषणा की अपेक्षा अन्य कोई अभौतिक वस्तु नहीं हो सकती जिसे फ्रांस के यूरोप के इतिहास ने बाद में व्यापक रूप दिया है। निस्सन्देह १७८९ के अधिकार इस अर्थ में नैसर्गिक नहीं थे क्योंकि उनके आशय के अनुसार वह सारी मानव जाति जो उन्हें अनुकूल नहीं मानती नैसर्गिक नहीं लेकिन आधुनिक अर्थ में वे हमारे लिए नैसर्गिक हैं क्योंकि उनके बिना हमारा सभ्यता जीवित ही नहीं रह सकती और हम लोग स्वयं भी जीवित नहीं रह सकते। १७८९ के बाद से फ्रांस में प्रत्येक शासन को इस घोषणा के सिद्धान्तों को प्रतिभूति व मान्यता देनी पड़ी। उन लोगों की प्रेरणा ही थी जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में निरंकुशवाद के विरुद्ध आवाज उठाई और अपने संवैधानिक शासन स्थापित किए। १७८९ के अधिकारों ही में से हमारा सारा सविनय व दण्ड सम्बन्धी विधान विकसित हुआ है। अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में पीड़ित राष्ट्रों ने इन्हीं के भीतर अपने प्रयत्नों का नैतिक औचित्य पाया है। आज भी जनसाधारण स्वतन्त्रता व समानता के उन्हीं सिद्धान्तों की दुहाई देते हैं जिन्होंने संग्राम में हथियारों का काम किया और उनमें सामन्तवाद का अन्त किया जो अब दूसरे के हाथों में जा चुके हैं और प्रगति विरोधी परिवर्तन के यन्त्र बन गए हैं।

यह भावना नहीं चाहिए कि आज के सामाजिक संघर्षों का १७८९ की घोषणा ने जन्म दिया है। अन्य बहुत से तत्वों ने भी उनमें योगदान किया है—व महान कारखाने जिनमें उद्योग धन्धों में श्रमिक वर्ग को शिक्षा मिलती है सामान्य कार्य व निकट सम्पर्क के द्वारा और जिसमें वह अपने निजी सामाजिक कृत्य और मानवोचित शक्ति का ज्ञान पाता है हमारे आधुनिक आर्थिक ढाँचे की विषमता व कोमलता जो ऐसे व्यक्तियों को सर्वदा प्रेरित करने के लिए एक बिन्दु पर सकट उत्पन्न करती है जिनका स्वार्थ इसको स्थिर रखने में है धार्मिक चिन्तन धारा में विचारों की मादकता जो कि और मताधिकार जिसके द्वारा सम्पत्तिहीन वर्ग अपने शासन पर नियन्त्रण रख सकते हैं—ये सब आधुनिक जीवन में मानवता की कमी पर प्रकाश

ज्ञा = और व्यक्तियों की व्यक्तिगत स्वामित्व की परम्परागत व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया उठाने की प्रेरणा दी है। लेकिन आज श्रमिक वर्ग को अपने संग्राम में उन्हीं सिद्धान्तों की सहायता मिलती है जिन्होंने १७८६ के पूँजीवादी वर्ग की रक्षा की और जिनको उन्होंने मनुष्यों के लिए प्राचीन सर्वोच्च व सर्वमान्य बताया और अब पूँजीवादी वर्ग उन्हें कभी भी नहीं हटा सकता जब तक कि वह यह नहीं चाहता कि सामाजिक व्यवस्था की क्रिया बिल्कुल ठप्प ही न हो जाय और जब तक कि वह मात के डर से आत्महत्या ही करने पर नहीं उतरता। जैसा कि फेग्वे (Fagvet) ने ठीक ही कहा है वर्ग युद्ध तो क्रान्ति से पहले भी मौजूद था, लेकिन उस समय जनसाधारण के पास ऐसा सामान्य आदर्श या किसी प्रकार का विचार नहीं था जो संघर्ष को उचित ठहराये या पवित्र बनाये, जो उनके पास शक्ति के विरुद्ध शक्ति का प्रतीक बन या कमजोरों में ऐसे प्रयत्न कराए जो एक-दूसरे की शक्तिशाली के विरुद्ध रक्षा करे। आज ऐसा बिलकुल नहीं है। क्रांति ने एकता का सिद्धान्त घोषित करके वर्ग-संघर्ष की सत्ता का कारण इतना नहीं दिया जितना यह घोषित करने का कारण कि हम अधिकार के साथ जीवित रहने की क्षमता प्राप्त है और अधिकार को अपने साथ रखने का कारण भी प्राप्त है।

'उन्नीसवीं शताब्दी की अन्य बड़ी राष्ट्रीय, संवैधानिक तथा विधायिनी सफलताओं के विषय में भी यही कहा जा सकता है। वे प्रत्यक्षतः अधिकारों की घोषणा से उत्पन्न नहीं हुए हैं क्योंकि वे आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में से अनिवार्यतः उत्पन्न हुई है। लेकिन १७८६ के अधिकारों में उन्होंने अपना सैद्धान्तिक औचित्य पाया है उन्होंने समय से सम्मानित विचारों की प्रणाली प्राप्त की है जिनके भीतर उन्हें भी स्थान दिया जा सके। यदि यह सब अभौतिकवाद है तो सारा इतिहास ही अभौतिकवाद (metaphysics) है। (The French Revolution, pp 147 48)

(३) राष्ट्रीय सभा ने सारे देश में एक जैसी शासन-व्यवस्था प्रचलित की। पुराने प्रदेश प्रशासन तथा इंटैण्डन्सी (Intendancies) पज दी स्टट (pays d etat) पज दी इलक्शन (pays d' election) पारलमेंटस (Parlements) और बेलिज (Bailliages) समाप्त कर दिये। देश को नये सिरे से ८३ विभागों (Departments) में विभक्त किया गया। ये विभाग क्षेत्रफल और जनसंख्या में समान थे तथा इनका नामकरण प्राकृतिक चिह्नों यथा नदियों और पर्वतों के नाम पर किया गया। प्रत्येक विभाग को कण्टन (Canton) और कम्यूनों (Communes) में विभक्त किया गया। स्थानीय संस्थाओं के प्रमुख राज्य द्वारा नियुक्त होने की अपेक्षा चुने जाते थे। जनता द्वारा चुनी हुई स्थानीय सभाओं की व्यवस्था की गई। देश में एक नवीन न्याय प्रणाली प्रचलित की गई। इस न्यायालयों के न्यायाधीश जनता द्वारा चुने जाते थे। देश की न्याय-प्रणाली को सरल और संगठित करने के लिए भी प्रयत्न किये गये किन्तु यह कार्य जब तक नेपोलियन प्रथम कान्सल (Consul) बना तब तक नहीं हो पाया।

इस घोषणा पत्र को प्रजातन्त्रीय तथा गणतन्त्रीय विचारों के विकास के इतिहास में एक अनोखा तथ्य तथा आधुनिक काल का धर्म ग्रन्थ कहा गया है।

प्रो० हेज़न के अनुसार इस घोषणा-पत्र के लेखकों की यह धारणा कि यह विश्व के लिए एक शान्ति दूत होगा कोरी अतिशयोक्ति नहीं थी। जहाँ कहीं भी मनुष्य मानव अधिकारों की चर्चा करता है उसके मन में फ्रांस का यह घोषणा-पत्र होता है। बहुत समय बीता यह घोषणा फ्रांस देश की सीमा को लाँघ चुकी है। विश्व के लगभग प्रत्येक कोने में इसका अध्ययन नकल और आलोचना हो चुकी है। यह आधुनिक संसार के राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन में एक निर्विवाद तथ्य रहा है। पिछली शताब्दी में स्वतन्त्रता के इच्छुक अनेकों राष्ट्रों ने अपने मौलिक सिद्धान्तों का फ्रांस की इस घोषणा में खोजा है।

प्रो० साल्वेमिनी के विचार में "यदि किसी अभौतिक रचना से हमारा आशय किसी ऐसी वस्तु से है जिसे केवल सिद्धान्त तक ही सीमित रखा जा सकता है और वह वास्तविकता के साथ नहीं चल सकती तो अधिकारों की घोषणा को अपना आशय कोई अभौतिक वस्तु नहीं हो सकती जिसे फ्रांस के यूरोप के इतिहास ने बाद में व्यापक रूप दिया है। निस्सन्देह १७८९ के अधिकार इस अर्थ में नैसर्गिक नहीं थे क्योंकि उनके आशय के अनुसार वह सारी मानव-जाति जो उन्हें अनुकूल नहीं मानती नैसर्गिक नहीं लेकिन आधुनिक अर्थ में वे हमारे लिए नैसर्गिक हैं क्योंकि उनके बिना हमारी सभ्यता जीवित ही नहीं रह सकता और हम लोग स्वयं भी जीवित नहीं रह सकते। १७८९ के बाद से फ्रांस में प्रत्येक शासन को इस घोषणा के सिद्धान्तों को प्रतिभूति व मान्यता देनी पड़ी। उन लोगों की प्रेरणा ही थी जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में निरंकुशवाद के विरुद्ध आवाज उठाई और अपने संवैधानिक शासन स्थापित किए। १७८९ के अधिकारों ही में से हमारा सारा सविनय व दण्ड सम्बन्धी विधायन विकसित हुआ है। अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में पीड़ित राष्ट्रों ने इन्हीं के भीतर अपने प्रयत्नों का नैतिक औचित्य पाया है। आज भी जनसाधारण स्वतन्त्रता व समानता के उन्हीं सिद्धान्तों की दुहाई देते हैं जिन्होंने संग्राम में हथियारों का काम किया और उनसे सामन्तवाद का अन्त किया जो अब दूसरे के हाथों में जा चुके हैं और अधिक विकास व परिवर्तन के यन्त्र बन गए हैं।

यह सोचना नहीं चाहिए कि आज के सामाजिक संघर्षों को १७८९ की घोषणा ने जन्म दिया है। अन्य बहुत से तत्त्वों ने भी उनमें योगदान किया है—वे महान कारखाने व उद्योग जहाँ श्रमिक वर्ग को शिक्षा मिलती है सामान्य कार्य के निकट सम्पर्क में रहने के कारण और जिससे वह अपने निजी सामाजिक कृत्य और मालिक शक्ति का ज्ञान पाता है हमारे आधुनिक आर्थिक ढाँचे की विषमता व कोमलता जो शेष सबको अव्यवस्थित करने के लिए एक बिन्दु पर संकट उत्पन्न करती है शिक्षा के प्रसार जो ज्ञानों मिलकर और अधिक विस्तृत क्षेत्रों में विचारों का जागृता फैलाते हैं और मताधिकार जिसके द्वारा सम्पत्तिहीन वर्ग अपने शासन पर नियन्त्रण रख सकते हैं—इन सबने आधुनिक जीवन में संभारता की कमी पर प्रकाश

जाता है और व्यक्तियों को व्यक्तिगत स्वामित्व की परम्परागत व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया उठाने की प्रेरणा दी है। लेकिन आज श्रमिक वर्ग को अपने संग्राम में उन्हीं सिद्धान्तों की सहायता मिलती है जिन्होंने १७८९ में पूँजीवादी वर्ग की रक्षा की और जिनको उन्होंने मनुष्यों के लिए प्राचीन सर्वोच्च व सवमान्य बताया और अब पूँजीवादी वर्ग उन्हें कभी भी नहीं हटा सकता जब तक कि वह यह नहीं चाहता कि सामाजिक व्यवस्था की क्रिया बिलकुल ठप्प हो न हो जाय और जब तक कि वह मात के डर से आत्महत्या ही करने पर नहीं उतरता। जैसा कि फेग्व (Fagvet) ने ठीक ही कहा है वर्ग युद्ध तो क्रान्ति से पहले भी मौजूद था लेकिन उस समय जनसाधारण के पास ऐसा सामान्य आदर्श या किसी प्रकार का विचार नहीं था जो संघर्ष को उचित ठहराय या पवित्र बनाय जो उनके पास शक्ति के विरुद्ध शक्ति का प्रतीक बन या कमजोरों में ऐसे प्रयत्न कराए जो एक दूसरे को शक्तिशाली के विरुद्ध खड़ा कर। आज ऐसा बिलकुल नहीं है। क्रान्ति ने एकता का सिद्धान्त घोषित करके वर्ग-संघर्ष की सत्ता का कारण इतना नहीं दिया जितना यह घोषित करने का कारण कि इस अधिकार के साथ जीवित रहने की क्षमता प्राप्त है और अधिकार को अपने साथ रखने का कारण भी प्राप्त है।

'उन्नीसवीं शताब्दी की अन्य बड़ी राष्ट्रीय संवैधानिक तथा विधायिनी सफलताओं के विषय में भी यही कहा जा सकता है। वे प्रत्यक्षतः अधिकारों की घोषणा में से उत्पन्न नहीं हुए हैं क्योंकि वे आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में से अनिवार्यतः उत्पन्न हुई हैं। लेकिन १७८९ के अधिकारों में उन्होंने अपना सैद्धान्तिक औचित्य पाया है उन्होंने समय से सम्मानित विचारों की प्रणाली प्राप्त की है जिनके भीतर उन्हें भी स्थान दिया जा सके। यदि यह सब अभौतिकवाद है तो सारा इतिहास ही अभौतिकवाद (metaphysics) है। (The French Revolution pp 147 48)

(३) राष्ट्रीय सभा ने सारे देश में एक जैसी शासन-व्यवस्था प्रचलित की। पुराने प्रान्त प्रशासन तथा इटेण्डन्सी (Intendancies) पेज दी इटेट (pays d etat) पेज दी इलेक्शन (pays d election) पार्लमेंट्स (Parlements) और बेलिजेज (Bailliages) समाप्त कर दिये। देश को नये सिरे से ८३ विभागों (Departments) में विभक्त किया गया। ये विभाग क्षेत्रफल और जनसंख्या में समान थे तथा इनका नामकरण प्राकृतिक चिह्नों यथा नदियों और पर्वतों के नाम पर किया गया। प्रत्येक विभाग को कैण्टन (Canton) और कम्यूनों (Communes) में विभक्त किया गया। स्थानीय संस्थाओं के प्रमुख राज्य द्वारा नियुक्त होने के बजाय चुने जाने लगे। जनता द्वारा चुनी हुई स्थानीय सभाओं की व्यवस्था की गई। देश में एक नवीन न्याय प्रणाली प्रचलित की गई। इन न्यायालयों के न्यायाधीश जनता द्वारा चुने जाते थे। देश की न्याय प्रणाली को सरल और संगठित करने के लिए भी प्रयत्न किये गये किन्तु यह काय, जब नेपोलियन प्रथम काउन्सल (Consul) बना तब तक नहीं हो पाया।

(४) राष्ट्रीय सभा ने आर्थिक समस्या को सुलझाने का भी प्रयत्न किया। देश का कोष बिल्कुल खाली था। इस परिस्थिति का समाधान के लिए सभा को अत्यन्त कठोर कदम उठाने पड़े। नवम्बर १७८९ में फ्रांस के चर्चों की सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया। इस सम्पत्ति का मूल्य कई सौ करोड़ रुपये आँका जाता है। चर्च सम्पत्ति को आश्रय धन (Security) मानकर राष्ट्रीय सभा ने कागज के नोट जिन्हें एजिग्नाट्स (Assignats) कहा गया प्रचलित किये। कागज का सिक्का उस समय तक ठीक चलता है जब तक इसे अधिक न छापा जाय। कागज के सिक्के को उचित सीमा में ही प्रचलित करना आवश्यक है। किन्तु अधिक नोट चलाकर इस प्रकार राज्य की आय को बढ़ाने के प्राकृतिक लालच को राष्ट्रीय सभा रोक नहीं सकी और परिणामतः १७९१ में ही काफी महंगाई बढ़ गई थी। यह क्रम प्रतिवर्ष चलता ही रहा और डायरेक्टरी (Directory) के समय इन में कागज के सिक्का बन्द करना पड़ा। यह सच है कि कागज का सिक्का प्रचलित करने से उस समय का आर्थिक संकट टल गया किन्तु अन्ततः इन नोटों (Assignats) को चलाना फ्रांसीसी क्रान्ति का एक अत्यन्त दुःखद अध्याय है।

प्रो० साल्वेमिनी के मतानुसार समस्त योजनाओं में मुद्रा का विषय ऐसा था जिसने नई शासन-व्यवस्था को जमाने और किसी प्रकार की क्रान्ति-कारी प्रतिक्रिया को रोकने में सबसे अधिक योगदान किया। वास्तव में यह नोट (Assignats) कागजी मुद्रा थी जो स्वर्ण पर नहीं बल्कि चर्च की भूमियों को जमानत पर आधारित थे। यदि क्रान्तिकारी प्रतिक्रिया पादरी को इस योग्य बना दे कि वह अपनी चीजों को पुनः वापस पा ले तो इन नोटों की गारण्टी समाप्त हो जायगी इसलिए उनका भाग्य क्रान्ति पर आश्रित था। जो कोई इस नोट को स्वीकार करता था—और प्रत्येक को उन्हें स्वीकार करना पड़ता था क्योंकि वे कानूनी ग्राह्य थे—वह क्रान्तिकारी कार्य के हेतु उद्यत हो जाता था यदि वह यह इच्छा नहीं रखता कि उसका धन सामन्ती और धार्मिक प्रतिक्रिया के साथ व्यर्थ हो जायगा। (The French Revolution p 169)

(५) राष्ट्रीय सभा ने चर्च से भी निपटारा किया। नवम्बर १७८९ में चर्च की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। फरवरी १७९० में मास्टराज (Monasteries) और अन्य धार्मिक संस्थाओं को दबा दिया गया। अप्रैल १७९० में पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा हुई। जुलाई १७९० में धर्माचार्यों का विधान (Civil Constitution of the Clergy) का कानून बना। बिशपों और पादरियों की संख्या कम कर दी गई और उन्हें राज्य के नियन्त्रण में कर दिया गया। इन्हें जनता चुना करने और राज्य वेतन देता। पोप के साथ इनका सम्बन्ध केवल नाममात्र का ही रह गया। नवम्बर १७९० में एक घोषणा हुई जिसके अनुसार सभी कैथोलिक धर्माचार्यों को इन के संविधान के प्रति भक्ति की शपथ लेनी थी। जैसी आशंका थी पोप ने संविधान की निन्दा की और फ्रांस के धर्माचार्यों को आज्ञा दी कि वे संविधान के प्रति भक्ति की शपथ न लें। परिणामतः फ्रांस के धर्माचार्य दो गुटों में बँट

गये जिन्होंने यह शपथ ग्रहण की उन्हें न्यायिक धर्माचार्य (Juring clergy) और जिन्होंने शपथ नहीं ली उन्हें वियायिक धर्माचार्य (non juring clergy) कहा गया। अब तक निम्न श्रेणी के धर्माचार्य फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रति सहानुभूति रखते थे किन्तु इस घोषणा के पश्चात् वे इसके विरोधी हो गये। संविधान के प्रति शपथ ग्रहण करने वाले धर्माचार्यों की संख्या बहुत ही थोड़ी थी।

(६) राष्ट्रीय सभा ने फ्रांस के लिए एक नया संविधान तैयार किया इसलिए इसे संविधान-सभा भी कहा जाता था। संविधान १७९१ में तैयार हुआ और सम्राट की स्वीकृति के पश्चात् देश में लागू हो गया। यह फ्रांस का प्रथम लिखित संविधान था। यह मॉण्टेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित अधिकारों की पृथक्ता (Separation of Powers) के सिद्धान्त पर आधारित था जिसे १७८७ के अमेरिका के संविधान में निहित किया गया था। विधान-मण्डल, न्याय-मण्डल और प्रशासन-मण्डल एक-दूसरे से अलग कर दिये गये और प्रत्येक के लिए अलग अलग विभाग स्थापित किये गये। वैधानिक सत्ता एक भवन वाली विधान सभा में निहित कर दी गई। इसके ७४५ सदस्यों को परोक्ष प्रणाली (Indirect) से दो वर्ष के लिए चुना गया। मतदान का अधिकार केवल 'कार्यशील' (active) नागरिकों, अर्थात् जो नागरिक कर देते थे उन्हें प्रदान किया गया। केवल उन्हीं सदस्यों को चुना जाता था जिनके पास कुछ सम्पत्ति थी। सम्पत्ति-योग्यता का अनुबन्ध इस बात के लिए द्योतक है कि राष्ट्रीय सभा में बुर्जुआ अर्थात् मध्यमवर्ग का आधिपत्य था।

साधारणतः राज्य की प्रशासन-सत्ता सम्राट् के हाथों में छोड़ दी गई थी और उनका पद वंशानुगत था। सम्राट को विलम्ब निषेधाधिकार (Suspensive Veto) प्राप्त था जिसके अनुसार वह विधान-सभा द्वारा पारित कानून का लागू होना स्थगित कर सकता था। किन्तु स्थानीय प्रशासन, चर्च, समुद्री सेना और थल सेना के अधिकारों से उसे वंचित कर दिया गया। उसके मंत्री का विधान सभा में कोई स्थान नहीं था।

न्याय प्रणाली को पूर्णतः बदल दिया गया। पहले न्यायाधीश अपने पद खरीदा करते थे और उन्हें कुछ उपाधियाँ तथा सुविधाएँ भी प्राप्त थीं। उन्हें अपने पुत्रों को अपने पद हस्तान्तरित करने का भी अधिकार था। किन्तु यह सब समाप्त कर दिया गया। भविष्य में सारे न्यायाधीश चुने जाने लगे। उनके पद की अवधि दो वर्ष से चार वर्ष तक होनी थी। फौजदारी मुकदमों के लिए ज्यूरी प्रणाली प्रचलित की गई।

प्रो० हेज़न के अनुसार, '१७९१ का संविधान फ्रांस के शासन में उन्नति का द्योतक था। किन्तु यह चल नहीं पाया और दीर्घजीवी नहीं हुआ। शासन-व्यवस्था में स्वायत्त शासन का प्रथम प्रयोग होने के नाते इसका अपना महत्त्व था, किन्तु इससे अनेक बातों में अनुभवहीनता और न्यून कार्यकुशलता प्रकट हुई जिसके कारण भविष्य में होने वाली कठिनाइयों की भूमिका बनी। कार्य-मण्डल और विधान-मण्डल इतनी सूक्ष्मता से पृथक कर दिये गये थे कि इनके बीच सम्पर्क बनाये रखना बड़ा

कठिन हो गया जिससे एक-दूसरे के प्रति सरलता से सन्देह पनपने लगा। सम्राट विधान मण्डल में यदि न चाहता तो मंत्रियों को नहीं चुनता था। विशेषतः विधान मण्डल से मतभेद होने पर वह विधान मण्डल से मन्त्री न चुनकर इंगलैण्ड के राजा की तरह विधान मण्डल भंग करके मतदाताओं को आपस में निपटने के लिए छोड़ देना। सम्राट का निषेधाधिकार इतना शक्तिशाली शस्त्र नहीं था कि वह विधान मण्डल के आक्रमणों से उसकी रक्षा कर सके किन्तु इसके प्रयोग द्वारा वह विधान मण्डल में पर्याप्त झुंझलाहट पैदा कर सकता था। कार्यशील और कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों में भेद स्पष्ट रूप से मानव अधिकार घोषणा पत्र का दुगुना विरोध था और जिसके कारण एक असंतुष्ट वर्ग का उदय हुआ। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण इतना सम्पूर्ण था कि राष्ट्रीय सरकार की कार्यक्षमता समाप्त हो गई। प्रान्त ८३ टुकड़ों में बंटा हुआ था इन इकाइयों में परस्पर सम्पर्क रखना और राष्ट्र की आशाओं के अनुकूल इनको समूचे राष्ट्र के हित के लिए अग्रसर करना अत्यन्त कठिन और कभी-कभी असम्भव हो गया।

विधान सभा के कार्य का पर्यवेक्षण (Estimate of the work of the National Assembly)—राष्ट्रीय सभा के कार्य के पर्यवेक्षण में पता लगता है कि इसने पुराने शासन के आधार को नष्ट कर दिया। इसने प्रशासन के पुराने ढंग को समाप्त कर दिया। इसने पुरानी आर्थिक प्रणाली को नष्ट कर दिया। इसने पुरानी न्याय प्रणाली को नष्ट कर दिया। इसने देश के चर्च में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। इन सब विध्वंसकारी कार्यों के साथ-साथ यह प्रयत्न भी किया गया कि एक सरल शासन प्रणाली प्रचलित की जाय जिसके चलाने में जनता का योगदान हो। यह सब केवल राष्ट्रीय सभा के प्रयत्नों से ही नहीं हुआ अपितु उन सब किसानों के द्वारा भी हुआ जिन्होंने देहातों में विद्रोह करके जागीरदारों के महलों, उपाधि पत्रों को नष्ट कर दिया, जागीरदारों और धर्माचार्यों की हत्या करके विशेषाधिकार-सम्पन्न वर्गों के हृदय में भय संचारित करके उनका पूर्ण नैतिक पतन कर दिया।

आलोचकों का मत है कि राष्ट्रीय सभा ने भीड़ के शासन (Mob Rule) के द्वार खोल दिये। इसने भयंकर सिद्धान्तों का पोषण किया। इसने धर्म के प्रश्न पर देश में फूट पैदा कर दी। इसने विधान मण्डल का कार्य मण्डल से पृथक् नहीं किया। इसने मूर्खता से ऐसा कानून लागू किया जिसके अनुसार राष्ट्रीय सभा के सदस्यों को नये संविधान के द्वारा चुने गये विधान मण्डल की सदस्यता से वंचित कर दिया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इसका बहुत-सा कार्य बाद में समाप्त हो गया। किन्तु फिर भी बहुत कुछ स्थायी हो गया और यूरोप तथा विश्व के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया।

क्रापोटकिन के मतानुसार संविधान सभा द्वारा सम्पन्न कार्य वस्तुतः मध्य वर्गीय क्रिया थी किन्तु इसे राष्ट्र की परम्परा में समानता का सिद्धान्त चालू करना एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के ऊपर अधिकारों का अवशेष प्रगति का उन्मूलन करना समानता की भावना जाग्रत करना तथा असमानताओं के विरुद्ध विद्रोह की भावना

जगाना, फिर भी एक महान् कार्य था। केवल इतना याद रखना चाहिए जैसा लुई ब्लैंक ने कहा है कि असेम्बली में वह अग्नियुक्त भावना बनाए रखना और चमकाना 'वह वायु जो सड़क से चल रही थी' आवश्यक थी। वह कहता है कि उन अद्वितीय दिनों में इस गड़बड़ में उत्पन्न दंगेबाजों ने भी कई विद्वत्तापूर्ण प्रेरणाएँ पैदा कीं। प्रत्येक विद्रोह अनेकों विचारों से भरपूर था। दूसरे शब्दों में केवल जनसाधारण ने असेम्बली को हर बार पुनर्निर्माण का कार्य करने पर बाध्य रखा। एक क्रान्तिकारी असेम्बली भी या कोई वह जिसने अपने को राजतन्त्र के ऊपर क्रान्तिकारी रीति से थोपा जैसा कि संविधान सभा ने किया वह भी कुछ न कर पाती, यदि जनसाधारण उसे आगे बढ़ाने पर बाध्य न करते और यदि उन्होंने अपनी हिंसात्मक क्रान्तियों से क्रान्ति के विरुद्ध विरोध को कुचल न डाला होता। (The Great French Revolution p 173)

सम्राट का पलायन (जून १७९१)—३० सितम्बर १७९१ को राष्ट्रीय सभा का कार्य समाप्त होने से पहले फ्रांस में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना घटी और वह सम्राट का देश से पलायन करने का प्रयत्न था। लुई सोलहवें को भीड़ वरसाई से पेरिस घसीट कर लाई थी। ट्युलिरीज़ (Tuileries) में वह लगभग अवकाश प्राप्त व्यक्ति की तरह रह रहा था और राष्ट्रीय सभा में वह कुछ विशेष अवसरों पर आता था। सम्राट ने अनुभव किया कि वह वस्तुतः पेरिस की भीड़ का बन्दी है। मिराबो (Mirabeau) की मृत्यु के पश्चात् उसका सारा आश्रय समाप्त हो गया। राष्ट्रीय सभा द्वारा बनाये गये नये संविधान ने तो उसके सारे अधिकार छीन लिये। उसे अनुभव हुआ कि इस परिस्थिति में अधिक समय तक रहना उसके लिए असम्भव है। उसे यह कहते हुए सुना गया कि 'मैं इस अवस्था में फ्रांस का सम्राट् रहने की अपेक्षा मेट्ज़ का राजा होना अधिक पसन्द करूँगा किन्तु यह शीघ्र ही समाप्त हो जायगी।' अतः आस्ट्रिया भाग जाने की योजना बनाई गई। राज-परिवार के सदस्य वेष बदल कर गुप्त रूप से अपने निवास-स्थान से निकल गये। यदि राज-परिवार सावधान रहा होता और असुविधाओं पर ध्यान न देकर सीमान्त पर शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने का प्रयत्न करता तो उसके बच निकलने की पूर्ण सम्भावना थी। किन्तु राज-परिवार को सीमान्त से कुछ मील दूर ही पकड़ लिया गया। उसे बड़ी अपमानजनक अवस्था में पेरिस लाया गया। सम्राट के असफल पलायन के बड़े गम्भीर परिणाम हुए। इससे स्पष्ट प्रकट हो गया कि सम्राट क्रान्ति का हृदय से समर्थक नहीं था और वह संविधान का शत्रु था। रोब्सपायर (Robespierre) और डैन्टन (Danton) जैसे व्यक्तियों ने माँग की कि सम्राट-पद समाप्त करके उसके स्थान पर प्रजातन्त्र की स्थापना कर दी जाय। किन्तु राष्ट्रीय सभा में संवैधानिक राजतन्त्र के समर्थकों का बहुमत था परिणामतः सम्राट के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं हुई। सम्राट ने संविधान का समर्थन करने की शपथ ली और यह मामला यहाँ दबा दिया गया। इस प्रकार की परिस्थितियों में ३० सितम्बर १७९१ को राष्ट्रीय सभा का कार्य पूरा हुआ और इसे भंग कर दिया गया।

Suggested Readings

Acton	: *Lectures on the French Revolution*
Bourne	: *The Revolutionary Period in Europe*
Lowell	: *The Eve of the French Revolution*
MacLehose	: *From the Monarchy to the Republic*
Mathews	: *The French Revolution*
Robinson & Beard	*Readings in Modern European History*
Thompson E	*Popular Sovereignty and the French Constituent Assembly (1789 1791) 1952*
Thomson	*Europe Since Napoleon*

अध्याय ४

विधान-सभा और राष्ट्रीय सम्मेलन

(Legislative Assembly and National Convention)

विधान-सभा (The Legislative Assembly) (१७९१-९२)—१७९१ में राष्ट्रीय सभा द्वारा बनाये गये संविधान के अनुसार चुनाव हुए और प्रथम अक्टूबर, १७९१ को विधान-सभा का अधिवेशन हुआ। सभा में ७४५ सदस्य थे और दुर्भाग्य से सारे ही सदस्य अपने कार्य के लिए नये थे। मूर्खता से राष्ट्रीय सभा ने निःस्वार्थ भाव से एक कानून बना दिया जिसके अनुसार राष्ट्रीय सभा के सदस्यों को नये संविधान द्वारा स्थापित विधान-सभा के सदस्य बनने पर रोक लगा दी। यह कार्य बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण रहा और इसके कारण देश को हानि उठानी पड़ी। विधान-सभा के सदस्यों में बहुत से उग्रवादी थे और यह आगामी विपत्ति का चिह्न था।

फ्रांस के क्लब (Clubs in France)—उस समय कुछ राजनैतिक क्लबों की भी स्थापना हुई जिनमें सबसे प्रमुख जैकोबिन (Jacobin) और कोरडिलियर क्लब थे। जैकोबिन क्लब प्रारम्भ में नम्र नीति का समर्थक था किन्तु कालान्तर में वह अधिक उग्रतर होता गया। विशेषतः मिराबो और लफाइट के क्लब छोड़ने के पश्चात् उसके सदस्य उग्र हो गये। परिणामतः रोब्सपियर (Robespierre) एक उग्र प्रजातन्त्रवादी के रूप में प्रकाश में आया। उसके नेतृत्व में देश के उग्र नागरिकों का संगठन किया गया और देश भर में इसकी बहुत-सी शाखाएँ खोल दी गई। कुछ समय पश्चात् जैकोबिन क्लब विधान-सभा का प्रतिद्वन्द्वी बन गया। कोरडिलियर क्लब प्रारम्भ से ही उग्र विचारधारा का समर्थक था। इसका नेता डेन्टन था। इसके सदस्य समाज की निम्न श्रेणी के लोग थे और प्रजातन्त्र के प्रारम्भ से ही प्रबल समर्थक थे। यह उल्लेखनीय बात है कि इन क्लबों का जनता पर बड़ा भारी प्रभाव था।

विधान सभा में राजनैतिक दल (Political groups in the Assembly)—विधान-सभा के राजनैतिक वर्गों का उल्लेख किया जाना चाहिए। जहाँ तक संविधानवादियों का प्रश्न है वे १७९१ के संविधान के समर्थक थे, इसलिए देश में वैधानिक शासन प्रणाली को चाहते थे। वे सीमित अधिकार वाले सम्राट् को मानने के लिए तैयार थे। प्रजातन्त्रवादी दो मुख्य गुटों में बँटे हुए थे जिरान्डिस्ट और जैकोबिन्स। जैकोबिन्स को विधान-सभा में उनके ऊँचे आसनों के कारण पहाड़ (Mountain) भी कहा जाता था। जिरान्डिस्ट नम्र विचारों के थे, किन्तु वे प्रजातन्त्रात्मक शासन के समर्थक थे। वे अपने ढंग से क्रियाशील नहीं थे। उनका दृष्टिकोण क्रियात्मक होने की अपेक्षा सिद्धान्तात्मक अधिक था। वे कानूनी ढंगों और तरीकों का

विशेष ध्यान रखते थे और पशुबल के प्रयोग के विरुद्ध थे। प्रा० हेज़न (Hazen) के मतानुसार कवि लामार्टिन (Lamartine) की गम्भीर लेखनी से जिस समय से क्रान्ति का काल्पनिक इतिहास लिखा जाने लगा गिरोण्डिस्टों को कविसम्मत अमरता मिल गई। कवि ने इनको उच्च विचारों वाले और दुष्ट समाज के भय से इस देशभक्ति के रूप में वर्णन किया है। उसका वर्णन ठीक नहीं था। वे पुराजन के लिए बलिदान करने वाले निस्वार्थ देशभक्त नहीं थे। यह राजनीतिज्ञों का गुट था जिसके कार्य उनकी महत्त्वाकांक्षाओं के समान प्रबल नहीं थे। जैसा कि इस प्रकार की अवस्था में बहुधा होता है उन्होंने अपनी उद्दाम वासना (vaulting emotion) का दाम भी चुकाया। उन्होंने वीरता और उत्साह से अपने जीवन के दुःखान्त अन्त का स्वागत करना तो आता था किन्तु उन्हें मृत्यु से भी कठिन कार्य करना तथा जीवन को ऊँचा उठाकर विश्व-कल्याण के कार्यों में लगाना नहीं आता था। उनका एक भावुक युवती के नेतृत्व में चलने वाले नवयुवकों का दल था। इनका पथ-प्रदर्शक और अद्भुत सितारा श्रीमती रोला (Madame Roland) थी जिनका इनका अच्छा देर समय तक पद प्रदर्शन किया तथा जो इनकी वास्तविक नेता बनकर रंगमंच पर थोड़ी देर गरजी लेकिन शान्ति के उत्पात के समय उनकी वह घनघोर गर्जना रंगमंच में फिर सुनाई नहीं पड़ी। इन लोगों का संसार के प्रति किताबी दृष्टिकोण था। उनका मुख्य बौद्धिक भोजन प्लूटार्क (Plutarch) के ग्रन्थ थे। प्राचीन यूनानी और रोम के विद्वानों के प्रति उनकी श्रद्धा असीम थी। वे प्रजातन्त्रवादी इस कारण थे क्योंकि प्राचीन युग के महापुरुष प्रजातन्त्रवादी थे। उन्हें यह भी आशा थी कि प्रजातन्त्रीय प्रणाली में उन्हें धन प्राप्त करने तथा चमकने के अधिक अवसर प्राप्त होंगे। वे अपने पूर्व आदर्शों के यश से चकाचौंध थे और ईर्ष्या की भावना में दहका करते थे। जैकोबिन्स कट्टर प्रजातन्त्रवादी थे। वे देश में प्रजातन्त्र प्रणाली की शासन व्यवस्था स्थापित करने में तथा इसकी रक्षा के लिए सब प्रकार के साधन प्रयुक्त करने के लिए प्रस्तुत थे। यह सत्य है कि आरम्भ में गिरोण्डिस्ट (Girondists) सदस्यों का विधान-सभा में बहुमत था किन्तु जैकोबिन क्लब के समर्थन के कारण जैकोबिनों का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था।

सम्राट द्वारा निषेध किए गये कानून (Laws Vetoed by the King)—विधान-सभा ने दो विधेयक पारित किये। एक विधेयक के अनुसार सारे धर्माचार्यों को धर्माचार्यों के संविधान (Civil Constitution of the Clergy) के अनुसार अपना कार्य सम्पादन करना था। इसकी व्यवस्था के अनुसार जो धर्माचार्य किसी विशेष तिथि तक इस संविधान को न मानें उनका अवकाश वेतन (Pension) रोक दिया जाता और उन्हें सन्देहात्मक दृष्टि से देखा जाता था। कोई भी गड़बड़ होने पर उन्हें पदच्युत कर दिया जाता। दूसरे विधेयक में फ्रांस के उन नागरिकों के लिए व्यवस्था थी जो देश से भाग गये थे और विदेशी शक्तियों से मिलकर हस्तक्षेप करके फ्रांस की क्रान्ति को कुचलने का षडयन्त्र रच रहे थे। उन्हें भगोड़े (Emigres) कहा गया। कानून के अनुसार उन्हें एक विशेष तिथि तक स्वदेश लौट आने की आज्ञा दी गई। ऐसा न करने की अवस्था में उनकी सम्पत्ति को जब्त कर लेने तथा मृत्यु-दण्ड

दन की व्यवस्था थी। लुई सोलहवां इन दोनों कानूनों में से किसी को भी स्वीकार नहीं करना चाहता था। परिणामत उसने इन दोनों को निषेधाधिकार से रद्द कर दिया। 'धर्माचार्य-संविधान' को न मानने वाले धर्माचार्यों के विरुद्ध कानून स्वयं उसकी आत्मा को कचोटता था तथा देश से भागे हुए लोगों के साथ भी सम्राट को सहानुभूति थी। पेरिस के नागरिक सम्राट के इस ढंग को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे परिणामत उन्होंने २० जून, १७९२ को सम्राट के महल पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने सम्राट को एक कमरे में तथा सम्राज्ञी और राजकुमार डॉफिन को दूसरे कमरे में पाया। कई घण्टे तक सम्राट को भँभोड़ा गया उसका अपमान किया गया और उसे घूरा गया। जब भीड़ जाने लगी तो उनमें से एक ने कहा "हम दूसरी बार आयेंगे और जो हम चाहते हैं लेकर रहेंगे।" यह एक भयानक घटना थी।

भीड़ दूसरी बार फिर आई। ९-१० अगस्त १७९२ की आधी रात को राजधानी के चर्चों में घण्टे बजने लगे और डेण्टन (Danton) के नेतृत्व में उग्र विचारों के उभार भीड़ ने पेरिस की नियमित सरकार को निलम्बित कर दिया। महल के रक्षकों को हटा दिया गया था। वे भाग गये। उनके नायक की हत्या कर दी गई। परिस्थिति इतनी भयानक हो गई कि राजपरिवार ने सुबह आठ बजे महल छोड़कर बड़ी कठिनाई से सभा के भवन में आश्रय लिया। लुई सोलहवें ने भवन में प्रवेश करते हुए कहा— मैं एक भयानक अपराध को रोकने के लिए आया हूँ। महल के रक्षकों और भीड़ में डटकर रक्तपात हुआ। ६०० के लगभग रक्षक मारे गये भीड़ ने महल में घुस कर लूट मार आरम्भ कर दी। राज-परिवार सभा भवन में तीन दिन रहा और इसके पश्चात् उन्हें उनके महल तक एक टेम्पल (Temple) की कन्दरानुमा अँधेरी मीनारों में बन्द कर लिया गया।

विद्रोह का उद्देश्य सफल हुआ। सम्राट को निलम्बित कर दिया गया। डेण्टन को सामान्य भी बनाकर एक अस्थायी (Provisional) सरकार की स्थापना कर दी गई किन्तु वास्तविक सत्ता पेरिस की कम्यून और नेशनल गार्ड के हाथ में थी।

युद्ध की ओर ले जाने वाले तत्त्व (Factors leading to War)—फ्रांस धीरे धीरे युद्ध की ओर बढ़ रहा था और इसके अनेक कारण थे। फ्रांस के क्रान्तिकारी अपने सिद्धान्तों को केवल देश में प्रचार करना ही पर्याप्त नहीं समझते थे बल्कि वे अपने विचारों को यूरोप के अन्य देशों में भी फैलाने के लिए दृढ़-सङ्कल्प थे। यूरोप के अन्य देशों के शासक फ्रांस के नागरिकों की इन गतिविधियों के विरुद्ध थे और इससे बड़े चिन्तित थे। एमीग्रे (Emigres) यूरोप के अन्य देशों में फ्रांस के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे और विदेशी सहायता से इनके द्वारा फ्रांस पर आक्रमण होने की पूरी सम्भावना थी। फ्रांस में जागीरदारों के कर तथा धर्माचार्यों के दशमांश कर (Tithes) समाप्त कर दिये गए थे। यह व्यवस्था अलसेस (Alsace) तथा अन्य सीमान्त प्रदेशों पर जो पहले जर्मन साम्राज्य के भाग थे, लागू होती थी। १६४८ की

वस्टफेलिया (Westphalia) की सन्धि के अनुसार जमन सामन्तो को कुछ अधिकार और सुविधाए देना स्वीकार किया गया था और फ्रास सरकार की इस व्यवस्था से उन्हे चोट पहुँची। यह सत्य है कि फ्रास सरकार ने इन जमन सामन्तो को हरजाना (Compensation) देना चाहा किन्तु सामन्तो ने इसे ठुकरा दिया और जमन ससद मे अपील की। फ्रास ने ऐविग्नान (Avignon) को अपनी सीमा मे मिला लिया। यह क्षेत्र चौदहवी शताब्दी से निरन्तर पोप के अधिकार मे था। यह काय अन्तर्राष्ट्रीय कानून को भग करना समझा गया। फ्रासीसी आस्ट्रिया के विशेषत विरुद्ध थ क्योकि उसने फ्रास के भगाडे सामन्तो को जमनी की धरती से नही हटाया था। आस्ट्रिया पर यह सन्देह किया जाता था कि वह उन्हे मदद देता है। २७ अगस्त १७९१ को आस्ट्रिया और प्रशिया दोनो ने पिलनिट्ज (Pilnitz) घोषणा की। इसमे घोषित किया गया कि फ्रास की सरकार का काय समूचे यूरोप के राजाओ का काय है। प्रशिया और आस्ट्रिया दोनो फ्रास मे हस्तक्षेप करने को तयार है यदि और देशो के शासक भी उनका साथ देने को तयार हो। फ्रास की जनता ने विदेशी हस्तक्षेप की धमकी को बहुत बुरा माना और इससे युद्ध के समथक और फ्रास मे राजशाही शासन समाप्त करने के इच्छुक गिराण्डिस्टो के हाथ और भी मजबूत हो गय। फ्रास सरकार ने आस्ट्रिया को चुनौती दी और अप्रल १७९२ मे युद्ध आरम्भ हो गया।

यद्यपि गिराण्डिस्ट युद्ध की माग कर रहे थे तथा इन्होने युद्ध आरम्भ कर भी दिया था किन्तु वे इसे सफलतापूवक चला नही सके। वे लोग क्रियाहीन राजनीतिज्ञ थ। परिणामत फ्रास सब मोर्चों पर परास्त हुआ। बेल्जियम पर इनका आक्रमण असफल रहा। आस्ट्रिया और प्रशिया की सामूहिक सेना ने इन्हे हरा दिया। फ्रासीसियो ने अपनी पराजय का कारण अपनी अनुभवहीनता मानने की अपेक्षा सम्राट की गतिविधि को माना। यह आक्षेप लगाया गया कि फ्रास के सनिको ने राजपरिवार के शत्रुओ को गुप्त भेद बता दिये और परिणामत फ्रास की पराजय हुई है। फ्रास की पराजय का मूल दोष सम्राट पर थोपा गया। जिस समय सब ओर से सम्राट की निन्दा की जा रही थी उसी समय सयुक्त शक्तियो (Allied Forces) के प्रधान सेनापति ब्रुन्सविक के ड्यूक (Duke of Brunswick) ने जुलाई १७९२ मे फ्रास की जनता के नाम एक घोषणा पत्र प्रकाशित किया जिसमे उसने बुरबोन्स (Bourbons) वश को फ्रास मे उसके न्यायपूण स्थान पर पुन स्थापित करने की घोषणा की गई थी। इस घोषणा का उत्तर फ्रास ने अगस्त १७९२ मे पेरिस मे विद्रोह करके दिया। इस विद्रोह का परिणाम डेण्टन की तानाशाही (Dictatorship) की स्थापना मे हुआ। १० अगस्त १७९२ को सम्राट को निलम्बित करके देश के लिए नया सविधान बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए चुनाव कराने का आदेश दिया गया।

डण्टन (Danton) की नीति को उसके ही शब्दो मे व्यक्त किया जा सकता है मेरे मतानुसार शत्रु को रोकने का एक ही साधन है और वह यह कि सम्राट के समथको को भयभीत कर दिया जाय। दुस्साहस अधिक दुस्साहस और

सवदा बढता हुआ दुस्साहस ही हमारा रक्षक है।' (Audacity, more audacity and always greater audacity)। उसकी नीति का परिणाम पेरिस म सम्राट के समथकों की सामूहिक हत्याएँ हुआ। पुरुष स्त्रियाँ और बालक सामन्त और न्यायाधीश पुजारी और धर्माचाय और अन्य लोग जिन पर सम्राट के समथकों से सहानुभूति रखने का सन्देह था अत्यन्त निदयता से मौत के घाट उतार दिये गये। जस-जैसे संयुक्त शक्तियों की सेनाएँ फ्रांस म घुसती जाती थीं वसे-वस ही भय बढ कर अराजकता म परिवर्तित होता जाता था। देश की सर्वोच्च सत्ता डेण्टन (Danton) और उसके साथियों के हाथों म चली गई। २० सितम्बर १७६२ को संयुक्त शक्तियों की वाल्मी नामक स्थान पर पराजय हुई और उनकी प्रगति रुक गई। फ्रांस की तत्कालीन आपत्ति से रक्षा हो गई। इस विजय ने फ्रांस की सेनाओं को आत्मविश्वास प्रदान किया और इसके पश्चात उन्हें सफलता पर-सफलता प्राप्त होती गई। इस प्रकार की परिस्थितियों म २१ सितम्बर, १७६२ को राष्ट्रीय सम्मेलन आरम्भ हुआ।

राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) (१७६२ ६५)—प्रो० हेज (Hayes) के शब्दों म सम्भवत इतिहास में किसी भी देश के विधानमण्डल को इस प्रकार की उलझी हुई समस्याओं का सुलझाने का काय नहीं सौंपा गया जसा कि राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन को सौंपा गया।' अपदस्थ (Deposed) सम्राट् का भी कुछ करना था। देश को विदेशी आक्रमण से बचाना था। आन्तरिक विद्रोह समाप्त करना था। देश में शासन-व्यवस्था स्थापित करनी थी। सामाजिक सुधार पूरे करके मजबूत करने थे। देश के लिए संविधान तयार करना था। इन सब महान् समस्याओं को सफलतापूवक हल करने का श्रेय राष्ट्रीय सम्मेलन को ही है।

सम्राट पर मुकदमा चलाया गया और उसे सवसम्मति से देश द्रोह का अपराधी पाया गया। थोडे बहुमत से उसे तुरन्त मृत्युदण्ड देने का निणय हुआ। गिरॉण्डिस्टों ने दया की अपील की किन्तु जेकोबिनों ने उसकी तत्काल मृत्यु की माँग की। अन्त म २१ जनवरी १७६३ रविवार के दिन सम्राट को मृत्युदण्ड (Guillotined) दे दिया गया। उसके अन्तिम शब्द थ 'सज्जनो! जिस अपराध का दोषी मुझे ठहराया गया है उसम मैं निर्दोष हूँ। मेरे रक्त से फ्रांस की खुशी चिरजीवी हो।

विदेश नीति (Foreign Policy)—राष्ट्रीय सम्मेलन की नीति का दो शीषकों म वणन किया जा सकता है—विदेश-नीति और आन्तरिक नीति। विदेश नीति के विषय म एक कठिन परिस्थिति सँभालनी थी। दिसम्बर १७६२ में राष्ट्रीय सम्मेलन ने यह आज्ञा (Decree) प्रचलित की— फ्रांस राष्ट्र यह घोषणा करता है कि यह उस प्रत्येक व्यक्ति को अपना शत्रु मानेगा जो स्वतन्त्रता और समानता को नहीं मानेगा अथवा इनको निन्दा करते हुए राजपरिवार और विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों से अपने सम्बन्ध बनाये रखने मित्रता करने अथवा उन्हें बुलाने की इच्छा करेगा। जनवरी १७६- में लुई सोलहवें को इस आधार पर मृत्यु-दण्ड दिया गया कि उसने राष्ट्रीय संविधान सभा के सदस्यों को घूस दी तथा अपने साथी राजाओं को सहायता

के लिए पत्र लिखे। फ्रांस द्वारा यूरोप के सब राजाओं के विरुद्ध युद्ध घोषणा करने और लुई सोलहवें को मृत्यु-दण्ड देने के कारण आस्ट्रिया प्रशिया ग्रेट ब्रिटेन हालैण्ड स्पेन और सारडीनिया ने फ्रांसीसी क्रान्ति को कुचलने के लिए संगठन किया। बाहर से आने वाली इस विपत्ति का सामना करना फ्रांस के क्रान्तिकारियों के लिए सरल कार्य नहीं था किंतु मध्यमवर्ग ने बड़ी दृढ़ता से परिस्थिति का सामना किया। कार्नट (Carnot) के नेतृत्व और नियन्त्रण में फ्रांसीसियों में वीरता की भावना भर गई। जनवरी ३१ १७९३ को डेण्टन ने घोषणा की "हमारे प्रजातन्त्र की सीमाएं स्वयं प्रकृति ने नियत की हैं और हम इन सीमाओं को क्षितिज के चारों कोनों राइन, एल्प्स पारिनीस और समुद्र तक प्राप्त करेंगे। हमारे प्रजातन्त्र की प्राकृतिक सीमाएं होनी चाहिए और पृथ्वी की कोई शक्ति हमें इन तक पहुँचने से रोक नहीं सकती। फरवरी १७९३ में ५ लाख व्यक्तियों की बलात भरती की घोषणा हुई। अगस्त १७८ में आज्ञा प्रसारित हुई कि अठारह और पच्चीस वर्ष की आयु के सब नागरिकों को सैनिक सेवा करनी पड़ेगी। कार्नट ने जवानों की भर्ती किया द्वारा रावण को समाप्त किया विशेष स्वयंसेवक संगठित किये सेना को प्रशिक्षित (Trained) करके उन्हें शीघ्रतापूर्वक फ्रांस पर होने हुए आक्रमण को रोकने के लिए मोर्चों पर भेज दिया। उसने मार्चेबन्दी की योजनाएं बनाई विश्वस्त अधिकारियों को नियुक्त किया और उनमें फ्रांस की क्रान्ति की रक्षा के लिए एक नई भावना को फूंका। १७९३ ई० के समाप्त होते ही उनके पास सात लाख सत्तर हजार सशस्त्र जवान थे जिनमें से अधिकांश क्रान्ति के बड़े अन्धविश्वासी भक्त थे। बुर्जुआ नागरिक कारीगर और किसानों ने सरकार का समर्थन किया। उनका मुख्य गान मारसिलीज का क्रान्ति-गान था और वे स्वतन्त्रता समानता और मित्रता के ध्वज को लहराते थे।

फ्रांस का सैनिकवाद सशस्त्र राष्ट्र के सिद्धांत पर टिका था। शीघ्र ही देश में विदेशी सेनाओं का सफाया ही नहीं हुआ, अपितु युद्ध नीदरलैण्डज पर दबाव डालता हुआ राइन (Rhine) के किनारे सेवाय (Savoy) में तथा पारिनीस (Pyreneese) को पार कर गया। फ्रांस की सेनाएँ इतनी सफल हुई कि कार्नट को जिसे पहले सुरक्षा प्रबन्धक की उपाधि प्राप्त थी अब विजय प्रबन्धक पुकारा जाने लगा। १७९४ ९५ के अद्भुत और आश्चर्य-जनक अभियानों की सफलताओं का वर्णन करने का प्रयत्न करना असम्भव है। संक्षिप्त रूप से इतना ही कहना आवश्यक है कि १७९५ में जब राष्ट्रीय सम्मेलन की अवधि समाप्त हुई तब फ्रांस के विरुद्ध प्रथम संगठन का पूर्णत नष्ट कर दिया गया था। स्पेन को प्रजातन्त्रवादी फ्रांस से समझौता करके मुँह की खानी पड़ी। १७९५ ई० की बेसल (Basle) की संधि के अनुसार प्रशिया के राजा ने फ्रांस को राइन के बाएँ तट पर अधिकार दे दिया था। हालैंड का विलियम पंचम राज्यच्युत (Deposed) कर दिया गया और उसका राज्य बटाविया प्रजातन्त्र में बदल दिया गया तथा इस प्रजातन्त्र ने फ्रांस से मित्रता कर ली। फ्रांस की सेना को आस्ट्रिया नीदरलैंड और राइन (Rhine) के क्षेत्रों पर

अधिकार मिल गया। फ्रांस के प्रजातन्त्र के विरुद्ध केवल ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रिया और सार्डीनिया ही शस्त्र उठाये रहे।

गृह-नीति (Home Policy)—गृह-नीति के विषय में भी फ्रांस को बड़ी कठिन स्थिति का सामना करना था। जनता में सैनिक भावना जागृत हो चुकी थी परिणामतः बहुत स्थानों पर जैसे लायन्स (Lyons) मारसिलेज (Marseilles) और बार्डो (Bordeaux) में दंगे फसाद हुए। ला विंदा (La Venda) के किसानों ने राज प्रणाली तथा कैथोलिक चर्च की स्थापना के लिए विद्रोह किया। किन्तु सब विद्रोह दृढ़तापूर्वक कुचल दिये गए और किसी प्रकार का विरोध सहन नहीं किया गया।

(६) १७९३ में सम्मेलन ने देश के सर्वोच्च कार्यमण्डल की सत्ता एक जन सुरक्षा समिति (Public Safety Committee) को सौंप दी। इस समिति में रॉब्सपायर (Robespierre) कार्नट और सेण्ट जस्ट जैसे प्रभावशाली व्यक्ति थे। १७९३ से १७९४ तक फ्रांस में वस्तुतः आतंक का राज्य (Reign of Terror) था। जन सुरक्षा समिति के दो प्रमुख विभाग सर्वसाधारण सुरक्षा समिति और क्रान्तिकारी न्यायालय (Revolutionary Tribunal) थे। सन्देह-युक्त कानून (Law of Suspects) के अनुसार कोई भी व्यक्ति, जो जन्म से सामन्त परिवार का हो या जो क्रान्ति के पहले पदाधिकारी रहा हो या जिसका किसी भगोड़े से सम्बन्ध रहा हो अथवा जो नागरिकता का लिखित प्रमाण पत्र प्रस्तुत न कर सके मृत्युदण्ड का भागी था। इस अवधि में ग्युलाटिनी (Guillotine) ने बड़ा काम किया। अनुमान किया जाता है कि केवल पेरिस में ही आतंक काल में पाँच हजार व्यक्तियों को मृत्यु-दण्ड दिया गया। जिनकी हत्या की गई, उनमें सम्राज्ञी मेरी एण्टायनट (Antoinette) और श्रीमती रोलां (Rolland) भी थी। यद्यपि आतंक पेरिस में ही आरम्भ हुआ था किन्तु यह शीघ्र ही देहातों में भी फैल गया। सब जगह स्थानीय न्यायालयों की स्थापना की गई जिसमें सन्देह युक्त व्यक्तियों की खोज करके उन्हें मार दिया जाय। लायन्स (Lyons) में सैकड़ों व्यक्ति मार डाले गये। नानटस में कैरियर अपराधियों को लोयर (Loire) में ले गया और वहीं उन्हें डुबोकर मार डाला। अनुमान लगाया जाता है कि प्रदेशों में लगभग १५००० व्यक्तियों को मार डाला गया। इस सैनिक भावना ने अपराध करने वाले व्यक्तियों के ही प्राण नहीं लिये अपितु निर्दोष व्यक्तियों को भी नहीं छोड़ा गया। आतंक राज्य डैण्टन (Danton), रॉब्सपायर और सेण्ट जस्ट के पतन पर समाप्त हुआ।

(७) राष्ट्रीय सम्मेलन की सबसे बड़ी सफलता थी देश में राष्ट्रीय धर्म की शिक्षा और प्रचार। एक सच्ची राष्ट्रीय सेना तैयार करने के हेतु १७९८ में एक आज्ञप्ति प्रसारित की गई जिसके अनुसार सब सत्रह पचीस वर्ष के युवकों का सेना में भर्ती होना अनिवार्य घोषित हुआ। इस आज्ञप्ति में आदेश दिया गया कि युवक युद्ध में लड़ें, विवाहित पुरुष शस्त्र बनायें और युद्ध-सामग्री को मोर्चों पर पहुँचायें स्त्रियाँ तम्बू और कपड़े तैयार करें और अस्पतालों में परिचर्या करें बालक कपड़े की पट्टियाँ

और पलीता तैयार करें। वयोवृद्ध युद्ध में लगे युवकों के साहस को बढ़ाने, राजा के प्रति घृणा जगाने तथा प्रजातन्त्र में एकता स्थापित करने के लिए सार्वजनिक स्थानों में प्रचार कार्य करें। इस प्रकार यूरोप में बहुत बड़े स्तर पर वास्तविक रूप में सैनिकवाद का प्रारम्भ हुआ।

(३) राष्ट्रीय सम्मेलन ने यह भी कानून बनाया कि समूचे देश में फ्रेंच भाषा ही शिक्षा का माध्यम हो।

(४) देश के राष्ट्रीय कानूनों का संग्रह करके संहिता (Code) बनाने के कार्य को भी शुरू किया गया। अतः इस ओर भी पर्याप्त प्रगति हुई। यह व्यवस्था भी की गई कि ऋण के कारण किसी को कैद की सजा न दी जाय। फ्रांस के उपनिवेशों में दासता समाप्त हो गई। ज्येष्ठ सन्तान के उत्तराधिकार कानून को समाप्त कर दिया गया जिसके अनुसार केवल ज्येष्ठ पुत्र ही सम्पत्ति का स्वामी होता था और अन्य बालकों को कुछ नहीं मिलता था। सब बालकों को सम्पत्ति में बराबर भाग का अधिकारी माना गया। दशमलव प्रणाली (Metric System) के वजन और माप प्रचलित किये गए।

(५) धर्म के क्षेत्र में भी कुछ प्रयोग किये गए। राष्ट्रीय सम्मेलन इन्क्विज़ा ईसाईयत के प्रति विरोध भाव रखता था। पादरियों को सन्देह-युक्त व्यक्ति समझा जाता था। फ्रांस से ईसाई धर्म का प्रभाव कम करने का प्रयत्न किया गया। पेरिस की कम्यून के तत्त्वावधान में नवम्बर १७९३ में पेरिस के महान गिरजाघर कथेड्रल डे नात्रे डाम (Cathedral de Notre Dame) में आस्तिक तर्क का धर्म की स्थापना हुई किन्तु १७९४ में रोब्सपियर के पतन के पश्चात् राष्ट्रीय सम्मेलन का विचार बदल गया और यह नीति अपनाई गई कि धर्म एक व्यक्तिगत वस्तु है और किसी धर्म की स्थापना अथवा समर्थन करना राष्ट्र का काम नहीं है। परिणामतः सबको धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई और १७९५ में बहुत से गिरजाघर ईसाई धर्म की पूजा के लिए लौटा दिये गए।

(६) राष्ट्रीय सम्मेलन ने देश के पंचांग (Calendar) में भी परिवर्तन किये। वर्ष को बारह महीनों में विभक्त किया और प्रत्येक महीने में दस-दस दिन के तीन सप्ताह बनाये। हर दसवां दिन अवकाश होता था। इस प्रकार ३६५ या ३६६ दिन से वर्ष के अन्त में पाँच या छः दिन राष्ट्रीय पर्व के नाम से अवकाश के होते थे। महीनों के नाम[1] भी बदल दिये गए तथा २२ सितम्बर १७९२ से वर्ष का आरम्भ होता था।

---

[1] अगस्त से सितम्बर तक महीनों के नाम, वेंडिमेयर, ब्रुमेयर, फ्रिमेयर, निवोज़, प्लुवोज़, विंटोज़, जर्मिनल, फ्लोरियल, प्रेरियल, मेसाडोर, थर्मिडोर और फ्रुक्टिडोर थे। इनके समकालीन अंग्रेजी पर्यायवाची महीने, व्होज़ी, स्लाज़ी, फ्राज़ी, स्लिप्पी, ड्रिप्पी, निप्पी, शोवरी, फ्लावरी, बोवरी, व्हीटी, हाटी और स्वाटी थे।

(७) राष्ट्रीय सम्मेलन ने सामाजिक क्षेत्र में भी कुछ प्रयोग किये। भगोड़ों की सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। धनवान्, धर्माचार्य, सामन्त सबको सन्देहयुक्त व्यक्ति समझा जाता था। बड़ी-बड़ी जागीरों को टुकड़े करके छोटे-छोटे ज़मीन के टुकड़ों में सरल शर्तों पर बेच दिया गया जिससे साधारण जनता भी अपनी धरती प्राप्त कर सके। इस प्रकार बहुत से किसान ज़मींदार हो गए। जिन लोगों की धरती ज़ब्त की गई उन्हें हरजाना नहीं दिया गया। मारट (Marat) का मत था कि धनवानों ने इतने समय तक लोगों की हड्डियाँ निचोड़ी हैं कि अब उनसे इसका प्रतिशोध चुकाया जायगा। महंगाई को रोकने के लिए अनिवार्य ऋण लगाए गये। अधिकतम कानून, वेतन तथा अन्न और दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं के दाम नियन्त्रित करने के लिए लागू किया गया। यह भी आज्ञा दी गई कि प्रत्येक व्यक्ति परस्पर 'नागरिक' (Citizen) कह कर सम्बोधन करे और समाज में किसी भी प्रकार का ऊँच नीच का भेद न हो।

(८) जुलाई १७९४ में राब्सपायर के पतन के पश्चात् सन्दिग्ध व्यक्तियों के विरुद्ध कानून तथा 'अधिकतम कानून' वापस ले लिए गये। क्रान्तिकारी न्यायालय बन्द कर दिए गये। १७९५ के आरम्भ में फ्रांस प्रजातन्त्र प्रणाली के शासन के लिए तैयार हो चुका था। जिराण्डिस्टों (Girondists) द्वारा १७९३ में तैयार किए गए संविधान को रद्द करके १७९५ में नया संविधान बनाया गया। नये संविधान में फ्रांस में दो भवनों वाली संसद की व्यवस्था की गई। निम्न भवन में ५०० सदस्य तथा वृद्ध-सभा (Council of Ancients) में २५० सदस्य थे। इन दो भवनों को क्रमशः कानून बनाने और पड़ताल करने का काम सौंपा गया। कार्य-मण्डल की सत्ता पाँच डायरक्टरों की सभा को जिसे डायरक्टरी कहा गया सौंपी गई। इन डायरक्टरों को विधान मण्डल चुनता था और ये राज्य के मन्त्री नियुक्त करते थे जिनका काम देश में कानून लागू करना और शान्ति की व्यवस्था बनाये रखना था।

(९) राष्ट्रीय सम्मेलन की एक अन्य महत्वपूर्ण सफलता थी देश में नार्मल स्कूल, पालिटकनीक स्कूल, लावर का अजायबघर, राष्ट्रीय पुस्तकालय और 'इन्स्टीट्यूट दि फ्रांस' की स्थापना करना।

आतंक का राज्य (Reign of Terror) (१७९३-९४)—९ मार्च १७९३ को क्रान्तिकारी न्यायालयों की स्थापना के साथ नियमानुसार आरम्भ हुए आतंक-राज्य के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। यह राज्य राब्सपायर (Robespierre) की हत्या होने पर २८ जुलाई १७९४ में समाप्त हुआ। कुछ लोगों की दृष्टि में आतंक-राज्य हृदयहीन रक्तपात, घृणित और अनावश्यक था। दूसरे लोगों की दृष्टि में यह अत्यावश्यक था। कहा जाता है कि 'कठोर अनुशासन सामूहिक वीरता उत्पन्न कर सकता है।' जिराण्डिस्टों के कुशासन के पश्चात् फ्रांस को कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता थी। देश में हज़ारों विद्रोही और कायर थे जिन्हें ठीक करने के लिए आतंक-राज्य आवश्यक था। फ्रांस की आन्तरिक कठिनाइयों और बाहर के आक्रमणों से बचाने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि सारे फ्रांस को एक छावनी में बदल

दिया जाए। आवश्यकता तुरंत थी और परिणामत इसे पूरा करने के साधन कठोर और तीव्र हुए।

आतंक राज्य को पागल हुआ मार्शल लॉ (Martial Law) कहा जाता है। भय और क्रान्ति के विरोधियों के विरुद्ध क्रोध ने एक सैनिक व्यवस्था का रूप ले लिया था। परिस्थितियों की पुकार थी कि फ्रांसीसियों का मोर्चों पर लड़ने को प्रस्तुत करने के लिए शीघ्र ही कोई व्यवस्था की जाए और यह काय आतंक राज्य से सम्भव हो गया। इस आतंक राज्य ने डण्टन कार्नट और सेण्ट जस्ट को इस योग्य बना दिया कि वे परिस्थिति का सामना कर सकें। डेण्टन न तो सहृ का प्यासा था और न ही वह भ्रष्ट था। वह देश के कल्याण के लिए देशभक्ति से प्रेरित था। उसने अपनी गम्भीर वाणी और विशाल शरीर को देश की सेवा में लगा दिया। कार्नट एक जन्मजात शासक योद्धा और युद्ध विद्या का पंडित था। जो भी काय उसने किया पूर्ण दक्षता से किया। कहा जाता है कि उसने ही नेपोलियन की विजयियों का निर्माण किया था और उसके बिना आतंक राज्य अत्यंत घृणित हो गया होता। उसने तेरह सेनाओं का संगठित किया उनकी सब आवश्यकताएं पूरी की और उन्हें विजय प्राप्त कराई। सेंट जस्ट का नाम सुस्त और दक्षताहीन व्यक्तियों के लिए भयप्रद हो गया था। उसके हृदय में देशभक्ति ठाठें मारा करती वह युद्ध के मोर्चों और पेरिस के बीच बड़ी तेज़ी से चक्कर लगा कर इस सारे अभियान में जीवन फूंका करता था।

१७९४ की आज्ञप्ति के अनुसार सारे सशक्त शरीर वाले व्यक्तियों को सेना में भर्ती कर लिया गया। जन सुरक्षा के लिए समूचे देश में सुरक्षा और व्यवस्था बनाये रखने के लिए पुलिस को अधिकार सौंप दिए गए। क्रान्तिकारी न्यायालयों को अधिकार दिया गया था कि वे किसी भी व्यक्ति को जिस पर प्रजातन्त्र के प्रति भक्तिहीन होने का सन्देह हो मृत्यु दण्ड दे सकते थे। संदिग्ध व्यक्तियों के कानून ने सरकार को किसी भी व्यक्ति को कैद करके मृत्यु-दण्ड देने की छूट दे दी।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आतंक राज्य अपने उद्देश्य में सफल हो गया। फ्रांसीसी सेनाएं नीदरलैण्ड में विजयी हुईं। वे रक्षात्मक युद्ध से विजय की ओर अग्रसर हुईं। दिसम्बर १७९३ में उन्होंने टूलोन को प्राप्त करके लाविण्डी को कुचला। एल्प्स और पारिनीस पर उनका अधिकार हो गया। संयुक्त राष्ट्रों को पीछे धकेल दिया गया। उन्होंने ड्यूक ऑफ यॉर्क को मोब्यूज टूरकोइंग और ... पर से घेरे हटाने पर बाध्य कर दिया। अनुशासन इतना कठोर था कि प्रत्येक सेनापति और सैनिक को अपनी पूर्ण शक्ति से काय करना पड़ता था। मोब्यूज के दुर्ग रक्षक को कह दिया गया था कि दुर्ग का मूल्य उसे अपने सिर से चुकाना पड़ेगा। यद्यपि हाउचार्ड ने डन्कर्क का घेरा डालने वालों को पीछे धकेल दिया किन्तु उसे मृत्यु-दण्ड इसलिए दिया गया कि उसने शत्रु के पीछे हटने (retreat) को भगदड़ (rout) में क्यों नहीं बदला।

फ्रांस की सेनाओं की सफलता का कुछ श्रेय सैन्य-संचालन के संगठन उद्देश्य के लिए उनकी धर्मान्धता तथा कठोर अनुशासन को है तथा कुछ श्रेय संगठित राष्ट्रों

की कमजोरी को भी है। उनमे योजना अथवा सय-सचालन का सगठन नही था। प्रत्यक राष्ट्र का अपनी अपनी पडी थी। आस्ट्रिया, प्रशिया और रूस पोलैण्ड के विभाजन की योजना म अपना अपना भाग प्राप्त करन म व्यस्त थे। परिणामत वे फ्राम क साथ युद्ध पर पूरा ध्यान नही दे सके। यह सत्य है कि छोटे पिट (Pitt, the Younger) ने अपनी सेनाओ को नीदरलैण्डस पर इकट्ठा करन का प्रयत्न किया किन्तु वह भी इधर उधर की बातो म लग जाता था। ड्यूक ऑफ याक (Duke of York), जो नीदरलण्ड में ब्रिटिश सेनापति था नितात अकुशल था जैसा कि निम्नलिखित पद से प्रकट है—

"बिचारा बुड्ढा ड्यूक ऑफ याक,
दस हजार थी सेना पास।
कभी चढ़ाता उन्हें चोटो पर,
फिर उतार ले आता पास।"

सगठित राष्ट्रो के पास केवल दो ही रास्त थ। प्रथम माग था कि व रास्त के सार दुर्गो और फ्रास की सेना को परास्त करते हुए सीधे पेरिस की ओर बढ जाते। दूसरा माग था कि पहल व फ्रास क सार दुर्गो को जीत कर फिर परिस की ओर बढन। वास्तव म सगठित राष्ट्रो न दूसरा माग ही अपनाया। उनकी धारणा थी कि पहल, माग के रोकन वाले दुर्गो का एक एक करके जीतन पर परिस मे अव्यवस्था का फलान म सहायता मिलेगी और यदि तुरत ही परिस की ओर बढा गया ता सम्भव है सारी जनता अपने देश की रक्षा के लिए एकदम तैयार हो जाय। वास्तव मे हुआ यह कि सयुक्त राष्ट्रो न माग को रोकन वाले दुर्गो का जीतने म बहुमूल्य समय गवा दिया और फ्रास को इनसे टक्कर लेन और परास्त करन के लिए अपनी सनाओ का तयार करन का अवसर मिल गया।

यह बिल्कुल सत्य है कि जिस युद्ध-यन्त्र ने फ्रास की रक्षा की, उसे मानव-रक्त से चिकना किया गया था। फ्रास मे प्रत्यक बात का केन्द्र स नियन्त्रण होता था। जन-सुरक्षा समिति के प्रतिनिधियो को जिलो का अधिकार सौंपा गया और किसी भी प्रकार या रूप मे उनके काय का ढीलापन सहन नही किया जाता था। लायन्स नगर के जिराण्डिस्टो का समथन किया। इस विद्रोह को दबाने म ४½ महीन लग। जब यह हो गया तो राष्ट्रीय सम्मलन न आज्ञप्ति प्रसारित की लायन्स नगर का उजाड दिया जाय। वह प्रत्येक घर जिसमे अमीर रहते हो, गिरा दिया जाय, वहाँ केवल गरीबो, देश भक्तो तथा सावजनिक प्रयोग की इमारतें शिक्षा क स्थान तथा उद्योगों मे प्रयोग में आने वाली इमारतें छोडकर, सबको गिरा दिया जाए। इस नगर का नाम ही मिटा दिया जाए और भविष्य म स्वतन्त्र नगर (Liberated City) के नाम से पुकारा जाय। इस नगर के ३५०० व्यक्तियो का बन्दी बनाया गया और लगभग आधे व्यक्तियो को मौत के घाट उतार दिया गया। जो व्यक्ति इस विध्वस का प्रबन्धक था उस कहत सुना गया 'आह! स्वतन्त्रता क उपयुक्त कितना प्यारा दृश्य है! कितने आनन्द का समय है!'

विण्डा जिले ने प्रजातन्त्र के विरुद्ध विद्रोह किया। यहाँ के लोग पादरियों के विरुद्ध कानूनों से सहमत नहीं थे। उन्होंने प्रजातन्त्र की सेनाओं में भर्ती होने से इन्कार कर दिया। सरकार इस विद्रोह को दबाने में पूर्णतः न्यायमुक्त थी, किन्तु इस दबाते समय जो अत्याचार हुए वे परिस्थिति के अनुसार अनुचित थे। राष्ट्रीय सम्मेलन ने इस कार्य के लिए कैरियर की नियुक्ति किया और उसने बकरला का मानदण्ड स्थापित कर दिया। उसकी दृष्टि में क्रान्तिकारी न्यायालयों की कार्य प्रणाली धीमी थी अतः उसने कैदियों को गुट बना कर गोली मरवा दी। उसने कैदियों को बलवा कर नावों में बैठा कर नाव-सहित लोगों को नदी में डुबा दिया। उसके कार्यों से स्वयं जन-सुरक्षा समिति को भी क्षोभ हुआ। कैरियर का उत्तर था "मेरा यह अपराध है कि लाशें अपनी मंज़िल पर नहीं पहुँच पाई।" नदी में लाशें इतनी अधिक संख्या में थीं कि उसका जल भी विषाक्त हो गया। कैरियर को पदच्युत कर दिया गया किन्तु उसके विरुद्ध कोई कारवाई नहीं की गई।

बन्दीगृहों में खूब भीड़ थी। क्रान्तिकारी न्यायालयों के सम्मुख निरन्तर पुरुष और स्त्रियाँ लाई जाती थीं। क्षमा-दान कभी भूले भटके ही दिया जाता था साधारणतः ग्यूलोटिनी का दण्ड ही दिया जाता था। अक्टूबर १७९३ में मेरी एण्टायनट को मृत्यु-दण्ड दिया गया। गिरोण्डिस्टों को बड़ी संख्या में मृत्यु-दण्ड दिया गया। ३ नवम्बर १७९३ को ड्यूक ऑफ़ आरलियन्स फिलिप को जिसने क्रान्ति का खूब समर्थन किया, सम्राट को मृत्यु-दण्ड देने के पक्ष में अपना मतदान दिया तथा क्रान्तिकारियों को अपना महल सौंपा, उसे मौत के घाट उतार दिया गया। १० नवम्बर को श्रीमती रोलां को मृत्यु-दण्ड मिला। जैसे ही वह मंच पर चढ़ी, उसने कहा "हे स्वतन्त्रता! तेरे नाम पर कितने घोर अपराध किए जाते हैं।" १२ नवम्बर को राष्ट्रीय सभा के प्रथम प्रधान बेले को मार डाला गया। कास्टाइन और बिरान जैसे सेनापतियों को इसलिए मृत्यु-दण्ड मिला कि उन्होंने षड्यन्त्र किया अथवा शत्रु का पीछा करने में सुस्ती दिखाई थी।

१७९४ के वसन्त तक लोगों को आतंक राज्य का अधिक दिन चलाना व्यर्थ लगने लगा विशेषतः जबकि शत्रुओं को मारकर पीछे हटा दिया जा चुका था। जनता की इच्छा थी कि ये भयप्रद न्यायालय, ग्युलोटिनी, डुबाना और गोली मारने के भयानक कार्य बन्द हो जाने चाहिएँ। अप्रैल १७९४ में डण्टन ने अपनी इच्छा प्रकट की और उसे इसका मूल्य अपना जीवन देकर चुकाना पड़ा। राब्सपायर अपना तानाशाही बनाये रखने के लिए दृढ़ संकल्प था। उसकी महत्त्वाकांक्षा रूसो (Rousseau) के लेखों की तानाशाही नायक बनने की थी। उसने जनता के व्यक्तिगत आचार और धारणा में हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया क्योंकि उसके विचारानुसार सदाचार का पालन फ्रांस में नहीं होता था। उसकी इच्छा सबसे पहले फ्रांस को ही शुद्ध सदाचारी बनाने की थी। उसने कम्यूनों के प्रमुख सदस्यों को उनके धार्मिक विचारों के कारण मरवा डाला। कहा जाता है यदि राब्सपायर के जीवन का अन्त न कर दिया जाता तो अनवरत रूप से लोगों के सिर छत की स्लेटों की तरह धूल में कंकर गिरते ही रहते। इसने सारी सत्ता अपने हाथों में प्राप्त करने का प्रयत्न

किया। फाउच (Fouch) ने परोक्ष रूप से राष्ट्रीय सम्मेलन के भय को बढ़ावा देकर उन्हें रोब्सपायर का विरोध करने के लिए साहस प्रदान किया। रोब्सपायर को स्वतन्त्रता को नीचा गिराने का अपराधी घोषित किया गया। उसने राष्ट्रीय सम्मेलन के विरुद्ध पेरिस की कम्यून को लड़ाने का प्रयत्न किया। उसका प्रयत्न असफल हुआ। उसे पकड़ लिया गया और २८ जुलाई, १७९४ को उसका सिर काट दिया गया। आतंक का राज्य उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया।

ग्राण्ट और टेम्परले के अनुसार 'रोब्सपायर का पतन, आतंक-राज्य में होने वाली अनेक घटनाओं में से एक मामूली घटना होती, सम्भवतः इसकी बागडोर किन्हीं और भी उग्र और आचार-हीन आतंककारियों के हाथों में चली जाती, किन्तु यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि रोब्सपायर की मृत्यु के क्षण से ही आतंक-राज्य शीघ्रता से लुप्त होने लगा। इसके बहुत-से कारण हैं। अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस में ग्युलाटिनी का राज्य स्थायी नहीं हो सकता था। पेरिस में जनमत स्पष्ट रूप से और अत्यन्त शीघ्रता से इसके विरुद्ध होता जा रहा था। किन्तु दो कारण अन्य सब कारणों से अधिक महत्त्वपूर्ण थे जिनके कारण आतंक-राज्य का उस समय लुप्त होना अनिवार्य हो गया। पहला कारण था कि विदेशी आक्रमण का भय शीघ्रता से समाप्त हो रहा था। फ्लूरस के युद्ध के पश्चात् फ्रांस स्वयं एक आक्रान्ता (aggressive) शक्ति बन गया था और पूर्व उत्तर और दक्षिण में उसके सीमान्त पर आक्रमण पूर्णतः विफल रहे। देश में सैन्य शक्ति के प्रति आत्म-विश्वास और गौरव की भावना का उदय हो रहा था जिसके सम्मुख क्रान्तिकारी न्यायालय और ग्युलाटिनी से निरन्तर काटे जाने वाले लोगों के समूह, दोनों ही जघन्य अपराध और मूर्खतापूर्ण प्रतीत होते थे। आतंक राज्य मूलतः एक सैनिक व्यवस्था थी और जैसे ही सेना में भय समाप्त हुआ, इसका भी अन्त हो गया। यह बात कितनी ही कम महत्त्वपूर्ण क्यों न हो किन्तु रोब्सपायर का अन्त दूसरे शब्दों में सम्मेलन की विजय थी। सम्मेलन और कम्यून उस फ्रांस की प्रतिनिधि संस्था और पेरिस की प्रतिनिधि संस्था में रोब्सपायर के मामले में सीधी टक्कर थी। अन्त में सम्मेलन की और फ्रांस की ही विजय हुई। क्रान्ति के इतिहास में प्रथम बार एक प्रसिद्ध व्यक्ति की शक्ति द्वारा फ्रांस के चुने हुए प्रतिनिधियों की शक्ति को कुचलने का प्रयत्न असफल हुआ तथा उस की पराजय हुई। सम्मेलन को पहले की अपेक्षा अधिक आत्म-विश्वास हुआ और इतनी कठिनाई से प्राप्त की गई शक्ति को सगठित करने के लिए उचित कदम उठाए गए।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि 'आतंक राज्य' एक आवश्यकता थी। देश-द्रोहियों और कायरों से निबटने का अन्य कोई रास्ता ही नहीं था। किन्तु आतंक राज्य में बहुत-सा रक्तपात व्यर्थ ही हुआ। यदि रोब्सपायर ने डेण्टन की सम्मति मानी होती और नरमेध बन्द कर दिया होता तो इतना लहू न बहता।

थॉमसन ने लिखा है कि आतंक राज्य प्राचीन प्रणाली की सरकार के अन्त और आन्तरिक अशांति तथा बाहर से आक्रमण के डर के कारण पनपा। किन्तु

इसके इतना भयंकर बन जाने और इतनी देर तक चलने के अन्य कारण हैं। अमीरों से सर्वहारा वर्ग की हिंसा, अत्यधिक अत्याचार की भावना को, नगरनिवासियों के जोश और निर्दयता को भड़का देना इसके कारणों में से थे। यह घातक केवल अत्याचारी सामन्त वर्ग, धर्माचार्यों और विश्वासघाती मध्यम वर्ग के लिए ही नहीं, अपितु साधारण फ्रांसीसी स्त्रियों और पुरुषों के लिए भी था जो दल-बन्दी के जोड़ तोड़ में फँस कर दुर्भाग्य के शिकार हुए। बहुत से लोगों पर केवल इस लिए देश द्रोह का अपराध लगाया गया कि अपनी जान बचाने का एकमात्र यही साधन था। यह हत्याकाण्ड वर्ग युद्ध का साधन नहीं था क्योंकि इसके ७० प्रतिशत शिकार किसान, मजदूर और प्राचीन शासन प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह करने वाले लोग थे। पेरिस के क्रान्तिकारी न्यायालय ने २६३९ व्यक्तियों को मृत्युदण्ड दिया। सारे क्रान्तिकारी न्यायालयों ने १७,१०० व्यक्तियों को मृत्यु दण्ड दिया। इसके अतिरिक्त ४०,००० व्यक्ति ला विण्डी और लायन्स जैसे नगरों में सम्मेलन के विरुद्ध विद्रोह करने के कारण सामूहिक हत्याकाण्डों के शिकार हुए। यद्यपि यह महान् अत्याचारपूर्ण काण्ड था किन्तु आधुनिक तानाशाहों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों से यदि इसकी तुलना की जाय तो यह मानव रक्त कम और विचारपूर्ण था। (Europ Since Napoleon, p 21)

Suggested Readings

Acton	*Lectures on the French Revolution*
Bourne	*The Revolutionary Period in Europe*
Carlyle	*The French Revolution*
Clapham J H	*The Causes of the War of 1792*
Fyffe	*History of Modern Europe*
Gardiner B M	*The French Revolution*
Greer D	*The Incidence of the Terror 1935*
Mathews	*The French Revolution*
Stephens	*The French Revolution*
Thomson	*Europe Since Napoleon*

अध्याय ५

गिरांडिस्ट और जैकोविन्ज़

(The Girondists and the Jacobins)

गिरॉण्डिस्ट (The Girondists)—१७९२ की विधान सभा में गिरॉण्डिस्ट और जकोबिन्ज नाम के दो प्रमुख राजनीतिक दल थे। गिरॉण्डिस्टों का बहुमत और जैकोबिन्स का अल्पमत था। गिरॉण्डिस्ट दल के बहुत से नेता फ्रांस के गिरोण्डे नामक प्रदेश के रहने वाले थे। इसलिए इस दल का नाम भी गिरॉण्डिस्ट पड गया था। ये लोग ईमानदार और सभ्य थे। उनकी इच्छाएँ निःस्वार्थ थी। ये लोग उच्च बौद्धिक स्तर, शिक्षा और दीक्षा वाले थे। वे लक्ष्य प्राप्ति में आचारहीन नहीं थे। उनकी नीति नम्र थी। उन्हें व्यवस्था से प्रेम था और स्वयं भी संयत थे। वे प्राचीन रूढियों से समझौते के समर्थक नहीं थे। इसका उद्देश्य था फ्रांस में अपनी कल्पना की आदर्श व्यवस्था स्थापित करना। वे प्रजातन्त्र प्रणाली की शासन-व्यवस्था के समर्थक थे। उनका विचार था कि युद्ध घोषित होने की अवस्था में राजशाही की निन्दा होने की बहुत सम्भावना थी तथा उन्हें प्रजातन्त्र की स्थापना की आशा थी। अप्रैल, १७९२ में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने में इनका बड़ा हाथ था। इन लोगों के क्रियाहीन आदर्शवादी होने के कारण फ्रांस युद्ध में असफल रहा। फ्रांस की सेनाओं की प्रत्येक मोर्चे पर पराजय हुई। अपनी आन्तरिक स्थिति को सुधार कर शत्रुओं से लोहा लेने की अपेक्षा अपनी पराजय का सारा दोष सम्राट के सिर मढा गया। इस दोषारोपण का परिणाम यह हुआ कि सम्राट के निवास-स्थान पर आक्रमण किया गया। उनके स्विस अंगरक्षकों की हत्या कर दी गई और उसे स्वयं विधान-सभा के भवन में शरण लेनी पड़ी। पेरिस की भीड़ ही सर्वोच्च सत्ता बन गई। इस प्रकार की परिस्थितियों में १७९२ में राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन हुआ।

जैसे ही राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्घाटन हुआ, फ्रांस में प्रजातन्त्र की घोषणा हुई, गिरॉण्डिस्टों और जकोबिन्ज के बीच सत्ता प्राप्त करने का संघर्ष आरम्भ हो गया। आरम्भ में गिरॉण्डिस्ट प्रबल थे और वे पेरिस की कम्यून के सदस्यों का दमन करने तथा उन्हें दण्ड देने के लिए दृढ़-संकल्प प्रतीत होते थे। वे कम्यूनों को भंग करने में सफल हुए। राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए राष्ट्रीय सेना (National Guard) तैयार करने की योजना को स्वीकार नहीं किया गया। सितम्बर के हत्याकाण्ड के उत्तरदायी व्यक्तियों को दण्ड देने की माँग भी अस्वीकार कर दी गई। दलन द्वारा रोब्सपायर, मारट और अन्य नेताओं की आलोचना के कारण परस्पर कटुता बढ़ गई। सत्ता पर उनके एकाधिकार को जकोबिन्ज की ओर से भय हो गया। अक्टूबर, १७९२ में युद्ध-मन्त्री पाशे (Pache) गिरॉण्डिस्ट दल को छोड़कर जकोबिनों के साथ मिल गया।

युद्ध मन्त्रालय जकाबिनों का सम्मेलन-स्थल बन गया और पाश (Pache) ने अपना धन और प्रभाव जकाबिनों के हाथों में सौंप दिया।

जनवरी १७६३ में गिराण्डिस्ट सम्राट के अभियोग और हत्या से पृथक हो गए। जकाबिन दल सम्राट को मृत्यु दण्ड देने की माँग कर रहा था किन्तु गिराण्डिस्ट दल सम्राट से, यदि वह अपने विशेषाधिकार छोड़कर एक वैधानिक प्रमुख की स्थिति में रहना स्वीकार कर ले तो उससे समझौता करने को तैयार था। सम्राट को मृत्यु दण्ड देने का प्रस्ताव बहुत बड़े स्तर पर धर्मविरोधी दल का आन्दोलन बनाकर स्वीकार किया गया।

१७६३ के आरम्भ से ही गिराण्डिस्टों ने मन्त्रिपद छोड़ना शुरू किया। रोलांड (Roland) ने जो गिराण्डिस्ट दल के बड़े सक्रिय सदस्य थे, जनवरी १७६३ में त्याग पत्र दे दिया। गराट (Garat) को गृह मन्त्रालय सौंपा गया। वह एक उदार विचारों वाला तथा स्वच्छ उद्देश्य वाला व्यक्ति था किन्तु अपने पद के लिए पूर्णतः अयोग्य था। उसने अपने दल के हितों की रक्षा नहीं की क्योंकि उसे जकाबिन दल की गिराण्डिस्ट दल को उखाड़ देने की योजना और तैयारियों का पता लग चुका था। फिर उसने न तो अपने दल को ही सूचित किया और न स्वयं कोई कारवाई की। मूलतः उसने इन गतिविधियों को कोई महत्त्व ही नहीं दिया।

पाशे के जकाबिन दल में जाते ही उसे युद्ध मन्त्रालय से हटा दिया गया किन्तु वह पेरिस का महापौर (Mayor) चुना गया और इस प्रकार जकाबिन दल का पेरिस की कम्यून पर अधिकार प्राप्त हुआ। इन्हीं दिनों गिराण्डिस्ट दल के नए संविधान के लिए प्रस्ताव प्रकाशित हुए। ये प्रस्ताव अव्यावहारिक थे तथा किसी को भी रुचिकर नहीं हुए। जकोबिन दल को गिराण्डिस्ट दल पर इस बहाने से आक्रमण करने का अवसर मिल गया कि ये लोग प्रान्तीय शासनों को अधिक अधिकार देकर पेरिस के प्रभाव को कम करना और प्रजातन्त्र की एकता को तोड़ना चाहते हैं। गिराण्डिस्ट दल ने एक प्रकार से पेरिस कम्यून पर युद्ध की घोषणा कर दी। उन्होंने पेरिस निवासियों द्वारा पैदा की गई अव्यवस्था की घोर निन्दा की। उन्होंने मुक्तता से यह भी प्रचार किया कि दूसरे अन्य प्रदेश सम्भवतः हैं किन्तु पेरिस की कम्यून नहीं है। उन्होंने उन सब को दण्ड देने की धमकी दी जो लोग इन्हें भय दिखाते हैं। किन्तु वास्तव में उन्होंने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए कोई कारवाई नहीं की। डेण्टन ने आपस में समझौता करने का प्रयत्न किया किन्तु इन्होंने उसकी भी निन्दा की। वास्तव में केवल डेण्टन ही वह व्यक्ति था जो इनका उद्धार कर सकता था और योग्य था। डेण्टन ने अपनी निन्दा के उत्तर में गिराण्डिस्टों को केवल इतना ही कहा, "तुम लोग क्षमा करना ही नहीं सीखे।"

राज्य की आर्थिक स्थिति बिगड़नी आरम्भ हुई और इसका सुधार करने के लिए अधिक संख्या में नोट (Assignats) जारी करने पड़े। महँगाई के कारण इन नोटों की कीमत गिर गई और वस्तुओं की कीमतें बढ़ गईं। जनता को बड़ी हानि हुई और इन सब कठिनाइयों के लिए गिराण्डिस्ट दल को उत्तरदायी ठहराया गया।

गिराण्डिस्ट दल ने कुछ सदस्यों ने पेरिस के लिए सस्ती रोटी देने के लिए धन के अनुदान का विरोध किया। इससे इस दल का विरोध और भी बढ़ गया और इस दल के नेताओं को हटाने की माँग की जाने लगी। १० मार्च १७९३ को गिराण्डिस्ट दल को शक्ति प्रयोग द्वारा हटाने की योजना बनी। जैकोबिन दल के नेताओं ने इस योजना का समर्थन नहीं किया। अतएव यह प्रयास असफल हुआ।

जिस समय गिराण्डिस्ट डगमगा रहे थे और निरन्तर जनता का विश्वास खो रहे थे उन दिनों जकोबिन्स इनके विरुद्ध संघर्ष की तैयारी कर रहे थे। इनके पीछे पेरिस कम्यून की सारी शक्ति थी। जैकोबिन नेताओं का आदर तथा जैकोबिन क्लबों की शक्ति थी। उनके पास सैन्य शक्ति भी थी। राष्ट्रीय रक्षक सेना (National Guard) का अलग से संगठन भी हुआ। जिस समय उनके शत्रु अन्तिम संघर्ष के लिए तैयारी कर रहे थे गिराण्डिस्टो ने अपने बचाव के लिए कुछ भी नहीं किया। पेरिस कम्यून पर वे इसलिए विश्वास नहीं कर सकते थे क्योंकि इन्होंने अपने वक्तव्यों और कार्यों से इसको अपना शत्रु बना दिया था। इन्हीं लोगों ने कहा था कि पेरिस को जला कर राख कर दिया जाय जिससे आगामी सन्तान यह पूछे कि पेरिस सीन नदी के कौन-से किनारे बसा हुआ था। गिराण्डिस्ट राष्ट्रीय रक्षक सेना पर इसलिए विश्वास नहीं कर सकते थे क्योंकि वह जकोबिनो के नियन्त्रण में थी। उनके पास ऐसी कोई संस्था नहीं थी जो इनके समर्थन में हथियार उठा सके। उन्हें मध्यमवर्ग अथवा सामन्तवर्ग दोनों में से किसी का भी नेता नहीं माना जाता था। वे प्रतिभाशाली थे और वैधानिक दाँव-पेचों में लड़ सकते थे किन्तु वे जकोबिनों की शारीरिक शक्ति के प्रयोग से अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे।

अप्रैल १७९३ में हत्याकाण्ड के लिए उत्तरदायी मारट पर गिराण्डिस्टों ने अभियोग लगाया किन्तु उसे क्रान्तिकारी न्यायालय ने मुक्त कर दिया। गिराण्डिस्टों ने पेरिस के विभिन्न भागों में होने वाले षड्यन्त्रों की निन्दा की किन्तु निन्दा होने पर भी ये षड्यन्त्र होते ही रहे। इससे फ़ैसला करने की अपेक्षा गिराण्डिस्टों ने पेरिस के विरुद्ध दल से भी सहायता माँगी। उन्होंने राष्ट्रीय सम्मेलन को पेरिस से मारसिलेस ले जाने का प्रस्ताव पास किया। उन्होंने पेरिस कम्यून को भंग करने की चर्चा भी की। मई, १७९३ में उन्होंने राष्ट्रीय सम्मेलन के विरुद्ध षड्यन्त्रों की जाँच के लिए एक विशेष समिति की स्थापना की। समिति ने षड्यन्त्रों के नेता हरबर्ट को कैद करने की आज्ञा दी। इससे परिस्थिति और भी जटिल हो गई। जैकोबिनो और पेरिस कम्यून ने गिराण्डिस्टों के विरुद्ध कदम उठाने का निर्णय किया। ३१ मई, १७९३ को इस समिति को भंग कर दिया और २ जून १७९३ को राष्ट्रीय सम्मेलन को धमकाकर गिराण्डिस्ट दल के २२ नेताओं को कैद करने की स्वीकृति ले ली। इन लोगों को पकड़ कर फाँसी दे दी गयी। जब उन्हें फाँसी के लिए ले जाया जा रहा था वे क्रान्ति-गीत गाते रहे और उनका गीत मृत्यु ने ही बन्द किया। श्रीमती रोलाँ ने कहा, "ओ स्वतन्त्रता ! तेरे नाम पर कितने अपराध किये जाते हैं !" गिराण्डिस्ट नेताओं के दुखद अन्त से सारे देश में क्षोभ फैल गया। लायन्स, मारसिलेस ट्युलोन और बेरिडा ने पेरिस की सरकार के विरोध की घोषणा की। फ्रांस के

अनेक प्रदेशों ने विद्रोह का झण्डा उठाने की तयारी की। संगठित राष्ट्र पेरिस की ओर सब ओर से बढ़े आ रहे थे। इंगलैण्ड का समुद्री बेड़ा तूलों में कई बन्दरगाहों को रोके खड़ा था। कुछ गिराण्डिस्ट पेरिस से बच निकले और उत्तर में जाकर विद्रोह की तयारियाँ करने लगे। किन्तु जकोबिनों ने सारी परिस्थिति को बड़ी मजबूती से सँभाला। विद्रोहों को कुचल दिया गया और शत्रुओं को मारकर पीछे खदेड़ दिया गया। देश को आन्तरिक परेशानियों से और विदेशी आक्रमण से बचा लिया गया।

गिराण्डिस्टों का पतन हुआ किन्तु इस तथ्य को मानने से कौन मना कर सकता है कि उनके आदर्शों से सहानुभूति तथा उनकी उद्दाम आशाएँ और साहस सर्वदा सम्मान का पात्र रहेगा? किन्तु वे लोग सदा अयोग्य शासक माने जायेंगे।

जकोबिन्स[1] (The Jacobins)—गिराण्डिस्टों की तुलना में जकोबिन्स असंस्कृत लगभग अशिक्षित असभ्य और आचारहीन व्यक्ति थे। कभी-कभी वे अत्यन्त निर्दय हो जाते थे। ये बहुधा भ्रष्टाचारी थे। किन्तु वे क्रियाशील जागरूक राजनीतिज्ञ थे और अवसर पड़ने पर अधिक-से अधिक खतरे का मुकाबला करने को तयार रहते थे। वे अपने शत्रुओं के प्रति निर्दय थे किन्तु परास्त होने पर अत्यन्त घोर कष्ट सहन करने के लिए भी तयार रहते थे।

जकोबिनों का सिद्धान्त था कि सारे अधिकार और सारी सत्ता जनता में निहित है और सारे कानून और सरकार को उसकी इच्छानुसार चलना चाहिए। जनता का कार्य अपने शासकों की निगरानी ध्यान से उनके चरित्र का नियन्त्रण और उन्हें सदा यह ध्यान दिलाना है कि वे उनके प्रतिनिधि मात्र हैं। जनता की आज्ञा मानना सरकार का कर्त्तव्य है भले ही यह आज्ञा किसी प्रकार की हो। जन-साधारण के आन्दोलन ही कानूनों का सर्वोच्च स्पष्टीकरण हैं। दंगे और हत्याएँ भी सर्वाधिकार-सम्पन्न शक्ति के कार्य हैं तथा वैध हैं। जो भी लोग जनता की इच्छा में बाधा डालते हैं वे देशद्रोही हैं और जो जनता को दण्ड देता है वह अपराधी है।

इस प्रकार की विचारधारा का परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को छोटा शासक मानने लगा। वह सरकार से अपनी मनचाही बात कराने की इच्छा करने लगा। देश में फूट की मनोवृत्ति घर करने लगी। छोटी छोटी नगर-पालिकाएँ भी अपनी स्वतन्त्रता जताने लगीं तथा उच्च सत्ता की आज्ञा को मानना छोड़ दिया। कहा जाता है कि एक छोटे से नगर के पादरी ने उस स्थान पर अपनी तानाशाही स्थापित कर ली। शासन को चलाने के लिए पूर्ण नियम प्रसारित किये कर लगाये अपने विरोधियों को कैद कर लिया उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली और सारे अधिकारों का प्रयोग किया। यह समझा जाने लगा कि यदि जनता सर्वसत्ता की स्वामी है तो इसका यह अर्थ है कि जनता का कुछ भाग भी उतनी ही [illegible] का स्वामी है। इस प्रकार की नीति से निश्चित रूप से अराजकता बढ़नी ही थी।

---

१ नेपोलियन के मतानुसार जैकोबिन पागल और बुद्धिहीन लोग थे।

मजदूरो ने भी अपने अधिकार जताने शुरू किये। उन्होने किराया, कर, दशमाश और अन्य धनराशियाँ देने से इन्कार कर दिया। किसानो ने भी यही किया। उन्होने लगाये गए नए करो को देने से इन्कार कर दिया। उन्होने राज्य की सम्पत्ति को गैरकानूनी रूप से हथियाकर अपनी सहायता करनी आरम्भ कर दी। राज्य की धरती से पेडो को काट लिया गया और चर्च की सम्पत्ति का भी नही छोडा गया। करो की उगाही रोकने के लिए सशस्त्र समितियाँ बना ली गइ। चुगी के कार्यालयो पर आक्रमण करके वहाँ के कर्मचारियो को निकाल दिया गया।

उपरोक्त घटनाओ मे स्पष्ट हो गया कि जकोबिना के इस सिद्धात से देश म अराजकता फल गई। स्थान स्थान पर दगे, हत्याएँ और डकतियाँ होने लगी। देश म एक प्रकार का गृह युद्ध आरम्भ हो गया। शान्ति और व्यवस्था टूट गई। कोई भी किसी की हत्या बिना भय के कर देता था। भीड के नेता कानून बनाने लगे। विरोधियो के प्रति कोई दया नही दिखाई जाती थी तथा जहाँ-तहाँ हत्याएँ होती थी। इस प्रकार की परिस्थिति मे जकोबिन दल आगे आया और गिराण्डिस्टो से सत्ता छीनने के लिए बिगडी हुई परिस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया।

जकोबिन दल की सगठन-व्यवस्था के विषय म भी लिखा जाना आवश्यक है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जकोबिन दल इस बात का प्रथम आधुनिक उदाहरण है कि सुप्रबन्ध राजनीति म कितना सफल रहता है। सच्चे जैकोबिनो की सख्या अधिक नही थी। सम्भवत जब जकोबिन शक्ति के शिखर पर थे पेरिस म उनकी सख्या दस या ग्यारह हजार से अधिक नही थी। देश में उनकी सख्या तीन या चार लाख आकी जाती थी। जकोबिन दल के लगभग सारे नेता मध्यम वर्ग के थे। वे वकील व्यवहारी, लेखक और सम्पादकीय काम करने वाले थे। जकोबिन दल के सब से बडे नेता डेण्टन, रोब्सपायर सेट जस्ट, डिस्मोलिन्स, फ्रौरोन, राबर्ट, स्युमेट, मारट, कोलोट, बिगारी इत्यादि थे। ये लोग दार्शनिक भावुक उच्चाकाक्षी, धर्माचार्य तथा नाटको म काम करने वाले कलाकार थे।

जकोबिन दल का मुख्य कार्यालय पेरिस मे था। किन्तु देश म इसकी शाखाओ की बहुत बडी सख्या थी। १७६० के अन्त म देश मे दल के १२० से अधिक क्लब थे। १७६१ के अन्त म इनकी सख्या ४०० थी। जून, १७६२ म १,२०० और अगस्त १७६३ म फ्रास मे इन क्लबो की सख्या २६,००० थी। इन क्लबो के द्वारा ही जकोबिन दल फ्रास के राजनीतिक क्षेत्र पर अपना आधिपत्य बनाये रहा। सदस्यो मे विश्वास, उत्साह, दुस्साहस और महत्वाकाक्षाएँ थी।

जकोबिनो ने पेरिस कम्यून पर अधिकार जमाकर अपनी शक्ति और बढा ली। ऐसा करने से राष्ट्रीय रक्षक सेना पर इनका अधिकार हो गया। राजधानी के सारे साधन इनके हाथों म आ गए। जैकोबिन दलो का पेरिस के कम्यून पर, पेरिस कम्यून का पेरिस की राजधानी पर तथा पेरिस की राजनीति का फ्रांस पर अधिकार था। अपने अच्छे साधनों, अपनी अच्छी सगठन-व्यवस्था, अपनी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मतावलता, और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आचार विचार की ढीलता से, जैकोबिनो

गिरोण्डिस्टों से सरकार छीन लेने में समर्थ हुए। इसके पश्चात् उन्होंने देश में आतंक राज्य की स्थापना की किन्तु जब आतंक राज्य का लक्ष्य पूर्ण हुआ देश में विरोध को कुचल दिया गया तथा शत्रुओं को निकाल दिया गया जकोबिन दल के नेताओं में परस्पर मतभेद उत्पन्न हो गया। प्रारम्भ में उग्रपन्थीय हेबरटिस्टों (Herbertists) का ठिकाना लगाया गया। उनके बाद डेन्टन के अनुगामियों की बारी आई। उसे और उसके समर्थकों को रोब्सपायर ने ठिकाने लगवा दिया। २८ जुलाई १७६४ को रोब्सपायर और उसके मित्र सेण्ट जस्ट को मृत्यु-दण्ड दिया गया। आतंक राज्य को समाप्त करने के पश्चात् देश में धीरे धीरे शान्ति की स्थापना हुई। पेरिस की कम्यून भंग कर दी गई। क्रांतिकारी न्यायालयों को समाप्त कर दिया गया। जकोबिन क्लबों को बंद कर दिया गया तथा जन-सुरक्षा समिति पर नियंत्रण लगा दिया गया। इस प्रकार घोर विध्वंस करके जकोबिन शान्ति के रंगमंच से लुप्त हो गये किन्तु अपनी समाप्ति होने से पहले उन्होंने देश को विदेशी आक्रमणों से बचा लिया और मातृभूमि के सम्मान की पुनःस्थापना कर दी गई।

क्रोपाटकिन के मतानुसार उनके अधिकारवादी प्रशिक्षण को श्रद्धांजलि देते हुए बहुत से इतिहासकार यह मानते हैं कि जकोबिन क्लब पेरिस और उसके प्रान्तों में समस्त क्रांतिकारी आन्दोलनों का प्रारम्भकर्त्ता तथा अध्यक्ष था तथा दो पीढ़ियों से सभी को इस तत्व में विश्वास है। लेकिन अब हम ज्ञात होता है कि स्थिति ऐसी नहीं थी। २० जून व १० अगस्त का आरम्भ जकोबिन्स से नहीं हुआ। इसके विपरीत पूरे वर्ष तक उनमें से बहुत से क्रान्तिकारी तक लोगों से पुनः अपील करने के विपक्ष में थे। केवल जब उन्होंने यह देखा कि उन्हें लोकप्रिय आन्दोलन ने हटा दिया है तभी उन्होंने निर्णय किया और फिर उनमें से भी केवल एक वर्ग ने उनका अनुकरण किया।

किन्तु किस कायरता के साथ! वे यह चाहते थे कि लोग बाहर सड़कों पर निकल कर लड़ें और राजतन्त्रवादियों से टक्कर लें! किन्तु उन्होंने उसके परिणाम भोगने का साहस नहीं किया। क्या अब भी लोग राक्षसी सत्ता को उखाड़ फेंकने के पक्ष में नहीं थे? यदि लोगों का क्रोध धनवानों सत्तावानों और चालाकों के विरुद्ध घूम जावे जिन्हें क्रान्ति में अपने को धनी बनाने के साधन की अपेक्षा और कुछ नहीं दिखाया? यदि ट्युलरीज़ के बाद जनता भी नेशनल असेम्बली को एक तरफ़ समेट दे? यदि पेरिस की कम्यून उग्रवादी अराजकतावादी—वे जिन्हें स्वयं रोब्सपायर ने अपने आक्षेपों से स्वतन्त्रतापूर्वक लाद रखा था—वे गणतन्त्रवादी जिन्होंने 'दशाओं की समानता' पर उपदेश दिए थे—क्या उन्हें ऊपरी हाथ मिलना चाहिए?

'यही कारण है कि उन सारे सम्मेलनों में जो २० जून से पूर्व हुए हम क्रांतिकारियों के ऊपर इतना अधिक संकोच देखने को मिलता है। यही कारण है कि जकोबवादियों का दूसरी लोकप्रिय क्रान्ति की आवश्यकता स्वीकार करने पर इतनी अनिच्छा थी। केवल जुलाई ही में ऐसा हुआ जबकि लोगों ने संवैधानिक विधियों को तोड़कर विभागों का स्थायित्व घोषित किया, सामान्य शस्त्रीकरण का आदेश दिया

और यह घोषणा करने पर बाध्य किया कि देश संकट में है—केवल तभी राज्यपायरवादियों, दांतोवादियों, और बिल्कुल अंतिम समय पर गिराण्डिस्टों ने लोगों के पथप्रदर्शन का अनुकरण करने का निश्चय किया और अपने को लगभग क्रांति के साथ सम्बद्ध घोषित कर दिया।" (The Great French Revolution PP 257 58)

Suggested Readings

Brinton C. *The Jacobins 1930*
Goodwin A *The French Revolution*

अध्याय ६

क्रान्ति के महान् व्यक्ति

(Great Personalities of the Revolution)

मिरावो (Mirabeau)—नेपोलियन के उत्थान से पहले फ्रांसीसी क्रान्ति के महान् व्यक्तियों का उल्लेख आवश्यक है और इन महान् व्यक्तियों की सूची में मिरावो का नाम सर्वप्रथम आता है। एक निर्दय पिता का पुत्र, जीवन में अनेक संघर्ष, ऊँच-नीच देखने के पश्चात् केवल बयालीस वर्ष की अवस्था में अपनी जीवन लीला समाप्त कर गया। वह अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी व्यक्ति था। उसके पास बुद्धि और ज्वाला से भरा हृदय था। वह अस्थिर, उग्र महत्वाकांक्षी, आचारहीन और सनकी था। वह बदसूरत था और कहा जाता है कि उसकी असुन्दरता भी उसकी शक्ति थी। उसने अनेक द्वन्द्व-युद्ध लड़े। उसके पिता ने उसे कैद में डाल दिया। वह दुराचारी था और कई रोगों से पीड़ित था। किंतु वह एक क्रियाशील, तीव्र-बुद्धि और दूरदर्शी शासक था।



मिरावो

वह सिद्धान्तवादी नहीं था। वह फ्रांसीसी जाति का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति था। उसे खण्डित होते हुए समाज में दुस्साहसिक कार्य करने वाला बुद्धिमान् कहा जाता था। "इसी व्यक्ति ने बूढ़े फ्रांस की जड़ों को पकड़कर हिला दिया और मानो अकेले ही इस गिरते हुए भवन को डगमगाता हुआ थामे रहा, गिरने नहीं दिया। कहा जाता है १७९१ में इसकी अर्थी के पीछे सम्राट के प्रतिनिधियों और जकाबिन क्लब के सदस्यों का ९ मील लम्बा जलूस था। पेरिस में तीन दिन तक शोक मनाया गया। इन बातों से उसके व्यक्तित्व की महानता का पता लगता है।

मिरावो ने अपनी युवावस्था में बहुत पर्यटन किया और इस प्रकार बड़ा अनुभव प्राप्त किया। कार्लायल (Carlyle) ने इस विषय में लिखा है, "इन अद्भुत यात्राओं में उसने क्या नहीं देखा और क्या नहीं आजमाया? ड्रिल शिक्षक से प्रधान मन्त्री, विदेशियों से लेकर देश के पुस्तक बेचने वाले सभी प्रकार के व्यक्ति उसने

देखे। मिरावो ने इगलैण्ड की यात्रा की और वहाँ की ससदीय प्रणाली से वडा प्रभावित हुआ, जिस प्रणाली से सम्राट और उत्तरदायी मत्री मिल-जुल कर काम करते थे।

यद्यपि मिरावो सामन्तवर्ग का था, किन्तु १७८९ मे जब ससद् के चुनाव हुए तो वहाँ तीसरे विभाग का सदस्य चुना गया। उसके महान् व्यक्तित्व ने उस शीघ्र ही प्रकाश म ला खडा किया। जब यह प्रश्न उठा कि ससद के तीनो विभाग एक साथ अथवा अलग बठें तो मिरावो ने तीसरे विभाग का नेतृत्व करके यह माँगा कि तीनो विभाग एक ही स्थान पर बठें। जब तीसरे विभाग के सदस्यो ने टनिस-कोर्ट म प्रतिज्ञा की तो मिरावो ने ही घोषणा की कि मैं और मेरे अनुयायी तब तक नही जायगे जब तक हमारी माँगें पूरी नही हो जातीं। इन परिस्थितियो मे लुई सोलहवें को झुकना पडा और तीन विभागो वाली ससद् को राष्ट्रीय सभा के रूप म बदलने के लिए राजी हुआ। मिरावो राष्ट्रीय सभा का नेता तथा प्रधान था।

मिरावो नम्र विचारो का था अत जैकोबिन दल की उग्र विचारधारा से सहमत न होने के कारण उसने दल का परित्याग कर दिया। वह इगलण्ड की ससदीय प्रणाली का फ्रास म प्रचलित करना चाहता था। इस लक्ष्य को ध्यान म रखते हुए उसने सम्राट् से एक वैधानिक प्रमुख की स्थिति स्वीकार करने की माग की तथा राष्ट्रीय सभा का सम्राट के साथ सहयोग करने का सुझाव दिया। उसकी यह योजना असफल हुई क्योंकि दोनो ओर से अपने अपने कार्यों का नही किया गया था। फ्रास में वैधानिक ढाचे के विषय म उसके विचार थे कि 'सम्राट सभा की सलाह माने जो उससे सहयोग करने को अत्यन्त इच्छुक है और सभा का नेता अर्थात् स्वयं मिरावो, प्रधानमत्री बने। उस समय लुई सोलहवाँ मिरावो और राष्ट्रीय सभा फ्रास की ओर से तट पर जाये, पिट और हाउस ऑफ कामन्स जैसी शानदार व्यवस्था स्थापित कर देंगे।'

यह बात उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय सभा ने मिरावो का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उस पर सन्देह किया जाता था। जकोबिनो ने उसको देशद्रोही कह कर निन्दा की। सभा को मिरावो का सम्राट से हिल मिल कर साथ करना अच्छा नहीं लगा। सभा ने सम्राट के प्रतिक्रियावादी सम्बन्धियो तथा मित्रो के हाथो म खेलना पसन्द नही किया। इसी कारण सभा ने यह घोषणा प्रसारित की कि सभा के सदस्य सम्राट के मत्री नहीं बन सकेंगे। इस प्रकार राष्ट्रीय सभा ने मिरावो की योजना का बिना परखे रद्द कर दिया। यदि राष्ट्रीय सभा का यह रूप था, तो मिरावो के साथ सम्राट ने भी कुछ अच्छा व्यवहार नही किया। दिखावे के रूप में सम्राट उसके प्रस्तावो का स्वागत करता तथा उसकी योजनाओ के लिए धन भी देता था किन्तु वह अन्तरतल से उसका समर्थक नही था। वह मिरावो की इच्छानुसार राजनैतिक रंगमंच पर अपना पाट खेलने को तैयार न था। सम्राट् को वैधानिक प्रमुख बनाने के विचार से ही वह घृणा करता था। मिरावो ने सम्राट को यह सलाह दी कि वह पेरिस राजधानी से दरबार को हटा कर राउन (Rouen) ले

जाकर वहाँ से पेरिस की भीड़ के शासन के विरुद्ध दल को प्रबल करें। सम्राट ने कुछ तो गृह-युद्ध के डर से और कुछ अपनी स्वाभाविक कायरता के कारण इस सम्मति के अनुसार कार्य करने से इन्कार कर दिया। सम्राज्ञी ने भी इस सलाह को नहीं माना और पेरिस के बाहर जाने की अपेक्षा आस्ट्रिया से सहायता माँगना अच्छा समझा। सम्राट् और सम्राज्ञी हृदय से मिराबो पर विश्वास नहीं करते थे।[1] वे यह कभी भी नहीं भुला सके कि प्रारम्भ में मिराबो ही घोर विरोध का उत्तरदायी था। परिणामतः उन्होंने अपना हार्दिक सहयोग मिराबो को नहीं दिया और सदा जनता की दृष्टि में उसका अपमान करने और यह दिखाने को प्रस्तुत रहते कि उसने राज्य से बहुत-सा धन प्राप्त किया है। वे भूल गये कि मिराबो ही अकेला वह व्यक्ति है जो राजशाही के हित के लिए सच्चा प्रयत्न कर रहा है और उनकी रक्षा करने की शक्ति केवल इस व्यक्ति में ही है। उसे अपना वास्तविक सहयोग न देकर उन्होंने अपने हितों का नाश किया।

प्रो० हालैण्ड के मतानुसार देश-व्यापी वातावरण में मिराबो के समझौते का सिद्धान्त सफल नहीं हो सकता था। राष्ट्रीय सभा ईर्ष्यालु तथा स्वयं सम्राट आलसी था। *समझौते का सिद्धान्त उसी समय सफल हो सकता था जबकि अन्य* सारे साधनों को परख लिया गया होता और वे असफल हुए होते। उनके शब्दों में 'जब तक राजनैतिक प्रयोग करके देख न गए होते और वे असफल न हो गए होते तब तक सत्ता और प्रजातन्त्र के बीच समझौते के सफल होने की आशा नहीं की जा सकती थी। मिराबो सम्राट और राष्ट्रीय सभा के असहयोग से इतना विचलित हो गया कि उसे यह कहते सुना गया था यह स्पष्ट है कि हम राजशाही सभा और

---

१ प्रो० साल्वेमिनी ने ऐसा कहा है, "मिराबो जिसका निजी जीवन और पिछला राजनैतिक भाग पुनः विश्वसनीय होने से बहुत दूर था—जिसने गुप्त रूप से दरबार में सेवा करने का बहाना किया, वरन् जनता में अपने राजतन्त्र सम्बन्धी विचारों की सामयिक सहायता के होते हुए भी, कभी भी क्रान्तिकारी दिशा को पृथक नहीं किया—वह ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसे ट्युलरिज में बन्द दो अभागे कैसे पहचान लेते। उनकी दृष्टि में वह केवल एक चतुर चालबाज था जिस पर विश्वास करना मूर्खता थी और जो उन्हें उसी शीघ्रता से धोखा देता जैसा कि वह अभी क्रान्तिकारियों को धोखा दे रहा था ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक घटिया कुलीन पुरुष। उसने क्रान्ति में भाग लेकर राजा के साथ गद्दारी का काम किया। इसके अतिरिक्त उसने राजा से छः हजार लिवर की मासिक वृत्ति लेकर अपने को सारी नैतिक सत्ता से वंचित कर लिया था। राजा ने यह भी प्रतिज्ञा की थी कि वह उनके ऋणों का भुगतान करेगा और असेम्बली बन्द हो जाने पर १० लाख लिवर और देगा। मिराबो के लिए यह बताना बहुत कठिन्या चाल था कि दरबार से पाया हुआ धन कोई रिश्वत नहीं थी क्योंकि अपनी कोई भी उपाधि त्यागे बिना वह यह प्रयत्न कर रहा था कि राजा उन्हें स्वीकार कर ले या यों कहने लगे 'मुझ जैसा व्यक्ति एक लाख क्राउन्स ले सकता है, लेकिन इतने धन से खरीदा नहीं जा सकता।' उन लोगों की दृष्टि में जिन्होंने भुगतान किया था वह स्वयं को बेच रहा था और इस सौदेबाजी ने उसका सारा ध्वनि को नीचा कर दिया और उसे एक राजनैतिक लौटे हुए कोट में परिणत कर दिया जिसको जेबों को राजा व रानी केवल इसलिए भरने पर तैयार रहते थे कि कहीं वह विरोधी न हो जाय।'

(The French Revolution p 185)

समूचे राष्ट को विनाश की ओर ले जा रहे हैं। मभा आत्मघात करन के साथ हमे अपने साथ मार डाल रही है। २ अप्रैल, १७९१ को उसकी मत्यु हुई। वह अत्यन्त दुःखी होकर मरा, किन्तु उसने यह भविष्यवाणी की 'मैं अपने हृदय मे राजशाही का मृत्यु-गान लेकर मर रहा हूँ जिसके भग्न अवशेषों को लूटने के लिए दल म फूट पड़ेगी।' नवीन फ्रास ने एक मार्गदर्शक खो दिया। यह ध्यान दन योग्य है कि "मिराबो के साथ क्रान्तिकारी युग का सबसे महान व्यक्ति समाप्त हो गया। वह व्यक्ति जो फ्रास म राजशाही की रक्षा की अन्तिम आशा थी।' यदि वह अधिक जीवित रहा होता, तो सम्भवत उसकी मृत्यु के पश्चात फ्रास म हुआ महान विध्वस न होता। वह ही एक व्यक्ति था जो राष्ट्रीय सभा के जगली गधो और दरबार के 'शाही घोडो' मे समझौता करा सकता था। मदाम दे काम्पेन (Madame de Campan) के अनुसार, 'मिराबो अपने को विश्व का मानचित्र (Atlas) मानता था। इसमे क्या आश्चर्य है कि उसकी मृत्यु के पश्चात देश में कोई भी ऐसा व्यक्ति नही रहा जो उसके उत्तरदायित्व को सँभाल सकता और सम्राट तथा जनता दोनो का पथप्रदर्शन कर सकता। मिराबो का सब से बडा दुःख यह था कि 'मैं यह सोच कर दुःख मे डूबा जाता हूँ कि जितना भी काय मैंने किया वह एक महान् विध्वस मे सहायक होगा।' यदि ४२ वर्ष की छोटी अवस्था मे उसकी मृत्यु न होती तो उसने देश को अराजकता से बचा लिया होता।

जब मिराबो ससद का सदस्य बना, वह ऋण से दबा हुआ था। उसने अपने ऋण को उतारने के लिए सम्राट से एक बहुत बडी धनराशि ली। उसे २४० पौण्ड मासिक वेतन मिलता था। यदि मिराबो ने यह गुप्त रखा होता तो वह शायद राष्ट्रीय सभा का सहयोग प्राप्त कर सकता। किन्तु उसके छिछोरपन और दिखावे के मोह ने उसे यह गुप्त नही रखने दिया। परिणामत राष्ट्रीय सभा को उसम बिल्कुल विश्वास नही रहा। यदि मिराबो ने अपने जीवन मे अधिक सयम से काम लिया होता तो घटनाचक्र किसी और ही दिशा मे चला होता।

प्रो० सालवेमिनी के मतानुसार, "मिराबो की क्या दशा हुई होती—जबकि उसका सामना सन्देह व लाछनो और उस अपमानजनक मरण से था जिसके विषय म उससे अधिक कौन जानता था—यदि उसकी उत्तेजना, उसका क्रोधयुक्त व उपभोग-युक्त काय और पाशविक सुख जिनम उसने अपने दम्भ व हताशा को डुबाने का प्रयास किया, उन्होंने उसे उसके तूफानी जीवन के युवाकाल म ही खत्म न दिया होता उदाहरणार्थ, यदि वह तब तक जीवित रहता जब तक कि पेरिस म राजसी वंश के निकल भागने पर उसके विचारो व राजा के विचारो के बीच खाई का उसे पता चल जाता? वस्तुत अपने व्यक्तिगत जीवन की नैतिकता, जिसम उसने राजनीति की महान लीक को छोड दिया, उसने चालबाजी के टेढ़े रास्तों मे फँसकर अपना माग छोड दिया, तब उसकी स्थिति क्या होती उस दरबार म जिसने उसे समझे बिना उसका प्रयोग करने का बहाना किया और क्रान्ति के चलाने वालो के बीच म जिन्होंने उसकी वास्तविक नीयत पहचाने बिना उसका अनुकरण किया था' यह

संक्षिप्त व हिंसात्मक रोग जो २ अप्रैल १७९१ को उसे दूर ले गए उन्होंने उन सारे संघर्षों व संकटों का अन्त कर दिया जिनमें धीरे धीरे वह फँस चुका था। वह उस संसार के दुःखात्मक अन्तिम लक्षणों में अदृश्य हो गया जो अपने को स्वयं भी नहीं बचा पाता और उसका सारा जीवन महानता व नीचता यश व अपयश के बीच गाथा बनकर रह गया। (The French Revolution p 187)

मरात (१७४२ ९३)—यदि मरात (Marat) ने राजनीति में अभिरुचि न ली होती तो इतिहास में वह एक विद्वान् व वैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध होता। वह एक चिकित्सक था और अपने धंधे में इतना निपुण था कि स्काटलैण्ड के सेंट ऐंड्रयूज विश्वविद्यालय ने उसे एक सम्मान की डिग्री प्रदान की थी। कुछ समय तक वह काउण्ट आफ आरटियास की सेवा में भी रहा।



मरात

किन्तु १७८९ में संसद (Estates General) के आगमन के बाद उसका ध्यान राजनीति में खिंच गया। फ्रांस में यह भावना चल रही थी कि फ्रांस वालों को ब्रिटिश संविधान की व्यवस्था की नकल करनी चाहिए। मरात ने इसका विरोध किया क्योंकि ब्रिटिश व्यवस्था सम्बन्धी उसके ज्ञान ने उसे विश्वास दिला दिया था कि ग्रेट ब्रिटेन पर शासन जनता नहीं बल्कि एक कुलीन वर्ग करता है। उसने स्वयं वास्तविक सुधार का समर्थन किया जिसमें फ्रांस के लोगों की आवाज होगी और जिससे उनको लाभ भी पहुँचेगा। १७८९ से १७९२ तक उसने एक समाचार पत्र का सम्पादन किया जिसका नाम लोगों का मित्र (Ami Du Peuple) था। उस समाचार पत्र में उसने दरबार की आलोचना की और पादरियों कुलीन सामन्तों व नेशनल असेम्बली तक पर आघात किया। उस पर किसी भी पार्टी ने आघात नहीं किया और अपने लक्ष्य के लिए उसने सब कुछ बलिदान कर दिया। दरिद्रता संकट व अत्याचार तक उसको शांत न रख सके। वह गन्दी कोठरियों व नालियों में रहने पर विवश हो गया जिससे उसे एक भयानक चरम रोग लग गया।

मरात लोगों से प्यार करता था और लोग उससे प्रेम करते थे। लोगों के कार्य के हेतु वह कोई भी बलिदान करने पर उद्यत रहता था। वह रक्तपात के लिए भी तैयार था यदि उससे जनता के ध्येय को लाभ पहुँचे। ३१ मई १७९३ के विद्रोह असेम्बली में जिरान्डिस्ट सदस्यों के बहिष्कार और अन्त में उनकी हत्या का

उसी पर उत्तरदायित्व है। वही ऐसा व्यक्ति था जिससे अधिकारी वर्ग डरता था और इसलिए उससे घृणा करता था, किन्तु जिसका जनसाधारण सम्मान करता था व उससे स्नेह रखता था। जुलाई १७९३ में एक युवती कार्डे (Corday) ने उसका वध कर दिया जो कट्टरता के साथ जिराण्डिस्ट ग्रुप से सम्बद्ध थी।

मरात की हत्या से लोगों का एक अत्यधिक प्रिय मित्र जाता रहा। यह सच है कि जिराण्डिस्ट लोगों ने उसे खून का प्यासा पागल व्यक्ति माना, जिसे यह भी पता नहीं था कि उसे क्या चाहिए। फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि जब १७९० और १७९१ में लोगों की सारी वीरता राजसी सत्ता को तोड़ने में असमर्थ रही तब मरात ने ही यह निर्णय लिया था कि क्रांति को सफल बनाने के लिए कुछ हजार कुलीन जनों के अध्यक्षों का बलिदान कर देना चाहिए। उसने जो कुछ भी किया वह सब क्रांति को सफल बनाने के लिए ही किया था। यह कहा जाता है कि लोगों का पथप्रदर्शन करने के लिए जनता का सच्चा हितैषी और प्रेमी मरात ही ऐसा क्रांतिकारी नेता था जिसे घटनाओं का सच्चा ज्ञान था और उसी को यह समझने की शक्ति प्राप्त थी कि उनका पचीदा प्रभाव एक-दूसरे पर कैसा पड़ेगा। उसने अपने सब समकालीन नेताओं की अपेक्षा यह उत्तम रूप से समझ लिया था कि आगे क्या होने वाला है।

डण्टन (Danton)—डण्टन एक किसान का पुत्र था। क्रान्ति प्रारम्भ होने से पहले वह एक उदार व्यक्ति तथा प्रतिभाशाली युवक वकील के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था। उसे पुस्तकों से प्रेम था तथा उसका पारिवारिक जीवन सुखमय था। वह विशालकाय और शक्तिशाली था। उसकी आवाज में गम्भीर गर्जना थी। वह एक कुशल तार्किक और प्रभावशाली वक्ता था। मिराबो के स्वभाव के विपरीत जब श्रोता उत्तेजना के वेग में बहते तो वह स्वयं शान्त और स्थिर बना रहता। मिराबो की तरह वह भी अपने वर्ग से नीचे के वर्ग के लाभ के लिए उत्सुक था। जहाँ सामन्तवर्ग का मिराबो, बुर्जुआ मध्यमवर्ग के लिए था, वहाँ मध्यमवर्गी डण्टन पेरिस की जनता के लिए था।

फ्रांस की क्रान्ति के प्रथम प्रहर में मिराबो की कृपा से डण्टन प्रकाश में आया। उसने थोड़े ही समय में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। १७९० में डण्टन ने मरात और डिसमोलिन्स की सहायता से कार्डिलियर क्लब की स्थापना की और १७९१ और १७९२ में शाही परिवार के विरुद्ध इस क्लब के कार्य का संचालन किया। वह पेरिस कम्यून का प्रभावशाली सदस्य था और कम्यून को प्रजातन्त्रवाद की ओर झुका देने का बहुत-सा उत्तरदायित्व डण्टन का ही था। यह सत्य है कि डण्टन अक्खड़ और साहसी था किन्तु वह रक्त पिपासु नहीं था। वह एक कार्यकुशल शासक था जो अपने कार्यों को अवसर के अनुसार ढाल लेता था।

१७९२ में जब फ्रांस को जर्मनि सेना ने चारों ओर से घेर लिया था और ड्यूक ऑफ ब्रुन्सविक ने घोषणा की थी कि फ्रांस की जनता आत्मसमर्पण कर दे तथा धमकी दी कि यदि शाही परिवार को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाई गई तो

उन्हें घोर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। पेरिस में इस घोषणा के उत्तर में विद्रोह हुआ और डैण्टन इसका नेता बना। शाही महल पर आक्रमण हुआ। महल के रक्षकों की हत्या कर दी गयी, स्वयं सम्राट को नियन्त्रित कर लिया गया। डैण्टन की तानाशाही ने आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं के हृदय में भय का संचार कर दिया। उस अवसर पर डैण्टन ने अपनी नीति का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया कि मेरी सम्मति में शत्रु को रोकने का एकमात्र यही तरीका है कि सम्राट के समर्थकों को भयभीत कर दिया जाय। दुस्साहस अधिक दुस्साहस और सर्वदा दुस्साहस ही हमारा नारा होना चाहिए। इस नीति के परिणामस्वरूप हजारों स्त्री पुरुष और बालक मौत के घाट उतार दिये गए। जिन न्यायाधीशों पुजारियों और अमीरों पर सम्राट के प्रति सहानुभूति रखने का सन्देह था उन्हें भी निर्दयता से मार डाला गया। डैण्टन ने फ्रांस की सेनाओं में नया रक्त और स्फूर्ति फूँक दी। इन सेनाओं ने ही संगठित राष्ट्रों को फ्रांस की सीमाओं से पीछे खदेड़ दिया और खोए हुए प्रदेशों पर पुनः अधिकार जमाया। उसने आतंक राज्य के काल में रोबसपियर का साथ सहयोग किया। किन्तु १७९४ के प्रारम्भ में उसने यह अनुभव किया कि आतंक राज्य को अधिक चलाने से कोई लाभ नहीं है और सहिष्णुता की नीति अपनाने की माँग की। इस सम्मति को रोबसपियर और उसके जैसे व्यक्तियों ने पसन्द नहीं किया। परिणामतः डैण्टन और उसके मित्र डिसमोलिन्स को मृत्यु-दण्ड दिया गया। इसकी मृत्यु के साथ-साथ फ्रांस ने एक ऐसा शासन-कुशल नेता खो दिया जो षड्यन्त्रों के प्रवाह को बदल सकता था।


डैण्टन

एक सच्चे नायक की तरह डैण्टन ने सारे प्रजातन्त्र के समर्थकों को फ्रांस के हित के लिए सामूहिक रूप से संघर्ष के लिए जैकोबिनों और गिराण्डिस्टों के मतभेदों को मिटाकर समझौता कराने का प्रयत्न किया। किन्तु गिराण्डिस्टों के विरोध के कारण डैण्टन अपने इस प्रयत्न की असफलता पर बड़ा दुःखी हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि गिराण्डिस्ट दल ही समाप्त हो गया।

ग्रांट और टेम्परले के अनुसार क्रान्ति के इतिहास में डैण्टन का व्यक्तित्व अद्भुत प्रकार का है। बहुधा उसे जैकोबिनों में सबसे अधिक रक्तपिपासु मानते हैं। उसने अगस्त १७९२ में विद्रोह का समर्थन किया। किन्तु जितना अधिक हम उसके राजनीतिक जीवन का विश्लेषण करते हैं उतना ही हम स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर

होना है कि यद्यपि वह समय की पुकार के अनुसार घोर हिंसा के कार्य करने का समर्थक था, किन्तु उसने, जैसा भविष्य में पता लगा क्रांति को अव्यवस्था और रक्तपात के गहन गर्त में गिरने से रोकने का भी निरन्तर प्रयत्न किया। बहुत-से विषयों में वह देश की प्राचीन परिपाटी को अपनाना चाहता था। उसने उस वातावरण में दया, व्यवस्था और शासन के प्रति आदर का सन्देश दिया जब कि ऐसी सम्मति देना उसके लिए अत्यन्त भयानक था। यद्यपि वह जैकोबिन था, किन्तु उसका ध्येय गिरोण्डिस्ट दल के साथ मिलकर कार्य करने का था और इस दिशा में उसने अनेक बार अपनी सामर्थ्य से बढ़कर भी उनकी मित्रता पाने का प्रयत्न किया।'

फिलनरी के अनुसार, डण्टन और रोब्सपायर सब प्रकार से परस्पर इतने विरोधी स्वभाव के थे कि वे शत्रु का नाश करने अथवा आपत्ति के समय के अतिरिक्त उनका मिलकर कार्य करना असम्भव था। यद्यपि ये दोनों व्यक्ति मध्यमवर्ग के थे, दोनों वकील, प्रजातन्त्रवादी जैकोबिन और हत्या के समर्थक थे, किन्तु विशालकाय, दयालु, वफिक्र हँसोड़ गम्भीर गर्जना जैसी वाणी वाले डण्टन की छोटे, दुर्बल ईर्ष्यालु और उग्र रोब्सपायर जिसके भाषण को बुद्धि भले ही मान ले किन्तु जिनका हृदय पर प्रभाव नहीं होता था, तुलना करने पर दोनों व्यक्तियों की समानता समाप्त हो जाती है। डण्टन का चरित्र अपने समकालीन मिराबो और अपने बाद के गेम्बाटा (Gambetta) के चरित्र से अधिक मिलता है। उसमें मिराबो जैसी विशाल हृदयता और मन को मोह लेने वाली भाषण शक्ति और गेम्बाटा जैसी उग्र अदम्य देश भक्ति थी। मिराबो की तरह उसमें दुर्गुण भी थे। उस पर भ्रष्टाचार का लांछन लगाया जाता है और सम्भवतः वह बड़ी शीघ्रता से किसी को भी मित्र बना लेता था। पुनः उसके जीवन पर सितम्बर १७९२ के हत्याकाण्ड का दाग है। १७९३ में अत्यन्त प्रभावशाली होने पर भी राजनीति से देश की सुरक्षा को छोड़कर, उसका मन-हट सा गया था। अब वह दलबन्दी की भावना का शमन करना चाहता था वह कहने लगा था, 'मुझे अब घृणा से क्या प्रयोजन?' उसकी पत्नी का देहान्त हो गया और दूसरा विवाह करके वह अपने जन्मस्थान आरसिस-सर एब (Arcis-sur Aube) नामक कस्बे में एकान्त में चला गया और थोड़े थोड़े समय पश्चात् कभी पेरिस आया करता था। यह व्यवहार उसकी सुरक्षा के लिए अच्छा नहीं था, क्योंकि रोब्सपायर सत्ता को हथियाना चाहता था।

उस विषाक्त वायुमण्डल में सन्देह के बीज गिरते गिरते पनप कर वृक्ष बन जाया करते थे। यह कहा करता, गिलोटिनी पर किसी का सिर काटने से अच्छा है कि अपना ही सिर कटा दिया जाय। उस पर आक्रमण किया गया और बन्द कर लिया गया। वह अपनी रक्षा करने के लिए बहुत देर बाद जागा और जब जागा तो इतनी शक्ति से क्रांतिकारी न्यायालय में स्वयं अपना बचाव पेश किया कि न्यायालय की दीवारें उसकी घोर गर्जना से काँपती प्रतीत होती थीं। मुकदमा रोक दिया गया और उसे मृत्यु-दण्ड दिलाने के लिए एक नया षड्यन्त्र रचा गया और ५ अप्रैल, १७९४ को न्यायालय के समय जैकोबिन दल के सर्वश्रेष्ठ महान नेता ने थोड़े साथियों

के साथ पेरिस की जानी पहिचानी गलियों में से गुजर कर अपनी महा-यात्रा समाप्त की।

रोब्सपायर (Robespierre) (१७५८-९४)—रोब्सपायर एक मध्यमवर्गीय परिवार में पैदा हुआ और पेरिस विश्वविद्यालय की विधि संकाय (Law Faculty)



रोब्सपायर (१७५८-९४)

म डिसमोलिन्स का सहपाठी था। वह अपने जन्म-स्थान अरास (Arras) मे काफी अच्छी वकालत करता था। यद्यपि उसे फौजदारी न्यायालय मे न्यायाधीश नियुक्त कर दिया गया था, किन्तु अपराधियो को मृत्यु-दण्ड देने के विरुद्ध होने के कारण उसने पद से त्याग पत्र दे दिया। उसने वक्ता और लेखक के रूप म ख्याति प्राप्त की। साधारण वक्ताओ की तरह वह अनर्गल बोलने वाला नही था। वह मूलत सुसम्पन्न व्यक्ति था। वह लगन वाला और सच्चा व्यक्ति था। वह रूसो का कट्टर अनुयायी था और उसकी दार्शनिकता को कार्य रूप म परिणत कर देना चाहता था। ऐसा करते हुए उसे जनता की पीडा की कोई परवाह नही थी। यद्यपि उसने सर्वहारावर्ग के लिए घोर परिश्रम किया किन्तु वह इनके स्वभाव को नही अपना सका। कहा जाता है कि जीवन के अन्तिम दिन तक वह घुटन तक की ब्रिजिस और रेशमी मोजे पहनता रहा और अपने बालो म पाउडर लगाता रहा।

१७८९ मे वह ससद के तीसरे विभाग का सदस्य चुना गया। उसने अपना स्थान अत्यन्त उग्र विचारो के सदस्यो म चुना, जिन्हे मिराबो व्यग से 'तीस आवाजें' (The Thirty Voices) कहा करता था, क्योकि सभा मे उसके समर्थको की सख्या कम थी और मिराबो का प्रभुत्व था। रोब्सपायर राष्ट्रीय सभा में अधिक नहीं चल सका। इस परिस्थिति म उसने पेरिस निवासियो की सहायता प्राप्त करने का निर्णय किया। वह जकोबिन क्लब का सदस्य तो था ही अत उदार सदस्यो के चले जाने के बाद वह क्लब का नेता बन बैठा। इसके पश्चात् वह जकोबिन क्लब को समाजवाद के प्रसार का साधन बना कर स्वय उसका मुख्य प्रतिपादक बन बैठा।

उसने आतक-राज्य के काल म डैण्टन के साथ सहयोग किया और जब डण्टन की शक्ति का ह्रास होने लगा तो वह सर्वेसर्वा बन बैठा। वह जैकोबिनो का नेता था इस कारण राष्ट्रीय सम्मेलन, पेरिस कम्यून और सुरक्षा समिति पर उसका बहुत दबाव था। उसने 'तर्क' की उपासना को बन्द करा दिया और इसके स्थान पर 'सर्वशक्तिमान्' की उपासना प्रचलित की और स्वय इसका मुख्य गुरु बन गया। इस नये मत के उद्घाटन के लिए एक विशेष उत्सव हुआ। रोब्सपायर के नेतृत्व म राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यो का एक जलूस निकाला गया और ट्युलरीज (Tuileries) के बाग म बहुत-सी मूर्तियाँ जलाई गई। अन्त म यह समारोह बहुत से भाषणो के पश्चात् समाप्त हुआ। यह नया मत फ्रास की जनता की अवस्था के अनुसार नही था, परिणामत यह रोब्सपायर की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया।

१० जून १७९४ मे एक कानून पारित हुआ जिसके अनुसार क्रान्तिकारी न्यायालयों की कार्य प्रणाली म परिवर्तन हुआ और इनका कार्य शीघ्रता से चलने लगा। फ्रास की जनता को देशद्रोहियो के विरुद्ध अभियोग लगाने के लिए कहा गया और राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्य भी कहे से नही बच सकते थे। क्रान्तिकारी न्यायालय कोई नियम कठोरता से पालन नही करते थे। परिणामत १० जून से २७ जुलाई की अवधि म केवल पेरिस में ही १३७६ व्यक्तियो को मौत के घाट उतार

दिया गया। इस प्रकार राबेसपायर ने अपने विरोधियों को सीधी चुनौती दी। वह स्वयं ही फ्रांस का तानाशाह बनने का दृढ़ संकल्प कर चुका था। उसके कामों में सण्ट जस्ट सहायक था।

२६ जुलाई १७६४ को राष्ट्रीय सम्मेलन में रोबेसपायर ने एक भाषण दिया जिसमें उसने अपने कार्यों का समर्थन और अपने विरोधियों के दल की निंदा की। यद्यपि उसने अपने विरोधियों का नाम नहीं लिया किन्तु संकेत अवश्य दे दिया। यह उल्लेखनीय है कि यदि उस दिन रोबेसपायर ने राष्ट्रीय सम्मेलन के सम्मुख अपने विरोधियों की सूची कैद करने के विचार से प्रस्तुत कर दी होती तो राष्ट्रीय सम्मेलन ने उसकी माँग स्वीकार कर ली होती। किन्तु अपने आक्रमण की अस्पष्टता के कारण वह बाजी खो बैठा। इस प्रकार सांकेतिक आक्रमण करने के कारण राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यों में बेचैनी पैदा हो गई और प्रत्येक को अपने जीवन का भय होने लगा। इस प्रकार के वातावरण में राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यों ने साहस करके रोबेसपायर के भाषण को अस्वीकार कर दिया। इस दिशा में फाउच (Fouche) से जो परोक्ष में अपना कार्य कर रहा था सम्मेलन के सदस्यों को बड़ा प्रोत्साहन मिला। रोबेसपायर इस झाड़ के लिए तयार नहीं था। वह इतना अपमान अनुभव करता था कि वह जकोबिन क्लब गया और उसने अपने भाषण को पुनः दोहराया तो उसे सब ओर से प्रशंसा प्राप्त हुई। इस प्रकार प्रोत्साहन पाकर उसने दुबारा चोट करने का निर्णय किया।

२८ जुलाई, १७६४ को वह राष्ट्रीय सम्मेलन में गया और सदस्यों को सम्बोधित करके भाषण देने लगा किंतु उसके विरोधियों ने इतना शोर मचाया कि वह भाषण नहीं दे सका। सभा भवन में बड़ी अव्यवस्था क्रोध और हिंसा भड़की। अंत में यह प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ तथा स्वीकार भी हुआ कि रोबेसपायर सण्ट जस्ट और उसके निकट-समर्थकों को कैद कर लिया जाय। उन्हें पकड़ कर सम्मेलन के अधिकारियों को सौंप दिया जाय और कैदखाने में ले जाया जाय। किंतु जेलें पेरिस की कम्यून के अधिकार में थी जो रोबेसपायर और उसके मित्रों के अधिकार में थी। परिणाम यह हुआ कि रोबेसपायर और उसके साथी छोड़ दिए गए और उन्हें नगर भवन में ले जाया गया। जब राष्ट्रीय सम्मेलन को पता लगा कि शत्रु छूट गया तो इसने एक विज्ञप्ति प्रसारित की जिसमें रोबेसपायर को अपराधी घोषित कर दिया। २७ जुलाई १७६४ को रात्रि में सशस्त्र तैयारियाँ होने लगी। होटल-डे विल जहाँ रोबेसपायर और उसके साथी छिपे हुए थे के स्थान को घेर लिया गया और थोड़े समय के पश्चात सुरक्षा पंक्ति टूट गई। जब रोबेसपायर पकड़ा गया तो उसको बहुत बुरी तरह घायल पाया गया। यह संभव है कि यह आघात उसने स्वयं ही कर लिया हो। वह मेज पर घायल अवस्था में पड़ा था। क्योंकि उसे अपराधी घोषित किया जा चुका था इसलिए उस पर मुकदमा चलाने की आवश्यकता भी नहीं रही। अतएव २८ जुलाई १७६४ को उसे ग्युलोटिना के नीचे काट दिया गया।

यह बात उल्लेखनीय है कि यद्यपि रोब्सपायर आतंक राज्य का निर्माता नहीं था तथापि वह इसका अत्यन्त क्रियाशील विकास करने वाला था। उसने आतंक राज्य को अपने स्वार्थ के लिए नहीं, अपितु अपने आदर्शों को कार्य-रूप में परिणत करने के उद्देश्य से अपनाया। उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा सदाचार राज्य स्थापित करना थी और ऐसा केवल आतंक-राज्य के माध्यम से ही हो सकता था।[1] अपने सम्पूर्ण श्रेष्ठ काल्पनिक राज्य की स्थापना के लिए वह रक्त शक्ति-हीन रूसो की दार्शनिकता को कार्य में परिणत करने का प्रयास कर रहा था।

ग्रांट और टेम्परले के अनुसार 'रोब्सपायर निस्सन्देह पेरिस में अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति था, जिसके प्रशंसकों और भक्तों की बहुत बड़ी संख्या थी। उसके जीवन की असफलता और अत्यन्त दु:खद अन्त का कारण यह था कि उसने फ्रांस का पुनर्गठन और नवजीवन देने का प्रयत्न युद्ध और हिंसा के वातावरण में किया। यद्यपि उसकी असफलता अन्तत: होती ही, किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में उसका पतन शीघ्र और उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। हमें अध्ययन से पता लगता है कि उसकी विजय कुछ ही क्षणों की थी और उनके बीतते ही उसका पतन हो गया। उसके गुणों के कारण हम उसके अवगुणों की ओर से आँखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिएँ। वह अत्यन्त डरपोक व्यक्ति था और डरपोक व्यक्तियों के स्वभावानुसार वह शीघ्र ही निर्दयतापूर्ण कार्यों को करने पर उतारू हो जाता था। वह घमण्डी था और मित्रों की सराहना के कारण उसका घमण्ड और भी बढ़ गया। इस सबसे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि जिस काल में मानवता के अवतार और दार्शनिक रूसो का अनुगामी रोब्सपायर फ्रांस में उन्नति के शिखर पर था, वही काल देश में आतंक राज्य और अत्यन्त विध्वंस की चरम पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था।'

क्रोपाटकिन के विचार में, 'रोब्सपायर को बहुधा एक तानाशाह बताया गया है। कन्वेन्शन में उसके शत्रु उसे आततायी कहते थे और यह सच है कि जैसे-जैसे क्रान्ति का अन्त निकट आया, उसने इतना प्रभाव प्राप्त कर लिया कि उसे फ्रांस में आस-पास के क्षेत्रों में गणतन्त्र का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति माना जाने लगा।

लेकिन उसे एक तानाशाह बताना गलत होगा यद्यपि निस्सन्देह उसके बहुत से प्रशंसक उसको ऐसा ही बनाने की इच्छा की। वास्तव में हम पाते हैं कि कम्बों ने अपने विभाग क्षेत्राधिकार (कमेटी ऑफ फाइनेन्स) के भीतर काफी सत्ता का प्रयोग किया और कार्नो ने युद्ध सम्बन्धी विषयों में विस्तृत शक्तियाँ धारण की तथा रोब्सपायर व सेंट जस्ट के साथ उसका काफी मनमुटाव था। लेकिन साथ-गुट ने भी कमेटी की उसकी इस नियन्त्रणात्मक शक्ति के प्रति ईर्ष्या थी कि वह

---

[1] रोब्सपायर के शब्दों में "शान्तिकाल में शासन-तन्त्र का मुख्य स्रोत सदाचार होता है, क्रान्ति के समय यह स्रोत सदाचार और धमका देना है। बिना सदाचार के भय दिखाना विनाशकारी है, और सदाचार बिना शक्ति के भय के नपुंसक है।"

हिंसा के वातावरण में बनाना पड़ा। किसी भी दशा में उनकी असफलता निश्चित थी। इन परिस्थितियों में यह शीघ्र थी, लगभग तत्कालीन और उसके अपने लिए घातक भी। जैसा कि हम देखेंगे उसे विजय का बहुत थोड़ा-सा समय मिला और तुरन्त बाद उसका पतन हो गया। उसके गुणों को देखकर उसके दोषों से मुख नहीं मोड़ना चाहिए। वह अनिवार्यतः एक डरपोक व्यक्ति था और बहुत से भय डरपोक व्यक्तियों की भाँति सुगमता से निर्दयता के प्रयत्न करने को लालायित हो जाता था। वह घमण्डी था और उसके घमण्ड को उसके मित्रों की प्रशंसा अधिक बढ़ावा देती थी। अतः यह ज्ञात होता है कि जिस काल में मानव जाति के इस पैगम्बर और रूसो के शिष्य ने फ्रांस पर आधिपत्य रखा वह ऐसा ही समय है जबकि आतंक का युग अपने सबसे बुरे और सबसे अधिक विनाशकारी चोटी पर पहुँच चुका था।

सेण्ट जस्ट (St Just)—सेण्ट जस्ट रोबेसपियर का मित्र और सहकारी था तथा उसे उसके साथ एक ही दिन मृत्यु दण्ड दिया गया। उसने आतंक राज्य के काल में प्रधान महत्वपूर्ण भाग लिया। यदि कार्नोट को विजय प्रबन्धक कहा जा सकता है तो सेण्ट जस्ट का भी योग दान किसी से कम नहीं था। उसने ही फ्रांस की जनता में स्वतन्त्रता समानता और मित्रता के लिए कट्टर भावना भर कर उसके लिए जीवन उत्सर्ग करने के लिए प्रेरणा दी। वह निरन्तर पेरिस से युद्ध के मोर्चों पर जाता और सेनाओं को मातृभूमि की रक्षा के लिए वीरता से युद्ध करने के लिए उत्साहित करता। उसने देश भक्तों को प्रोत्साहित और देशद्रोहियों तथा कायरों को भयभीत किया। फ्रांस को सशस्त्र राष्ट्र में परिणत करने का बहुत-सा श्रेय सेण्ट जस्ट को ही दिया जाता है।

कार्नोट (Carnot) (१७५३ १८२३)—राष्ट्रीय सम्मेलन के काल में कार्नोट फ्रांस के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों में से था। इस व्यक्ति के दृढ़संकल्प-पूर्ण नेतृत्व में ही राष्ट्रीय सम्मेलन ने संसार के इतिहास में सबसे प्रभावी सैन्यवाद की प्रणाली का सूत्रपात किया। फरवरी १७९३ में ५ लाख जवानों की आवश्यक सामबन्दी की मांग निकाली। अगस्त १७९३ में १० और २५ वर्ष के सारे फ्रांसीसी नागरिकों के लिए अनिवार्य सैन्य सेवा की आज्ञा हुई। कार्नोट ने इन योजनाओं को कार्यरूप करने के लिए दिन रात अनवरत परिश्रम किया। उसके परिश्रम के परिणामस्वरूप १७९३ के अन्त तक ७ ७० ००० व्यक्ति सशस्त्र सेना में थे। इन सैनिकों में अधिकांश अपने ध्येय के प्रति कट्टर भक्ति रखते थे और देश के लिए जान देने के लिए तैयार थे। मध्यवर्गीय बुर्जुआ लोगों ने भी उसके सैनिक अभियान का समर्थन किया। कारीगर और किसान बहुत बड़ी संख्या में सेना में भरती हुए और स्वतन्त्रता समानता और मित्रता के ध्वज फहराते और क्रान्तिगान गाते हुए मोर्चों पर जा डटे।

कार्नोट ने सेना में बहुत से सुधार किये। उसने सेना ■ डिवीजन (Division) को सेना की इकाई माना। उसने रसद पहुँचाने की व्यवस्था को सुधारा और इस प्रकार अपनी सेनाओं को शत्रु की सेनाओं से अधिक शीघ्रगामी बनाया। उसने

सरकारी पदाधिकारियों को सेनापतियों और मंत्रियों की गतिविधि पर निगरानी रखने के लिए मोर्चों पर 'विशेषाधिकारी' (Deputies on Mission) बना कर भेजा। किसी भी व्यक्ति के ऊपर अभियोग होने की स्थिति में उसे बिना सफाई के मृत्यु-दण्ड दे दिया जाता था।

कार्नोट का 'सैन्यवाद' (Militarism) सशस्त्र राष्ट्र के क्रान्तिकारी सिद्धान्त पर आधारित था। सैनिक केवल वेतन भोगी (Mercenaries) नहीं अपितु अपने लक्ष्य के सेवक (Missionaries) बन कर लड़ते थे। इस प्रकार की भावना के उदय होने पर इसमें क्या आश्चर्य है कि आक्रमणकारियों को फ्रांस की धरती से भगा दिया गया और युद्ध फ्रांस से हटकर नीदरलैंड्स, राइन के किनारे, सेवाय में और पिरेनीज के पार पहुँच गया। कार्नोट अपने कार्य में इतना सफल हुआ कि उसकी प्रसिद्ध उपाधि 'सुरक्षा का प्रबन्धक' से 'विजय का प्रबन्धक' बन गई।

Suggested Readings

Beesly — *Life of Danton*
Belloc H — *Life of Robespierre*
Belloc H — *Danton A Study*
Bradly E. D — *A Short History of the French Revolution*
Carlyle Thomas — *The French Revolution*
Chevallier J.J — *Mirabeau 1947*
Madelin L. — *Danton*
Mme Roland — *Memoirs*
Stern A — *Mirabeau*
Thompson J M — *Leaders of the French Revolution 1932*
Thompson J M — *Robespierre 1935*
Welch O J G — *Mirabeau 1951*

अध्याय ७

सचालक-पचायत (१७९५-९९)

(The Directory, 1795-99)

राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा बनाये गये १७९५ के सविधान के अनुसार देश के प्रबन्ध की सत्ता सचालक-पचायत (Directory) के हाथो म निहित कर दी गई जिसके पाच सदस्य थे। सचालक-पचायत ने चार वर्ष (१७९५ ९९) तक देश का कायभार सँभाला किन्तु सेनापति नेपोलियन ने इसे भग कर दिया। पच लोग मध्य श्रेणी के लोग थे और वे घूसखोरी और भ्रष्टाचार करने से सकोच नही करते थे। वे लोग समय की माँग के अनुसार न तो अपने आप को ही ऊचा उठा सके और न ही उस समय देश की जटिल समस्याओ को सुलझा सके।

सचालक-पचायत के प्रथम सचालक कार्नोट (Carnot) विजय का प्रबन्धक लटरनियर (Letourneur) एक इजीनियर लारेविलेरी (Larevellier) एक गिराण्डिस्ट रयुवल (Rewbell) एक जैकोबिन और बारास (Barras) थे। बाराम दक्षिण का रहने वाला था। १७८९ म उसे ससद के तीसरे विभाग का सदस्य चुना गया था। कालान्तर म वह एक अच्छा जकाबिन बन गया। इसने साहस करके रोब्सपायर का विरोध किया। १७९५ म इसने नेपोलियन बोनापार्ट को नियुक्त करके राष्ट्रीय सम्मेलन की रक्षा की। परिणामत उसे सचालक बना दिया गया। वह एक चतुर राजनीतिज्ञ सनकी नितान्त आचारहीन और पदलोलुप तथा सवदा ऋण म डूबा रहने वाला व्यक्ति था। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली तथा सुसभ्य था। वह पेरिस के विलासी समाज का अग्रणी था।

षडयन्त्र और कूटनीति (Plots and Intrigues)—सचालक-पचायत का काल देश म षडयन्त्रो और कूटनीति का काल है। राजशाही के समथक और प्रतिक्रियावादी लोग बहुत बडी सख्या म ससद के लिए चुने गए और ये लोग सरकार को *असफल बनाने के लिए तोड फोड करने मे तनिक भी सकोच नही करते थे। सरकार* केवल शक्ति प्रयोग के द्वारा ही उन्हे नियन्त्रण म रखती थी।

१७९६ के बेबुफ षडयन्त्र का उल्लेख इस प्रकार है कि अक्तूबर १७९५ म पथियन सोसायटी (Society of the Pantheon) के नाम म एक राजनीतिक क्लब की स्थापना हुई। इसम पुराने जकोबिन क्लब से बहुत से सदस्य आ गये और इसकी बठकें मशालो की रोशनी म हुआ करता था। यह एक ट्रिब्यून (Tribun) नाम की पत्रिका भी निकाला करते थे और इसका सम्पादन बेबुफ नाम का कट्टर विचारो का

आदोलनकर्ता करता था। सचालक-पचायत ने फरवरी, १७९६ मे इस सभा के विरुद्ध कारवाई की और सेनापति बोनापार्ट ने स्वय इसके सम्मेलन-स्थान का बन्द करके सभा को भग कर दिया। किन्तु सदस्यो ने इसका बदला ६ सदस्यो की एक गुप्त सचालन समिति की स्थापना करके विद्रोह की तयारिया करके दिया। इसका ध्येय १७९३ म जैकोबिन दल द्वारा बनाये गए सविधान को जिसे स्वीकार करके भी लागू नही किया गया था, देश पर लागू करना था। उसका उद्देश्य क्रांति आन्दोलन को पूर्वकालीन सिद्धान्तवाद और स्वच्छता तथा लक्ष्य के प्रति लगन के आधार पर पुनर्जीवित करना था। उनका ध्येय देश म समान-अधिकार गणतन्त्र (Republic of Equals) की स्थापना करना था। इसका दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य गरीब और अमीर का भेद भाव समाप्त कर देना था। इनका प्रोग्राम अपने सदस्यो को सेना पुलिस और शासन यन्त्र म घुसेड कर प्रचार करना था। अस्त्र शस्त्र इकट्ठे किये गये। यह निर्णय हुआ कि परिस के जिला के नागरिक सेना के विद्रोहियो का समर्थन करने के लिए ध्वज के पीछे चलें। सत्ता को हस्तगत करने के पश्चात् गुप्त सचालन समिति देश की बागडोर उस समय तक सभाल रहे जब तक देश मे पूर्ण वैधानिक सरकार की स्थापना न हो जाय। किन्तु इस आन्दोलन मे पुलिस के गुप्तचर आरम्भ से ही काय कर रहे थे। परिणामत विद्रोह होने के ठीक पहले ही नेताओं को पकड लिया गया और लोगो को शक्ति प्रयोग द्वारा भगा दिया गया। १७९७ म विद्रोहियो पर एक विशेष न्यायालय म मुकदमा चलाया गया। मुकदमा तीन महीने तक चला और इस अवसर पर बेबुफ ने सचालक-पचायत के शासन की बडे कठोर शब्दो मे घोर निन्दा की। बेबुफ को मृत्यु-दण्ड दिया गया किन्तु ध्येय की लगन के कारण लोगो ने उसकी प्रशसा की। यह ध्यान देने योग्य बात है कि आधुनिक साम्यवाद बेबुफ के सिद्धान्तो का अनेक बातो मे ऋणी है।

फ्रास की आर्थिक स्थिति (Finances of France)—सचालक-पचायत के शासन काल म देश की आर्थिक स्थिति बिगडने लगी। चारो ओर आचारहीनता फैली हुई थी। देश के व्यय मे घोर अपव्यय होता था। दस लाख सनिको की सेना की पूर्ति के लिए महान् धनराशि की आवश्यकता थी। परिस की जनता को देश के खर्चे पर रोटी दी जाती थी। राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा प्रचलित नोटों की स्थिति पहले ही असतोषजनक थी। मुद्राप्रसार (Inflation) की नीति के कारण परिस्थिति और भी खराब हो गई। इतनी अधिक सख्या मे नोट छाप गए कि इनका मूल्य गिर गया और हालत इतनी खराब हो गई कि ३०० लिवर के नोटो के बदले केवल एक सिक्का लिवर मिलता था। १७९७ म सरकार को आशिक रूप से दिवालियापन घोषित करना पडा। राष्ट्रीय ऋणो पर सूद देना रोक दिया गया और अन्तत नोटो का पूर्ण अवध घोषित करना पडा। स्पष्ट है कि ऐसी परिस्थिति म सरकार को और ऋण मिलना असम्भव था, इसलिए सचालक-पचायत द्वारा देश की आर्थिक अवस्था सँभालने म असमर्थ रहने के कारण जनता को घोर कष्ट सहना पडा और पचायत की बडी निन्दा हुई।

संचालकों और संसद के दोनों भवनों में परस्पर मेल नहीं था। सभाओं के एक तिहाई और पंचों में से एक पंच प्रत्येक वर्ष अवकाश प्राप्त करते थे। संचालक-पंचायत को न तो विधान सभाओं से और न मतदाताओं से कोई सहानुभूति थी।

धर्म की परिस्थिति भी विचारणीय थी। क्रान्तिकाल में स्थापित हुए वधानिक चर्च पूर्णतः लुप्त हो चुके थे। थियोफिलेंथ्रोपी नाम की एक नई धार्मिक विचारधारा थी किन्तु इसके भी बहुत अनुयायी नहीं थे। लोग अब भी बड़ी श्रद्धा से रोमन कैथोलिक धर्म में आस्था रखते थे।

तीन लाख से अधिक लोग देश छोड़ कर भाग गये थे। उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई थी। यहूदी से लोगों को भगोड़ा घोषित किया गया ताकि उनकी सम्पत्ति जब्त की जा सके। क्या आश्चर्य है कि उनके सम्बन्धियों ने इस प्रकार के अन्यायपूर्ण कार्यों के विरुद्ध आवाज उठाकर अशान्ति का उत्पन्न किया हो।

मार्च १७६७ में विधान-सभाओं के एक तिहाई सदस्यों के रिक्त स्थानों को भरने के लिए चुनाव हुए। चुनाव के परिणामों से उदार और जैकोबिन दल के विरोधियों की जीत स्पष्ट हो गई। संचालक झुकने को तैयार नहीं थे। उन्होंने हुश (Hoche) से हस्तक्षेप करने की अपील की किन्तु उसने ऐसा करने से मना कर दिया। उन्होंने नेपोलियन से कहा। उसने अपने अधिकारी आगरयू (Augereau) को आदेश पूर्ति के लिए भेजा। शक्ति प्रदर्शन भी काफी हुआ और कार्नोट को संचालक-पंचायत से हटा दिया गया। अनेक सदस्यों को कैद कर लिया गया। उसके पश्चात् १५४ सदस्यों के चुनाव को रद्द कर दिया गया।

विदेश नीति (Foreign Policy)—जिस समय संचालक-पंचायत ने कार्यभार संभाला उस समय भी फ्रांस आस्ट्रिया सारडीनिया और ब्रिटेन के साथ युद्ध करने में संलग्न था। युद्ध की मूल योजना यह थी कि फ्रांस की एक सेना रहायन नदी के पार जर्मनी में से होती हुई आस्ट्रिया पहुँचे और दूसरी सेना आल्प्स पर्वत को पार करके उत्तरी इटली से होती हुई वियाना पहुँचे। रहायन नदी वाली सेना मोरो जुआरडन और पिचुगरम जैसे महान् सेनानियों के नेतृत्व में थी। नेपोलियन को इटली की ओर जाने वाली सेना का नियंत्रण सौंपा गया। रहायन नदी की पार भेजी गई सेना ने कुछ विशेष कार्य नहीं किया किन्तु नेपोलियन ने आश्चर्यजनक सफलताएं प्राप्त की। नेपोलियन ने विद्युतगति से व्यक्तिगत वीरता द्वारा आल्प्स को पार किया। एक वर्ष में ही उसने पांच आस्ट्रियन सेनाओं को परास्त करके उत्तरी इटली के सारे दुर्गों पर अधिकार कर लिया। सारडीनिया वाले परास्त हुए और उन्हें नाईस और सवाय फ्रांस को देने पड़े। १७६७ में कम्पो फोर्मियो की सन्धि करके आस्ट्रिया ने नेपोलियन से संधि कर ली। इस संधि के अनुसार फ्रांस को आस्ट्रिया से आस्ट्रियन नीदरलैण्डज अर्थात् बेल्जियम और इयोनियन द्वीपसमूह प्राप्त हुआ। आस्ट्रिया को वेनिस का गणतन्त्र सौंप दिया गया और उसने यह स्वीकार किया कि वह इटली के अन्य प्रदेशों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। यह समझौता हुआ कि जिन जर्मन सामन्तों के रहायन नदी के बायें तट के प्रदेश फ्रांस ने छीन लिए हैं उनकी क्षति-

पूर्ति करने के उद्देश्य से पवित्र रोमन साम्राज्य के मानचित्र का पुनर्गठित किया जाए और इसके लिए एक सम्मेलन किया जाय। नेपोलियन की इटली पर विजय का तुरन्त परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के विरुद्ध प्रथम सगठन टूट गया। आस्ट्रिया और सारडीनिया दोनों ने सगठन छोड दिया और ग्रेट ब्रिटेन अकेला रह गया। दूसरा परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन को बडी शीघ्रता से प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वह फ्रांस की जनता की चर्चा का विषय बन गया और जब कि जनता उसकी प्रशंसा करती थी सरकार ऊपर से उसकी खुशामद करती किन्तु आन्तरिक रूप से वह उससे भयभीत हो गई थी।

सचालक-पचायत द्वारा देशवासियो के प्रति एक घोषणा प्रसारित हुई जिसमे डींग मारी गई कि 'आप लोगो को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि लाखो मनुष्यो को स्वतन्त्र कर दिया गया है और फ्रांस राष्ट्र मानवता का उपकार करने वाला है। यूरोप महाद्वीप मे अटल आधार पर शान्ति की स्थापना होगी। अब हम केवल लन्दन के विश्वासघातको को ही दण्ड देना बाकी रह गया है। वहा यूरोप भर के सारे अनाचार पनप रहे हैं और इन्हे समाप्त करना ही होगा।

१७९७ मे नेपोलियन को इगलण्ड पर आक्रमण करने के लिए बनाई गई 'इगलण्ड की सेना (Army of England) का सेनापति नियुक्त किया गया। १७९८ के आरम्भ मे उसने फ्रांस के तट का निरीक्षण किया और इस निर्णय पर पहुँचा कि फ्रांस और इगलण्ड की बीच की समुद्री गली को उस समय तक पार करना असम्भव है जब तक फ्रांस के पास शक्तिशाली समुद्री बेडा नही होता। किन्तु उसने ब्रिटिश साम्राज्य पर अन्य दिशा मे आक्रमण करने का निश्चय किया। उसने भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) को अपने सम्मुख खुला पाया और परिणामत १७९८ मे वह फ्रांस की एक सेना को मिस्र (Egypt) ले गया। उसका ध्येय ब्रिटेन के समुद्री बेडे का ध्यान भूमध्यसागर की ओर आकृष्ट करके सुअवसर पाकर इगलिश खाडी को पार करके इगलैण्ड पर आक्रमण करना था। उस मिस्र से भारतवर्ष जाकर वहाँ मराठो और सुलतान टीपू की सहायता से भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त कर देने की भी आशा थी। वहाँ से उसे ओटोमान साम्राज्य पर आक्रमण करके उसे समाप्त कर देने की भी सम्भावना प्रतीत हुई। नेपोलियन के दुर्भाग्य से उसकी सारी योजनाएँ रखी रह गई। १७९८ मे समुद्री सेनापति नेलसन ने उसका मिस्र तक पीछा किया और नील नदी के युद्ध मे उसे परास्त किया। मिस्र की प्रजा ने भी उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसकी सेना थकी थी और वह अकेला रह गया। नेपोलियन किसी प्रकार मिस्र से भागकर फ्रांस पहुँचा। समुद्र-तट पर जहाँ वह उतरा वहाँ से लेकर पेरिस तक जनता ने उसकी खूब सराहना की। जनता ने नेपोलियन की सफलताओं की सचालक-पचायत की असफलताओ से तुलना की और पचायत की घोर निन्दा की।

सचालक-पचायत का अपदस्थ होना (Overthrow of the Directory)—पेरिस आने के पश्चात् नेपोलियन एक नम्र अध्ययनशील नागरिक बन गया। पर

बार उसने मिस्र पुरातत्त्व अध्ययन संस्था (Egyptian Archaeological Institute) के सम्मुख एक अनुसंधान लेख पढ़ा। वह साधारण नागरिकों की भांति पेरिस की गलियों में घूमा करता था। इस प्रकार के व्यवहार से उसका लक्ष्य स्वयं को साम्राज्यों के दांव पर खेलने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं अपितु एक जिज्ञासु तथा शांति-व्यवस्था के प्रचारक के रूप में अपना प्रचार करना था। कई सप्ताह तक नेपोलियन ने देश में विशेषतः पेरिस में प्रचलित राजनीतिक प्रवाहों का गहन अध्ययन करके ही सन्तोष किया। अध्ययन करते समय वह किसी दल में नहीं मिला।

बहुत सोच विचार करने के पश्चात उसने पंचायत को उलटने के लिए एक साइयस के साथ षडयन्त्र रचा। ये दोनों षडयन्त्रकारी विचारों में एक-दूसरे से पूर्णतः भिन्न थे। नेपोलियन बोनापार्ट मूलतः क्रियाशील तथा तलवार के शासन में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। किन्तु ऐबे साईयस सत्ता को सन्तुलित रखने में विश्वास करने वाला दार्शनिक था। *किन्तु सचालक-पंचायत को उखाड़ने के ध्येय में दोनों* सहमत थे। यह कार्य निश्चित रूप से अत्यन्त कठिन कार्य था क्योंकि गणतन्त्रवाद देश में एक महान राजनीतिक शक्ति थी। जुर्दान (Jourdan) और मारयू (Moreau) जैसे सेनानायकों तथा पांच में से दो संचालकों की विचारधारा यही थी। विधानमण्डल के सदस्यों की बहुत बड़ी संख्या भी गणतन्त्रवाद की समर्थक थी। गणतन्त्र शासन प्रणाली को हटाने के उद्देश्य से होने वाली किसी भी क्रान्ति के सफल होने की बहुत कम आशा थी। यह सत्य है कि अगम्य कठिनाइयां थीं किन्तु नेपोलियन अपनी योजना को पूर्ण करने के लिए कटिबद्ध था। ६ और १० नवम्बर १७९९ को यह योजना पूरी की गई। पूर्वज सभा (Council of Ancients) ने ६ नवम्बर को एक आज्ञप्ति प्रसारित की कि षडयन्त्र के कारण विधान मण्डल सण्ट क्लाउड ले जाया जाय। नेपोलियन एक शानदार घुडसवार सेना का संचालन करता हुआ टुलरियस पहुँचा और वहां गणतन्त्र की रक्षा की शपथ ग्रहण की। उसके बाद उसने सचालक-पंचायत के सचिव से कहा जिस फ्रांस को मैंने इतना चमकता हुआ छोड़ा था उसको तुमने क्या कर डाला ? मैंने तुम्हारे लिए शान्ति की स्थापना की किन्तु मुझे युद्ध मिला। मैंने तुम्हें विजयी छोड़ा था किन्तु अब मुझे पराजय मिल रही है। मैंने तुम्हारे लिए इटली से आई हुई अपार धनराशि छोड़ी थी किन्तु मुझे अब घाटा और निर्धनता प्राप्त हुई। नेपोलियन के ये शब्द देश के कोने कोने में गूंजने लगे।

१० नवम्बर को सण्ट क्लाउड के महल में संसद का अधिवेशन हुआ। उन्होंने अपने को शोधित सेना से घिरा हुआ पाया। जब नेपोलियन प्रथम सदन में घुसा तो उसके विरुद्ध क्रोध का ज्वार उमड़ रहा था और उसे सदन से बेहोशी की हालत में बाहर ले जाया गया। ल्युसीन जो उस समय प्रथम सदन की अध्यक्षता कर रहा था उसके कारण नेपोलियन की जान बच गई। सैनिकों ने सदन को घेर लिया और सदस्य भाग निकले। समय के दोनों सदनों ने एक आज्ञप्ति द्वारा बोनापार्ट

साम्यम ग्रोर डयूकास की सदम्यता म एक छोटी-सी ममिति द्वारा ग्रस्थायी सरकार बना गी। एक महीने पश्चात जो नया मविधान बनाया गया उसम देश की सर्वोच्च मत्ता प्रथम सलाहकार (First Consul) के रूप म बोनापाट का सौंप दी गइ। नपोलियन न धाखे ग्रौर हिंसा द्वारा सचालक-पचायत का उलट दिया। उसके शब्दा मे यह मेरे जीवन का वह युग है जिसमे मैंन ग्रसम्भव योग्यता प्रदर्शित का है।

थामसन के ग्रनुसार यह षडयन्त्र इसलिए सफल हुग्रा क्याकि विधानमडल ग्रौर सचालक-पचायत जनता का ग्रादर ग्रौर विश्वास खो चुके थे ग्रौर सारी जनता ने परिम-प्रहित, बिना विराध के, जो तथ्य वास्तविक रूप से सम्पन्न हो चुका था उसे स्वीकार कर लिया।" (Europe Since Napoleon, p 28)

Suggested Readings

Thomson D	*The Babeuf Plot The Making of a Republican Legend 1947*
Thomson	*Europe Since Napoleon*

अध्याय ८

राष्ट्रों के सगठन

(The Coalitions)

प्रारम्भ मे यद्यपि ब्रिटिश सरकार और इग्लण्ड की जनता दोनों फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रति सहानुभूति रखते थे किन्तु क्रान्तिकारियों के अत्याचारों के कारण उनके इस रुख मे बड़ा तीव्र परिवर्तन आया। यह परिवर्तन लुई सोलहवें और सम्राज्ञी मेरी एन्टोइनट्टे की हत्या करने के पश्चात तो और भी अधिक हो गया। अत ब्रिटेन ने फ्रांस को परास्त करने के लिए चार सगठन बनाने का प्रयत्न किया और कुछ समय पश्चात यह प्रयास सफल भी हुआ।

प्रथम सगठन (The First Coalition) (१७९३ ९७)—ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री छोटे पिट की फ्रांस के प्रति निष्पक्षता की नीति की असफलता से प्रथम सगठन का जन्म हुआ। जब फ्रांस ने इग्लण्ड से युद्ध की घोषणा की तो पिट ने प्रशिया आस्ट्रिया रूस स्पेन हालैण्ड और सारडीनिया से परस्पर सहयोग देने की सन्धि कर ली। पिट का उद्देश्य यूरोप भर मे प्रचलित शासन प्रणाली को चुनौती देने वाले सब शत्रुओ विरुद्ध सारे यूरोप को सगठित करना था। उसकी योजना थी कि मित्रराष्ट्रो को खूब सहायता देकर यूरोप महाद्वीप की युद्ध की टक्कर लेने योग्य बना दिया जाय जिससे कि इग्लैण्ड का समुद्री बेड़ा समुद्रो पर अजेय बना रहे और फ्रांस के उपनिवेशो को जीता जा सके। आरम्भ मे ही मित्र राष्ट्रो ने यह निर्णय कर लिया था कि वे अपनी क्षति पूर्ति फ्रांस से कर लेंगे। यह युद्ध आत्म-रक्षा का युद्ध होने के साथ उपनिवेशवाद और लूटमार का युद्ध भी था।

आरम्भ मे मित्रराष्ट्र सारे मोर्चों पर विजयी हुए और फ्रांस की बुरी तरह हार हुई। १७९३ मे सैनिक दृष्टिकोण से फ्रांस की अवस्था बड़ी निराशाजनक थी। फ्रांस का चारो ओर से भय हो गया और देश के अनेक भागो मे विद्रोह होने लगे।

इस आपत्ति मे निपटने के लिए फ्रांस को अत्यन्त दृढता से काम करना पड़ा। जनसुरक्षा समिति की स्थापना की गई और उसे असीम अधिकार दिये गए। देश मे एक प्रकार का आतक राज्य स्थापित हुआ। यह सत्य है कि कहीं-कहीं देश मे व्यर्थ का रक्तपात भी हुआ किन्तु आतक राज्य का सही परिणाम यह हुआ कि देश मे विद्रोह को कुचल दिया गया। कार्नट डण्ट और सण्ट जस्ट के नेतृत्व मे समूचा फ्रांस राष्ट्र शस्त्र लेकर उठ खड़ा हुआ और इतनी भयकरता कट्टरपन तथा लगन से युद्ध हुआ कि मित्रराष्ट्रो को मार भगाया गया। फ्रांस ने बेल्जियम और हालैण्ड को विजय कर लिया। १७९५ की बसील की सन्धि के अनुसार प्रशिया और स्पेन सगठन

छोड़ गये। प्रतीत होता है कि यूरोप के राष्ट्र इस युद्ध में भाग लेने की अपेक्षा पोलैण्ड के बँटवारे में अधिक दिलचस्पी रखते थे। इस प्रकार की परिस्थिति में संचालक-पंचायत के शासन-काल में नेपोलियन को इटली भेजा गया। उसने आल्पस को पार करके अनेक टक्करों में आस्ट्रिया के पैर उखाड़ दिये। उसने सारडीनिया के सम्राट् को मित्र-संगठन छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया तथा नेपल्स और पोप के अन्य राज्यों को सिर झुकाने के लिए बाध्य कर दिया। नेपोलियन की सफलता के दो परिणाम हुए प्रथम स्पेन ने फ्रांस के साथ आक्रमण और सुरक्षा दोनों में साथ देने की संधि कर ली दूसरे स्पेन का समुद्री बेड़ा फ्रांस के हाथ आ गया। परिणामतः इंग्लैण्ड को मध्य महासागर को खाली करना पड़ा और वहाँ फ्रांस का प्रभाव स्थापित हो गया। पिट ने कई बार शान्ति का प्रस्ताव किया किन्तु संचालक समिति ने उसे ठुकरा दिया। १७९७ का वर्ष इंग्लैंड के लिए बड़ा कष्टमय था। तीन समुद्री बेड़े आक्रमण की धमकी दे रहे थे और आस्ट्रिया इस संघर्ष से निकल भागने की कोशिश में था। इंग्लैण्ड अकेला रह गया इससे देश में बड़ा असन्तोष और बेचैनी फैली। किन्तु इंग्लैंड की कुछ समुद्री युद्धों में विजय से कुछ परिस्थिति सँभली। केप सेण्ट विनिसेण्ट के युद्ध में स्पेन का बेड़ा परास्त हुआ। कॉम्पर-डाउन पर डच बेड़ा परास्त हुआ।

नेपोलियन से कई युद्धों में हार खाने से आस्ट्रिया में विमनता का भय हुआ, इस कारण उसने १७९७ में कम्पो फार्मीयो की संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि के अनुसार आस्ट्रिया ने फ्रांस को आस्ट्रियन-नीदरलैंड्स (बेल्जियम) दे दिया। उसने राइन के बाएँ तट पर भी फ्रांस का प्रभुत्व स्वीकार किया। उत्तरी इटली में आस्ट्रिया के प्रान्तों को फ्रांस के संरक्षण में एक सिस-एल्पाइन गणतन्त्र बना दिया गया। लगभग इन्हीं दिनों पुर्तगाल ने भी फ्रांस से संधि कर ली और इस प्रकार प्रथम मित्रराष्ट्रीय संगठन समाप्त हो गया। यूरोप महाद्वीप में फ्रांस के शत्रु समाप्त हुए और इंग्लैण्ड का कोई साथी नहीं रहा। इंग्लैण्ड को फ्रांस से युद्ध करने के लिए अकेला छोड़ दिया गया और दूसरी ओर संचालक-पंचायत ने इंग्लैण्ड पर आक्रमण की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। नेपोलियन को इस आक्रमण का सेनानायक नियुक्त किया गया, किन्तु १७९८ के आरम्भ में वह इस निर्णय पर पहुँचा कि बिना इंग्लिश खाड़ी को पार किये आक्रमण करना असम्भव है। इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने की योजना रद्द कर दी गई, किन्तु यह निर्णय हुआ कि ब्रिटिश साम्राज्य पर अन्य स्थानों से आक्रमण किया जाए और इस विचार को लेकर नेपोलियन १७९८ में मिस्र गया।

प्रथम संगठन की असफलता के कारण (Causes of failure of First Coalition)—यह प्रश्न उठता है कि प्रथम संगठन की असफलता के लिए कौन सी परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं? बड़ा आश्चर्य होता है कि दिवालिया तथा आंतरिक फूट से बिखरा हुआ फ्रांस समूचे यूरोप के आधे से अधिक शक्तिशाली राष्ट्रों को परास्त करने में सफल हुआ। यह एक ऐतिहासिक चमत्कार है। किन्तु संगठन की असफलता के कारण स्पष्ट हैं। संगठित राष्ट्रों में सामंजस्य नहीं था। उनमें परस्पर मतभेद थे और प्रत्येक राष्ट्र अपनी मनमानी करता था। उनके निजी स्वार्थ

न्न थे। इग्लैण्ड का लक्ष्य फ्रांस को नीदरलैण्ड्ज से निकाल कर उस प्रदेश को
आस्ट्रिया को देना था। किन्तु आस्ट्रिया नीदरलैण्ड्ज को प्राप्त करके उसका बवेरिया
तबादला करना चाहता था। ब्रिटिश सरकार इस प्रकार के तबादले को नही चाहती
। रूस और प्रशिया आस्ट्रिया की फ्रांस के विरुद्ध सहायता करने की अपेक्षा
लैण्ड के बटवारे में अधिक दिलचस्पी ले रहे थे। निस्सन्देह ध्येय की एकता न
ने से कार्य की एकता भी नही रही थी। पेरिस पर सम्मिलित चढाई करने की अपेक्षा
येक मित्र राष्ट्र फ्रांस के सीमान्त पर स्थित दुर्गों पर अधिकार जमाने में प्रयत्नशील
। ब्रिटिश डन्कर्क दुर्ग को प्राप्त करना चाहते थे इसलिए उन्होंने इस दुर्ग पर
ा डाला। आस्ट्रिया ब्रुसेल्स और लोरेन पर और प्रशिया पोलैण्ड पर आँखें
ाये राइन नदी के किनारे पर ही रहा। अपने अपने स्वार्थ के कारण मित्रराष्ट्र इस
भय के वास्तविक रूप और फ्रांस की ओर से आने वाले भय के महत्त्व को नही
चान पाये। उन्हे लगा कि फ्रांस इस समय क्रान्ति में उलझा हुआ है इसलिए उसे
ास्त करना सरल होगा। उन्होंने यह अनुभव नही किया कि इस समय वे बुरबोन
जशाही के विरुद्ध नही अपितु स्वतन्त्रता समानता और मित्रता के सिद्धान्तो से
रित और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए प्राण देने को तैयार सशस्त्र राष्ट्र
टक्कर ले रहे हैं। ये राष्ट्र अपने स्वार्थ और परस्पर की ईर्ष्या को छोड नही सके।

मित्र राष्ट्र स्वयं पोलैण्ड में शान्ति कराने के लिए संलग्न थे। १७६३ में
लैण्ड का दुबारा बँटवारा हुआ जिसमें रूस और प्रशिया ने अपना भाग लिया।
७६५ में शेष पोलैण्ड को रूस प्रशिया और आस्ट्रिया ने बाँटा और इस तरह पोलैण्ड
अस्तित्व समाप्त हो गया। इस काल में यूरोप की शक्तियों में पोलैण्ड के बटवारे
लिए आपस में होड लगी थी। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे से अधिक प्रदेश प्राप्त करने के
त्न कर रहा था। परिणामत सगठित राष्ट्रो की सेनाएँ निष्क्रिय हो गई और
ह सब मोर्चों पर परास्त होना पडा।

कार्नट ने अपने अद्भुत सैन्य-संचालन कौशल और दक्षता द्वारा राष्ट्र के
रे साधन जुटाये। आतंक राज्य ने देश में विरोध का नाश कर दिया। कायर वीर
 गए और देशद्रोहियों को भयभीत कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि
ुचा फ्रांस राष्ट्र बडी लगन से लडा और उसने मित्रराष्ट्रो को हरा दिया। फ्रांस
सेनापतियो को स्पष्टत बता दिया गया था कि उन्हे विजय प्राप्त करनी ही है
यथा उन्हे मृत्युदण्ड दिया जायगा।

नीदरलैण्ड्ज में ब्रिटेन की सेनाओ का सेनापति ड्यूक ऑफ यार्क था जो
ालकुल निकम्मा व्यक्ति था और इस प्रकार के व्यक्ति से अच्छे परिणामो की
ाई आशा नही की जा सकती थी। उसका युद्ध-कौशल इस प्रकार वर्णन किया
ाता है —

'बिचारा बुड्ढा ड्यूक ऑफ यार्क
दस हजार थी सेना पास।
कभी चढाता उन्हें चोटी पर
फिर उतार ले आता पास।"

द्वितीय संगठन (The Second Coalition) (१७९८-१८०१)—द्वितीय संगठन १७९८ के नील-युद्ध का सीधा परिणाम था जिसमें नेल्सन ने नेपोलियन को परास्त किया था। यूरोप की शक्तियाँ संचालक-पंचायत की आक्रामक नीति से बड़ी चिंतित थीं। अतः जब उन्हें यह सूचना मिली कि नेपोलियन मिस्र में अटक गया है तो उन्होंने कार्रवाई करने का निश्चय किया। १७९८ में दूसरा संगठन बनाया गया जिसमें इंग्लैंड, रूस, आस्ट्रिया, तुर्की और नेपल्स सम्मिलित हुए। इस संगठन का ध्येय पेरिस स्थित क्रांतिकारी सरकार को कुचल कर फ्रांस को उसकी प्राचीन सीमाओं में घुसा देना था। इस संगठन से प्रशिया अलग रहा। फ्रांस ने आस्ट्रिया से, अपने प्रदेश से सभी सेना को हटाने की माँग की और उसके मना करने पर युद्ध आरम्भ हुआ।

आरम्भ में परिस्थिति मित्र राष्ट्रों के अनुकूल प्रतीत हुई। आस्ट्रिया के आर्क ड्यूक चार्ल्स ने फ्रांस की एक सेना को हराकर राइन नदी के पार खदेड़ दिया। आस्ट्रिया और रूस की सम्मिलित सेना ने दो बड़ी लड़ाइयों में फ्रांस की सेना को बुरी तरह हराया। भूमध्यसागर में मिनोरका द्वीप पर अधिकार कर लिया और माल्टा पर घेरा डाल दिया गया। किन्तु १७९९ का वर्ष मित्र राष्ट्रों के लिए आपत्तिपूर्ण सिद्ध हुआ। फ्रांस ने अपनी स्थिति सँभाल ली। अंग्रेज परास्त हुए और उन्हें हालैण्ड खाली करना पड़ा। फ्रांस तत्कालीन खतरे से बच गया।

नेपोलियन मिस्र से लौटा। फ्रांस की जनता ने उसका बड़े उत्साह से स्वागत किया। वह संचालक-पंचायत को उलटने में सफल हुआ और १७९९ में स्वयं प्रथम सलाहकार (First Consul) बन बैठा।

नेपोलियन का पुनरागमन मित्र राष्ट्रों के लिए अत्यन्त चिंताजनक हुआ। रूस ने संगठन छोड़ दिया और जार पॉल इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया दोनों से बड़ा नाराज हुआ। जार यूरोप में फ्रांस को कुचलकर प्राचीन शासन प्रणाली स्थापित करना चाहता था किन्तु *आस्ट्रिया राइनलैण्ड को प्राप्त* करने का अधिक इच्छुक था। आस्ट्रिया के इस रुख से जार नाराज हो गया। इंग्लैंड से जार इसलिए नाराज हुआ कि वह आस्ट्रिया की नीति का समर्थन करता था। फिर बोनापार्ट का वह सम्मान करने लगा और परिणामतः इस संगठन से अलग हो गया।


जार तृतीय

बोनापार्ट ने इंग्लैंड के सम्राट को एक पत्र लिखा जिसमें उसने शान्ति की इच्छा प्रकट की। उसका आशय शांति का प्रस्ताव करके अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना था, क्योंकि फ्रांस युद्ध से थक चुका था। ब्रिटिश सरकार ने रोषपूर्ण उत्तर दिया और कहा कि शान्ति व्यवस्था का एक ही आश्वासन है कि फ्रांस में बुरबोन वंश के राज्य की स्थापना हो। इस पत्र के कटु शब्दों से फ्रांस की जनता में इंग्लैण्ड के प्रति और भी कटुता बढ़ गई तथा इससे नेपोलियन का कार्य पर्याप्त रूप में सफल हुआ। नेपोलियन ने मोरेयू के नेतृत्व में आस्ट्रिया के विरुद्ध एक सेना भेजी और स्वयं दूसरी सेना लेकर आस्ट्रिया के विरुद्ध बढ़ा। मोरेयू ने होहेनलिण्डेन (Hohenlinden) के स्थान पर एक शानदार विजय प्राप्त की और स्वयं नेपोलियन ने मारेंगो (Marengo) के युद्ध में आस्ट्रिया को परास्त किया। अन्य स्थानों पर भी फ्रांस की जीत हुई और १८०१ में आस्ट्रिया को लुनेविले की संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस संधि में कम्पो फोर्मीयो (१७९१) की संधि की शर्तों को पुनः पक्का किया गया। १८०१ के पश्चात् इंग्लैण्ड फिर अकेला रह गया। फ्रांस और इंग्लैण्ड दोनों युद्ध में थक चुके थे, १८०१ में शान्ति-संधि हुई। ऐमिन्स की संधि केवल युद्ध रोको प्रस्ताव सिद्ध हुई। १८०३ में दोनों देशों में युद्ध पुनः आरम्भ हो गया।

तृतीय संगठन (The Third Coalition) (१८०५)—पिट (Pit the Younger) ने तीसरा संगठन बनाया जिसमें प्रशिया आस्ट्रिया स्वीडन और इंग्लैण्ड थे। नेपोलियन लुनेविले-संधि की शर्तों की अवहेलना कर रहा था और स्विटजरलैण्ड जैसे पड़ोसी राष्ट्रों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप कर रहा था। नेपोलियन द्वारा ड्यूक ऑफ एन्घीन (Duke of Eughien) को उठा लेने और उसकी हत्या कर देने के कारण सारे यूरोप में नेपोलियन के विरुद्ध बड़ा रोष फैल गया था। इस घटना से फ्रांस और रूस के बीच सम्बन्धों में खिंचाव आ गया। नेपोलियन ने इंग्लैण्ड के अधिकार में आये हुए हनोवर प्रदेश को प्रशिया को देने का लालच दिया। अतः प्रशिया ने संगठन में शामिल होने से साफ इन्कार कर दिया क्योंकि वह इस चाल को समझ गया था।

तीसरे संगठन का ध्येय उत्तरी जर्मनी से फ्रांस की सेनाओं को निकाल देना हालैण्ड को तथा स्विटजरलैण्ड को स्वतन्त्रता दिलाना और सारडीनिया के राजा को पीडमौण्ट (Piedmont) दिलाना था। पहले के अनुसार इंग्लैण्ड ने मित्र राष्ट्रों को खुले हाथों सहायता देना स्वीकार किया। यह भी स्वीकार किया गया कि युद्ध के पश्चात यूरोप की सारी शक्तियों का एक सम्मेलन हो जिसमें राष्ट्रों के परस्पर व्यवहार के कानून बनाये जायें और एक यूरोपीय संघ (European Federation) बनाया जाए। किन्तु तीसरे संगठन का ध्येय फ्रांस की शासन प्रणाली को बदलना नहीं था।

नेपोलियन भी इंग्लैंड पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था और खूब जोरों से तैयारियाँ कर रहा था। इंग्लैण्ड-सेना के नाम से एक शानदार सेना इंग्लैण्ड पर आक्रमण के लिए सुसज्जित की गई और इसी ध्येय से तीन समुद्री बेड़े भी तैयार किये गये। इंग्लिश चैनल की नेलसन और कार्नवालिस रक्षा कर रहे गये थे।

कार्नवालिस द्वारा ब्रेस्ट का रास्ता सफलता से रोक देने से नेपोलियन की योजना में बाधा पड़ गई। इस बात का प्रयत्न किया गया कि नेल्सन से बिना लड़े ही इंग्लैण्ड



पिट दि यंगर

पर आक्रमण किया जाए। फिर भी १८०५ में ट्राफल्गार (Trafalgar) का युद्ध हुआ और फ्रांस को पूर्णत पराजित कर दिया गया। इस विजय से केवल इंग्लैण्ड की रक्षा ही नहीं हुई अपितु ब्रिटेन की समुद्री जल-सेना की समुद्र पर निर्विवाद रूप से अखण्ड सत्ता स्थापित हो गई।

यद्यपि नपोलियन समुद्र पर हार गया किन्तु थल पर उसने अपनी उच्च स्थिति का पूर्ण लाभ उठाया। आस्ट्रियन सेनापति को घेर लिया गया और उसे उल्म (Ulm) के स्थान पर शस्त्र-समर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया गया। उसने १८०५ में रूस और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेनाओं को आस्टरलिटज (Austerlitz) के स्थान पर अत्यन्त करारी हार दी थी। परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया ने संगठन छोड़ दिया और उसे प्रेसबर्ग (Pressburg) की संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार उसे फ्रांस को इटली प्रदेश को वेनिशिया (Venetia) तथा बवेरिया को टायरोल सौं-

पडा। पवित्र रोम साम्राज्य के दो राज्यों के शासकों को फ्रांस से मित्रता रखने के उपहार में आस्ट्रिया के प्रभाव से स्वतन्त्र कर दिया गया। रूस ने सहायता के लिए प्रशिया पर विश्वास किया था किंतु प्रशिया के सम्राट की अस्थिर नीति के कारण, ज़ार ने भी संगठन छोड दिया। प्रशिया ने फ्रांस से आक्रमण और सुरक्षा में साथ देने की संधि कर ली और इसके उपहारस्वरूप उसे होनोवर प्रदान किया गया। इस प्रकार तीसरा संगठन भी समाप्त हुआ और इसका प्रवर्तक पिट, आस्टरलिट्ज़ की हार की सूचना सुनते ही मर गया।

चतुर्थ संगठन (The Fourth Coalition) (१८१३)—१८१२ में नेपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण करने तथा पीछे हटने में उसकी सेनाओं के विनाश के पश्चात् १८१३ में चौथा संगठन बनाया गया। इस संगठन के प्रमुख सदस्य रूस प्रशिया और इंग्लण्ड थे। आस्ट्रिया बाद में आ मिला। इसका सारा व्यय इंग्लण्ड सहन करता था। यद्यपि मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ ड्रेसडन पर परास्त हुई किंतु अन्य स्थानों पर उन्हें विजय प्राप्त हुई। १८१३ में लिपज़िग के स्थान पर नेपोलियन की हार हुई। कालान्तर में नेपोलियन की शक्ति क्रमशः क्षीण होती गई और मित्रराष्ट्रों की स्थिति शक्तिशाली होती गई। परिणामतः १८१४ में उसे पूर्णतः परास्त कर दिया गया। १८१५ में वह फ्रांस लौट आया। वाटरलू के युद्ध में वह फिर हारा। इस प्रकार चतुर्थ संगठन नेपोलियन को पूर्णतः उखाड फेंकने में तथा बुरबोन वंश का राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

Suggested Readings

Kissinger H A *A World Restored Metternich Castlereagh and the Problems of Peace 1812 1822*

अध्याय ६

नेपोलियन बोनापार्ट (१७६६-१८२१)

(Napoleon Bonaparte, 1769 1821)

नेपोलियन विश्व में उत्पन्न सर्वश्रेष्ठ सेनानियों में से एक था। उसने अपने युग पर शासन किया और उसका नाम केवल फ्रांस या यूरोप के इतिहास में ही नहीं अपितु विश्व के इतिहास में अमर है। वह महान शक्तिशाली आत्मविश्वासी निर्भीक और साधन-सम्पन्न व्यक्ति था। वह भाग्य में विश्वास करने वाला व्यक्ति था, क्योंकि बाल्यकाल से ही उसे यह विश्वास था कि कोई गुप्त-शक्ति ही उसे विजय और सम्मान प्रदान कर रही है। उसमें अपने अनुगामियों को प्रेरणा देने की क्षमता थी। वह अपने सैनिकों से प्रेम करता था और वे भी प्रतिदान में उसे प्रेम करते थे। उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। कहा जाता है कि उसे अपनी सेना की टुकड़ियों और सैनिकों के नाम कण्ठस्थ थे।

किंवदन्ती है कि नेपोलियन ने कहा था कि 'मैं उस समय उत्पन्न हुआ था जब मेरा देश मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। तीस हजार फ्रांसीसी हमारे समुद्र-तट पर जबरदस्ती स्वतन्त्रता के सिंहासन को लहू के समुद्र में डुबाये दे रहे थे। इस प्रकार के घृणित दृश्य मुझ बालक की आँखों द्वारा देखे नहीं गए।" १७६६ में फ्रांस ने जिनोआ से कार्सिका[1] का द्वीप खरीदा तथा इसी द्वीप में आजासियो (Ajaccio) नामक स्थान पर इसी वर्ष की १५ अगस्त को नेपोलियन का जन्म हुआ। उसने फ्रांस में सैन्य शिक्षा ग्रहण की और १७ वर्ष की आयु में एक तोपखाने के अधिकारी के रूप में सेना में काम करने लगा। १७८६ में जब फ्रांस में क्रांति हुई, वह मुश्किल से २० वर्ष का था। दिसम्बर, १७६३ में अपने तोपखाने की क्षमता से संचालन करने के कारण उसने टूलान को पुनः प्राप्त कर लिया तथा विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। इस विजय के पारितोषिक-स्वरूप उसे ब्रिगेडियर जनरल का पद प्रदान किया गया। ५ अक्टूबर १७६५ को उसने राष्ट्रीय सम्मेलन के विरुद्ध सम्राट के समर्थकों का निर्दयता से विद्रोह कुचला। परिणामतः उसे देश में आन्तरिक सेना का सेनापति बना दिया गया। ६ मार्च, १७६६ को उसने जोसेफाइन से विवाह किया।

प्रथम संगठन के कारण जिस समय फ्रांस बड़ी कठिन परिस्थिति में फँसा था नेपोलियन को इटली के मोर्चे का सेनापति नियुक्त किया गया और इटली में ही उसने अपने प्रथम सैन्य यश की नींव डाली।

---

[1] १७[illegible] में रूसो ने लिखा 'मुझे ऐसा प्रेरणा हुई है कि यह छोटा-सा द्वीप (कार्सिका) एक दिन यूरोप को आश्चर्यचकित कर देगा।' यह कितना सत्य भविष्यवाणी था।

नेपोलियन का इटली पर अभियान अप्रैल १७९६ से अप्रैल १७९७ तक चला। इस इन शब्दों में अंकित किया गया है—'वह आया उसने देखा, उसने विजय पाई।' नेपोलियन को बड़ी कठिनाइयों के सामने लड़ना पड़ा। उसे आस्ट्रिया व सार्डीनिया की सेनाओं का मुकाबला करना पड़ा। उसके सिपाहियों की सेना कम ही नहीं थी बल्कि उनका सामान भी बहुत अपर्याप्त था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि नेपोलियन ने अपने शत्रुओं से अलग अलग मुकाबला करने का निश्चय किया और उन्हें एक होने की अनुमति नहीं दी। वह आस्ट्रिया वालों और सार्डीनिया वालों के बीच घुस गया और आस्ट्रिया वालों को हरा कर उन्हें पूर्व की ओर खदेड़ दिया। उसके बाद वह सार्डीनिया वालों की ओर मुड़ा और उन्हें हरा दिया। इस प्रकार उसने सार्डीनिया की राजधानी ट्यूरिन का मार्ग खोल दिया। सार्डीनिया की सरकार ने शांति की माँग की और सेवाय व नाइस फ्रांस को देने की शर्त मान ली। नेपोलियन ने अपने सिपाहियों के सामने अपनी सफलता को इन शब्दों में व्यक्त किया—"पन्द्रह दिनों के भीतर तुमने छः विजयें पाई हैं, इक्कीस प्रकार के झंडे पचपन प्रकार की तोपें और अनेकों दुर्गों को प्राप्त किया है और पीडमांट के सर्वोत्तम भागों को जीता है। तुमने १५०० लोग कैदी बनाये हैं और १०००० व्यक्तियों को मारा या घायल किया है। लेकिन ए सिपाहियो तुम ने कुछ नहीं किया है क्योंकि अभी तुम्हारे लिए करने को बहुत कुछ शेष है। तुम्हें अभी और लड़ाइयाँ लड़नी हैं नगरों को पाना है और नदियों को पार करना है।

सार्डीनिया की पराजय के बाद नेपोलियन ने अपना ध्यान आस्ट्रिया की ओर बढ़ाया। उसने पो नदी को पार किया तथा आस्ट्रिया के कमाण्डर ब्यूला (Beau lieu) ने अड्डा नदी को पार कर लिया। अब लोदी का पुल पार किये बिना *नेपोलियन किसी भी प्रकार आस्ट्रिया के उस कमांडर को पराजित नहीं कर* सकता था। यह पुल ३५० फीट लम्बा था और आस्ट्रिया वालों की ओर से होने वाली तेज गोलाबारी के कारण उसे पार करना व्यावहारिक दृष्टि से असंभव था। *नेपोलियन ने अपने तोपचियों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी लेकिन वे आधी दूर भी* नहीं पहुँच पाए थे कि उन्हें आस्ट्रिया की गोलाबारी ने हिला दिया और वे लौटने लगे। नेपोलियन व अन्य सेनानियों ने टुकड़ी की ओर बढ़ना शुरू किया। अपनी *जानों को संकट में डाल कर उन्होंने अपने सिपाहियों का उत्साह बढ़ाया फल यह हुआ कि उन्होंने आस्ट्रिया वालों की युद्ध सामग्री पर कब्जा कर लिया। तब नेपो*लियन ने डायरेक्टरी को यह शब्द लिख कर भेजे "उन समस्त क्रियाओं में जिनमें मेरे आधीन सिपाहियों ने *भाग लिया है उसमें लोदी के पुल को पार करने वाली घटना* के समान अन्य कोई नहीं हुई।" तब उसके सिपाही नेपोलियन को लिटिल कारपोरल कहने लगे।

जब आस्ट्रिया वाले मन्टुआ (Mantau) के दुर्ग में जा छिपे तो नेपोलियन ने उसका घेरा डाल दिया। जून १७९६ व अप्रैल, १७९७ के बीच में आस्ट्रिया वालों ने अपने मन्टुआ में घिरे हुए कैदियों को सहायता पहुँचाने के चार प्रयत्न किए।

लेकिन उन्हें नेपोलियन ने बेकार कर दिया। वह शत्रुओं को मिलकर एक होने से पहले ही टुकड़ों में पराजित करने की नीति पर चलता रहा। उसने सदैव यही नीति अपनाई कि शत्रु पर तभी आघात करो जबकि वह बँटा हुआ हो। विलक्षणतापूर्ण गमनों की नीति से उसने इसे पूर्ण किया। उसके सिपाहियों ने यह ठीक ही कहा था कि "हमारी टांगों से उसे विजय प्राप्त होती है।" उसने अपनी सेनाओं को कभी आगे कभी पीछे ऐसे किया जैसे वह कोई खेल की चिड़िया हो। अपने शीघ्र आन्दोलनों से उसने अपनी कम संख्या की त्रुटि दूर की। उसके शत्रु भी उसकी सफलता के लिए उत्तरदायी थे क्योंकि उन्होंने अपनी सारी सेनाएँ एकदम संग्राम-क्षेत्र में नहीं रखीं। आरकोला (Arcola) पर तीन दिन तक युद्ध चलता रहा। यहाँ भी विजय पुल पर अधिकार जमा लेने पर आश्रित थी। पुल ने ही आस्ट्रिया के विभाजन को बना रखा था। यदि वे पुल को अपने आधीन कर पाते, तो आस्ट्रिया की सेनाएँ नेपोलियन के विरुद्ध मिलकर लड़ सकती। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। नेपोलियन ने अपने कर्मचारियों के साथ झण्डा छीन लिया और आगे बढ़ा। आस्ट्रिया वालों ने उन पर गोली चलाई। आस्ट्रिया वालों ने बहुत से फ्रांस के अधिकारियों को मार दिया फिर भी उन्होंने अपने सेनापति का साथ नहीं छोड़ा और उसे उसके हाथों व वस्त्रों के साथ खींच लिया। नेपोलियन कीचड़ में गिर गया और उसकी साँस टूटने लगी। फौरन शोर मच गया 'जनरल को बचाने' के लिए आगे बढ़ो। फल यह हुआ कि फ्रांस वालों ने अपनी सारी शक्ति से चोट की और आस्ट्रिया वालों को पीछे हटाकर अपने नेता को बचा लिया। नेपोलियन की सेना को सफलता मिली तथा आस्ट्रिया वाले वापस लौट गए। आरकोला का युद्ध १५ नवम्बर से १७ नवम्बर १७९६ तक चला।

दो मास बाद आस्ट्रिया की एक अन्य सेना ने मंटुआ की सहायता पहुँचाने का प्रयत्न किया और तब रिवोली पर दूसरा निर्णायक युद्ध हुआ। १४, १५ जनवरी १७९७ को नेपोलियन ने आस्ट्रिया वालों को बड़ी आघातपूर्ण पराजय पहुँचाई। उस पराजय के दो सप्ताह बाद मंटुआ ने हथियार डाल दिए। नेपोलियन एल्पस तक बढ़ गया और आस्ट्रिया वाले पीछे हट गए। ७ अप्रैल १७९७ को वह ल्यूबन (Leuben) पहुँचा जो वियाना से लगभग १०० मील दूर है। इस स्थल पर आस्ट्रिया ने शान्ति की माँग की। नेपोलियन काफी प्राप्त कर चुका था। वह १८ बड़े व ६५ छोटे युद्ध लड़ चुका था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि एक सैनिक विज्ञप्ति में उसने कहा "इसके अतिरिक्त तुम पेरिस को लाख-लाख से ३०,००,००० फ्रैंक भेज चुके हो। तुमने पेरिस के संग्रहालय को प्राचीन व आधुनिक इटली की ३०० अद्भुत कलाओं की वस्तुओं से भर दिया है जिनके बनाने में ३० युग लगे थे। तुमने यूरोप के सबसे अधिक सुन्दर देश को पा लिया है। सबसे पहली बार एड्रियाटिक की सीमाओं पर फ्रांस का ध्वजा फहराई गई है।"

यह देखने योग्य बात है कि अपने सारे इटली के अभियान में नेपोलियन बोनापार्ट ने इस प्रकार काम किया जैसे वह फ्रांस का प्रधान हो। कभी-कभी उसने डायरेक्टरी का परामर्श माना लेकिन प्रायः उसे ठुकरा दिया। इटली में अपने

है। किंतु उसने यह सोचा कि ब्रिटिश साम्राज्य संसार के अनेक भागों में फैला हुआ है और किसी अन्य स्थान से इस पर आक्रमण करके साम्राज्य को चोट पहुँचाई जा सकती है। इन परिस्थितियों में नेपोलियन ने मिस्र पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसकी योजना थी कि मिस्र की विजय करने के पश्चात् वह मराठों और सुल्तान टीपू की सहायता से अंग्रेजों को भारतवर्ष से निकाल देगा। तुर्की भी दुर्बल हो रहा था इसलिए वह भी इसके आक्रमण सहन करने में असमर्थ था और उस पर विजय पाई जा सकती थी। उसने सोचा कि ब्रिटिश समुद्री बेड़े को चक्कर में डालकर अंधमहासागर में से जाकर इंगलैण्ड पर आक्रमण किया जाय।

नेपोलियन ने टयुलोन (Toulon) छोड़ा और मई १७९८ में मिस्र के लिए समुद्री मार्ग से उसने प्रस्थान किया। वह ब्रिटिश बेड़े से बचकर मिस्र पहुँचने में सफल हो गया। रास्ते में उसने माल्टा (Malta) को विजय किया। उसने परामिड (Pyramids) युद्ध को जीता जिससे वह नील के मैदान का स्वामी बन बैठा। किन्तु १७९८ में सेनापति नेलसन (Nelson) ने उसे नील (Nile) नदी के युद्ध में बुरी तरह हराया। फ्रांस का समुद्री बेड़ा पूर्णतः नष्ट कर दिया गया और नेपोलियन का फ्रांस से यातायात का सम्बन्ध पूर्णतः छिन्न भिन्न हो गया। उसने सीरिया पर आक्रमण किया किन्तु आक्रे (Acre) को विजय नहीं कर पाया। किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से १७९९ में वह फ्रांस पहुँच गया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि पंचायत के संचालकों ने फ्रांस का शासन सफलता से नहीं किया अतः देश में उनके विरुद्ध बड़ा क्षोभ फैल गया था। नेपोलियन ने इस स्थिति का लाभ उठाया और ९ नवम्बर १७९९ को साइयस (Sieyes) की सहायता से संचालक पंचायत को उलट दिया। इस घटना को ब्रूमेयर (Brumaire) का आठवाँ सशस्त्र षडयन्त्र (Coup d etat of VIIIth) कहा जाता है।

प्रथम सलाहकार के रूप में नेपोलियन (Napoleon as First Consul) (१७९९-१८०४)—संचालक पंचायत की समाप्ति पर १७९९ में फ्रांस का नया संविधान बना। इस संविधान के अनुसार देश के कार्यमण्डल की सत्ता तीन सलाहकारों के हाथों में सौंपी गई जिन्हें विधानमण्डल दस वर्ष के लिए चुनता था। इन तीन सलाहकारों में एक प्रमुख सलाहकार होता था। इस प्रथम सलाहकार को लगभग सम्पूर्ण सत्ता प्राप्त थी। केवल यह व्यक्ति ही देश में कानून लागू कर सकता तथा समूचे देश के सारे नागरिक अथवा सैनिक और पदाधिकारियों को नियुक्त और पदच्युत कर सकता था। बोनापार्ट को प्रथम सलाहकार नियुक्त किया गया और उसने अपने [illegible] सहकारियों साइयस (Sieyes) और ड्यूकास (Ducos) को पदच्युत करके दो अन्य एम सलाहकार नियुक्त किये जिनमें विरोध करने का साहस हो नहीं था और इस प्रकार उसने अपनी शक्ति को ठोस बनाया। राज्य परिषद (Council of State) को कानूनों का मसविदा तैयार करने, साधारण विधेयक बनाने, कानूनों की व्याख्या करने तथा उच्च न्यायालय का कार्य करने का अधिकार

दिए गए। १०० सदस्यों की एक सभा (Tribunate) बनाई गई और उसे यह अधिकार दिया गया कि वह सरकार द्वारा भेजे गए विधेयकों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करे, किन्तु इसे विधेयकों में संशोधन करने का अधिकार नहीं था।

विधान-सभा ३०० सदस्यों की एक 'मूक-सभा' थी जो सरकार या राज्यसभा (Tribunate) अथवा राज्यसभा द्वारा भेजे गए कानूनों को बिना विवाद या विचार के स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती थी। सीनेट के ८० सदस्य थे जो जीवन भर के लिए सदस्य बना दिये गए थे और उन्हें अपदस्थ नहीं किया जा सकता था। सीनेट सलाहकार (Consuls) ट्रिब्यूनेट और विधान सभा बनाती थी। संविधान के प्रतिकूल किसी भी कानून को रद्द करने का इसे अधिकार प्राप्त था। सिद्धान्त रूप से देश में वयस्क मतदान का विधान किया गया किन्तु वास्तविक रूप से सार्वजनिक मतदान को अक्रियात्मक बना दिया गया था। प्रत्येक कम्यून के निर्वाचित सदस्य अपनी संख्या के दशमांश सदस्य चुनकर एक 'कम्यूनल लिस्ट' बनाते थे। कम्यूनल लिस्ट के सदस्य अपनी संख्या के दशमांश चुनकर 'डिपार्टमेण्टल लिस्ट' बनाते और डिपार्टमेण्टल लिस्ट के सदस्य अपनी संख्या के दशमांश सदस्य चुनकर एक 'राष्ट्रीय लिस्ट' बनाते थे। स्थानीय पदाधिकारियों को प्रादेशिक सूची से चुना जाता था तथा राष्ट्रीय लिस्ट अथवा सूची से सीनेट ट्रिब्यूनेट और विधान-सभा के सदस्यों को चुनती थी। डिपार्टमेण्टों के प्रमुख प्रिफेक्ट होते थे और कम्यूनों के प्रमुख मेयर होते थे। इन दोनों पदाधिकारियों की नियुक्ति प्रमुख सलाहकार करता था। स्पष्ट है कि १७९९ का संविधान केवल धोखा-मात्र था। जनतन्त्र का ढाँचा केवल जनता को भ्रम में डाले रखने के लिए बनाये रखा गया था, किन्तु सारी वैधानिक सत्ता प्रमुख सलाहकार के हाथों में सौंप दी गई थी। देश में एक पूर्णतः केन्द्रीय तथा अत्यन्त स्वेच्छाचारी शासन-प्रणाली स्थापित कर दी गई थी। कहा जाता है कि जब संविधान की घोषणा हुई तो किसी स्त्री ने अपनी पड़ोसिन से पूछा, 'मैंने तो एक शब्द भी नहीं सुना। संविधान में क्या है?' उत्तर मिला, 'वहाँ बोनापार्ट है।'



नेपोलियन बोनापार्ट

१८०२ में नेपोलियन को जीवन भर के लिए प्रमुख सलाहकार नियुक्त किया गया और उसे यह भी अधिकार दिया गया कि वह अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त

करेगा। ट्रिब्यूनेट के प्रस्ताव को सीनेट ने स्वीकार किया और १८०४ में नेपोलियन सम्राट बना दिया गया। इस प्रस्ताव पर सार्वजनिक मतदान लिया गया और लगभग ३० लाख ५० हजार मतो के बहुमत से यह प्रस्ताव देश ने स्वीकार किया। पोप स्वयं २ दिसम्बर, १८०४ को पेरिस आया और नेपोलियन को शाही तलवार और राज-दण्ड का अधिकार प्रदान करके उसका अभिषेक किया। किन्तु जब पोप उसके सिर पर मुकुट रख रहा था, उसने उसके हाथ से मुकुट लेकर स्वयं ही पहिन लिया।

प्रमुख सलाहकार के रूप मे नेपोलियन का कार्य (Work of Napoleon as First Consul)—नेपोलियन की प्रतिष्ठा मुख्यत उसकी सैनिक सफलताओ के कारण थी किन्तु प्रमुख सलाहकार के रूप मे उसने बहुत से सुधार किये जिनके कारण वह अमर हो गया। ठीक ही कहा जाता कि यदि नेपोलियन की विजय अल्प जीवी थी, तो उसके नागरिक सुधार के कार्य की नीव चट्टान पर खडी की गई थी।

(१) नेपोलियन ने स्थानीय प्रशासन की सारी व्यवस्था को केन्द्रित कर दिया। १८०० मे उसने तमाम प्रादेशिक प्रशासन अपने अधिकार म कर लिया। डिपार्टमैंटो और अरोण्डिस्मेण्टो (Arrondissements) की निर्वाचित सभाओ के सारे अधिकार नेपोलियन द्वारा नियुक्त तथा उसके प्रति उत्तरदायी प्रिफेक्ट और उप प्रिफेक्टो के हाथो सौंप दिये गये थे। स्थानीय सभाओ को बनाये रखा गया किन्तु वे वर्ष म केवल राजस्व का अनुमान तथा दर निर्धारित करने के लिए १८ दिन के लिए बैठती थी। ये सभाएँ प्रिफक्टो और उप प्रिफक्टो की सलाहकार समितियो के रूप मे काम करती थी। छोटी छोटी कम्यूनो के मेयर प्रिफेक्ट नियुक्त करत थे, किन्तु जिनकी जनसख्या १ लाख स अधिक होती थी उनके मेयर की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करती थी। स्थानीय प्रशासन की इस व्यवस्था से केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रसारित सारे कानून और आज्ञाए समान रूप से सब जगह शीघ्रता स लागू होने की सम्भावना प्रकट की गई।

नेपोलियन ने राष्ट्र के सचिवालय का भी विकास किया। इसने सैक्रेटरी के नियन्त्रण म राज्य-मन्त्रालय बनाया जो देश का केन्द्रीय लेखा कार्यालय बन गया। इससे नेपोलियन प्रत्येक विभाग के कार्यों की देखभाल कर सकता था अत किसी भी मन्त्रालय का सामूहिक उत्तरदायित्व नही रहा। राजस्व और करो के अनुमान लगाने और उगाही करने के लिए केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की गई। करो की उगाही करने वालो को अनुमानित कर का थोडा-सा भाग पेशगी जमा करना पडता था। ये सुधार प्राचीन शासन (Ancien Regime) के एक अर्थव्यवस्था विशेषज्ञ गावडिन (Gaudin) का कार्य था। १८०० के समाप्त होते होते कर की उगाही सम्पूर्ण हो चुकी थी।

हैरोल्ड के विचार म वह पूर्ण निर्भीकता जिससे उस नौजवान और गैर-अनुभवी सैनिक अधिकारी ने अपने को उन समस्याओ से ग्रस्त किया जो देखने म

एक व्यक्ति की शक्ति से परे थी, यह सब नेपोलियन के मस्तिष्क के वीर तत्वों का लक्षण प्रस्तुत करना है। इसमें हरकुलीज जैसा गुण निहित है। उदाहरण के लिए यह सोचिए कि कैसे ३० वर्षीय फर्स्ट कौंसुल ने अपनी सत्ता को पाये हुए कुछ ही दिनों में ऐसा सविनय प्रशासन स्थापित कर दिया जिसने ऐसी स्थायी व्यवस्था का प्रमाण दिया जो फ्रांस ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में कभी नहीं देखा था। ऐसे लोग भी हैं जो नेपोलियन को केवल एक मजबूत व्यक्ति, एक सैनिक तानाशाह की तरह देखते हैं और उन्होंने उसकी ऐसी प्रशंसा की है जैसे हरकुलीज का उसकी बुद्धि की जगह उसकी बाँहें देखकर सम्मान किया जाता है। फिर भी अपवादजनक मानसिक शक्तियों की आवश्यकता एक साधारण पर उत्साही योजना की रचना के हेतु होती है जैसा कि हरकुलीज ने आजियन के अस्तबलों को साफ करने की रीति निकाली थी। किसी एप्रोवेल्वरल कालेज का स्नातक इसके विषय में कभी सोच नहीं पाता। सिकन्दर ने महान् गुत्थी को सुलझाने का जो उपाय किया वह शायद भद्दा मालूम हो अरस्तू ने कभी भी उसे यह युक्ति नहीं सिखाई किन्तु शायद उसने डायाजीन्स, महान् साधारणता प्रेमी सिनिक, से यह शिक्षा ग्रहण की। (The Mind of Napoleon, p XVIII)

(२) नेपोलियन ने देश की आर्थिक अवस्था को भी सुधारने का प्रयत्न किया। बड़ी सावधानी से करों की उगाही करके उसने राष्ट्र के धन को बढ़ाया। कठोर मितव्ययिता करके भ्रष्ट अधिकारियों को कड़ा दण्ड देकर और अन्य राष्ट्रों को फ्रांस की सेनाओं का भार उठाने के लिए बाध्य करके, नेपोलियन ने देश का खर्चा कम किया। १८०० में उसने 'बैंक ऑफ फ्रांस' की स्थापना की जो विश्व की सबसे ठोस आर्थिक संस्था थी।

(३) नेपोलियन ने शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत से सुधार किये। प्रिफेक्ट या सबप्रिफेक्ट के नियन्त्रण में सब कम्यूनों का प्राथमिक स्कूल चलाना अनिवार्य था। दूसरे फ्रेंच भाषा, लैटिन भाषा और मौलिक विज्ञान की शिक्षा के लिए विद्यालय स्थापित किये गए। यद्यपि ये विद्यालय जनता अथवा सरकार द्वारा खोले हुए थे परन्तु नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार के हाथ में था। सभी महत्वपूर्ण नगरों में महाविद्यालय (Lycees) खोले गये जहाँ सरकार द्वारा नियुक्त शिक्षकों द्वारा उच्च शिक्षा दी जाती थी। विशेष प्रकार के विद्यालय यथा औद्योगिक, प्रशासनिक तथा सैनिक विद्यालय इस प्रकार की शिक्षा के लिए खोले गए जो सीधे केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में थे। फ्रांस के विश्वविद्यालय (University of Franc-) की स्थापना देश में शिक्षा-व्यवस्था में समानता रखने के लिए की गई थी। इसके प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति प्रमुख मजिस्ट्रेट करता था। बिना विश्वविद्यालय के प्रमाण-पत्र के किसी को भी नया विद्यालय खोलने अथवा सार्वजनिक रूप से शिक्षा देने का अधिकार नहीं था। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए एक नार्मल विद्यालय (Normal School) खोला गया। प्रत्येक शिक्षा-संस्था को ईसाई धर्म के सिद्धान्त देश के प्रमुख के प्रति भक्ति और विश्वविद्यालय के आदेशों को शिक्षा के मूल आधार मानने पड़ते

थे। राज्य द्वारा बालकों को पाठ्यक्रम में दिये गए प्रश्नोत्तर के एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि देश की सन्तान को किस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी—

प्रश्न—प्रत्येक ईसाई का अपने शासकों के प्रति क्या कर्त्तव्य है? हमारे सम्राट नेपोलियन प्रथम के प्रति विशेषत हमारे, क्या कर्त्तव्य हैं?

उत्तर—प्रत्येक ईसाई का अपने शासकों के प्रति और हमारा विशेषत नेपोलियन प्रथम के प्रति यह कर्त्तव्य है कि हम उसे प्रेम आदर आज्ञापालन, स्वामिभक्ति, सैनिक सेवा अर्पण कर तथा साम्राज्य और राज्य सिंहासन की रक्षा के लिए लगाये गए करों को देना हमारा कर्त्तव्य है। सम्राट की रक्षा तथा उसकी धार्मिक और राज्य-सम्बन्धी प्रगति के लिए हार्दिक प्रार्थना करना भी हमारा कर्त्तव्य है।

प्रश्न—हम अपने सम्राट के प्रति इन कर्त्तव्यों से क्यों बँधे हैं?

उत्तर—प्रथम क्योंकि जो परमेश्वर साम्राज्य बनाता है और स्वेच्छा से इन्हें बाँटता है उसने सम्राट पर अपने आशीर्वादों की वर्षा की है और उसे हमारा सर्वेसर्वा नियुक्त किया है तथा अपनी प्रतिमूर्ति और अपनी शक्ति का प्रतीक बना कर भेजा है। इसलिए अपने सम्राट का सम्मान करना तथा उसकी सेवा करना परमेश्वर का आदर करना और उसकी सेवा करना है। दूसरे हमारे प्रभु ईसामसीह ने अपने उदाहरण तथा उपदेश से हमें शिक्षा दी है कि अपने सम्राट के प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं ईसा मसीह सीजर अगस्टस की आज्ञा मानता हुआ बड़ा हुआ और वह नियत कर देता रहा। उसने जिस श्वास में यह कहा था 'जो प्रभु की वस्तु है उसे प्रभु को दो', उसी श्वास में उस ने यह भी कहा कि 'जो सीजर की वस्तु है वह सीजर को दे दो।'

प्रश्न—क्या विशेष कारण हैं, जिनके लिए हमें अपने सम्राट नेपोलियन प्रथम के प्रति अधिक भक्त होना चाहिए?

उत्तर—हाँ, विशेष कारण यह है कि यह वह व्यक्ति है जिसे प्रभु ने कठिन समय में हमारे पूर्वजों के धर्म की पूजा को पुनःस्थापित करने के लिए भेजा और रक्षक बनाया। यही वह व्यक्ति है, जिसने अपनी कुशलता और बुद्धिमत्ता से देश में व्यवस्था की पुनःस्थापना की तथा उसे बनाये रखा है। वह अपनी बलवान् भुजाओं से देश की रक्षा करता है और विश्व के धर्म के प्रमुख पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न पोप द्वारा अभिषेक पाकर वह प्रभु का परम प्रिय पुत्र बन गया है।

प्रश्न—जो लोग हमारे सम्राट के प्रति अपने कर्त्तव्य पूरे करने में पीछे रहते हैं उनके विषय में क्या विचार रखे जायँ?

उत्तर—सन्त पाल के वचनानुसार वे स्वयं परमेश्वर द्वारा स्थापित व्यवस्था का विरोध करते हैं और अपने-आपको घोर नरक का भागी बनाते हैं।

प्रश्न—क्या सम्राट के प्रति हमारे कर्त्तव्य शाही संविधान में विहित व्यवस्था के अनुसार उसके कानूनी उत्तराधिकारी के प्रति भी उसी प्रकार लागू होंगे?

उत्तर—हाँ, निस्सन्देह रूप से, हमने पवित्र पुस्तक में पढ़ा है कि परमेश्वर स्वेच्छा से और अपने विधान के अनुसार अपने राज्य को केवल एक व्यक्ति का ही नहीं अपितु उनके परिवारों को भी प्रदान करता है।

१७६५ में इन्स्टीट्यूट दि फ्रांस की स्थापना हुई। नेपोलियन ने इसका समर्थन किया और भौतिक विज्ञानों, ललित कलाओं, गणित और साहित्य में इसके कार्यों की सराहना की गई। किन्तु वह आचार और राजनीतिक विज्ञान विषयों के अध्ययन को प्रोत्साहन नहीं देता था। जनवरी, १८०३ की एक आज्ञप्ति द्वारा नेपोलियन ने इन विषयों की शिक्षा देने वाले विभागों का दमन कर दिया।

(४) नेपोलियन ने देश में बहुत संख्या में सर्व-साधारण के लाभ के लिए इमारतें बनवाई। किन्तु इनके निर्माण पर उसने स्वयं अधिक धन व्यय नहीं किया। यह इसलिए हुआ कि उसने इन कार्यों के लिए युद्धबंदियों से बेगार ली। उसने यातायात और व्यापार के साधनों का देश में विस्तार किया। फ्रांस के महान राजपथ (Highways) नेपोलियन की ही देन हैं। १८११ में नेपोलियन २२९ बृहत् सैनिक राजपथ गिना जा सकता था, जो उसने स्वयं बनवाये थे। पेरिस से सीमान्त तक ३० राजपथ विभिन्न दिशाओं में फैले हुए थे। आल्प्स पर्वत पर से गुजरने वाली दो बड़ी सड़कों के कारण पेरिस का ट्यूरिन, मिलान, रोम और नेपल्स से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। बहुत संख्या में पुल बनाए गए। प्राचीन नहरों और जलाशयों की मरम्मत करा कर व्यवस्था को सम्पूर्ण कर दिया गया। दलदल से भरे इलाकों से पानी निकालकर उन्हें उपयोगी बना दिया गया। पानी के बाँधों को दृढ़ किया गया। महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहों को बड़ा करके व्यापार और युद्ध के बेड़े के दृष्टिकोण से उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया। ट्यूलान और शरबर्ग (Cherbourg) को विशेष रूप से सुदृढ़ बनाया गया।

(५) कोनकार्डेट (The Concordat) (१८०२)— चर्च के मामलों को सुलझाना एक कठिन कार्य था। उस युग में बुद्धिमान् वर्ग का यह रिवाज बन गया था कि धर्म को एक मूर्खतापूर्ण झूठ और चर्च को शोषण विशेषाधिकार और अस्पष्टता का प्रचार करने वाली संस्था समझने लग थे। पुजारियों को मृतवत् प्रथा पर जीवित रहने वाले, विदेशियों के मित्र और देशद्रोही माना जाता था। यह एक कारण था कि राष्ट्रीय विधान सभा द्वारा चर्च की सम्पत्ति जब्त कर ली गई और दल में नागरिक चर्च संविधान लागू किया गया। किन्तु ईमानदार और कट्टर कैथोलिकों ने शपथ लेने से मना कर दिया। परिणामतः बहुत अत्याचार हुआ। शपथ न लेने वाले पादरियों (non juring clergy) के अनुयायी सेना और धर्म में थे जब कि शपथ लेने वाले पादरी (juring clergy) खाली गिरजों का मान बढ़ाया करते थे। सरकार के लिए पादरियों का वेतन देना कठिन हो गया। कथानिक चर्च की मान्यता छीन ली गई और शासन धर्म सम्बन्धी मामलों में निष्पक्ष हो गया।

जब नेपोलियन प्रमुख सलाहकार बना देश में इस प्रकार की स्थिति वर्तमान थी। नेपोलियन का विचार था कि धर्म विश्व में मरणोन्मुख शक्ति नहीं है। उसने

पाया कि सारे कथोलिक चमत्कारों और सत्ता में आस्था रखते हैं। उसके विचार से दैवी शक्तियाँ किसानों और सैनिकों के जीवन का नियन्त्रण करती हैं अत उसने इन दैवी शक्तियों पर प्रभाव डालने और नियन्त्रण करने का निर्णय किया। धर्म और विज्ञान में दोनों को वह एक-सा स्थान न देता था। वह सामाजिक व्यवस्था का अगम्य रहस्य है। नेपोलियन स्वयं लिखता है कि वह रूएल के चर्च की घण्टियों की ध्वनि सुनकर प्रभावित हुआ और इस निर्णय पर पहुँचा कि जनता का धर्म होना ही चाहिए और यह धर्म सरकार के नियन्त्रण में हो। लोग कहेंगे कि मैं पोप का अनुयायी हूँ। किन्तु मैं कुछ नहीं हूँ। मिश्र में मैं एक मुसलमान था। यहाँ मैं जनता के हित के लिए एक कैथोलिक बन जाऊँगा। मैं किसी धर्म में नहीं अपितु ईश्वर में आस्था रखता हूँ। देश के पचास भगोड़े अंग्रेजों के वेतनभोगी धर्माचार्य फ्रांस के पादरियों के नेता हैं। उनका प्रभाव अवश्य नष्ट होना चाहिए और इसके लिए मुझे पोप की अनुमति चाहिए। नेपोलियन अपने को शार्लमेन्ने (Charlemange) का उत्तराधिकारी मानता था तथा वह पोप के अधिकार को केवल धर्म के मामलों तक ही सीमित कर देना चाहता था। पेरिस में पोप से विचार विमर्श हुआ और अगस्त १८०२ में कोनकार्डट स्वीकार हुआ। यह व्यवस्था १०३ वर्ष तक फ्रांस में शासन और चर्च के सम्बन्धों का नियन्त्रण करती रही।

कोनकार्डट (Concordat) के अनुसार पोप ने शपथ ग्रहण करने वाले पादरियों को मान्यता प्रदान की गिरजाघरों के नौकर चाकर कम कर दिये गए तथा क्रान्तिकारी अचल सम्पत्ति की व्यवस्था को मान्यता दी गई। देश में कथोलिक चर्च देश का मान्य धर्म माना गया। इससे सार्वजनिक उपासना के अधिकार प्राप्त हुए। धर्माचार्यों को पादरियों पर पूर्ण अधिकार दिया गया वे लोग सरकार के प्रति भक्ति की शपथ लेते थे और एक नियत वेतन प्राप्त करते थे। सारे धर्माचार्यों को अपनी विशेष भेंट छोड़नी पड़ी और अवज्ञा करने वालों को पोप अपदस्थ कर देता था। फ्रांस को ५० बिशप मण्डलों और १० मुख्य बिशप मण्डलों में विभाजित किया गया जिनके धर्माचार्यों को नेपोलियन मनोनीत करता था। मनोनीत व्यक्तियों का स्वयं पोप नियुक्त करता था। विशेष विधान-व्यवस्था (Organic Articles) द्वारा कथोलिक न्यायालय (Catholic Liturgy) की स्थापना हुई और पोप की निर्देश नामों तथा विशेष आदेशों को लागू करने के लिए सरकार की अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी। विवाह के लिए धार्मिक परिपाटी से पूर्व न्यायालय में विवाह (Civil marriage) करना आवश्यक था।

कानकार्डट की व्यवस्था की नीति के समर्थन में नेपोलियन ने कहा है बिना असमानता के समाज का रहना असम्भव है बिना सदाचार के नियमों के असमानता असम्भव है तथा बिना धर्म के सदाचार के नियम असम्भव हैं। धर्म में मुझे परमेश्वर के अवतार का रहस्य नहीं अपितु सामाजिक सुव्यवस्था दीख पड़ती है। जो लोग परमेश्वर में आस्था नहीं रखते उनपर शासन नहीं किया जाता अपितु उन्हें गोली मार दी जाती है। जनता को एक धर्म की आवश्यकता है इसलिए धर्म की व्यवस्था शासन के हाथों में होनी चाहिए।

मादल्म के मतानुसार "उसके प्रिफेक्टों व पुलिस की रिपोर्टों ने उसको यह अनुभव पक्का कर दिया कि धनी वर्ग व मनीषी वर्ग की चाहे सामान्य बुद्धि कुछ भी हो, कृषक लोग अब भी अपने चर्चों व पुरोहितों से अपना सम्बन्ध बनाये रखने पर जमे हुए थे। बुद्धिजीवी लोगों तक में धार्मिक संदेहवाद एक विवादहीन तथा चलन-युक्त सिद्धान्त नहीं रहा था। धार्मिक पुनर्जागरण एवं साहित्यिक रोमांची आन्दोलन और एक प्रतिक्रिया क्रान्तिकारी राजनीतिक सिद्धान्त के साथ, जो पुनःस्थापन के समय में अपनी चरम सीमा पर पहुँचा वह पहले ही से ज्ञान के वास्तविकवाद को चुनौती दे रहा था। बोनाल्ड, चत्युब्रियां व फान्तेन्स उस बुद्धिजीवी आन्दोलन के नेता थे जिसने क्रान्ति की अराजकता को धार्मिक विश्वास व सत्ता के पतन तक पहुँचाया। निर्वासित सामन्त वर्ग पहले ही से संदेहवाद का त्याग कर रहा था और धार्मिक कट्टरता की ओर लौट रहा था।

'पोप के साथ एक समझौता राजसत्तावाद व जैकोबिनवाद के बीच फूट डालता, प्रांत में ला वेंडे (La Vendee) को सन्तुष्ट करता और चर्च की भूमियों का क्रय करने वालों को पुनः विश्वास प्रदान करता। दरारदार संवैधानिक चर्च पर या प्रोटेस्टैंटवाद पर आश्रित समझौता ऐसा कोई लाभ प्रदान नहीं करता। पोप के साथ केवल एक व्यापक समझौता ही काफी था। जैसा कि नेपोलियन ने संकेत किया, 'इंग्लिश चैनल के पार पचास निष्कासित पादरी आजकल फ्रांस के पादरियों के नेता बने बैठे हैं। उनका प्रभाव नष्ट किया जाना चाहिए और इसके लिए मुझे पोप की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए।' नेपोलियन भी जानता था कि ऐसे समझौते का लाभ यह होगा कि फ्रांस का प्रभाव इटली, बेल्जियम व रहायन के प्रदेशों की कैथोलिक जनसंख्या पर पड़ेगा।"

इस समझौते के ऊपर जनरल डेल्मास ने यह भाव व्यक्त किया: 'एक उत्तम साधुवाली युक्ति—केवल एक ही वस्तु की हानि हुई—१०,००० व्यक्ति जिन्होंने उसकी मन्द के वास्ते अपने प्राण दिए।'

ब्रिण्टन के विचार में, 'स्थापना का सिद्धान्त जैसा तब था और अब अपने कई शत्रु रखता था, किन्तु यह झगड़ा करना कठिन है कि उस व्यवस्था जिसने कृषक वर्ग के भय का समाधान किया के मूल्य ने फ्रांस के चर्च को लाभ पाट दी और, गैर विधिवेत्ताओं की थोड़ी-सी संख्या को छोड़कर फिर उसने उस समय की मनोराग व कैथोलिक अन्तःकरण के बीच समन्वय स्थापित कर दिया। लेकिन यह बताया जाता है कि उन अत्याचारी पादरियों के विरुद्ध छोटे पादरी पोप से प्रार्थना कर सकते थे या बड़े पादरी सरकार के विरुद्ध। इस बात ने फ्रांस में गलिकन स्वतन्त्र शाखा के पतन व गरम-मार्टेनिज्म (Ultra montanism) का मार्ग खोल दिया।

यह बात उल्लेखनीय है कि कोनकार्डेट के होने पर भी नेपोलियन और पोप में दूर मनमुटाव पैदा हो गए। पोप को अपना शक्ति-क्षेत्र केवल धर्म और पादरियों के मामलों तक ही सीमित रखना पसंद नहीं था। उसे नेपोलियन-संहिता (Code Napoleon) का, जिसके अनुसार तलाक कानूनी था, इटली पर भी लागू होना

स्वीकार नहीं हुआ। उसने नेपोलियन की प्रार्थना को ठुकरा दिया और पिटरमन द्वारा जिरोम को तलाक देने की स्वीकृति देकर उसे यूरोप के किसी राजघराने में विवाह करने की अनुमति दे दी गई। नेपोलियन की यूरोप महाद्वीप की नीति पोप की क्षेत्रीय सर्वशक्तिमत्ता से मेल नहीं खाती थी। नेपोलियन द्वारा इटली के राज्य में मिला लिए गए बोलोग्ना और फिरारी के प्रदेशों को पुनः पोप को देने से मना कर दिया गया। पोप के अधिकृत प्रदेशों—पोंटे, कोर्वो और बिनिवेंटो—को नेपोलियन ने जब्त कर लिया। उसने १८०५ में अंकोना को छीन लिया और पोप को देने से मना कर दिया। १८०५ में पोप का झुकाव स्पष्टतः तीसरे संगठन (Third Coalition) की ओर था और उसने १८०० में जोसेफ बोनापार्ट को नेपल्स का राजा बनाने का विरोध किया। पोप ने १८०६ में नेपोलियन की इस माँग को भी ठुकरा दिया कि वह अपने राज्यों में से फ्रांस के शत्रुओं को निकाल दे तथा इन राज्यों की बन्दरगाहों को इंग्लैंड के व्यापार के लिए बन्द कर दे। अक्टूबर, १८०६ में पोप ने नेपोलियन के मनोनीत व्यक्ति को वेनिस का बिशप नियुक्त करने से मना कर दिया। १८०७ में फ्रांस की सेनाओं ने इटली का कुछ प्रदेश छीन कर अपने राज्य में मिला लिया। १८०८ में रोम पर अधिकार करने पर पोप के अधिकृत सारे राज्य वस्तुतः फ्रांस के प्रदेश बन गए। १८०९ में अपने महान पूर्वज शार्लमेन के दान को वापस छीन कर रोम को औपचारिक रूप से फ्रांस के साम्राज्य में मिला लिया। जून १८०९ में पोप ने नेपोलियन का बहिष्कार कर दिया और जुलाई १८०९ में पोप को बन्दी बना कर बन्दी-गृह में डाल दिया गया।

पोप ने फ्रांस के धर्माचार्य (Bishop) नियुक्त करने से मना कर दिया और नवम्बर १८०९ में नेपोलियन ने फ्रांस के लिए एक धर्म आयोग (Ecclesiastical Commission) बनाया। किन्तु आयोग ने नेपोलियन की इच्छा के अनुकूल कार्य करने से इनकार कर दिया। इसलिए जनवरी १८१० में इसे समाप्त कर दिया गया। फरवरी १८१० में सीनेट ने आज्ञप्ति निकाली कि सारे पोप अपने अभिषेक के समय तथा सारे धर्माचार्य, जो फ्रांस के साम्राज्य में हैं उन्हें गलेनियन आरटिकिल्स (Gallican Articles) स्वीकार करने पड़ेंगे। इस आज्ञा की अवज्ञा करने के कारण बहुत से पादरियों को कोर्सिका द्वीप में देश निकाला देकर भेज दिया गया। अगस्त १८११ में राष्ट्रीय सभा ने आज्ञा दी कि धर्माचार्यों के स्थान बारह महीने से अधिक समय तक रिक्त नहीं रहने चाहिएं। यदि पोप छः महीने की अवधि में धर्माचार्यों की नियुक्ति नहीं करता तो मेट्रोपालिटन (Metropolitan) को नियुक्ति का अधिकार दे दिया जाये। इस आज्ञा को वैध बनाने के लिए पोप की स्वीकृति अनिवार्य थी किन्तु पोप ने अनुमति देने से इनकार कर दिया। जून, १८१२ में पोप को फाउंटेनब्लू (Fontainbleau) लाया गया और जनवरी १८१३ में पोप ने नेपोलियन के साथ एक नया कोनकार्डेट किया जिसके अनुसार मेट्रोपालिटन (Metropolitan) को अधिकार दिया कि वह नेपोलियन द्वारा नियुक्त धर्माचार्यों को मान्यता दे सकेगा। पोप ने अपना निवास स्थान आविग्नोन (Avignon) बना कर और २० लाख

भत वार्षिक दर राजस्व लेकर अपने सारे प्रशासनिक और क्षेत्रीय अधिकार स्वत छाड दिये। किन्तु पोप न इस अनुबन्ध का विरोध किया और घोषणा की कि उसने बन्दी होने की अवस्था मे इस पर हस्ताक्षर किये थे। १८१४ में जब नेपोलियन ने अपनी स्थिति दुर्बल देखी तो उसने पोप का आस्ट्रिया को सौंप दिया जहाँ उसे मुक्त कर दिया गया। १८१४ मे पोप को पुन उसके पद पर बठा दिया गया।

(६) संहिताएँ (Codes) (१८०४ १०)—नेपोलियन के सारे कार्यों मे सबसे दीर्घजीवी काय कानून-संहिताएँ थीं। इन सहिताओं का निर्माण समितियों ने किया जिन्हें नेपोलियन न नियुक्त किया था और उसन स्वय इनके अनेक सम्मेलनों मे भाग लिया। उसन अपनी कुशाग्र बुद्धि और वधानिक सूझ द्वारा इन समितियो के काय में सहायता दी। यह कहना कि स्वय नेपोलियन का इन संहिताओं के बनाने का श्रेय है गलत होगा। हाँ इतना अवश्य है कि इन सहिताओं को व्यवस्थित करने तथा प्रयोग में लाने का श्रेय नेपोलियन को ही है। कुछ एक त्रुटियों को छोडकर य संहिताएँ सम्पूर्ण, सरल और न्याययुक्त थीं। इन सहिताओं ने क्रांति के काय को ठास बनाया, जिसके द्वारा एक ऐसे शासन की स्थापना हुई जिसमें भू-स्वामी वग का आधार, धम के अत्याचारों से अछूते नागरिक कानून अधिकतम समानता के आधार पर राजस्व और ऐसे कानून जिनके द्वारा, प्रत्येक मानव के समान अधिकार हैं, घोषणा की गई है, समान कानूनों की व्यवस्था जो सरल तथा क्रियात्मक रूप से शीघ्रता स काय करन वाली थी वास्तव म फ्रांस के लिए एक महान् वरदान थी।

इन संहिताओं के बनान में विधि विशेषज्ञों के सहयोग के विषय में नेपोलियन न कहा 'पहले मेरा यह विचार था कि कानूनों को ज्यामिति के सिद्धान्तों की तरह इतना सरल बना सकना सम्भव होगा कि जो भी इन्हें पढे और दो विचारो का सम्पर्क स्थापित कर इनके आधार पर न्याय कर सकेगा। किन्तु मुझे तुरन्त ही इस धारणा की मूर्खता का पता लगा। मैंन अनुभव किया कि कानूनों में *अत्यन्त सरलता* सूक्ष्मता की शत्रु है। अत्यधिक सरल कानून बनाना असम्भव है क्योंकि ऐसा करने पर गुत्थी सुलझान की अपेक्षा बहुधा काटनी पड़ेगी।

अगस्त, १८०० म नेपोलियन न चार विधि विशेषज्ञों की एक समिति नागरिक कानून-संहिता (Civil Code) बनान के लिए स्थापित की जिसने अपना काम पूरा किया। इसके अनुसार परिवार पर पिता का अधिकार दृढ हो गया और परिवार को पूर्णरूपण मुखिया क अधिकार म रखा गया। पिता को अपने पुत्रों को बन्दी बनान का अधिकार था तथा विवाह से पूव पिता की आज्ञा आवश्यक थी। वह अपनी सन्तान की सम्पत्ति की आय उनकी १८ वष की आयु तक ले सकता था। पत्नी अपने पति के अधिकार म थी, वह बिना पति की आज्ञा के सम्पत्ति को खरीद अथवा बेच नहीं सकती थी। रोमन कैथोलिक धम की नीति के विरुद्ध 'विवाह विच्छेद' को मान्यता दी गई थी। तलाक केवल पारस्परिक अनुमति व्यभिचार, अत्याचार और गम्भीर अपराधों की अवस्थाओं म ही वध था। ब्याज की दर कानून द्वारा नियत

मर दी गई थी। कोई भी व्यक्ति वसीयत द्वारा अपनी आधी सम्पत्ति से अधिक वेच नही सकता था।

नेपोलियन के आदेशानुसार एक संहिता दीवानी की व्यवस्था के लिए बनाई गई थी। इसका मूल सिद्धान्त था कि न्यायालय मे आने से पूर्व आपसी समझौते का प्रयत्न अवश्य ही किया जाना चाहिए। किन्तु संहिता द्वारा निर्देशित व्यवस्था धीमी और खर्चीली सिद्ध हुई अत इसमे संशोधन करने पडे। फौजदारी के लिए भी व्यवस्था की गई। मृत्यु दण्ड कैद या जीवन भर के लिए देश निकाला, दाग देना, अथवा सम्पत्ति को जब्त करने की व्यवस्था थी। भिन्न भिन्न अपराधों के लिए अधिकतम और निम्नतम दण्ड निर्धारित किये गए। आरम्भिक न्यायाधीश तथा प्रादेशिक न्यायालय नियुक्त किये गये। अपराध सिद्ध करने के लिए नही, अपितु न्याय-गर्भित निर्णय पर पहुँचने के लिए ज्यूरी प्रणाली की व्यवस्था भी की गई थी। अपराधियों पर सार्वजनिक रूप मे अभियोग चलाया जाना अनिवार्य था। उन्हे वकील की सहायता प्राप्त करने का अधिकार था। अपने बचाव के लिए अपराधी साक्षियो से विवाद कर सकता था। 'बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) प्रार्थना द्वारा अपराधियों को मुक्त कराने की व्यवस्था नही थी। 'फौजदारी व्यवस्था-संहिता १८०८ मे और दण्ड-संहिता' १८१० मे प्रचलित हुई। इन दोनों संहिताओं मे कठोर स्वच्छाचारिता के आदेश थे, जिन्हे नेपोलियन ने देश मे राजनैतिक अपराधों को रोकने लिए बनाया था।

व्यापार-संहिता साधारण व्यापार समुद्री व्यापार दिवालियापन और अन्य व्यापारिक मामलो के लिए बनाई गई थी। यह एक बहुत असंतोषजनक संहिता थी।

फिशर (Fisher) के शब्दो मे, "आलोचकों ने दीवानी संहिता की, 'शीघ्रता-पूर्वक खड़ा किया गया एक खोखला ढाँचा' तथा तथा कानून के मूलाधार सिद्धान्तों का एक छोटी-सी नोटबुक' कहकर आलोचना की है। जिस कार्य के लिए आधुनिक जर्मनो ने पन्द्रह वर्ष तक अथक परिश्रम किया नेपोलियन ने दुस्साहस से वही कार्य चार महीनो मे कर दिखाया। उसके दुस्साहस की निन्दा की गई है। यह दीवानी संहिता कितनी ही अपूर्ण क्यो न हो न होने से तो अच्छी ही है। यदि उस समय और उस प्रकार यह कार्य पूर्ण न हुआ होता तो आज फ्रांस विधि-संहिता विहीन होता। एक *कानून २०० रिवाजों और विशेष सुविधाओं से कहीं अच्छा है।* 'दीवानी संहिता नाम की यह छोटी-सी पुस्तक जिसे देश का प्रत्येक स्त्री पुरुष पढ और समझ सकता है एक सभ्य और प्रजातन्त्रवादी समाज को रूपरेखा को दर्शाती है तथा इसमें अनेक जातियो की प्राचीन और नई परिपाटियो का क्रान्ति-काल के असंख्य क्रांतिकारी कानूनों को साथ मिलाकर समाज के लिए उपयोगी बना लिया गया है। फिर संहिता सुधारवादी और समाजवादियों को नेपोलियन के कानूनी ग्रंथो मे प्रशंसायोग्य शायद ही कुछ मिले तथा वह शायद ही इनकी निन्दा का पात्र बनना चाहता था। दीवानी-संहिता समाजवादी वर्गों की श्रेणी में नहीं, अपितु उदार प्रथा

की श्रेणी में आती है। सभ्यता के इतिहास में इसका महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह फ्रांसीसी क्रांति द्वारा यूरोप में लाये गये महान सुधारों का लेखा है तथा यह इन सुधारों को अनन्त काल तक जीवित रखेगी। इन संहिताओं में क्रान्ति की मूल विजय की भावनाएँ अर्थात् नागरिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता खेती की उन्नति, सार्वजनिक अभियोग और पंचायत द्वारा न्याय का निर्णय सुरक्षित है। जर्मनी और इटली के लिए ये संहिताएँ नवजीवन का प्रथम सन्देश तथा इसका पूर्ण प्रौढ़ रूप था। इन्होंने यूरोप के सम्मुख स्पष्ट और समुचित रूप से वे मुख्य नियम रखे जिनके द्वारा एक सभ्य समाज पर शासन किया जा सकता है।

नेपोलियन की संहिता केवल फ्रांस में ही नहीं, अपितु नेपोलियन की सेनाओं द्वारा विजित प्रत्येक देश पर लागू की गई। यह सत्य है कि इस संहिता के अनुसार अनेक कठोर दण्ड रखे गये थे। स्त्रियों की स्थिति स्पष्टतः पुरुषों से हीन रखी गई थी, किन्तु विश्व भर में फ्रांस की संहिताएँ सबसे सुविधाजनक और उदार तथा मानपूर्ण कानून मानी गई हैं। इसलिए नेपोलियन को 'दूसरा जस्टीनियन' कहकर प्रशंसा की जाती है।

सम्मानित सेना (Legion of Honour) की प्रथा नेपोलियन ने ही चलाई। राजशाही-काल की उपाधियाँ और सम्मान चिह्न राष्ट्रीय सम्मेलन ने समाप्त कर दिए थे। बहुधा विशेष आज्ञा द्वारा लोगों को नागरिक मुकुट (Civic Crowns) प्रदान कर, सम्मानित किया जा सकता था। १८०२ में नेपोलियन ने 'सम्मानित सेना' प्रथा की एक समुचित योजना प्रस्तुत की। इसमें १६ कोहार्ट्स (Cohorts) बनाये गये। विभिन्न प्रकार के उपाधिधारियों को, यथा ग्रांड आफिसर कमाण्डर शवलियर इत्यादि को कुछ भेद के साथ आजीवन अवकाश वेतन (Life Pensions) प्राप्त होता था। नेपोलियन की अध्यक्षता में इस सेना के सदस्यों का चुनाव महती सभा (Grand Council) करती रही। जब लोगों ने विभिन्न सम्मान चिह्नों को खिलौना कहकर आलोचना की तो नेपोलियन ने उत्तर दिया कि 'आप इन चिह्नों को खिलौना कहते हैं, अच्छा किन्तु मानव-जाति पर खिलौने द्वारा ही शासन किया जाता है।

(७) कला (Art)—अत्यधिक व्यस्तता के होते हुए भी नेपोलियन कला के संरक्षण के लिए समय देता था। इसके राज्य काल में राज्य के महलों का केवल पुनर्निर्माण ही नहीं हुआ था, अपितु इन्हें बढ़ाया भी गया था। पेरिस नगर को सुन्दर बनाया गया था। पेरिस नगर यूरोप का आनन्द नगर कहा जाने लगा। नेपोलियन के काल में इसकी जनसंख्या लगभग दुगनी हो गई थी।

(८) औपनिवेशिक साम्राज्य (Colonial Empire)—नेपोलियन ने फ्रांस के लिए एक नए औपनिवेशिक साम्राज्य की नींव डालने का निर्णय किया और इस दिशा में आशातीत तैयारियाँ भी की गई किन्तु ब्रिटेन के समुद्री बेड़े की प्रबल शक्ति के सम्मुख उसके प्रयत्न विफल हो गए। अपनी शक्ति को दुर्बल होते देख १८०३ में नेपोलियन ने ल्युसीनिया (Louisiana) का प्रदेश संयुक्त राज्य अमेरिका के हाथ बेच दिया।

यह उल्लेखनीय बात है कि नेपोलियन ने देश के आन्तरिक विरोध का बड़ी कठोरता से दमन किया। षड्यन्त्रकारियों को मृत्युदण्ड दिया गया या उन्हें देश से निकाल दिया गया। समाचार-पत्रों पर इतना कठोर नियन्त्रण था कि १८०५ की ट्राफ्लगर की पराजय को नेपोलियन के पतन के समय तक किसी भी समाचारपत्र ने नहीं छापा।

प्रो० मारखम (Markham) के मतानुसार प्रमुख सलाहकार का मुख्य कार्य क्रांतिकाल में प्रारम्भ किये गए सुधारों को कार्य-रूप में परिणत कर देना था। नेपोलियन की अध्यक्षता में राज्य-सभा ने देश में विधान का निर्माण किया तथा नेपोलियन के मन्त्रियों और प्रिफक्टों में उसे योग्य सहकारी तथा विशपज्ञ मिले। नेपोलियन का मुख्य ध्येय कार्यों को पूर्ण करना था। १७८९ से प्रथम बार (१७९३ ९४ की जन-सुरक्षा समिति को छोड़कर) फ्रांस ने एक संगठित तथा शक्तिशाली कार्य सत्ता का अनुभव किया। नेपोलियन ने जिन भूतपूर्व क्रान्तिकारियों को शासन-यन्त्र चलाने के लिए नियुक्त किया, उनके विषय में उसने कहा है कि इन लोगों में बड़े अच्छे कारीगर थे किन्तु इनके साथ कठिनाई यह थी कि प्रत्येक निर्माण विशेषज्ञ बनना चाहता था। नेपोलियन के शासन को नागरिक और राष्ट्रीय सैनिक बनाने में जितना श्रेय नेपोलियन को था उतना ही उसके मन्त्रिमण्डल का भी था। नेपोलियन इस बात को विशेष जोर देकर कहा करता था कि मैं एक सेनापति के रूप में फ्रांस पर शासन नहीं कर रहा हूँ, मैं तो एक नागरिक शासक हूँ। मेरे राष्ट्र का भी इस बात का विश्वास है कि मुझ में एक नागरिक शासक के गुण विद्यमान हैं। उसने अपने शासन को चलाने के लिए सुयोग्य व्यक्तियों को बिना उनके अतीत पर ध्यान दिये निमन्त्रण दिया था। राजशाही-काल के पुराने कर्मचारी गाडिन (Gaudin) पोर्टलिस (Portalis) भूतपूर्व क्रांतिकारी मरलिन दे दुवाय (Merlin de Douai) ट्रिलहार्ड (Treilhard) और थिबोड्यू (Thibaudeau) नेपोलियन के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर कार्य करते थे। श्रेष्ठ प्रिफक्टों में १७८९ का प्राचीन समद में राजशाही का समर्थक माउनियर (Mounier) और भूतपूर्व जन-सुरक्षा समिति का नेता हत्यारा जीन-बोन-सेंट आंद्रे (Jean Bon St Andre) थे। (Napoleon and the Awakening of Europe pp 54 55)

विदेश नीति (Foreign Policy)—प्रमुख सलाहकार की विदेश-नीति का उल्लेख इस प्रकार है नेपोलियन की अनुपस्थिति में मित्र राष्ट्रों के मिस्र में होने वाले द्वितीय संगठन से उत्पन्न खतरे का मुकाबला करना उसका सर्वप्रथम कार्य था। नेपोलियन ने अपनी सूझ-बूझ के बल पर रूस के ज़ार पर प्रभाव डाला और उसको संगठन से अलग करा लिया। इस प्रकार मैदान में केवल इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया ही रह गये। नेपोलियन ने मोरेयु (Moreau) को आस्ट्रिया पर जर्मनी के रास्ते से आक्रमण [illegible] भेजा और उसने स्वयं [illegible] पर आक्रमण करने के लिए इटली के [illegible]। उसने विशा[illegible]) दर्रे को पार

करके आस्ट्रिया की सेना से मुकाबला किया और उन्हें १८०० मे मारेंगो[1] के स्थान पर परास्त किया। मोरेयु ने भी होहेनलिण्डेन (Hohenlinden) मे आस्ट्रिया की सेनाओ पर निर्णायक विजय पाई और इस प्रकार आस्ट्रिया का प्रतिरोध समाप्त हुआ। १८०० म लुनेविले (Luneville) की सन्धि होने पर युद्ध समाप्त हो गया और इस सन्धि से १७९७ की कैम्पो फोर्मियो की सन्धि की सारी शर्तें पुन दोहराई गइ और फ्रास का थोडा-सा लाभ भी हुआ।

अब केवल इग्लैण्ड[2] ही मैदान मे रह गया था। इस पर आक्रमण करना बडा कठिन काय था। क्योकि फ्रास के पास शक्तिशाली समुद्री बेडा नही था और यूरोप महाद्वीप पर इग्लैण्ड की स्थल सेना नही थी जिस पर आक्रमण किया जा सकता। इसी प्रकार फ्रास के पास समुद्री बेडा न होने के कारण इग्लैण्ड भी इस पर आक्रमण नही कर सकता था। किन्तु नेपोलियन ने चतुरता से इग्लैण्ड के विरुद्ध रूस, प्रशा, स्वीडन और डेनमाक का एक सशस्त्र निष्पक्ष (Armed Neutrality) घेरा डाल दिया। इस घेरे का उद्देश्य था कि इग्लैण्ड निष्पक्ष जहाजो की फ्रास के माल के लिए तलाशी न ले सके। ब्रिटेन ने बडी करारी चोट की। सेनापति नेल्सन ने कोपेनहेगन पर गोलाबारी की और डेनिश बेडे को पकड लिया जिससे वह नेपोलियन

---

१ मोरेंगो के संग्राम के विषय में, थाम्पसन का यह मत है, "मोरेंगो अभियान को किंवदंतियों से इतना बुरी तरह लाद दिया गया है कि इतिहासकार को बोनापार्ट के लिए उसकी विजय का भाग्यशाली श्रेय देने से डर लगता है। यह सच नहीं है (जैसा कि बेरीन का कथन है) कि उसने तीन महीने पूर्व ही नक्शे पर एक सुई लगा रखी थी कि वह उसी स्थान पर आस्ट्रिया वालों को पराजित करेगा। यह भी सच नहीं है कि उसने अपनी सेनाओं को (जैसा डेविड ने उसके विषय में कहा है) सेंट बर्नार्ड के ऊपर चला दिया, उसका खिच्चर बर्बेयर की सेना की अगली टुकड़ी से कई दिन पूर्व ही पीछे हो गया था। यह सत्य नहीं है कि वह पहमेडो की सड़क के किनारे सो गया था, जबकि उसकी सेनाएँ उसे न जगाने देन के भय से उसके पास से धीरे-धीरे छुपकर निकल गई। मारेंगो के अभियान का चतुरतापूर्ण लक्ष्य यह था कि जेनुआ को मुक्त किया जाय और लम्बार्डी से आस्ट्रिया वालों को निकाल दिया जाय। इसका समर तथा सम्बन्धी लक्ष्य यही था कि सम्राट् को शान्ति-सधि करने पर विवश किया जाय।" (Napoleon Bonaparte His Rise and Fall p p 162-64)

२ थाम्पसन के मतानुसार, "बोनापार्ट ने इस आक्रमण में चार लाभ देखे। प्रथम एकान्त में सोचा जाय तो यह पूर्ण विजय के लिए सबसे अधिक शीघ्र तथा सबसे अधिक प्रभावशाली मार्ग था। आयरलैंड में क्रान्ति, जिसे फ्रास की अभिमानात्मक शक्ति की सहायता प्राप्त हो—उससे भी अधिक उत्तम, इंग्लैण्ड ही में एक क्रान्ति, जिसका कारण आकस्मिक आगमन और लन्दन की ओर शीघ्र गमन हो, वह एक सप्ताह के भीतर युद्ध का अन्त कर सकता है। दूसरे, यदि किसी कारण से यह आक्रमण असफल रहा, तो इस प्रयोजन से फैलाई हुई गड़बड़ ब्रिटिश सरकार को शर्तों की माँग करने पर विवश करेगा। तीसरे, डोवर से केवल बीस मील दूर पर एक अभियान करने वाली शक्ति का निरन्तर भय एक मनोवैज्ञानिक संग्राम (War of Nerves) को स्थायी बनायेगा और यह के घेरे की आवश्यकता को दुगुना कर देगा। चौथे, अभियान की धमकी रूम सागर व बिस्के की खाड़ी में से घेरा डालने वाली टुकड़ियों को शायद हटा सकेगी।" (Napoleon Bonaparte His Rise and Fall p 229)

के हाथो म न पडे । सौभाग्य से इसी समय रूस के जार पॉल की हत्या कर दी गई और यह सशस्त्र निष्पक्ष घेरा टूट गया। इग्लण्ड की सेनाएँ मिस्र म भी सफल हुई और फ्रास को मिस्र छोडन पर बाध्य होना पडा। दोना पक्ष युद्ध स ऊब गये थ। यह किसी भी पक्ष की विजय होकर समाप्त ही नही होता था। इस प्रकार की परिस्थिति मे इग्लण्ड और फ्रास म १८०२ म अमीस की सधि हुई। इग्लण्ड ने फ्रास तथा इसके मित्र राष्ट्रा स जीते हुए सारे प्रदेश, लका और ट्रिनिडाड का छोड कर, लौटा देने की प्रतिज्ञा की। उसन माल्टा द्वीप भी खाली करने की प्रतिज्ञा की। फ्रास न नेपल्स और पोप के राज्य वापस करने की प्रतिज्ञा की। सत्य ही कहा है कि दोना पक्ष इस सधि से प्रसन्न नही थे फिर भी दोना ने इसका स्वागत किया क्योकि इसस दोना का सास लेने का अवकाश मिल गया। अमीन्स की सन्धि केवल एक युद्ध-रोका समझौता सिद्ध हुई और १८०३ मे पुन दोनो देशो म युद्ध छिड गया। नेपोलियन का देश मे अपनी शक्ति सग्रहीत करने का समय मिल गया। उसने पीडमोण्ट जीता। उसने मध्यस्थ बनकर अपनी सेनाएँ भेज कर स्विटजरलण्ड के मामले म हाथ डाला। हालण्ड को उसने फ्रास म लगभग मिला ही लिया था। उसन ब्रिटेन के विरुद्ध भारतीय राजाओ को उकसान के लिए एक शिष्ट दल भारत भेजा। ब्रिटन को परेशान करने के लिए एक और दल मिस्र भेजा। य सब चालें दोनो देशा म पुन युद्ध आरभ होने के लिए उत्तरदायी थी।

मारकहम लिखता है कि अमीस की सधि टूटन के विषय म बहुत-कुछ लिखा गया है। वास्तविक रूप से ब्रिटिश सरकार त्रुटि पर थी और उसन माल्टा के द्वीप का खाली न करके इस सधि पत्र का भग किया। इस सधि का आरम्भ स ही अवकाश काल तथा प्रयोगात्मक सधि माना जा रहा था। कुछ फ्रासीसी इतिहासकारा विशेषत सोरल (Sorel) न नेपोलियन के कार्य का समर्थन इस तर्क स किया है कि इग्लण्ड वास्तविक रूप से बेल्जियम फ्रास के पास छोडने के लिए कभी भी तयार नही था। इस आधार पर नेपोलियन का इग्लण्ड स बहुत स युद्ध करना उचित था क्योकि वह क्राति के उत्तराधिकारी के रूप म देश की प्राकृतिक सीमा को बनाये रखने के लिए उत्तरदायी था। किन्तु यह स्पष्ट है कि १७६७ म और १८०१ म इग्लण्ड फ्रास की प्राकृतिक सीमा को मान्यता देने के लिए तयार था यदि फ्रास की सीमा इनसे आग न बढे। इग्लण्ड की किसी भी सरकार के लिए यह स्वीकार करना असम्भव था कि यूरोप म शक्ति का सतुलन पूर्णत नष्ट हो जाय और महाद्वीप म फ्रास का प्रभुत्व छा जाय जिसका कि भविष्य म जर्मनी के विलियम द्वितीय और हिटलर की धमकियो का प्रतिरोध किया गया। महाद्वीप पर प्रभाव रखने वाली केवल समुद्री बेडे बनाने के यूरोप भर के साधनो को जुटा सकती थी और इग्लण्ड की सामुद्रिक शक्ति को चुनौती देकर उसके अस्तित्व तक को मिटा सकती थी।

नेपोलियन ने इग्लण्ड के अधिकृत हनोवर को छीना। १८०३ ४ के समय म इग्लण्ड पर आक्रमण करने की तयारियाँ होती रही। फिशर (Fisher) कहता है कि इग्लण्ड पर एक सफल आक्रमण करने के लिए तीन बातो का होना अनिवार्य

था—यथा एक शक्तिशाली सेना सेना को पहुँचाने के लिए पर्याप्त संख्या में समुद्री जहाज और उनकी रक्षा के लिए शक्तिशाली युद्ध के जहाज। नेपोलियन इस कार्य के लिए पर्याप्त सेना संगठित करने में सफल हुआ। पूरी शक्ति लगाकर भी वह

अपनी सेना को ले जाने के लिए पर्याप्त संख्या में जहाज इकट्ठे नहीं कर पाया। जहाँ तक सेना तथा सेना को ले जाने वाले जहाजों की रक्षा के लिए शक्तिशाली

जहाजी बेड़े का सम्बन्ध है नेपोलियन पूर्णतः असफल रहा। १८०५ की ट्रेफलगर की लड़ाई में नेपोलियन की पराजय इन परिस्थितियों में आश्चर्यजनक नहीं है। लार्ड नेल्सन युद्ध में काम आया किन्तु ब्रिटेन ने इंग्लिश चैनल पर अपना प्रभुत्व जमा लिया।



नेल्सन

प्रो० मारकहम (Markham) के अनुसार नेपोलियन द्वारा इंगलैण्ड के विरुद्ध १८०३ से १८०५ की आक्रामक तैयारियाँ एक धोखा था, जिसकी आड़ में वह सारे महाद्वीप की शक्तियों को उलट देने में समर्थ एक शानदार सेना का संग्रह और उसे शिक्षित करना चाहता था। सबसे पहले स्वयं नेपोलियन ने आक्रमण की असफलता के लिए यह सफाई दी। उसने जनवरी १८०५ में राज्य-सभा में कहा कि बोलोने की छावनी महाद्वीप की शक्तियों को भ्रम में डालने के लिए एक धोखा है। किन्तु नेपोलियन द्वारा किये गये उस समय के पत्र-व्यवहार को देख कर जिसमें आक्रमण के विषय में निरन्तर जोरदार तैयारियों का वर्णन है इस तथ्य पर पहुँचे बिना नहीं रहा जा सकता कि कुछ भी हो १८०५ में आक्रमण करने का उसका पूर्ण और दृढ़ निश्चय था। यह बात सन्देहास्पद है कि क्या वह युद्ध-पोतों की रक्षा के बिना ही अपनी सेना को डोंगियों में बिठाकर इंग्लिश चैनल को पार करता? अमीन्स (Amiens) की सन्धि से पूर्व ही डोंगियों की एक बड़ी सेना तैयार करनी प्रारम्भ कर दी गई थी और नेपोलियन इस आक्रमण के साधन की बजाय, इंग्लैण्ड को डराने का साधन मात्र मानता था। १८०३-४ में इस बेड़े को और बहुत बड़ा कर दिया गया और इसमें विभिन्न प्रकार की नावों की संख्या २००० थी। ये बड़ी कठिनाई से

एक लाख व्यक्ति और उनके प्रसाधन को ले जा सकती थीं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि एक बार इंग्लैण्ड के तट पर उतर जाने के बाद वे अवश्य ही लन्दन को विजय कर लेते। उस समय ब्रिटेन भर में १० लाख सेना थी, तथा पिट द्वारा संगठित गृह-सेना नेपोलियन के कुशल योद्धाओं के सम्मुख कुछ भी शक्ति नहीं रखती थी। बहुत सम्भव है कि नेपोलियन नावों के इस बेड़े को अकेला चैनल पार करने के लिए न भेजना चाहता हो और उसने इसे उस समय तक के लिए एक शक्तिशाली भय के रूप में बनाये रखा हो जब तक कि उसका बेड़ा चैनल को पार करते समय सेना की रक्षा करने योग्य पर्याप्त शक्तिशाली न बन जाय।'

सम्राट के रूप में नेपोलियन (Napoleon as Emperor) (१८०४-१४)—१८०२ में नेपोलियन ने प्रमुख सलाहकार के पद को १० वर्ष की अवधि का जीवन भर के लिए बदलवा दिया तथा अपने उत्तराधिकारी को नियुक्त करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। १८०४ में सीनेट ने नया संविधान पारित किया तथा नेपोलियन को सम्राट् घोषित किया, क्योंकि "यह परिवर्तन फ्रांस की जनता के हित के लिए अत्यन्त आवश्यक है।' नेपोलियन ने स्वयं यह कहा कि 'मैंने फ्रांस के राजमुकुट को धरती पर पड़े पाया और मैंने इसे अपनी तलवार की नोक से ऊपर उठा लिया।' वह १८१४ तक सम्राट् रहा और लिपज़िग की लड़ाई के पश्चात् उसे सम्राट पद त्याग कर ऐलबा के द्वीप में अवकाश-ग्रहण करना पड़ा। ऐलबा से वापस आकर वह पुनः १०० दिन फ्रांस का सम्राट् बना और १८१५ में फिर वाटरलू की लड़ाई में हार गया। उसके बाद वह पेरिस चला गया और उसे ब्रिटेन के सम्मुख आत्मसमर्पण करने के लिए विवश होना पड़ा। उसे सेण्ट हेलेना द्वीप में भेज कर देशनिकाला दे दिया गया और वहाँ सात वर्ष पश्चात् १८२१ में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी वसीयत थी, "मेरी अन्तिम इच्छा है कि मुझे सीन नदी के तटों पर फ्रांस की जनता के बीच जिसे मैं अत्यधिक प्रेम करता हूँ, दफनाया जाय।"

यह लिखा जा चुका है कि १८०५ में ट्रेफलगर के समुद्री युद्ध में नेपोलियन परास्त हुआ। किन्तु अपनी असफलता पर शोक करने में समय नष्ट न करके उसने स्थल पर अपनी शक्ति की महत्ता का पूरा लाभ उठाने का निर्णय किया। उसने दिसम्बर, १८०५ में आस्टरलिट्ज़ के स्थान पर आस्ट्रिया और रूस को बड़ी करारी हार दी। यह विजय इतनी निर्णायक हुई कि इसके साथ ही तृतीय मित्रराष्ट्र-संगठन टूट गया। इस सूचना को सुनकर पिट ने कहा 'यूरोप के मानचित्र को लपेट दो क्योंकि आगामी दस वर्ष तक इसकी आवश्यकता नहीं होगी।[1]

रूसियों ने सन्धि नहीं की और बड़ी अव्यवस्था में वापस निकल आए। लेकिन आस्ट्रिया वालों ने प्रेसबर्ग की अपमानजनक सन्धि कर ली। इस सन्धि के अन्तर्गत आस्ट्रिया ने वेनेशिया इटली के राज्य को दे दिया जिसका नरेश भी नेपोलियन स्वयं ही था। आस्ट्रिया के हाथ में केवल ट्रीस्टे का बन्दरगाह रहा। अब आस्ट्रिया नहीं, बल्कि फ्रांस ही भविष्य में मुख्य एड्रियाटिक सत्ता हो सकता था। बैवरिया

1 "Roll up the map of Europe it will not b wanted these ten years."

और बेडेन ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में नेपोलियन का साथ दिया था और इसलिए आस्ट्रिया दक्षिणी जर्मनी में उन्हें अपने कुछ कीमती भाग देने पर बाध्य हो गया था। एड्रियाटिक और इटली से निकाल दिए जाने पर आस्ट्रिया को तीस लाख जन संख्या की हानि हुई। व्यावहारिक दृष्टि से आस्ट्रिया एक भूमि से गिरा देश हो गया। वह अन्य ऐसे परिवर्तन करने के लिए भी बाध्य हो गया जोकि नेपोलियन ने किए थे या अन्य देशों में वह करने वाला था।

१८०६ के प्रारम्भिक महीनों में नेपोलियन ने चार राजाओं का निर्माण किया। जो उपकारजनक क्षतिपूर्ति उन्होंने अपना राजा के साथ सम्बन्ध बनाए रख कर की उसके बदले में नेपोलियन ने बवेरिया व वुर्टमबर्ग की जागीरदारी को राज्या के स्तर पर उठा दिया। चूंकि नेपल्स के राजा ने शत्रुओं का साथ दिया था नेपोलियन ने वहां का बोरबोन नरेश हटा दिया और वहां की गद्दी पर उसी के भाई जोसफ को बिठा दिया। नेपोलियन ने हालण्ड के बटेवियन गणतन्त्र को राजतन्त्र में बदलने और अपने भाई लुई नेपोलियन को वहां का राजा स्वीकार करने पर विवश कर दिया। १८०६ में नेपोलियन ने पवित्र रोमन साम्राज्य का भी अन्त कर दिया और उसकी जगह रहायन का अध संघ स्थापित किया।

१८०६ में प्रशिया जेना और आरस्टाड (Jena and Aurstadt) की लड़ाइयों में परास्त हुआ और नेपोलियन ने बर्लिन में विजयोल्लास से पदार्पण किया। इसी स्थान से बर्लिन आज्ञप्ति के नाम से प्रसिद्ध आज्ञा १८०६ में प्रसारित हुई जिसके अनुसार यूरोप महाद्वीप प्रणाली (Continental System) का प्रारम्भ हुआ। १८०७ में प्रशिया फ्रिडलण्ड की लड़ाई में परास्त हुआ और जार को टिलसिट की संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस संधि के अनुसार जार ने स्वीकार किया कि वह रूस में ब्रिटेन का माल नहीं आने देगा। रूस और फ्रांस के बीच यूरोप को परस्पर बांटने का समझौता हुआ। किंवदन्ती है कि जार अलेक्जेण्डर ने नेपोलियन से कहा यूरोप क्या है? यह कहां है? यदि यह तुम और मैं नहीं हैं तो?

जर्मनी (Germany)—आस्ट्रिया और प्रशिया की पराजय के पश्चात् सारा जर्मनी नेपोलियन के हाथों में आ गया। उनके हृदय में पवित्र रोमन साम्राज्य के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी। उसने रूस की संसद को मंदरा का एक दयनीय घर बताया। अनेक योजनाएं बनाई गई और अंत में जुलाई १८०६ में रहायन-संघ की स्थापना हुई। संघ का मुख्य उद्देश्य जर्मनी के सारे प्रदेशों को तीन मुख्य टुकड़ों में बांट देना था प्रशिया उत्तर में आस्ट्रिया दक्षिण और पूर्व में शासन करें। पश्चिम में रहायन-संघ का एक नया आस्ट्रिया और प्रशिया दोनों से स्वतन्त्र राज्य बनाया जाय जो फ्रांस की संरक्षता में रहे। इस संघ के सदस्य १६ राज्य स्वतन्त्र और पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न होंगे। फ्रैंकफर्ट में एक संसद की स्थापना हुई जिसमें संघ के सामूहिक हितों पर विचार होता था। किन्तु इस संसद का कोई अधिवेशन नहीं हुआ और इसका संविधान निरर्थक रहा। नेपोलियन को संघ का संरक्षक नियुक्त किया गया। उसे इस निर्णय का अधिकार सौंपा गया कि युद्ध होने की स्थिति में किस राष्ट्र को

कितनी सेना देनी होगी। इसके सदस्यों को किसी भी सदस्य राष्ट्र के युद्धग्रस्त होने पर अनिवार्य रूप से युद्ध में भाग लेना पड़ता था। ६ अगस्त, १८०६ को सम्राट फ्रांसिस ने अपनी उपाधि को त्याग दिया और इस प्रकार पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया।

१८०६ में आस्ट्रिया के परास्त होने पर राष्ट्रवादियों को शासन पर नियन्त्रण रखने का अवसर प्राप्त हुआ। फ्रेड्रिक विलियम को हार्डनबर्ग और स्टाइन को मन्त्री नियुक्त करने के लिए विवश कर दिया गया। सितम्बर १८०७ में हार्डनबर्ग ने कहा कि 'फ्रांस की क्रांति ने, वर्तमान युद्ध जिसके अनुगामी हैं फ्रांस को उथल-पुथल और रक्तपात के बीच एक अप्रत्याशित शक्ति प्रदान की है। नये सिद्धान्तों की शक्ति इस प्रकार है कि जो भी राष्ट्र इन्हें स्वीकार नहीं करेगा वह या तो परास्त करके घुटने टेकने को विवश कर दिया जायगा या नष्ट हो जायगा। वर्तमान युग की भावना ही यह है कि राजशाही सरकार में प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों का समावेश हो।

इस नीति से मन्त्रिमण्डल में सुधार हुए, मुजारदारी तथा जागीरदारी पर कर समाप्त हो गए, नागरिकों को स्वायत्त शासन मिला और सेना में सुधार हुआ। स्वतन्त्रता की घोषणा के शब्द थे, १८१० में सेण्ट मार्टिन दिवस में प्रशिया में केवल स्वतन्त्र नागरिक ही निवास करते हैं। मुजारों को बेगार से तथा जागीरदारों की अमलदारी से छुटकारा मिला। उन्हें सेना में अपमानजनक शारीरिक दण्ड नहीं दिया जा सकता था। जिन खेतों को वे अन्य लोगों के लिए बोत-जोतते थे वे उनकी अपनी सम्पत्ति बन गए और उन्हें धरती बेचने का अधिकार भी प्राप्त हुआ। स्टाइन स्वतन्त्र व्यापार का समर्थक था। प्रशिया के नगरों के बीच तथा देश के अन्य प्रदेशों के बीच कानूनी प्रतिबन्ध तोड़ दिये गये।

स्कानहार्स्ट, जिनीसनू और क्लाजविट्ज, इन तीन व्यक्तियों ने सेना में सुधार किये। स्कानहोर्स्ट ने धार्मिक उत्तेजना की तरह एक नई सेना का संगठन किया। जिनीसनू आदर्शवादी था, उसने सेना के कार्य में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति की। क्लाजविट्ज सैनिक मोर्चेबन्दी की विद्या का पण्डित था। जर्मनी की परिस्थिति के अनुसार उसने नेपोलियन द्वारा प्रचालित सब बातों को अपनाया। १८१४, १८६६ और १८७० में जिन चालों और मोर्चेबंदियों से प्रशिया को विजय हुई, उन सब का जन्मदाता इसे ही माना जाता है। सुधारों के कारण प्रशिया की सेना राष्ट्रीय सेना बन गई। सभी विदेशियों को निकाल दिया गया। विशेषाधिकारों की परिपाटी समाप्त कर दी गई। पदाधिकारियों का चुनाव सामाजिक स्थिति के आधार पर नहीं अपितु योग्यता के आधार पर होने लगा। प्रत्येक नागरिक के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य हो गई। सेना अब अनाचार का घर नहीं रहा अपितु एक सम्मानित व्यवस्था बन गई। सैनिकों की सेवा अवधि घटा दी गई जिससे कि अधिकाधिक लोगों को सैन्य शिक्षा मिल सके और उन्हें सुरक्षित सेना में रखा जा सके।

बर्लिन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और बहुत बड़ी संख्या में महान् विद्वान् इसकी ओर आकर्षित हुए। जर्मनी की जनता के लिए यह विश्वविद्यालय

प्रेरणा का स्रोत बन गया । फिश्ट (Fichte) और स्लियरमाचर (Schleier macher) ने जनता मे देशभक्ति की भावना जगाई । ग्रानडट के काव्यो ने भी यही किया । १८०८ मे कोइसबग मे सदाचार-सघ (Tugendbund) की स्थापना हुई । इस सस्था ने देश भक्ति और ग्रान्वाद को भावनाओ को शक्ति प्रदान की । एफ एल जाहन (F L Jahan) ने जिमनास्टिक समिति की स्थापना की और देश म जनमत को बढावा मिला ।

स्पेन के विद्रोह के समाचारो से उत्तेजित होकर १८०८ मे स्टाईन ने जर्मनी मे भी विद्रोह करने का प्रयत्न किया । स्टाईन का एक पत्र नेपोलियन के हाथ लग गया, अत उसने स्टाईन को तत्काल निकाल देने की मांग की । राजा को झुकना पडा और नवम्बर १८१४ म स्टाईन को पदच्युत कर दिया गया । स्टाईन ने जार के यहाँ नौकरी कर ली और नेपोलियन के विरुद्ध काय करता रहा ।

यह स्मरणीय है कि जुन्करवग के जागीरदारो के विरोध के कारण स्टाईन की सारी योजनाएँ धरी-की धरी रह गइ । स्टाईन के निकालने की खबर को सुनकर सेनापति यान याक न कहा—'अच्छा हुआ इन पागल व्यक्तियो म एक कम हो गया बाकी के सॉप स्वय अपने विष से ही मर जायेंगे ।" केवल एक ही प्रभावशाली सुधार हुआ कि १८१४ के समाप्त होते-होते प्रशिया की सेना इतनी शिक्षित हो गई कि नेपोलियन से लोहा ले सके ।

महाद्वीप की व्यवस्था (The Continental System)—फ्रास के विरुद्ध बनने वाले सारे सगठनो की आत्मा इग्लण्ड था । नेपोलियन ने इग्लण्ड म घुटने झुकाने के लिए अत्यन्त प्रयत्न किया किन्तु १८०५ म वह ट्रेफलगर की लडाई म

हार गया । इग्लण्ड व्यापारियो का राष्ट्र होने के कारण, व्यापार के माध्यम से इस पर आक्रमण किया जा सकता था। नेपोलियन ने आस्ट्रिया को आस्टरलिटज के युद्ध (१८०५) मे, प्रशिया को जीना की लडाई (१८०६) मे, और रूस को फ्रीडलैण्ड की लडाई (१८०७) मे परास्त करके यह अनुभव किया कि वह इग्लैण्ड पर उसके सबसे कोमल स्थान पर आक्रमण करने मे समर्थ था। इस प्रकार का सुझाव फ्रास के सम्राट को एक स्मृति पत्र देते समय १८०५ मे मोण्ट गिलार्ड ने दिया था । यह स्मृति पत्र महाद्वीप प्रणाली का आधार माना जाता है । मोण्ट गिलार्ड के शब्दो मे, "इग्लण्ड पर व्यापार के माध्यम से ही आक्रमण करना चाहिए उसे एशिया, अमरीका और यूरोप म धन कमाने देना, उसे हाथो सहित छोड देना और सघर्षों और युद्धो को अनन्तकाल तक चलाना है। ब्रिटेन के व्यापार को नष्ट करना मानो इग्लण्ड के हृदय पर आघात करना है।'

थाम्पसन ने नेपोलियन के विचारो को इन शब्दो म रखा है 'उसने कहा, प्रथम फ्रास एक आत्म-सतुष्ट राज्य है जो अपने उत्पादन पर निर्भर है और न कि अपने समुद्र-पार के प्रदेशो पर, जैसे कि एक झोपडी का स्वामी अपनी भूमि व अपने उद्यान की पैदावार पर निर्भर रहता है। वह बाह्य साधना से अपना धन प्राप्त नही करता है, सिवाय उन बलात्मक अनुदानो के जो वह अपने विजित देशो से पाता है। लेकिन ब्रिटेन तो एक उत्पादन व व्यापार करने वाला देश है जो इतना अधिक माल बनाता है कि उसे दूसरे राज्यो मे बेचा जाता है और अन्य व्यापारियो की तरह उस माल के बाहर तथा विक्रय के बदले म धन कमाता है। यदि उसे उस व्यापार चलाने से रोक दिया जाए तो उसके धन की पूर्ति रुक जायगी, उसका दिवाला निकल जायेगा और फिर वह अपने द्वारा या अपने मित्रो द्वारा चलाए युद्ध को सचालित न रख सकेगा।

"दूसरे इग्लण्ड को (सोने के रूप मे) धन की आवश्यकता है जिससे वह अपनी ओर जमा हुए विशाल राष्ट्रीय ऋण का भुगतान कर सके और अपनी बढी हुई कागजी मुद्रा को सँभाल सके, और वह अपनी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके। वस्तुत १८०२ मे यह ऋण ५०७ मिलियन पौंड था। १८१४ मे युद्ध छिडने के समय केवल ८० मिलियन ऋण घट चुका था, जबकि इस पर औसतन १८ मिलियन पौंड प्रति वर्ष ब्याज देना पडता था। १७९७ मे बैंक आफ इग्लड म सुरक्षित सोना घट कर लगभग एक मिलियन पौंड रह गया था और यह पुन खतरे के बिंदु तक पहुँच सकता था यदि धन के बदले म वस्तुओ का निर्यात करने की जगह इगलड को निर्यात करने से रोक दिया जाता या आयात किए हुए माल के बदले म तुरन्त धन का भुगतान करना पडता।

'उसने कहा कि तीसरे शान्ति से फ्रास न कृषि, नागरिकता और फर्स्ट कौंसुल, जो देश की आवश्यकता को पहचानता था और प्राप्ति के सारे साधनो को कण्ट्रोल करता था के आधार पर अपने सामाजिक वर्गों को मिला लिया था और अपने प्रशासन मे एकता बना ली थी। जबकि ब्रिटेन मे अब भी राजनीतिक सत्ता राजतन्त्र, कुलीन तन्त्र, कृषको व दूकानदारों के बीच झगडे का कारण बनी हुई थी। देश को

ज़मींदारों के विरोधी हितों ने फाड़ रखा था व इसी के कारण लन्दन का नगर व्यापारिक दिवालियेपन के किनारे पर था। श्रम वर्गों में हड़तालें और खाद्य वस्तुओं के मूल्य में भयानक उतार चढ़ाव—सारे वही चिह्न जो १७८९ की क्रांति से पहले हो चुके थे—की स्थिति आ चुकी थी। ऐसा विश्वास किया जाता था कि इन कठिनाइयों को उन मशीनी वस्तुओं के उत्पादन ने पैदा किया था जो देश की आवश्यकताओं से अधिक था। ऐसी स्थिति में विदेशी बाजारों का बन्द होना स्वयं ही आर्थिक दिवालियापन बेकारी व राजनैतिक व्याकुलता उत्पन्न करता जो सरकार को शान्ति की माँग पर बाध्य करने के लिए पर्याप्त था।

(Napoleon Bonaparte : His Rise and Fall, pp 224 25)

नेपोलियन को अपने हृदय में इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया था कि इंग्लिश चैनल को पार करके इंग्लैण्ड पर आक्रमण करना उसके लिए असम्भव कार्य है। उसके अपने शब्दों में बोलोने से फोक्स्टोन सेना भेजने की अपेक्षा पेरिस से देहली सेना भेजना सरल कार्य है। ब्रिटेन की समुद्री सेना उसके लिए एक अगम्य रोक थी। इंग्लैण्ड की उन्नति मुख्यतः व्यापार पर निर्भर थी और यदि इसे नष्ट कर दिया जाता तो इंग्लैण्ड के घुटने टिक जाते। जो योजना उसने बनाई वह एक भयानक जुआ था लेकिन इंग्लैण्ड को नीचा दिखाने के लिए नेपोलियन इस भयानक कार्य को करने के लिए भी तैयार था। जिस योजना को उसने अपनाया वह महाद्वीप प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है और इसका उद्देश्य इंग्लैण्ड का आर्थिक प्रतिरोध करना था।

प्रसिद्ध बर्लिन राजाज्ञा' द्वारा १८०६ में नेपोलियन ने इस योजना की घोषणा की। इस आज्ञप्ति में इस बात का आदेश था कि अब से इंग्लैण्ड के द्वीपों पर रोक लगा दी गई है। इनसे सब प्रकार का व्यापार करना निषिद्ध है। इंग्लैण्ड को जाने वाले जहाज पर और माल की गाड़ें तथा यूरोप महाद्वीप में फ्रांस की अथवा इसके मित्र राष्ट्रों की सीमाओं के भीतर इंग्लैण्ड के माल के गोदाम सब जब्त कर लिए जायेंगे। इंग्लिश माल इसके तमाम जहाज तथा इसके उपनिवेशों से लाये गए वस्तु भाग में लदे जहाजों को सारे यूरोप तथा निष्पक्ष देशों की बन्दरगाहों में उतरने न दिया जाएगा। महाद्वीप-व्यवस्था को वारसा (१८०७) मिलान (१८०८) और फाउन्टेनब्लू (१८१०) की राजाज्ञा द्वारा और भी बल प्राप्त हुआ। मिलान की राजाज्ञा में घोषणा की गई थी कि ब्रिटेन की किसी भी बन्दरगाह से चलने वाले जहाजों को फ्रांस के युद्धपोत या अन्य जहाज पकड़ लें। १८१० की आज्ञप्ति में सारे फ्रांस-साम्राज्य में इंग्लैण्ड के माल को जब्त करना तथा सार्वजनिक रूप में जला देने का आदेश दिया गया। १८०७ में मन्त्रि के आदेश (Orders in Council) द्वारा ब्रिटेन की सरकार ने भी इसका उत्तर दिया। इन आदेशों के अनुसार फ्रांस तथा उसके मित्र राष्ट्रों के साथ व्यापार करने वाले सभी जहाजों को पकड़ने का आदेश दिया गया। किन्तु निष्पक्ष देशों के जहाजों को यूरोप के किसी भाग की ओर आगे बढ़ने से पहले इंग्लैण्ड की बन्दरगाहों पर जाना होता था।

निष्पक्ष राष्ट्रों से ब्रिटिश सरकार को पर्याप्त कठिनाइयां हुईं। डेनमार्क ने इंग्लैण्ड का साथ देने से जब इनकार कर दिया तो ब्रिटेन के एक अभियान ने १८०७ में कोपनहेगन पर गोलाबारी कर दी और डेनिश जहाजी बेड़े के जहाजों को पकड़ लिया या नष्ट कर दिया। इस बात ने डेनमार्क को नेपोलियन का साथी बना दिया। ब्रिटिश सरकार की जिद के कारण कि यूरोप महाद्वीप में जाने वाले सारे अमरीकी जहाजों की तलाशी होगी इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका के पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ गए। १८१२ में इस विवाद पर दोनों देशों में एक प्रकार से युद्ध छिड़ गया था। किन्तु इस संघर्ष में नेपोलियन की अपेक्षा ब्रिटेन को निष्पक्ष राष्ट्रों से कम कष्ट मिला।

नेपोलियन द्वारा महाद्वीप-व्यवस्था का क्रियान्वित कर सकना एक असम्भव बात थी। उसका साम्राज्य बहुत विशाल था और एक शक्तिशाली समुद्री बेड़े की कमी के कारण उसके द्वारा ब्रिटेन के तट पर जहाजों के पहुँचने पर रोक लगाना एक असम्भव कार्य था। वह केवल यूरोप के देशों को इंग्लैंड के साथ व्यापार करने से रोक सकता था किन्तु यह भी असम्भव था। यूरोप इंग्लैण्ड पर निर्भर था और उसके माल के बिना उसका गुजारा ही नहीं था। इस परिस्थिति में यूरोप के लोग महाद्वीप-व्यवस्था को मानने की अपेक्षा नेपोलियन की अवहेलना करने को तैयार हो गए। ब्रिटेन फ्रांस की बनी रेशम की वस्तुओं और अन्य विलास-साधनों के बिना, अपना काम ऊनी और सूती कपड़ों से बड़ी आसानी से चला सकता था किन्तु इंग्लैण्ड के जहाजी बेड़े ने यूरोप में उपनिवेशों से आने वाली आवश्यक वस्तुएँ ही नहीं अपितु पक्का माल तैयार करने के लिए अत्यावश्यक कच्चे माल के आयात को भी बन्द कर दिया। नेपोलियन ने सैनिकों के लिए कपड़ा और चमड़ा महाद्वीप-व्यवस्था की अवहेलना करके मँगाया जाता था। ग्रेट ब्रिटेन ने कहवा, चाय शक्कर इत्यादि, जिनके बिना रहायन-मध के अमन जीवित नहीं रह सकते थे, पर एकाधिकार (Monopoly) स्थापित कर रखा था। इन वस्तुओं को नेपोलियन फ्रांसीसियों और इटली वालों के लिए भी पूरी तरह बन्द नहीं कर सकता था। विशेष आज्ञा (Permits) की आड़ में ब्रिटेन का माल, रूस और पुर्तगाल के रास्ते से सारे यूरोप महाद्वीप में टापूक नदी तक पहुँचता था। चोरी से माल ले जाने के अनोखे तरीके अपनाए जाने लगे। जगह-जगह बहुत-सी अर्थियाँ निकलती दिखाई देने लगीं और जाँच करने पर पता लगा कि मुर्दागाड़ियाँ शक्कर से भरी हुई थीं। शक्कर, तम्बाकू, कहवा और रुई के बढ़ते हुए दामों से यूरोप के निवासियों को बड़ा कष्ट पहुँचा किन्तु इंग्लैंड को कोई हानि नहीं हुई। इंग्लैण्ड को केवल अपनी जनता की भुखमरी का डर था। किन्तु नेपोलियन ने फ्रांस के गेहूँ को भेजने के लिए विशेष आज्ञा दे दी।

यद्यपि नेपोलियन को अनेक कठिनाइयाँ सहनी पड़ीं, तो भी वह इंग्लैण्ड के बहिष्कार की नीति पर अड़ा रहा। १८०७ की टिलसिट की सन्धि के द्वारा उसने रूस के ज़ार से उसके देश में इंग्लैण्ड के माल को न आने देने का वचन ले लिया। प्रशिया के राजा ने भी इसी प्रकार का वचन दिया। स्वयं नेपोलियन ने फ्रांस,

इटली, रहायन-संघ और वारसा के देशों में इस व्यवस्था को लागू करने का वचन दिया। इसके भाई जोसेफ ने नेपल्स में, जिरोम ने वेस्टफेलिया में, हलिस ने ट्स्कने में उसकी इच्छा को पूरा करने का वचन दिया। १८०८ में स्वीडन-युद्ध के परिणाम स्वरूप ब्रिटेन के जहाजों का स्केंडेनेविया की सारी बन्दरगाहों में घुसना बन्द हो गया। अपने आदेशों को पोप के राज्य में लागू करने के दृढ़ निश्चय के कारण ही नेपोलियन को रोम से पोप को निकाल देना पड़ा और १८०६ में पोप के सम्पूर्ण राज्य को फ्रांस साम्राज्य में मिला लिया गया। १८१० में लुई बोनापार्ट ने नेपोलियन के विरुद्ध डच जनता का साथ देने का स्पष्ट संकेत दिया, क्योंकि उसे अनुभव हुआ कि महाद्वीप-व्यवस्था हालैण्ड के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। अतः उसने उसे अपदस्थ करके हालैण्ड को फ्रांस के साम्राज्य में मिला लिया।

महाद्वीप-व्यवस्था को लागू करने के लिए ही नेपोलियन को पुर्तगाल और स्पेन में हस्तक्षेप करना पड़ा। उसने पुर्तगाल से माँग की कि वह इंगलैण्ड से सारा व्यापार बन्द कर दे तथा सारे ब्रिटिश निवासियों को पकड़ ले और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ले। संरक्षक राजकुमार जोन कुछ समय तक तो झिझकता रहा किन्तु अन्त में उसने इनकार कर दिया। परिणामतः फ्रांस की सेना स्पेन से होती हुई पुर्तगाल में घुस आई। नेपोलियन का शाही परिवार को पकड़ने का प्रयत्न विफल हुआ। ब्रिटेन पुर्तगाल की सहायता को आया और इस तरह प्रायद्वीप युद्ध आरम्भ हो गया।

स्पेन की जनता को फ्रांस की सेना का अपने देश से होकर पुर्तगाल जाना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने अपने राजा पर भीरुता का अभियोग लगाया। देश में अनेक स्थानों पर दंगे हुए। बुरबोन-दरबार के प्रतिद्वन्द्वी गुटों में मध्यस्थता करने के बहाने नेपोलियन ने राजा तथा राजकुमार को फ्रांस के सीमान्त पर एक स्थान पर हटा दिया और धमकी देकर तथा फुसला कर राजा और राजकुमार को स्पेन के सिंहासन के सारे अधिकार त्याग देने के लिए मना लिया। १८०८ में जोसेफ बोनापार्ट को स्पेन का राजा घोषित किया गया। पुर्तगाल और स्पेन में हस्तक्षेप करने के कारण दोनों देशों की जनता में तुरन्त ही असन्तोष और विद्रोह फैल गया। पुर्तगाल और स्पेन दोनों देशों के निवासियों की ब्रिटेन ने सहायता की। सर आर्थर वेलेजली के नेतृत्व में ब्रिटेन ने सहायता की। सर आर्थर वेलेजली के नेतृत्व में ब्रिटेन ने पुर्तगाल में सेना भेजी जिसने फ्रांसीसी सेनाओं को १८०८ में विमीरो के स्थान पर परास्त किया। सिण्ट्रा की संधि के अनुसार फ्रांसीसियों द्वारा पुर्तगाल खाली करने का वचन देने के थोड़े ही दिन पश्चात नेपोलियन ने स्वयं कमान सँभाली और मैड्रिड पर अधिकार कर लिया। ब्रिटिश सेनापति सर जोन मोर स्पेन की ओर बढ़ा और बहुत बड़ी फ्रांसीसी सेना को हटा कर लिस्बन को बचा लिया। नेपोलियन ने सेनापति साल्ट (Soult) को ब्रिटेन की सेना को स्पेन के उत्तर की ओर खदेड़ने के लिए तथा ब्रिटिश चीतों (Leopards) को समुद्र में धकेल देने के लिए भेजा। कोरुन्ना के स्थान पर सर जान मारा गया किन्तु उसकी सेना बच निकली।

सर आर्थर वेलेज़ली को १८०९ में पुनः पुर्तगाल के मोर्चे की कमान सौंपी

गई। वह स्पेन की ओर बढा और उसने टैलाविरा (Talavera) की लडाई को जीता, किन्तु उसे फिर लिस्बन तक पीछे हटना पडा। सेनापति मैस्सेना (Massena) ने अंग्रेज चीते को समुद्र मे डुबा देने के लिए आक्रमण किया, किन्तु वैलिंगटन की चालो ने उसके प्रयत्नों को विफल कर दिया। जिस प्रायद्वीप पर लिस्बन स्थित था उस पर अंग्रेज सेनापति ने आर-पार खाइयो की पंक्तियाँ खुदवा दी। इन खाइयो की पंक्तियो को 'लाइन्स ऑफ टोरस विडरास' (Lines of Torres Vedras) कहा जाता था तथा ये शस्त्रास्त्र से इतनी सुसज्जित थीं कि मैस्सेना के लिए इन पर आक्रमण कर सकना असम्भव हो गया। वैलिंगटन ने इन खाइयों के निकट का प्रदेश बुरी तरह उजाड दिया और परिणामत फ्रास की सेनाएँ भूख से मरने लगी। खाइयों के मोर्चों के पीछे वैलिंगटन की स्थिति बहुत शक्तिशाली थी और उसने लिस्बन को अपनी मुख्य छावनी बना रखा था, जहाँ रसद समुद्री मार्ग से पहुँचाई जाती रही। १८११ मे मैस्सेना को बहुत हानि उठाकर पीछे हटना पडा और इसके बाद फ्रास ने कभी पुर्तगाल पर आक्रमण नहीं किया।

वैलिंगटन की चालो ने फ्रास को बुरी तरह थका दिया, क्योंकि इनकी रसद बहुत दूर से आती थी। स्पेन निवासियो ने भी इस समय छापामार युद्ध के द्वारा फ्रास की सेनाओं पर सब स्थानो पर धावे किए। नेपोलियन आस्ट्रिया और रूस से युद्ध मे व्यस्त होने के कारण प्रायद्वीप में स्थित फ्रास की सेनाओं की कोई भी सहायता नही कर सकता था।

१८१२ मे वैलिंगटन ने अपने को इतना शक्तिशाली अनुभव किया कि वह स्पेन की ओर बढ़ सकने के स्वप्न लेने लगा। उसने पुर्तगाल और स्पेन की ओर जाने वाले दो मुख्य मार्गों पर नियन्त्रण करने वाले दो दुर्गों को जीत कर अपने आक्रमण को प्रारम्भ कर दिया। वह सलामान्का (Salamanca) तक बढ गया और वहाँ एक शानदार विजय प्राप्त करके मड्रिड (Madrid) मे घुसा। जोसेफ बोनापार्ट भाग गया। इस विजय के पश्चात् वैलिंगटन पुर्तगाल लौट गया। १८१३ मे दूसरी बार वह पुर्तगाल से स्पेन की ओर बढा और उसने फ्रास की सेनाओ को भगा दिया। विट्टोरिया (Vittoria) की लडाई मे जोसेफ को अपनी सारी रसद और तोपखाना छोड जाना पडा। वैलिंगटन का १८१४ का अभियान दक्षिणी फ्रास मे प्रारम्भ हुआ किन्तु उस समय तक राष्ट्रों का युद्ध आरम्भ हो चुका था और १८१४ मे स्वय नेपोलियन को परास्त करके एलबा द्वीप में भाग जाने के लिए विवश कर दिया गया।

प्रायद्वीप युद्ध (Peninsular War) के प्रभाव के विषय मे थॉमसन लिखता है कि 'नेपोलियन का स्पेन-युद्ध उसके विनाश का प्रथम चरण था, क्योंकि उसे एक राष्ट्रीयता से प्रेरित विरोध का सामना करना पडा था, जिसे वह घूस या कूटनीति से नहीं जीत सकता था। वह ग्रामो तथा पर्वतो मे होने वाले युद्ध के खतरे से परिचित था, किन्तु उसने यह कभी नही समझा कि एक युद्ध, धर्म-युद्ध (Crusad la puissance de l'ame) भी बन सकता है। वह केवल शस्त्र शक्ति मे विश्वास करता था, जो स्पेन मे इंग्लैण्ड की सेना के आने से पहले बहुत थोडी थी। उसने उस शक्ति

सा, जिसे किसी भी प्रकार की शस्त्र शक्ति नही जीत सकती, अर्थात जनता की देश भक्ति का अनुमान नही लगाया। यह सत्य है कि जो ज्वाला स्पेन म जली वह टायरोल (Tyrol) तक फली जहाँ उसे बडी कठिनाई से दबाया जा सका, किन्तु वह प्रतीक के रूप म तीन वष बाद पुन मास्को के अग्निकाण्ड मे प्रज्वलित हुई।
(Napoleon Bonaparte His Rise and Fall, p 247)

१८१२ म लार्ड लिवरपूल इग्लण्ड का प्रधान-मन्त्री तथा लार्ड कसलरे (Castlereagh) विदेश-सचिव बने। कैसलरे ने ब्रिटेन रूस, प्रशिया और बाद मे आस्ट्रिया को मिला कर चतुथ सगठन बनाया। स्वातन्त्र्य-युद्ध आरम्भ हुआ। १८१३ म लिपजिग (Leipzig) के स्थान पर राष्ट्रो के युद्ध (Battle of Nations) म नेपोलियन परास्त हुआ।

१८१४ म वलिगटन ने फ्रास को टूलूस (Toulouse) के स्थान पर परास्त किया। जब नेपोलियन ने अपने को निस्सहाय पाया तो १८१४ म उसने राज्य त्याग दिया। यद्यपि वह ऐलबा द्वीप से फ्रास चला आया था तो भी सयुक्त राष्ट्र उसे समाप्त करने के लिए कटिबद्ध थे। इस कारण वाटरलू (१८१५) की लडाई हुई जिसम नेपोलियन की सेना पूणत छिन्न भिन्न हो गई। इस युद्ध म ड्यूक आफ वलिगटन ने सबसे महत्वपूण भाग लिया।

१८१२ म नेपोलियन का रूस पर आक्रमण उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। जार एलेक्जेण्डर इस निणय पर पहुँच चुका था कि नेपोलियन की इच्छानुसार काय करना उसके लिए असम्भव है क्योकि उसकी इच्छाएँ जनता के हित के विरुद्ध थी। उसने महाद्वीप व्यवस्था (Continental System) की शर्तों को नही माना। नेपोलियन ने जिसने महाद्वीप-व्यवस्था पर सब कुछ दाँव पर लगा रखा था रूस की भावना से प्रेरित होकर रूस पर आक्रमण किया। उसके शब्दो म मास्को भारतवष तक पहुँचने के रास्ते म एक सराय है। उसने ६ लाख सनिको की एक महान् सना तयार की और आक्रमण आरम्भ कर दिया। रूसियो ने पीछे हटने की नीति अपनाई और रास्ते की सारी सामग्री नष्ट करते गये। मास्को नगर म भी आग लगा दी गई। परिस्थितियो ने नेपोलियन को मास्को से पीछे हटने के लिए विवश कर दिया और उसका पीछे हटना मानव इतिहास की सबसे भयानक घटना है। लगभग पाँच लाख व्यक्ति रूस म ही समाप्त हो गये। नेपोलियन की अजय शक्ति का भ्रम सदा के लिए नष्ट हो गया। महाद्वीप-व्यवस्था को रूस म लागू करने के प्रयत्न म नेपोलियन की असफलता के साथ ही यह व्यवस्था भी समाप्त हो गई।

मास्को अभियान के विषय म स्वय नेपोलियन ने कहा सम्भवत मैंने मास्को जाकर भूल की। मुझे वहाँ अधिक समय तक ठहरना नही चाहिए था किन्तु महानता और नीचता म केवल एक ही कदम का ही अन्तर है किन्तु इसका निणय तो भावी सताने ही कर सकती हैं।

थॉमसन के अनुसार, १८१२ का वष नेपोलियन के जीवन का जटिल वष

था, किन्तु परिवर्तन मास्को के बाद हुआ, पहले नहीं। चैपटल (Chaptal) जो नेपोलियन को सबसे अधिक जानता था, लिखता है—"मास्को से लौटने के पश्चात, जो लोग नेपोलियन के सन्निकट थे, उन्होने उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति मे एक महान् परिवर्तन देखा मैं स्वीकार करता हूँ कि इस दुर्भाग्यपूर्ण समय के पश्चात उसके विचारो और चरित्र मे वह तारतम्य और शक्ति देखने को नहीं मिली जो पहले थी। केवल कल्पना की उडानें ही देखने को मिलती थी। पहले जैसे कठ र परिश्रम के लिए न तो उसमे चाह रही थी और न ही शक्ति, जैसा कि मैं बहुधा कहा करता हूँ कि उसमे मस्तिष्क के १०० ज्ञान-तन्तु केन्द्रो (nerve centres) मे से, आधे से अधिक अब स्वस्थ नही रह गये थे'।'

(Napoleon Bonaparte His Rise and Fall p 340)

महाद्वीप-व्यवस्था (Continental System) के इग्लण्ड पर हुए प्रभाव के विषय म थॉमसन लिखता है कि "१८०३ से १८१० तक नेपोलियन ने फ्रांसीसी और डच बन्दरगाहो पर, इम्स (Ems) और ऐल्बी (Elbe) के मुहानो पर तथा १८०६ के पश्चात जर्मनी की बाल्टिक सागर की बन्दरगाहो पर जो रोकें लगाईं, उनमे ब्रिटिश व्यापार पर कोई गम्भीर प्रभाव नही पडा। इग्लैण्ड का बना माल जो विदेशों म भेजा गया उसकी कीमत १८०५ मे ४१ लाख पौंड, १८०६ में ४४ लाख पौंड, १८०७ म ४० लाख ५० हजार पौंड, १८०८ मे लगभग ४० लाख ७५ हजार पौंड १८०९ म ५० लाख २५ हजार पौंड और १८१० म लगभग ५० लाख पौंड आँकी जाती है। उपनिवेशो से आए हुए माल की दुबारा निकासी की कीमत १८०५ म १० लाख पौंड, १८०६ मे १० लाख पौंड से कुछ कम, १८०७ म पूरे १० लाख पौंड १८०८ म ९ लाख पौंड और १८१३ मे १२ लाख ७५ हजार पौंड आँकी जाती है। यदि यह मान लिया जाय कि इग्लण्ड अपने विदेशी व्यापार के सहारे जीवित था, तो हम मानना पडेगा कि इसे नष्ट करने का नेपोलियन का प्रयास सर्वथा गलत था। यह भी कहा जा सकता है कि जिस समय इग्लैण्ड के जहाजो के लिए यूरोप महाद्वीप की बन्दरगाहें उत्तरोत्तर बन्द होती जा रही थी उस समय उसने समुद्र-पार की अन्य नई मडियो म अपना माल खपाना आरम्भ कर दिया था। यह तथ्य भी किसी हद तक सच है और बोनापार्ट अपनी योजना बनाते हुए इसको बिल्कुल भूल गया। कुछ भी हो यदि इन आकडो की पडताल की जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि यूरोप म ब्रिटेन के माल की निकासी प्रगति करती रही। १८०५ म ३७ ८ प्रतिशत माल यूरोप म गया १८०६ म ३० ९ प्रतिशत १८०७ म २५ ५ प्रतिशत, १८०८ म २८ ७ प्रतिशत, १८०९ म ३५ ८ प्रतिशत और १८१० म ४२ प्रतिशत गया। तथा उपनिवेशो और अन्य देशो से आया हुआ जो माल पुन भेजा गया उसका जो भाग यूरोप म गया वह कुल विदेशी व्यापार का १८०५ मे ७८ ७ प्रतिशत, १८०६ म ७२ ९ प्रतिशत १८०७ म ८० प्रतिशत १८०८ म ७१ १ प्रतिशत, १८०९ मे ८३ १ प्रतिशत और १८१० मे ७६ १ प्रतिशत था। इस प्रकार महाद्वीप व्यवस्था का प्रतिबन्ध अपने प्रमुख प्रयास में १८१० तक पूर्णत असफल रहा।

(Napoleon Bonaprte His Rise and Fall, pp 235 36)

मारखम (Markham) के मतानुसार, 'महाद्वीप-व्यवस्था द्वारा नेपोलियन ने अपने साम्राज्य के विरुद्ध केवल यूरोप की जनता को ही नहीं उभारा अपितु उसने फ्रांस के मध्यमवर्ग का भी विश्वास खो दिया। इस वर्ग के लोग वे लोग थे जो क्रांति के प्रमुख उपभोक्ता थे और जिन्होंने उसे सत्तारूढ किया था। १८१० से १८११ तक फ्रांस में जो निरन्तर आर्थिक संकट बना रहा उसका कारण 'महाद्वीप-व्यवस्था' को बताया गया। इसी समय से फ्रांस की जनता तत्कालीन शासन और राजवंश के भविष्य से उदासीन हो गई और उनकी यह उदासीनता १८१४ में अत्यन्त स्पष्ट प्रतीत होने लगी। देश का मध्यमवर्ग नेपोलियन की रक्षात्मक (Protectionist) नीति से सहमत था और यद्यपि उन्होंने उस समय से नेपोलियन का साथ छोड़ दिया जबकि उसके द्वारा उन्हें लाभ होना बन्द हो गया तथापि वे जिद कर के उन्नीसवीं शताब्दी भर इस नीति का समर्थन करते रहे। १८१२ में मास्को से पीछे हटते समय मालेट (Malet) षड्यन्त्र से बहुत विचलित हुआ। मालेट एक घोर कट्टरपंथी गण तन्त्रवादी सेनापति था। उसने घोषणा करा दी कि नेपोलियन की मृत्यु हो गई है तथा गणतन्त्र की स्थापना की घोषणा कर दी। उसका यह षड्यन्त्र उसके बन्द किये जाने से पहले कुछ सफल तो हुआ किन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि जिन सेनानायकों को मालेट ने धोखा दिया उनमें से किसी ने भी नेपोलियन के पुत्र नेपोलियन द्वितीय का राजसिंहासन पर अभिषेक करने की बात भी नहीं सोचा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि नेपोलियन द्वारा महाद्वीप-व्यवस्था को लागू करने के प्रयत्न में फ्रांस के आर्थिक साधन छिन्न भिन्न हो गये और वह अनेक देशों की सहानुभूति खो बैठा। ब्रिटेन इतना दुःखी हो गया कि कुछ भी करने के लिए तयार था। महाद्वीप-व्यवस्था' एक महान् आर्थिक सहिष्णुता की परीक्षा थी और ब्रिटेन इसमें सफल हुआ।

नेपोलियन की असफलता के कारण (Causes of Napoleon's Failure) —नेपोलियन १८०८ में सत्ता के उच्चतम शिखर पर पहुँचा और इसके पश्चात उसका पतन प्रारम्भ हुआ। इस व्यक्ति के जिसने सारे यूरोप को अपने नियन्त्रण में कर लिया था इतनी शीघ्रता से पतन के अनेक कारण हैं।

(१) एक प्रमुख कारण था मानव-बुद्धि का सीमित होना। यह सत्य है कि नेपोलियन एक अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति था किन्तु यह भी सत्य है कि वह एक मनुष्य था। उसके लिए सब कुछ स्वयं कर सकना असम्भव था। क्योंकि उसने एक ही बार अनेक कार्य करने प्रयत्न किया था तब क्या आश्चर्य है कि वह सब कार्यों में असफल रहा।

(२) मनुष्य की जीवन-शक्ति की सीमा होती है और एक विशेष आयु पाने पर वह अपने-आपको श्रान्त और क्लान्त अनुभव करने लगता है। डा० स्लोअन (Dr Sloane) के शब्दों में उसके पतन के सारे कारण एक ही शब्द थकान (Exhaustion) में निहित हैं। मानव के कार्यों का इतना परिपूर्ण लेखा कहीं भी

नहीं है जितना कि नेपोलियन के जीवन में देखने को मिलता है। प्रारम्भ में हम इस शक्ति के उपासक को व्यर्थ ही अपनी अपरिपक्व शक्ति को उत्तेजना देते हुए देखते हैं, जबकि उसने सहसा तीव्र निराशा के आवेश में अपनी शिक्षा अवधि को समाप्त करके बर्तीम के साथ निम्न स्तर का सौदा किया। उसके पश्चात सहसा अनिर्वचनीय तीव्रता से धनी बन गया तथा अच्छी वेश भूषा भोजन और निवास-स्थान को पाकर शारीरिक रूप से अत्यन्त शक्तिशाली बनकर वह मानो अपना निर्माण करता प्रतीत होता है। किन्तु शीघ्र ही उसका नेतृत्व, कुशाग्रता, अदम्य शक्ति प्रत्यक्ष रूप से एक महामानवीय सीमा के साथ प्रस्फुटित होकर विश्व को चकाचौंध कर देती है। उसकी सफलता की अवधि थोड़ी किन्तु राजनीति के क्षेत्र में यशस्वी है और उसके प्रभुत्व का युग दीर्घ और स्फूर्तिदायक है। किन्तु दोनों ही अवस्थाओं में उसकी अजेय, प्रबल क्रियाशीलता और मानसिक उत्तेजना ओत प्रोत है। इसके बाद उसके जीवन का मोड़ आया। प्रत्येक युग में भविष्य के बीज होते हैं हम सब जन्म-काल से मृत्यु की ओर बढ़ते जाते हैं वर्तमान अवस्था के गुण और शक्तियाँ घटती जाती हैं तथा आने वाली अवस्था के गुणों और शक्तियों की वृद्धि होती जाती है। नेपोलियन के साथ भी यही हुआ। घटनाओं की संख्या और महत्व के दृष्टिकोण से उसने थोड़े-से स्थान में इतना कुछ ठूँस-ठूँसकर भर दिया कि उसका युग एक जापानी झुर्रीदार चित्र की तरह बन गया जिसे छोटे-से स्थान में समेट कर बना दिया जाता है जो तीव्र, गम्भीर और प्रभावोत्पादक हुआ करता है। दूसरे शब्दों में हम नेपोलियन के जीवन के विषय में यह कह सकते हैं कि उसने देश की नौका को चारों ओर से थपेड़े खाते और तीव्र गति से प्रगति करते पाया, कोई भी उसका मार्गदर्शक नहीं था। एक कठिन समय में उसने थपेड़ों को समाप्त कर उसकी प्रगति को गतिशील स्थिरता प्रदान की। किन्तु उसके पास भाप अथवा अन्य बल या यन्त्र की शक्ति नहीं थी, जिसकी वह सहायता ले सकता। वह इसे अकेला ही सँभालता रहा। तूफान बढ़ता गया और वह अधिकाधिक श्रान्त और क्लान्त होता गया। जब वह इस नौका का पथ प्रदर्शन कर रहा था, वास्तव में उसके कार्य घटनाचक्र से प्रेरित थे, वह नियन्त्रण नहीं कर रहा था, किन्तु फिर भी वह इसके चट्टान पर टकराकर नष्ट भ्रष्ट होने तक अपना कार्य अनवरत गति से करता ही चला गया।'

प्रो० हार्नेण्ट और फ्रांस का प्रधान टीयर्स (Thiers) इस विचार से सहमत नहीं हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि वाटरलू की लड़ाई से पूर्व और पश्चात नेपोलियन के सारे कार्य एक स्वस्थ मनुष्य के कार्य थे। उसकी निर्णायक बुद्धि ही उसके ह्रास और असफलता की कारण थी। यह सत्य है कि अनेक युद्धों में उसकी निरन्तर विजय ने उसे घमण्डी और तुनुक-मिजाज बना दिया था। उसका घमण्ड एक सनक बन गया और उसने दूसरों की सलाह मानने से इनकार कर दिया। टलेरण्ड (Talleyrand) और फोचे (Fouche) जैसे व्यक्तियों को भी उसने अपना विश्वासपात्र नहीं माना। नेपोलियन यह समझने लगा था कि उसकी बुद्धि सर्वश्रेष्ठ है, अतः उसके निर्णय भी सर्वश्रेष्ठ हैं। उसके निर्णय में कभी-कभी बड़े महत्वपूर्ण तथ्य छूट जाते

थे जो सलाह देने पर उसे सुझाये जा सकते थे। उसके अनुमान त्रुटिपूर्ण होने लगे और अंत मे उसके अनुमान ही उसके पतन का कारण बने।

(३) उसकी असफलता का एक कारण उसका सैन्य-वाद (Militarism) था। राष्ट्रीय सम्मेलन के नवीन सैन्य-वाद का नेपोलियन उत्तराधिकारी था। किन्तु उसने इसे सम्पूर्ण किया तथा बढाया। उसने बडी-बडी सेनाओं की भरती की उन्हें शिक्षित किया और शीघ्रता से युद्ध के मोर्चों पर पहुँचाया तथा इंग्लैंड को छोडकर यूरोप भर की समस्त महान शक्तियों को एक एक करके परास्त किया। किन्तु उसके युद्धो ने अधिकाधिक नर-बलि लेनी आरम्भ कर दी अत उसे अपनी सेना में छोटी आयु के लडके भी भर्ती करने पडे। यह तरीका अधिक देर तक नही चल सकता था और इसका परिणाम केवल विनाश ही था। जिस सैन्यवाद के द्वारा नेपोलियन यूरोप को विजय कर सका, वही सैन्यवाद उसकी पराजय का कारण बना। फ्रांस के सैन्यवाद से अन्य देशो मे विशेषत प्रशिया रूस और आस्ट्रिया मे इसका प्रसार हुआ। दूसरे देशो के सामूहिक सैन्यवाद के कारण ही नेपोलियन का पतन हुआ। नेपोलियन कहा करता था, परमात्मा बडी सेना के साथ चलता है इसलिए जब शत्रुओ की सेनाए उसकी सेनाओ से बडी हो गई तो स्पष्ट है कि परमात्मा उनके साथ चलने लगा होगा और उनकी जीत हुई होगी। पुनश्च जैसे-जैसे समय बीतता गया नेपोलियन को अपनी सेनाओ मे अधिकाधिक पोल, जर्मन इटालियन डच, स्पेनियार्ड और डेन भर्ती करने पडे। नेपोलियन की महान सेना अधिकाधिक विषम तत्त्वो का झुण्ड बनती चली गई परिणामत उसकी सामरिक शक्ति घट गई। नेपोलियन ने फ्रांस की सेनाओ को अपने शत्रु और मित्र देशो मे ठहराने की नीति अपनाई। इस नीति द्वारा वह खर्चे मे तो बचत कर पाया किन्तु इससे बहुत कटुता बढ गई। जिन देशो मे इन सेनाओं को ठहराया जाता था वे इनसे घृणा करते थे और यही घृणा नेपोलियन के पतन का कारण बनी।

(४) असफलता का एक कारण 'महाद्वीप-व्यवस्था (Continental System) भी थी। नेपोलियन इंग्लैण्ड को अपना सबसे बडा शत्रु मानता था और उसे नीचा दिखलाने के लिए दृढ प्रतिज्ञ था। उसके विचार मे इंग्लैण्ड की शक्ति और सौभाग्य उसके व्यापार पर निर्भर थे इसलिए उसने यूरोप भर मे उसके माल की पहुँच को पूर्णत रोकने का निर्णय किया। उसने अनेक प्रसिद्ध आज्ञाएँ प्रसारित की और ब्रिटेन के व्यापार को घाट पहुँचाने के लिए वह जो कुछ भी कर सकता था उसने किया। उसने इस बात को नहीं सोचा कि इंग्लैण्ड की वास्तविक शक्ति उसके तैयार माल मे निहित है। शक्तिशाली समुद्री बेडे की कमी और इंग्लैण्ड को गेहूँ भेजने के कारण नेपोलियन इंग्लैण्ड के घुटने टिकाने मे असमर्थ रहा। 'महाद्वीप-व्यवस्था' के कारण उसे अनेक राष्ट्रो से झगडना पडा परिणामत वहाँ के लोगो मे राष्ट्रीयता की भावना जागी। 'महाद्वीप-व्यवस्था' ने एक उल्टी तोप का काम करके इस व्यवस्था के निर्माता को ही नष्ट कर दिया।

(५) नेपोलियन ने स्वयं माना है कि यह स्पेन का 'व्रण' ही था, जिसने उसका नाश किया। इंग्लैण्ड के माल और नागरिकों को पुर्तगाल और स्पेन से निकालने के निश्चय के कारण ही उसे इन देशों में हस्तक्षेप करना पड़ा। इन देशों में उसका सतत और कड़ा विरोध हुआ। इन देशों की भौगोलिक विशेषताओं और समुद्र के रास्ते से इंग्लैण्ड की सहायता निरंतर मिलते रहने के कारण, स्पेन और पुर्तगाल की जनता फ्रांस की सेनाओं को प्रायद्वीप से मार भगाने में सफल हुई। स्पेन में ड्यूक ऑफ वेलिंगटन की जीतों ने नेपोलियन की अजेय शक्ति के भ्रम को नष्ट कर दिया।

(६) १८१२ में नेपोलियन का रूस पर आक्रमण एक भारी भूल थी। उसके सम्मान के साथ-साथ उसकी महान सेना भी पूर्णत नष्ट हो गई। मास्को से उसके असहाय अवस्था में पीछे हटने से ही उसके शत्रुओं को संगठन करके उसका नाश करने में प्रोत्साहन मिला।

(७) नेपोलियन का अपने सम्बन्धियों के प्रति मोह भी उसके पतन का एक कारण है। वह जितना उनके प्रति दयालु था, वे उसके प्रति उतने ही कृतघ्न थे। जर्मनी और इटली में उसकी सत्ता के विनाश के लिए केरोलीन (Caroline) और जिराम (Jerome) उत्तरदायी थे। पॉलीन (Pauline) को छोड़कर उसके अन्य सम्बन्धी विपत्ति के समय उसकी अवज्ञा करने में आनन्द लेते थे। कहा जाता है कि नेपोलियन ने सब भाइयों को गरुड़ बनाने का प्रयत्न किया किन्तु वे साधारण मुर्गे ही बने रहे, जिनका कार्य केवल अपने अन्तःपुर के सामने कुड़कुड़ाना और नाचना रह गया था। यदि वह एक बुरा भाई हुआ होता तो वह अधिक अच्छा शासक हुआ होता। नेपोलियन अपने भाइयों के व्यवहार से अत्यन्त दुःखी था। १८१० में नेपोलियन ने मैटरनिक (Metternich) से शिकायत की कि "जितना लाभ मैंने अपने सम्बन्धियों को पहुँचाया, उससे कहीं अधिक हानि उन्होंने मुझे पहुँचाई है।'

(८) कालान्तर में नेपोलियन ने चालाकी और धोखे का आश्रय लेना प्रारम्भ कर दिया। उसकी चालाकी का एक उदाहरण स्पेन के राजा को उसके देश से निकाल लाना था। कहा जाता है कि १८१४ में उसके पूर्ण पतन का कारण एक पत्र था जो इसने संधि-वार्ता के समय लिखा और जो रास्ते में शत्रुओं के हाथ पड़ा गया। इस पत्र से उसकी चालाकी खुल गई कि वह वास्तविक रूप से संधि का इच्छुक नहीं था। वह युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए अच्छे और बुरे, सब प्रकार के तरीके प्रयोग करने के लिए कटिबद्ध था। उसे कहते सुना गया था, "मैं जानता हूँ कि मुझे किस समय शेर की खाल छोड़कर लोमड़ी की खाल पहननी है।' ऐसी परिस्थिति में संगठित राष्ट्रों का इसके प्रणों और घोषणाओं पर से विश्वास उठ गया और यूरोप के रंगमंच से उसे पूरी तरह उखाड़ फेंकने के लिए निर्णय किया गया। धोखे की नीति सर्वदा सफल नहीं होती।

(९) प्रो० हालैण्ड रोज के मतानुसार, नेपोलियन के स्वभाव का ज़िद्दी हो

जाना उसके पतन का उत्तरदायी है। एक कुशल प्रबन्धक, जो सवदा त्रुटिहीन काय करता था जो हर स्थिति का उपाय रखकर सन्तुलन बनाये रखता था, जो शीघ्रता से निणय करने वाला था, उसने अपनी पूवकालीन विशेषताए तो बनाए रखी किन्तु ये उसके नियन्त्रण से बाहर हो गइ। अब वह घटनाओ को मोड-तोड कर अपनी इच्छाओ के अनुसार बनाने लगा और तथ्यो को भूल कर अपनी सनक का ही तथ्य मानने लगा। यह चारित्रिक ह्रास अनेक योद्धाओ के जीवन मे पाया जाता है किन्तु नेपोलियन के जीवन में यह टिलसिट के बाद तथा १८०९ के आस्ट्रियन अभियान के पश्चात और भी शीघ्रता से आया। १८१० मे उसके साम्राज्य की वृद्धि उसके हठ के बढने का एक सकेत है जिसने उसका उत्तरदायित्व बढाया तथा विजयो को शातिपूवक तथा ठीक प्रकार सँभाल सकने की शक्ति को क्षीण कर दिया।

(१०) जीवन के उत्तराध में नेपोलियन अपने कार्यों से हताश होकर दुस्साहसी बन गया जो उसकी सफलता के लिए किसी प्रकार हितकर नही था। मटरनिक ने ड्रेसडन के स्थान पर नेपोलियन से प्रस्ताव किया कि उसकी शर्तें मानकर यूरोप को शाति प्रदान करे। किन्तु नेपोलियन ने उससे पूछा तुम मुझस क्या चाहते हो? क्या मैं अपना अपमान करूँ? कभी नहीं। मैं राज्य का एक इच भी छोडने की अपेक्षा मृत्यु अधिक पसन्द करूँगा। तुम्हारे राजा लोगो का जन्म राजसिंहासन पर हुआ है और बीस बार हारने पर भी वे अपनी राजधानी मे पुन पदासीन हो सकते हैं। मैं ऐसा नही कर सकता क्योकि मैंने छावनी से उन्नति पाई है। मैटरनिक न पूछा कि यदि तुम्हारी भर्ती की हुई सेना समाप्त हो जाय तो तुम क्या कराग? इसका उत्तर नेपोलियन न दिया, 'तुम एक सिपाही नही हो। तुम क्या जानो एक सनिक के हृदय म क्या होता है। मैं युद्ध-स्थल में जवान हुआ और मेरे जैसा मनुष्य लाखो मनुष्यो की जानो की क्या चिन्ता करता है।'

(११) नेपोलियन को समझौते का सुझाव सुहाता ही नही था। उस यह खूब मालूम था कि 'राइन सघ' (Confederation of the Rhine) एक बुरा हल है, महाद्वीप-व्यवस्था' (Continental System) एक मृगमरीचिका है' और विशाल साम्राज्य (Grand Empire) एक न लौट आने वाली गान है, किन्तु वह इस स्थिति को मानने के लिए कभी तयार नही था। उसने राज्य-सभा के सदस्यो को इस प्रकार कहा जिस उच्च शिखर पर मैंने फास को पहुँचा दिया है तुम उससे नीचे उतर कर एक गवपूण साम्राज्य बनान की अपेक्षा पुन केवल मात्र एक छोटा-सा राज्य बनाना चाहत हो? नपोलियन ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि जब वह फ्रास को छोडेगा, देश पहले स भी निबल होगा जब उसन इसकी बागडोर सँभाली थी। उसके मित्रों द्वारा उसका साथ छोटने के विचार से ही वह क्रोध में भर कर बदला लेने की प्रतिज्ञा कर बठता। वह चीखा करता म्युनिच को जलना ही चाहिए और इसे जलना पडेगा। जब तक उसे सफलता का थोडा-सा अवसर भी दीख पडता रहता, वह अपन शत्रुओ स कभी समझौता नहीं करता था। क्योंकि, आशा ने अन्त तक उसका पीछा नहा

छोड़ा, अतः शान्ति और संधि की कोई आशा नहीं थी। अन्त तक नेपोलियन को यह विश्वास रहा कि वह शत्रु की त्रुटियों से लाभ उठाकर विजय प्राप्त कर लेगा। इसका कारण कुछ तो उसकी हठधर्मी तथा कुछ युवा अवस्था में अत्यधिक सफलताएं प्राप्त करने का सौभाग्य था। आरम्भ की सफलताएँ उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य था। इनके कारण उसने अन्य लोगों की सलाह मानना बन्द कर दिया। अन्त तक उसे यह विश्वास रहा कि वह 'भाग्य विधाता पुरुष (Man of Destiny) है। यदि नेपोलियन के दुर्भाग्य के आरम्भ होने के समय उसने समझौता कर लिया होता तो उसके ससुराल के सम्बन्धियों ने फ्रांस का सिंहासन उसके लिए सुरक्षित करने में उसकी सहायता की होती।

(१२) नेपोलियन की पराजय का कारण, यूरोप में जिनिसेन्यु (Gneisenau) जैसे मार्चेबन्दी में कुशल तथा ब्लुचर (Blucher) जैसे योद्धाओं और सेनापतियों का उदय होना भी था। यह उसका सौभाग्य था कि आरम्भ में उसे कोई ऐसा योग्य सेनापति नहीं मिला जो उससे लोहा ले सकने की हिम्मत रखता। अपनी सेना के प्रति उसकी उपेक्षा भी उसकी हार का कारण थी। वैलिंगटन और ब्लुचर को वह बहुत अयोग्य समझता था और शत्रु शक्ति का ठीक अनुमान न लगा सकने की कीमत उसे अपना साम्राज्य देकर चुकानी पड़ी।

(१३) नेपोलियन अत्यन्त शेखीमार हो गया था और बहुधा शेखी बघारने वाले व्यक्ति का पतन हो जाता है। स्पेन के अभियान के दिनों में उसने लिखा, "स्पेन में मुझे हरक्युलिस की शक्ति-सीमा के स्तम्भ भले ही मिल जायँ, किन्तु अपनी शक्ति की सीमा कहाँ पा सकूँगा मैंने स्पेन के सामन्तों और सेनाओं से बढ़कर कायर कहीं नहीं देखे।" ये वाक्य स्पेन में फ्रांस की सेनाओं के शस्त्र डालने के कुछ ही दिन पूर्व लिखे गये थे।

(१४) नेपोलियन जनता के कुछ वर्गों का समर्थन खो चुका था जिनके द्वारा वह सत्ता के शिखर पर पहुँच पाया था। कालान्तर में उसने जैकोबिनवाद के सिद्धान्तों को छोड़ दिया और राजशाही का कट्टर समर्थक बन गया। १७९३ में वह देश को दमन के चंगुल से छुड़ाने वाला और गणतन्त्रवाद की भावना को प्रसारित करने वाला सच्चा नेता माना जाने लगा। किन्तु १८०० के आते आते उसका सारा जीवन बदल गया और उसका झुकाव राजशाही की ओर हो गया। स्वयं नेपोलियन ने इस प्रकार कहा है "भविष्य ही इस बात को स्पष्ट कर पायगा कि क्या संसार की शान्ति के लिए यह अच्छा नहीं था कि रूसो और मैंने जन्म ही न लिया होता?'

(१५) नेपोलियन को अन्य लोगों से अपनी उच्चता का विश्वास था और इसलिए उसने राज्य की सारी सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित कर ली। यह भी उसके पतन का कारण था।

(१६) गम्भीर विचार द्वारा समस्याओं का हल निकालने की शक्ति, जिसके कारण प्रारम्भ में उसकी महत्वाकाक्षाएँ सीमित रही, जीवन के उत्तरार्ध में आडम्बर और शान की ओर झुक गई।

हेराल्ड (*Herold*) के मतानुसार 'यद्यपि यहाँ यह बात युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होती तो भी यह पूछा जाना कि नेपोलियन क्यों असफल हुआ आवश्यक है।" विक्टर ह्यूगो ने इसका उत्तर दिया उसने परमात्मा के कार्य में हस्तक्षेप किया।' यह एक उत्तर है। अन्य लोग उसके पतन का कारण कुछ त्रुटियों और त्रुटि-पूर्ण निर्णयों को मानते हैं कुछ लोग कहते हैं कि नेपोलियन ने इतना बड़ा ग्रास खाया कि वह उस पचा नहीं सका कुछ लोग उसकी राज्य प्रणाली में दोष निकालते हैं या उसे अदम्य एतिहासिक शक्तियों के हाथों खेलता देखते हैं, या यह कहते हैं कि उसकी जनता और साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया या उसकी पराजय को अच्छाई की बुराई पर जीत बताते हैं या निर्लिप्त भाव से दुर्भाग्य की बात कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि उसकी उन्नति आकस्मिक थी और उसके पतन ने उसे उचित स्थान पर पहुँचा दिया था।

फाच के शब्दों में नेपोलियन इस बात को भूल गया कि मनुष्य परमात्मा नहीं बन सकता। वह भूल गया कि राष्ट्र व्यक्ति से और चारित्रिक नियम मानवता से ऊँचे हैं। वह भूल गया कि युद्ध ही सर्वोच्च लक्ष्य नहीं है क्योंकि शान्ति युद्ध से उच्च है।'

नेपोलियन का चरित्र (*Character of Napoleon*)—नेपोलियन मध्यमहासागर का निवासी था और इस कारण उसका जीवन तीव्रता लगन और चमत्कारी कल्पना से परिपूर्ण था। उसमें निर्दय रूखा विलासी विचारशील और कवित्वमय होने की सामर्थ्य थी। कोलिनकोट (Caulaincourt) लिखता है सम्राट की भावनाएं उसके रोम रोम से प्रकट होती थीं और जब उसकी इच्छा होती तो कोई अन्य व्यक्ति उससे अधिक सुभावना नहीं हो सकता था। वह एक शिष्ट व्यक्ति था। विवाद में बहुत कम लोग उसका मुकाबला कर पाते थे। जिनसे भी वह बात-चीत करता वे सब उससे बड़े प्रभावित होते थे।

वह अत्यन्त हंसोड़ था। एक बार एक पागल ने नेपोलियन से कहा कि मुझे महारानी से प्रेम है। नेपोलियन ने उसे उत्तर दिया आपको यह गुप्त भेद किसी और व्यक्ति को बताना था।' १८१२ में जब वह कोलिनकोट के साथ मास्को से अकेला लौट रहा था तो उसने इस बात को लेकर कि यदि प्रशिया वाले उन्हें पकड़ लें और दोनों को लोहे के पिंजरे में बन्द करके लन्दन में तमाशे के तौर पर दिखाया करें तो कितना मजा आये उसने कोलिनकोट को चिढ़ाने की सोची। इस मजाक से दोनों कई मील तक कहकहे लगाते रहे। कहा जाता है कि विमाना में एक रात्रि को नेपोलियन ने ठंडा मुर्गा (cold chicken) जो उसके भोजन के लिए तैयार रखा जाता था माँगा। जब मुर्गा लाया गया, नेपोलियन ने उसकी ओर देख

कर कहा, "कब से मुर्गे एक टाँग और एक पंख के पैदा होने लगे। मैं देखता हूँ कि अब मुझे अपने नौकरों से बचे हुए भोजनो को खा कर जीना पड़ेगा।" नेपोलियन ने अपने नौकर को, जिसने मुर्गा खाया था, कान खींचकर छोड दिया।

नेपोलियन अपनी युवावस्था के साथियो और मित्रो से विशेष लगाव और मोह के बंधन से बँधा था। लेनज (Lannes), ने (Ney), मरमोण्ट (Marmont), मुराट (Murat) और जुनो (Junot) जैसे मित्र, जो मन मे आता, नेपोलियन को कह दिया करते थे। कहा जाता है लेनज और ड्यूरेक की मृत्यु पर नेपोलियन फूट फूट कर रोया था।

उसे एक 'पत्थर दिल अत्याचारी' कहना भूल है। वह 'नीति' के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप बदला करता था। स्वय नेपोलियन कहा करता था कि मुझ मे दो भिन्न भिन्न प्रकार के व्यक्ति हैं एक केवल बुद्धि वाला और दूसरा हृदय वाला।

उसने अपने भाई बहिनो पर धन और पदो की वर्षा कर दी। उसने जोसेफ को पहले नेपल्स और फिर स्पेन का राजा बनाया। उसने लुई को हालैण्ड का राजा बनाया। उसने जिरोम को वस्टफेलिया (Westphalia) का राजा बनाया। किन्तु इतना करने पर भी वे सतुष्ट नही हुए। नेपोलियन ने दुखी होकर कहा, "जिस तरह ये लोग बात करते हैं उसे सुनकर कोई यह सोचेगा कि मैंने अपनी पैतृक सम्पत्ति बरबाद कर दी है।"

नेपोलियन की स्मरण शक्ति अद्भुत थी और इसकी सहायता से वह अपनी कल्पना में योजनाओ और आकाक्षाओ का ताना बाना बुना करता था। उसके शब्दो में वह "दो वर्ष पहले का जीवन जिया करता।' एमरसन के शब्दो मे, 'नेपोलियन को कभी भी विजय आकस्मिक रूप से प्राप्त नही हुई, अपितु युद्ध-स्थल मे लडाई जीतने से पहले वह युद्ध को अपने मस्तिष्क मे ही जीत लिया करता था।'

उसे अपने बौद्धिक साधन हर समय उपलब्ध थे। उसके अपने शब्दों में "दराजो वाले सन्दूक की तरह मेरे मस्तिष्क में भिन्न भिन्न प्रकार के मामले इकट्ठे होते रहते हैं। जब मैं किसी कार्य को बन्द करना चाहता हूँ तो उसका दराज बन्द करके दूसरा दराज खोल लेता हूँ। इनमे से एक भी कभी आपस में नहीं मिलता और इनमे कभी गडबड नही होती। अत मुझे असुविधा का सामना नहीं करना पडता। जब मुझे नींद आती है मैं इन सब दराजों को बन्द करके सो जाता हूँ।

नेपोलियन का मूल्याकन (Estimate of Napoleon)—नेपोलियन विश्व के सबसे महान् विजेताओ और शासको मे से था। वह एक उच्च स्तर का बुद्धिमान् व्यक्ति था। उसके विषय मे बहुत बड़ी सख्या मे लिखे गये ग्रथ उसके व्यक्तित्व के परिचायक हैं। यूरोप में एक नई व्यवस्था की नीव डालने वाले के रूप में उसका अनन्त काल तक स्मरण होता रहेगा। इटली और जर्मनी को मिला देने में उसके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उसके विषय मे लिखने वालों के हृदय मे उसके विरुद्ध

घोर विरोध होने के कारण उसके चरित्र का सत्य समीक्षण करना असम्भव है। एबट (Abbot) जैसे व्यक्तियों ने उसकी भरसक प्रशंसा करने का प्रयत्न किया है किन्तु अन्य लोगों ने उसकी निंदा की है। सत्य इन दो अत्यन्त विपरीत विचारों के मध्य में स्थित है। यह कहना कि या तो वह अत्याचारी था या लुटेरा उसके साथ घोर अन्याय करना है। उसने गुणवानों के लिए पदों के द्वार खोल दिये (careers open to talent) तथा विशेषाधिकारों को समाप्त करके समानता पर जोर दिया। 'अन्तिम उदार स्वेच्छाचारी शासक होने के साथ वह प्रथम आधुनिक महान शासक था।'

नैपोलियन एक उच्च स्तर का वक्ता था। जन-साधारण पर उसकी अपील सफल होती थी। किसी ने उसे महान लेखक भी कहा है। फिशर के शब्दों में वह पत्रकारों का राजा और युद्ध के संवाददाताओं का पिता था। उसकी शैली नाटकीय थी तथा उसमें आत्मश्लाघा का अनुपम तत्त्व विद्यमान था।

कहा जाता है कि वह अत्यन्त स्वार्थी था और अपने स्वार्थ के लिए अपने परम मित्रों तथा सब वस्तुओं को छोड़ सकता था। क्या आश्चर्य है कि उसकी विपत्ति के समय सब ने, उसकी पत्नी तक ने, उसका परित्याग कर दिया हो। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए लाखों सिपाहियों की जानों की बलि दे सकता था। कहा जाता है कि बोरोडिना के युद्ध में सबसे अधिक नर हत्या हुई और उसे देख कर नैपोलियन ने कहा ' यह सबसे शानदार युद्ध है जो मैंने अब तक देखा है। उसका व्यक्तित्व इतना महान था कि जो भी उससे मिलता सम्मोहित हो जाता विशेषतः उसके सैनिक, जो कि उसके लिए अपना जीवन देने को तैयार रहते थे।

नैपोलियन कहा करता था मैं और व्यक्तियों की तरह कापुरुष नहीं हूँ। उसका सिद्धान्त था कि धर्म और सदाचार के बन्धनों से वह मुक्त है। यद्यपि रोमन कैथोलिक धर्म में वह अपनी आस्था जताया करता था तो भी मन से एक पूर्ण भौतिकवादी था तथा स्वयं ईसा में भी उसका विश्वास नहीं था। उसके शब्दों में मिस्र में मैं मुसलमान था फ्रांस में रोमन कैथोलिक हूँ।

वह बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति था। मनुष्य की शक्ति का जहाँ तक हमें ज्ञान है नैपोलियन ने उन सब शक्तियों की पराकाष्ठा को पहुँचा लिया था। मिग्नट (Mignet) के शब्दों में नैपोलियन आधुनिक युग का सबसे महान व्यक्तित्व है।

वह देश का सर्वसत्ताधारी तथा सेना का सैनिक अधिकारी भी था। देश का निर्माण सैनिक आधार पर किया गया था। विजय के उद्देश्य से अपनी सेनाएं रखने और बनाये रखने के लिए इसकी सारी संस्थाओं का संगठन किया गया था। राज्य के सारे पद व पुरस्कार सबसे पहले केवल सेना ही के लिए सुरक्षित रहते थे। एक अधिकारी, और सेना का एक प्राइवेट सिपाही तक, राज्य की सर्वोच्च सत्ता को अपनी सेवाओं का फल बना सकता था। यह स्पष्ट है कि ऐसी निर्मित सेना के साथ राज्यसत्ता की उपस्थिति उनके प्रयोजनों को अत्यधिक प्रोत्साहन दे सकती है। यह

बिल्कुल निश्चित था कि फ्रांस के राज्य के सारे साधन—असैनिक राजनीतिक, धन व सेना-सम्बन्धी तत्व—संचालन की गद्दी की ओर झुक गए थे जिसे नेपोलियन ही स्वयं निर्देशित करता हो। सेना को आदेशित रखने वाला प्रत्येक अधिकारी उसके विरुद्ध लाभ प्राप्त करता था जिसे प्रदत्त सत्ता का प्रयोग मिला हुआ था या जो आदर्शों व उत्तरदायित्वों के अधीन रहता था। लेकिन अन्य किसी सत्ताधारी जो अब तक हुआ था की अपेक्षा नेपोलियन को इस प्रकार के अभूतपूर्व गुण प्राप्त थे। जैसा कि कई लोगों ने बताया है उसकी उपस्थिति ऊपर वह हुए सारे लाभ ही फ्रांस की सेना को नहीं मिल सकते थे, वरन वह फ्रांस के भावों की सारी इच्छाओं और एक-दूसरे के कार्यों की प्रतिक्रियाओं को समाप्त कर सकता था चाहे वह दूषित सिद्धान्तों व भावनाओं पर आधारित हो या केवल उनके बीच मतभेद हों। इस तरह फ्रांस की सेना को क्रिया की एकता प्राप्त थी।'

(Napoleon Bonaparte : His Rise and Fall p 285)

नेपोलियन बहुत कुशल नायक और व्यवस्थापक था। उसने प्राचीन काल के विचारों का वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग किया। वह छोटी से छोटी बात का पूरा ध्यान रखता तथा उसका प्रत्येक कार्य सुचारु रूप से व्यवस्थित होता था। अपनी सेना के निर्माण में 'योग्यता' को महत्त्व देकर उसने कुशल व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त कीं। वह दिन में १८ घण्टे काम कर सकता था और दूसरों से अधिक-से-अधिक कार्य की मांग करता था। १८१४ में ड्रेस्डन के युद्ध के बाद वह ३ दिन में ६० मील चला। वाटरलू के युद्ध के चार दिनों में वह ३७ घण्टे घोड़े पर सवार रहा और ९६ घण्टों में केवल २० घण्टे सोया। अपनी अद्भुत तीव्र बुद्धि के कारण वह शत्रु की सेना में दुर्बल स्थान आसानी से देख लिया करता था। संयुक्त राष्ट्रों की सेनाओं में तारतम्य की कमी के कारण तथा शत्रु के दुर्बल स्थानों पर करारी चोट करने की शक्ति उसमें बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। वह अपनी विजय के बाद अन्य विजयों के लिए प्रयत्न करता रहता था। वह प्रत्येक सुअवसर से अधिकाधिक लाभ उठाता था।

नेपोलियन ने फ्रांस की बड़ी सेवा की। उसकी सफलताओं ने फ्रांस को विदेशी शत्रुओं से बचाया। उसने शक्तिशाली कुशल केन्द्रीय सरकार की स्थापना करके देश को अराजकता से बचाया। दंगों और गृह-युद्ध में केवल उसका जीवन ही एक रोक था। उसने फ्रांस को 'ठोस कानून प्रणाली' प्रदान की। उसने शिक्षा की उन्नति की, व्यापार और उद्योग की वृद्धि के लिए सक्रिय कदम उठाये। उसने दूसरे देशों पर फ्रांस की सेनाओं का व्यय भार डाल कर देश के कोष को सहायता प्रदान की। उसने कागज के नोट नहीं चलाये और आय-कर भी नहीं लगाया। किन्तु टिलसिट की सन्धि के पश्चात् नेपोलियन फ्रांस में दुर्भाग्य ले आया। यदि १८०७ में ही नेपोलियन की मृत्यु हो गई होती तो फ्रांस उसका कृतज्ञ होता। इंग्लैण्ड को नीचा दिखाने का संकल्प ही उसकी सारी विपत्तियों की जड़ था।

आलोचक कहते हैं कि 'नेपोलियन यूरोप का आततायी था। वह फ्रांस की प्राकृतिक सीमाओं से सन्तुष्ट नहीं रहा। वह यूरोप के अन्य देशों पर भी अपना शासन जमा कर उन पर स्वेच्छाचारिता से शासन करना चाहता था। युद्ध और अत्याचार उसके चरित्र के अभिन्न तत्व थे जो उसके रोम रोम में पैठ गये थे।' "वह यूरोप को फ्रांस द्वारा और इंग्लैण्ड को यूरोप के माध्यम से नीचा दिखाना चाहता था। महाद्वीप-व्यवस्था इंग्लैण्ड के विरुद्ध यूरोप को संगठित करने का एक प्रयत्न था। इंग्लैण्ड के प्रति उसकी कटुता उसके शब्दों से प्रकट है कि, "हमारी सरकार को इंग्लैण्ड की राजशाही समाप्त करनी ही चाहिए अन्यथा इन क्रियाशील द्वीपों के निवासियों द्वारा अपना विनाश स्वीकार करना चाहिए।' नेपोलियन अलेग्जेण्डर महान और चार्लेमेग्ने दोनों के पदचिह्नों पर चलना चाहता था। उसकी महत्वाकांक्षा केवल यूरोप तक ही सीमित नहीं थी उसकी इच्छा पूर्व को भी विजय करने की थी। जैसा कि १८१२ में दिये हुए उसके वक्तव्य से स्पष्ट है 'हम यूरोप का अन्त करने वाले हैं और फिर पूर्व की ओर जाकर भारतवर्ष के स्वामी बनेंगे।

एमर्सन के शब्दों में 'उस काल में वह उन्नति करने वाले मध्यम वर्ग के सारे गुणों का मूर्त रूप था। वह व्यापार के धन्धे में नहीं खप सका इस कारण वह इस नाटक में खलनायक बन गया।' सोरेल के मतानुसार, 'नेपोलियन विशाल फ्रांस का समर्थक तथा उसकी प्राकृतिक सीमाओं की माँग का निर्माता था। लेवी के मतानुसार नेपोलियन एक आदर्श बुर्जुआ था जो शांति-व्यवस्था को चाहने वाला था किन्तु यूरोप के सारे देशों के उकसाये जाने के कारण युद्ध करने पर विवश हो गया।

ग्रान्ट और टेम्परले के मतानुसार नेपोलियन निर्विवाद रूप से एक असाधारण मस्तिष्क और चरित्र का व्यक्ति था जिसने किन्हीं भी परिस्थितियों अथवा किसी देश में अपना उच्च स्थान प्राप्त किया होता। उसमें कार्य तथा व्यवस्था करने की असाधारण शक्ति तीव्र अन्तर्दृष्टि साहस उत्तरदायित्व निभाने की इच्छा एक बार कार्य को हाथ में लेकर उसे पूरा करने का दृढ़ संकल्प तथा एक सैनिक के गुणों की पराकाष्ठा थी। इन सब के साथ-साथ उसमें बुद्धिमत्ता थी वह प्रतिभा थी जिसे कोई भी जान नहीं पाता। किन्तु उसकी उन्नति एक योग्य व्यक्ति द्वारा संसार में उच्च पद प्राप्त करने की कहानी से कहीं अधिक है। उसकी उन्नति में इतिहास के मौलिक सिद्धान्त की झलक है। हम इतिहास में देखते हैं कि अव्यवस्था और क्रान्ति के युग प्रायः एक व्यक्ति की शक्तिशाली सत्ता की स्थापना में समाप्त हुआ करते हैं। नेपोलियन के जीवन के इतिहास की तुलना के लिए जो उदाहरण दिये जाते हैं वे रोम में एक शताब्दी तक अव्यवस्था और क्रान्ति के युग के पश्चात् जूलियस सीज़र द्वारा रोमन साम्राज्य की स्थापना और प्यूरिटन क्रान्ति के पश्चात् प्रोटेक्टर क्रामवेल का शासन है। किन्तु ये उदाहरण अत्यन्त स्पष्ट हैं। वार ऑफ रोज़ेज़ के पश्चात् ट्यूडर राजशाही की स्थापना में भी हम इसी प्रकार के तत्वों को देखते हैं जब फ्रांस में शताब्दी युद्ध द्वारा घोर अशान्ति पैदा की गई तब उस अराजकता और संत्रास का अन्त चार्ल्स सप्तम और लुई ग्यारहवें के नेतृत्व में फ्रांस

के राजाओं ने किया। किन्तु जर्मनी के तीस वर्षीय युद्ध के पश्चात् भी एक व्यक्ति का ही राज्य स्थापित हुआ।"

डा० हॉलैण्ड रोज के मतानुमार, 'एक ही व्यक्ति नेपोलियन को तुलना में चुनौती दे सकता है। रोम की दुनिया पर जूलियस सीजर का व्यक्तित्व इसी प्रकार छाया हुआ है जिस प्रकार इस कोर्सिका के निवासी का व्यक्तित्व फ्रांस के क्रान्ति-युग पर छाया है। दोनों व्यक्ति युगपरिवर्तन के संधि-काल में उत्पन्न हुए थे। यह वह समय था जब पुरानी व्यवस्था बीत रही थी और नवीन सिद्धान्त मान्यता प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। बहुत प्रकार से जूलियस सीजर और नेपोलियन प्राचीन को नवीन से जोड़ने में सफल हुए। यद्यपि युवावस्था में ये नवीनता के प्रतिपादक रहे, किन्तु कालान्तर में प्रौढ़ावस्था में अधिक रूढ़िवादी बन गये। परन्तु सीजर नेपोलियन से अधिक महान व्यक्ति था। यद्यपि उसने अपने जीवन का गम्भीर भाग जीवन के उत्तरार्ध में प्रारम्भ किया तथापि युद्ध और शासन-कला में उसने इस प्रकार की निर्विवाद महत्ता स्थापित कर ली थी कि उसे उसकी हत्या के अतिरिक्त अन्य कोई घटना हिला ही नहीं सकती थी। उसने युद्ध विद्या के नवीन सिद्धान्तों की स्थापना की तथा इसके साथ-साथ शीघ्रता से बढ़ते हुए साम्राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूचे रोम के लिए एक-जैसी नागरिक व्यवस्था की स्थापना भी की। उसके क्षमा-दान और व्यवहार ने रोम के साम्राज्य में मिलाये जाने वाले विजित लोगों के हृदय जीत लिए। उसने पद सँभालने के समय से अधिक बड़ा तथा शक्तिशाली राष्ट्र छोड़ा। देश तथा विदेश में उसकी अद्वितीय जीतों ने उसकी दूरदर्शिता को कम नहीं किया और न उसके स्वभाव को बिगाड़ा। वे उसके क्षमादान से अच्छे तथा अधिक मानवीय बन गये। यह बात नेपोलियन के लिए नहीं कही जा सकती। एलेग्जेण्डर महान् के विषय में लिखते हुए नेपोलियन ने अपनी त्रुटि को माना है। उसने लिखा है, 'मैं एलेग्जेण्डर के युद्धों को नहीं पसन्द करता क्योंकि मैं उन्हें समझ नहीं पाता परन्तु उसके नीति के तरीकों को पसन्द करता हूँ। बत्तीस वर्ष की अवस्था में उसने एक सुव्यवस्थित साम्राज्य छोड़ा जिसे बाद में उसके सेनापतियों ने आपस में बाँटा। उसमें यह कला थी कि उसके विजित लोग भी उससे प्रेम करते थे'।"

डा० हॉलैण्ड रोज के अनुसार नेपोलियन का व्यक्तित्व परस्पर विरोधी प्रेरणाओं से ओत प्रोत था। दक्षिण की जल-वायु से उष्णता पाकर उसमें उत्तर के निवासियों जैसा शान्ति से समस्या हल करने का स्वभाव था। वह नम्र और कठोर क्षमाशील और निर्दय, उदार परन्तु घमण्डी, कल्पना करने वाला किन्तु दूरदर्शी था। प्रत्येक घटना और समस्या को सुलझाने के लिए उसने विभिन्न प्रकार की शक्तियों को केन्द्रित किया। हर बार हमें यह प्रश्न पूछना पड़ता कि किन विशेषताओं के कारण उसने यह कार्य इस प्रकार किया अन्य प्रकार से क्यों नहीं किया? इस लाज के अंत में हम अत्यन्त अद्भुत बात से विमूढ़ हो जाते हैं कि इतिहास के सबसे बड़े सम्राट और व्यवस्थापक ने फ्रांस को निर्बल और अपने शत्रुओं को बलवान छोड़ा।

डा० स्लोन (Sloane) के अनुसार 'नेपोलियन इसलिए महान् बना, क्योंकि उसकी प्रतिभा केवल मध्यम श्रेणी की नहीं थी। अन्यथा वह अपने युग के अन्य लोगों की तरह व्यक्तिगत चरित्र से मध्यमवर्गीय युद्ध में सैनिक शान्ति में स्वेच्छाचारी और राजनीति में आदर्शवादी था। उसके सभी गुणों का विश्लेषण किया जा सकता था। उसके व्यक्तित्व को समझा जा सकता था। वह यक भी जाता था और इस कारण उसमें अनेक गुणों का समावेश भी था। काल के निर्झर में नेपोलियन का साम्राज्य एक चमकता हुआ बुलबुला था। एलेग्जेण्डर ने अपने युग की सभ्यता को हेलिना की सभ्यता से रँग दिया और ईसाई धर्म के प्रसार के लिए संसार को तैयार किया। चार्लेमग्ने (Charlemagne) ने बर्बर यूरोप की धरती में हल चलाया इसे समतल किया तथा इसमें सभ्यता के बीज बोकर शिष्ट आदर्शों में श्रेष्ठ राष्ट्रीयता के आदर्श को धारण करने योग्य बनाया। नेपोलियन ने सब शक्तिमत्ता को आमूल उखाड़ फेंका और व्यक्तिगत अधिकारों के आधुनिक विचारों को यूरोप के दूरस्थ प्रदेशों में फैलाया। उसने रोम-जर्मन साम्राज्य के जर्जर ढाँचे को उखाड़ फेंका और न चाहते हुए भी राष्ट्रीयता और पितृ भूमि के विचारों को जिन्हें युग-युगान्तर से गलत तरीके से अपनाया जा रहा था नवजीवन प्रदान किया।

शैटोब्रियाँड (Chateaubriand) के मतानुसार नेपोलियन एक कार्यशील कवि था।' वह मिट्टी से बने मानव शरीर के पुतले में जीवन डालने वाला अमर प्राण था। 'लियोन ब्लाय के अनुसार वह अंधेरे में छुपा हुआ परमात्मा का मुख था।

हैरोल्ड के विचार में बुद्धि व शक्ति के सर्वोच्च संयोग ने नेपोलियन के मस्तिष्क को एक चुम्बक वाली—लगभग अप्राकृतिक विशेषता दी—वह शक्ति उसके चित्रांकित मस्तक से टपकती मालूम होती है और उसके नाम को जादू से युक्त करती है। यदि आधुनिक समय में कोई दैवी व्यक्ति उत्पन्न हुआ है तो वह नेपोलियन ही है। अब्राहम लिंकन उसका सम्भवत प्रतिद्वन्द्वी हो किन्तु पौराणिक गाथाओं का जीव होने के कारण नेपोलियन को बड़ा लाभ प्राप्त हुआ। ओलम्पिया वालों की तरह वह भलाई व बुराई से परे है एक सच्चा पवन देवता है जो ख्याति के साथ प्राचीन व यूनानी है। लिंकन जो अमरिका के जंगली भागों से उपजा हुआ मसीहा था एक और ही क्षेत्र का व्यक्ति है।

कुछ ही लोगों ने इतने संकेत के साथ नेपोलियन के रहस्यवाद की चर्चा की है जितना कि हेन (Heine) ने इन शब्दों में की है उसकी आकृति की भी ऐसी बनावट थी जिस हम यूनानियों व रोम वालों के पत्थर के सिरों पर देखते हैं। उसके मस्तक पर इतना सुन्दरता से गठित व जमा कि प्राचीन मूर्तियों में देवताओं को मिलता है। उसके चेहरे पर यह अङ्कित था तुझे सिवाय मेरे और कोई देवता नहीं मिलेगा।

(Introduction The Mind of Napoleon, p XIX)

' Death makes no conquest of this conqueror
For now he lives in fame

टलीरण्ड (Talleyrand) के मतानुसार, 'नेपोलियन का ज्ञान अनुपम था। पिछले कई हजार वर्षों में उस जैसा आश्चर्यजनक जीवन देखा नहीं गया। वह वास्तव में सब से असाधारण व्यक्ति था। उस जैसा व्यक्ति आज तक न कभी मैंने देखा है और न ही मेरे विचार से आने वाली कई शताब्दियों में उस जैसा असाधारण व्यक्ति जन्म ले सकेगा।'

नेपोलियन की वाटरलू की पराजय के बाद हार्डी ने ये शब्द कहे —

"I came too late in time
To assume the prophet on the demi god
Apart past playing now My only course
To make good showance to posterity
Was to implant my line upon the throne
And how shape that if now extinction nears !
Great men are meteors that consume themselves
To light the earth This is my burnt out hour"

१७९९ और १८१५ के बीच फ्रांस में आने वाला अन्तर नेपोलियन का काम था। पिछला फ्रांस परम्परागत और गड़बड़ग्रस्त था, जबकि बाद वाला व्यक्ति, प्रभविष्णु व सम्पत्ति के लिए सम्मान रखता था। प्रशासन एकात्मक, सचेष्ट व समरूपी था। यद्यपि नियंत्रित नहीं थे, पर आर्थिक साधनों में भी उत्साह था। ऐसी प्रक्रियाओं का निर्माण किया गया था जिनसे फ्रांस का महान् नगर स्वस्थ व सुन्दर बन गया। क्रान्तिकारी सिद्धान्त इतने संशोधित व मिश्रित हो चुके थे कि राजवंशों के प्रयत्न उन्हें बदलने में असफल रहे। उसकी एक यह भी राय थी कि राष्ट्रों का प्रयोग में लाने से पहले तुम्हें उनकी सेवा करने का अधिकार होना चाहिए। टर्की व ईसाइयों में नेपोलियन ने असंतोष के बीज बोये और उसके दूतों ने उनके दिलों को प्रज्वलित किया। इसी प्रकार का एक उदाहरण सर्विया था और यूनानियों में राष्ट्रीय जागरण इसी प्रकार की आशाओं को जगाकर किया गया था।

यह बताया जाता है कि अप्रत्यक्ष रूप से नेपोलियन ने अमेरिका को पूर्णतया इंगलैण्ड से मुक्त कराया। वही इंगलैण्ड और अमेरिका के बीच युद्ध कराने के लिए उत्तरदायी था जिसके कारण अमेरिका को पूर्ण व पूर्णरूपेण व्यापारिक मुक्ति प्राप्त हुई। नेपोलियन से लुईसियाना (Louisiana) के क्रय ने अमेरिका की राष्ट्रीय व्यवस्था में अन्दर व बाहर दोनों रूपों में क्रान्ति पैदा कर दी।

नेपोलियन व हिटलर के बीच तुलना—हैरोल्ड के विचार में, 'नेपोलियन व हिटलर के चरित्र के बीच कई बाह्य, तथा किसी प्रकार से आकस्मिक नहीं समानताओं के कारण कई लोगों ने इनके चरित्रों में पाई जाने वाली महत्वपूर्ण असमानताओं से आँखें मींच लीं। नेपोलियन से भिन्न हिटलर को इतिहास में वही स्थान मिलेगा जो कभी अटीला या चंगेजखाँ को मिला था। हिटलर ने कानून का नाश किया, जबकि नेपोलियन कानूनदाता था जिसकी संहिताएँ महाद्वीप के पार तक पहुँचीं। यही

अन्तर तुलना के पलडो को विषम करने के लिए पर्याप्त होगा। हिटलर को सनक हो गई थी और वह एक विचारधारा के पीछे दीवाना हो गया था, जबकि नेपोलियन जा सदबुद्धि वाला और ग्रात्म अभिमानी था ऐसे सिद्धान्तो से घृणा करता था। हिटलर घणा की दुहाई देता था जबकि नेपोलियन सम्मान की। हिटलर उस अधे प्रवृत्तियुक्त दानव की प्रशसा करता था जिसे वह जनता' कहता था और जिसे टेन (Taine) ने गोरिल्ला (Gorilla) कहा था नेपोलियन ने उसे ग्रातङ्क के युग म देखा था और वह उस दानव की सत्ता की माँग करने से पूव मर जाना उत्तम समझता था। जब नेपोलियन ने अपना जीवन शुरू किया तब उसमे एक सदबुद्धि वाले व सज्जन लोगो की आशाए निहित थी जो बीथोविन से किसी प्रकार कम न थी जबकि हिटलर शुरु से अन्त तक मुट्ठी भर मनोवज्ञानिको से घिरा रहा। लेकिन उस अन्तर पर क्यो आग्रह किया जाय ? कदाचित् उनके बीच कोई अन्तर नही है सिवाय यह कि एक विवेक के युग मे हुआ और दूसरा घृणा के युग मे—और यही मारगर्भित अन्तर है।

यह देखना कठिन है कि कसे हिटलर (एक व्यक्ति होने के नाते) को सिवाय जनरोग के रोगी नायक के और कुछ मान लिया जाय। दूसरी ओर नेपोलियन ने अपनी ऐतिहासिक क्रियाओ मे अपने पीछे अपनी प्रत्यक्ष सफलताए छोडी। हिटलर से भिन्न उसने यूरोप को खडहरो मे नही वरन उसे परिपूण बनाकर छोडा। जहाँ उसकी बुद्धि ने उसके उद्देश्य का साथ नही दिया उसका स्वभाव ऐसा रहा कि वह मन या बेमन के इतिहास की रचनात्मक शक्तियो के साथ रहा। जमनी व इटली का एकीकरण, लोकतन्त्रात्मक उदारवाद का प्रसार इत्यादि हो सकता है कि उसकी इच्छाओ के अनुकूल न हुए हा किन्तु अवश्य ही अधिक मात्रा म वे उसी के प्रति ऋणी हैं। एक प्रतीक या एक पौराणिक गाथा के रूप मे उसने मानवीय योग्यताओ की सीमाओ को पीछे हटा दिया। नेपोलियनो को जन्म देना मानव जाति के लिए एक कीमती वस्तु होगा किन्तु यदि वह उन्हे उत्पन्न करने से बिल्कुल रुक जाय तो यह पता चलेगा कि उसकी शक्तियाँ बिल्कुल सूख गइ। अपने नेपोलियनो का युद्ध व विजय से अधिक उत्तम प्रयोजनो की ओर घुमाने के उद्देश्य स पहले मानव जाति को ही युद्ध से बचना पडेगा। नेपोलियन को गलत समझने के लिए मानव जाति को बदलना चाहिए। (The Mind of Napoleon pp XXXVIII—XXXIX)

नेपोलियन फ्रांसीसी क्रान्ति के बालक के रूप मे (Napoleon the Child of French Revolution)—नेपोलियन का विश्वास था कि वह क्रान्ति का बालक है। फ्रासीसी क्राति ने प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था समाप्त करके और सत्य स्वच्छा चारिता की नींव डालकर नेपोलियन को अपनी शक्ति जमाने का अवसर प्रदान किया। यदि क्रान्ति से एक असाधारण परिस्थिति पदा न हो गई होती तो नेपोलियन जसे व्यक्ति को सत्ता प्राप्त करने का अवसर ही न मिला होता। प्रमुख सलाहकार के रूप मे शक्ति ग्रहण करके उसने १८०४ मे जनता स अपना चुनाव सम्राट के रूप म स्वीकार करा लिया। नेपोलियन-सहिता (Code Napoleon) म उसने क्रान्ति के श्रेष्ठ सिद्धान्त और कानून सग्रहीत किय। उसने समानता के सिद्धान्त को मानकर

अपने सेवक तथा सेनापति, सबको सामाजिक स्थिति के आधार पर नहीं, वरन् योग्यता के आधार पर चुना। उसने फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रभाव को अमरत्व प्रदान किया। आलोचक कहते हैं कि "यद्यपि नेपोलियन 'क्रांति-पुत्र' था, किन्तु वह ऐसा बालक था जिसने अपनी माता की हत्या कर दी थी।" क्रांति के जन्मदाताओं ने जिन 'स्वतन्त्रता' और 'मित्रता' के सिद्धान्तों पर बल दिया, उनकी इसने उपेक्षा कर दी। फ्रांस और यूरोप की जनता की स्वतन्त्रता सब प्रकार से कुचलकर उसने अपनी इच्छा को प्रजा पर थोपा। उसका अपना विचार था कि जनता स्वतन्त्रता नहीं अपितु समानता चाहती है और इसी धारणा से उसने लोगों को विचार व्यक्त करने की आज्ञा नहीं दी। समाचारपत्रों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाये रक्खे और विरोध को प्रत्येक रूप तथा प्रकार से कुचल दिया गया। उसने जनता पर सैनिक अनुशासन लागू करने का प्रयत्न किया। नेपोलियन ने जो सम्पूर्ण प्रभुत्वशाली सरकार की स्थापना की, वह स्वयं जनता की प्रभुत्वपूर्णता की न्यूनता थी। वह अन्तिम महान् स्वेच्छाचारी विधान-निर्माता था जिसने उस स्वतन्त्रताहीन युग में राज्य किया।

ग्रांट और टैम्परले के मतानुसार, "नेपोलियन क्रान्ति का बालक था किन्तु उसने उस आन्दोलन के लक्ष्यों और सिद्धान्तों को, जिनसे इसका जन्म हुआ था, उलटा कर दिया। यह बात इसकी बनाई संहिताओं से सिद्ध होती है। क्रांति ने केवल सामंत-शाही के अवशेषों तथा राज्य पर धर्माचार्यों के नियन्त्रण को ही नहीं उखाड़ा अपितु उसने फ्रांस के विधि विशेषज्ञों की अभिलषित परिपाटियों पर भी चोट की। संहिताओं में समानता की प्राप्ति का प्रयास किया गया था। इनके अनुसार पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा समान रूप से सारे बालकों में होना था। तलाक का प्रचलित करके इसने रोमन-कैथोलिक धर्म की धारणाओं पर चोट की थी। जन्म-मृत्यु और विवाह-सम्बन्धी सब प्रकार की शंकाओं और आक्षेपों को हटा दिया गया। इन संहिताओं में जो कुछ निहित किया गया, उसका स्वयं नेपोलियन अनुमोदन नहीं करता था। उसने चर्च से मित्रता कर ली। उसे सत्ता प्यारी थी उसे समानता से विशेष प्रेम नहीं था।

पिननले के अनुसार 'नेपोलियन फ्रांसीसी क्रांति का बालक और उत्तरा-धिकारी था। जिसने यदि समानता को नष्ट भी किया तो भी उसने समानता की रक्षा अपने बनाये हुए कानूनों में इसे निहित करके की।' नेपोलियन ने कहा था कि 'मैंने अराजकता की खाई को पाट दिया है। मैंने क्रान्ति का परिमार्जन किया है।"

प्रो० मारखम के अनुसार, 'यदि हम नेपोलियन द्वारा किये गये सुधारों का समीक्षण करें तो ये द्व्यर्थक प्रतीत होंगे। ये एक प्रकार से क्रान्ति के सिद्धान्तों को स्थिरता प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर परोक्ष रूप से बुरबोन राजशाही की परि-पाटियों को परोक्ष रूप में प्रतिपादित करते हैं। इनसे क्रान्ति द्वारा कानूनी और प्रशासनिक समानता में हुए राष्ट्र के लाभों को स्थिरता और सुरक्षा प्राप्त हुई और योग्यता के लिए सुअवसरों के द्वार खोल दिये गये। इस दृष्टिकोण से नेपोलियन द्वारा

क्रांति का प्रतिनिधित्व करना युक्ति-युक्त है। उसके लिए और फ्रांस के जनसाधारण मजदूरों और किसानों के लिए क्रांति के सामाजिक और प्रशासनिक लक्ष्य मध्यम वर्ग की राजनीतिक स्वतन्त्रता से कहीं अधिक मूल्यवान है। १७८९ की क्रान्ति एक नहीं अपितु सामाजिक प्रशासनिक और राजनीतिक, तीन प्रकार की क्रान्ति थी। १८०० में फ्रांस की जनता राजनीतिक क्रांति को छोड़कर सामाजिक और प्रशासनिक क्रान्ति को स्थिर करने के लिए उद्यत थी।

मिराबो की तरह नेपोलियन भी क्रांति को राजशाही से बेमेल नहीं मानता था। मिराबो ने दरबार से गुप्त पत्र-व्यवहार में सम्राट से यह प्रार्थना की थी कि वह रिशिल्यु के कार्य को जारी रखे और सामन्तशाही का नाश करके शासन को आधुनिक परिपाटी पर चलाकर क्रांति का नेतृत्व करे। नेपोलियन के विचार से सम्राट का विनाश मध्यमवर्ग के घमण्ड और लुई सोलहवें की दुर्बलता के कारण हुआ। बुरबोन राजशाही की कुछ बातों का वह बहुत पसंद करता था। प्रमुख सलाहकार के पद पर आने के तुरंत बाद में नेपोलियन कहा करता था कि प्राचीन शासन सबसे अधिक पूर्ण और श्रेष्ठ था। क्रान्ति ने जो लाभदायक नवीनताएँ हमें प्रदान की हैं उन्हें सुरक्षित रखते हुए वह प्राचीन व्यवस्था की अच्छाइयों को अपनायेगा जो क्रान्ति ने भूल से नष्ट कर दी हैं। १८०६ में वह कहा करता था क्लोविस से जन-सुरक्षा समिति तक के युग को मैं गले लगाता हूँ। बुरबोन वंश अवसर के अनुसार अपने को बना नहीं पाया और नेपोलियन को ही राजमुकुट गन्दी नाली से उठाना पड़ा। उसके विचार से, क्रांति द्वारा लाये गये परिवर्तनों के आधार पर फ्रांस में चतुर्थ वर्ग के राज्य करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

जोसेफायन—जोसेफ़ायन (Josephine) का वर्णन किए बिना नेपोलियन की कोई व्याख्या पूर्ण नहीं हो सकती। उसने १७९६ में उसके साथ विवाह किया। उस समय वह नेपोलियन से ६ वर्ष बड़ी थी। उसका पहला पति रोबस्पायर के पतन से कुछ दिनों पूर्व मारा जा चुका था। पिछले विवाह से उसके दो बच्चे थे और वर्तमान उसके पास जीवन निर्वाह का कोई साधन न था। फिर भी वह हतोत्साहित नहीं थी।

वह नेपोलियन के उत्साह की गहनता व उसकी दृष्टि की तीक्ष्णता से अत्यधिक प्रभावित थी। वह तुरंत उससे विवाह करने को तैयार हो गई। वह नेपोलियन के आत्म विश्वास से भी प्रभावित थी। नेपोलियन ने उसे इन शब्दों में सम्बोधित किया था "क्या वे (डायरेक्टर्स) यह सोचते हैं कि मुझे उठने के लिए उनके संरक्षण की आवश्यकता है? किसी दिन वे बहुत प्रसन्न होंगे यदि मैं उन्हें अनुमति दिया करूँगा। मेरी तलवार मेरे साथ है और इसी से मैं दूर तक जा सकता हूँ।' अपनी आन्तरिक भावनाओं के विषय में जोसेफायन ने उसे यह लिखा था "इस विचाररहित विश्वास ने इस मात्रा तक इसे प्रभावित किया है कि मेरी समझ में इस व्यक्ति को किसी भी समय कुछ हो सकता है और उसकी विचार शक्ति ऐसी मालूम होती है कि कोई नहीं कह सकता कि किस समय वह क्या कर बैठे।

नेपोलियन के जोसेफायन के साथ सबसे अच्छे दिन कटे। वस्तुतः वही एक ऐसी स्त्री थी जिसको उसे चिन्ता हुई। यह स्थान श्रीमती वेलेवस्का को भी न मिल सका, जिससे उसका पुत्र हुआ। यह ठीक ही कहा जाता है कि नेपोलियन ने यूरोप जीता और उसे जोसेफायन के कदमों पर रख दिया। यदि जोसेफायन न होती तो नेपोलियन भी न होता। उसी ने उसे प्रेरणा दी। वह उसे अपने क्रोध से प्रसन्न कर सकती थी व अपने आँसुओं से हिला सकती थी। अपना परिवार त्याग कर उसने उसी के पास शरण ले रखी थी। वही संसार में ऐसी वस्तु थी जिसे वह अपने मस्तिष्क की बात बता सकता था और वह उसी के साथ अपना हृदय खोल कर रख सकता था।

दुर्भाग्यवश, नेपोलियन के परिवार के सारे सदस्य उसके विरुद्ध हो गये। नेपोलियन ने भी मूर्खतावश यह विचार किया कि किसी अन्य राजकुमारी के साथ विवाह कर और उससे उत्पन्न पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनावे। इसने संकट उत्पन्न कर दिया और अन्ततः १८०९ में जोसेफायन का परित्याग कर दिया गया। उसके शीघ्र बाद उसने ट्यूलेरेस (Tuileries) छोड़ दिया व मेलमेसों (Malmaison) में रहने लगी। वहीं वह एकान्त में मर गई। १८१५ में वाटरलू की लड़ाई के बाद जब नेपोलियन ने पेरिस को आखिरी बार छोड़ा तो वह जोसेफायन की प्रेतात्मा दर्शन मेलमसों गया।

यह ठीक ही कहा गया है कि उसने अपने जीवन में एक महान भूल की जब कि उसने जोसफ़ायन को तलाक दिया। जब उसने ऐसा किया तो उसने अपना आधा जीवन काट दिया और उसका अधिक उत्तम आधा भाग फेंक दिया।

फ्रांसीसी क्रान्ति के परिणाम (Results of the French Revolution)—(१) फ्रांसीसी क्रान्ति कोई स्थानीय घटना नहीं थी। इसने फ्रांस की जनता को ही नहीं, अपितु यूरोप और सारे विश्व की जनता पर गहरा प्रभावित किया। फ्रांसीसी क्रान्ति किन्हीं विशेष सिद्धान्तों के समर्थन में हुई थी और वे सिद्धान्त स्वतन्त्रता समानता और मित्रता थे। फ्रांस का उदाहरण पहले यूरोप का तथा वहाँ से सारे विश्व की प्रेरणा बना। इसकी विचारधारा यूरोप की राजनीति में सारी उन्नीसवीं शताब्दी तथा इसके बाद भी ओत प्रोत रही।

(२) राष्ट्रीय सभा द्वारा 'मानव-अधिकारों की घोषणा' (Declaration of Rights of Man) ने इस तथ्य पर जोर दिया कि सर्वाधिकार-सम्पन्नता जनता में निहित है और कानून केवल जनसाधारण की इच्छा की अभिव्यक्ति है। शासन-यन्त्र को इस प्रकार चलाया जाय कि जनता का अधिकाधिक हित हो। यह सत्य है कि रूस की कथरीन महान्, प्रशा के फ्रेडरिक महान, आस्ट्रिया के जोसफ द्वितीय ने, फ्रांसीसी क्रान्ति से पहले ही जनता की हालत को सुधारने की आवश्यकता अनुभव की, किन्तु यह दृष्टिकोण समस्त यूरोप की सरकारों का नहीं था। फ्रांसीसी क्रान्ति का दावा था कि जनता को अपने आप ही स्वयं पर राज्य करना चाहिए और

शासन केवल जनता के लिए' ही नहीं अपितु जनता द्वारा' भी होना चाहिए। यह मान्यता दी गई कि सर्वाधिकार सम्पन्नता एक सम्पत्ति नहीं है जिससे उसका स्वामी लाभ उठाये अपितु वह एक न्याय पंचायत है जिसकी स्थापना कतिपय कर्त्तव्यों का पूरा करने के लिए हुई है। यह सत्य है कि इस सिद्धान्त के विरुद्ध प्रारम्भ में प्रतिक्रिया हुई किन्तु अन्त में यह सिद्धान्त यूरोप के सारे देशों में दृढ़ता से जड़ पकड़ गया। विरोध का काल १८१५ से १८४८ तक चला जिस समय मेटरनिक (Metternich) आस्ट्रिया में सर्वेसर्वा था। मध्यम वर्ग की जनता ने अपनी सर्वाधिकार सम्पन्नता की स्थापना और मान्यता स्थापित करने में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

(३) फ्रांसीसी क्रान्ति का दावा था कि प्रत्येक मनुष्य कानून के समक्ष बराबर है। जन्म और धन पर आधारित विशेषाधिकारों को कोई मान्यता नहीं दी गई थी। परिणाम यह हुआ कि मुजारेदारी सामन्तशाही प्रतिबन्ध तथा व्यापारिक संघों द्वारा स्थापित सारे प्रतिबन्ध समाप्त कर दिए गए। धार्मिक सहिष्णुता का आश्वासन दिया गया। समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता स्थापित हुई तथा प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, मान्य ठहराया गया। १७९२ के 'स्त्रियों के अधिकारों की मान्यता (Vindication of the Rights of Women) के प्रस्ताव द्वारा मेरी वुलस्टान क्राफ्ट (Mary Wollstonecraft) ने माँग की कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त हो।

(४) फ्रांस सारी मानवता का प्रतिनिधि बन गया और स्वतन्त्रता की विचारधारा सब सुधारकों तथा क्रान्तिकारियों का मूलमन्त्र बन गया। स्वतन्त्रता विश्व की परिपाटी बन गई। केवल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही नहीं अपितु राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न किया गया। सर्वसाधारण की माँग थी कि ग्राम चुनावों द्वारा न्यूनाधिक अधिकार वाले विधानमण्डल चुने जाने चाहिए। इस क्षेत्र में इंगलैण्ड ने नेतृत्व किया और फ्रांस ने उसका अनुसरण किया।

(५) फ्रांसीसी क्रान्ति ने राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का भी दावा किया। फ्रांसीसी क्रान्ति से पूर्व सामन्तों के प्रति स्वामि भक्ति और राजा के प्रति जनता के प्रेम ने देश भक्ति का स्थान लिया हुआ था। फ्रांसीसी क्रान्ति ने फ्रांस के राज्य को फ्रांस राष्ट्र में बदल दिया। १७९१ में लुई सोलहवें के देश से भागने के प्रयत्न से सिद्ध होता है कि राजा तथा जनता के हित भिन्न भिन्न थे। ११ जून १७९२ का पितृभूमि पर आपत्ति है की घोषणा से लोगों में राष्ट्रीयता की भावना ने जोश मारा और फ्रांस को अपने शत्रुओं से टक्कर लेने की प्रेरणा दी। यूरोप के अन्य देशों पर फ्रांस के आक्रमण के कारण वहाँ राष्ट्रीयता की भावना जाग उठी। इटली पुर्तगाल स्पेन प्रशिया, रूस और आस्ट्रिया में भी यह भावना जागी। स्पेन और पुर्तगाल के निवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जागने से वहाँ की जनता नेपोलियन की सेनाओं को प्रायद्वीप से निकालने में समर्थ हुई। यही भावना थी जिसके कारण १८१२ में रूस ने जली धरती' (scorched earth) की नीति अपनाई। इसी भावना के कारण पुर्तगाल को पुनर्जीवन मिला। स्पेन ने यह सिद्ध कर दिया कि अनुशासनशील सेनाओं से

सारी जनता कहीं अधिक बलवान है। इसी भावना ने राष्ट्रीय सम्मेलन के दिनों में फ्रांस की सेना को सगठित राष्ट्रों को मार भगाने के योग्य बनाया। 'सशस्त्र राष्ट्र' की विचारधारा विश्व के लिए एक महान देन थी।

६ यह सत्य है १८१५ के विआना-सम्मेलन के पश्चात् राष्ट्रीयता के विचार के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और ट्रोप्पू (Troppau) की नीति द्वारा इसका दमन करने का प्रयत्न किया गया, किन्तु अन्त मे राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का समस्त यूरोप मे बोलबाला हुआ। इसी सिद्धान्त के कारण इटली और जर्मनी ने अपनी स्वतन्त्रता तथा पुनर्गठन प्राप्त किया। यही बात बेल्जियम, सरबिया, ग्रीस, रूमानिया और बलगेरिया के साथ हुई। इसी सिद्धान्त ने रूस को खूब तग किया, जब पोलण्डवासियों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष किया। १८४८-४९ का कासूथ (Kossuth) के नेतृत्व मे हुआ हंगरी का विद्रोह भी राष्ट्रीयता की शक्ति के कारण ही हुआ।

(७) फ्रांस की क्रान्ति ने व्यक्तिवाद का समर्थन कर विचित्र-विचारवाद (Romanticism), परम्परा के उल्लघन और केवल युद्ध भावना के आधार पर मानवीय जीवन की स्थापना मे सहायता दी। फ्रांस की क्रांति का प्रभाव विक्टर ह्यूगो के Les Miserables साउथे के Joan of Arc, वर्डसवथ के Prelude, शैले के Mask of Anarchy, गेटे के Faust और कोलरिज की प्रारम्भिक रचनाओं मे दीख पड़ता है।

(८) उस सन्तोष के कारण जिससे पोप ने उन अपमानों को सहन किया जिनकी उस पर नेपोलियन ने बौछारें कीं, रोमन कैथोलिक चर्च की शक्ति भी मजबूत हो गई। शैटोब्रियाण्ड (Chateaubriand) ने नास्तिकवाद के विरुद्ध ईसाई मत का समर्थन किया और मेस्तर (Maister) ने पोप की सत्ता की रक्षा की।

९ नेपोलियन द्वारा किये गये अत्याचारों को जिस सहनशीलता से पोप ने सहन किया, उससे रोमन कैथोलिक चर्च का प्रभाव और भी बढ़ गया। शैटोब्रियाण्ड ने ईसाई धर्म का, नास्तिकवाद के विरुद्ध, समर्थन किया तथा मेस्तर ने पोप के अधिकारों का समर्थन किया।

(१०) फ्रांसीसी क्रान्ति का एक और प्रभाव भी पड़ा। आक्रमणों से ही नहीं, सरकार द्वारा सम्पत्ति के जब्त करने से सम्पत्ति के अधिकार की पवित्रता भी जाती रही। परिणामत प्रजातन्त्रवाद एक काल्पनिक सिद्धान्त ही नहीं रहा, अपितु एक राजनीतिक कार्यक्रम भी बन गया। इस प्रकार फ्रांसीसी क्रान्ति की विचारधारा विश्व के कोने-कोने मे फैल गई और विश्व भर मे उसे मान्यता प्राप्त हुई। २६ जनवरी, १९५० मे लागू हुए भारतीय सविधान की प्रस्तावना का मसविदा बनाने वालों के मस्तिष्कों पर इस विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है।

(११) क्रोपोटकिन के विचार में, 'फ्रांस की क्रान्ति ने फ्रांस को मजबूत व समृद्धिशाली बना दिया। इससे पहले उसके बहुत से भागों मे अभाव चल रहा था,

लेकिन क्रान्ति के फल के कारण फ्रांस १७८६ की अपेक्षा अब जीवन की जरूरी वस्तुओं को बहुत मात्रा में उत्पन्न करने लगा। १७६२ की अपेक्षा फ्रांस में कभी भी पहले इतने उत्साह के साथ कृषि-कार्य नहीं हो सका। उस समय कृषकों ने अपने स्वामियों, अधिकारियों व धर्माचार्यों से छीन कर अपनी भूमियों पर स्वयं कृषि कार्य किया। उन्होंने यह चिल्लाकर Allons Prusse ! Allons Autriche अपने बलों को बढ़ाया। जितना काम खेतों को साफ करने का क्रान्ति के दिनों में हुआ उतना पहले कभी भी न हो पाया। १७६४ में पहली अच्छी फसल हुई जिसने कम से कम गाँवों में, दो तिहाई फ्रांस को सुख-चैन दिया वरना इस समय तक नगरों में खाद्याभाव का प्रश्न बना रहता था। क्रान्ति के उन चार वर्षों में एक नये फ्रांस का जन्म हुआ था। शताब्दियों में सर्वप्रथम बार कृषकों ने भर पेट खाना पाया, अपनी पीठ सीधी की और बोलने का साहस किया। एक नए राष्ट्र का जन्म हुआ। इसी नए जन्म के कारण फ्रांस अपने गणतन्त्र और नेपोलियन के दिनों में अपने युद्धों का सञ्चालन करने योग्य हो सका और अपनी क्रान्ति के सिद्धान्तों को इंग्लैण्ड, इटली, जर्मनी, हालैण्ड, स्विटजरलैण्ड, स्पेन, बेल्जियम और रूस की सीमाओं तक भेज सका। जब ये सब लड़ाइयाँ समाप्त हो गई और लोगों को यह आशंका हुई कि १८१५ में फ्रांस में संकट पड़ जायेगा और उसकी भूमि ऊसर हो जायेगी तो यह पता चला कि अब फ्रांस लुई सोलहवें की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्धिशाली था। क्रान्ति द्वारा पुनः उत्पन्न की हुई शक्ति इतनी बड़ी थी कि कुछ ही वर्षों में फ्रांस सुखी कृषकों का देश बन गया। यहाँ शत्रुओं ने पाया कि सारा खून जो उसने बहाया और सारी हानियाँ जो उसने उठाई उनके बाद भी फ्रांस अपनी उत्पादकता की दृष्टि से यूरोप का सबसे धनी देश था। उसका धन भारतीय द्वीपों या विदेशी व्यापार पर आश्रित नहीं था वरन् वह उसी की भूमि से उपजा था, उसी के भूमि के प्रति प्रेम का फल था और उसके अपने उद्योग व अपनी कुशलता का पुरस्कार था।

क्रोपोटकिन यह भी संकेत करता है कि फ्रांस की क्रान्ति ने कृषक-दासता (Serfdom) व सर्वोच्चवाद (Absolutism) का अन्त किया। व्यक्तियों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ दी गई जिनका स्वामियों के कृषकों तथा निरंकुश राजा की प्रजा ने कभी स्वप्न भी न देखा था। यह दो सफलताएँ उन्नीसवीं शताब्दी के मुख्य कार्य का प्रतिनिधित्व करती हैं जो १७८६ में फ्रांस में शुरू हुआ और अगली शताब्दी में यूरोप के ऊपर छा गया। फ्रांस के कृषकों द्वारा शुरू किये गये मताधिकार के कार्य को नेपोलियन की सेनाओं ने इटली, जर्मनी, स्पेन, स्विटजरलैंड और आस्ट्रिया तक में चालू रखा। यूरोप में कृषक-दासता का उन्मूलन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध के भीतर पूरा हो जाता यदि १७६४ में अराजकतावादियों, कार्डेलियस व जेकोबिन्स के मृतक शरीरों के ऊपर सत्ता पाने वाला फ्रांस का धनिक वर्ग क्रान्तिकारी भावना को नियन्त्रित न करता, राजतन्त्र को फिर से स्थापित न करता और फ्रांस को नेपोलियन के हाथों में न देता। नेपोलियन ने कुलीनतन्त्र को उठाना शुरू किया लेकिन इसके होते हुए भी कृषक-दासता की संस्था पहले ही घातक चोट खा चुकी थी। प्रतिक्रिया

के अस्थायी विजय के होते हुए भी स्पेन व इटली में इसका उन्मूलन हो चुका था। १८११ में इसे जर्मनी में दबा दिया गया और वहां यह १८४८ में निश्चित रूप से समाप्त हो गई। १८६१ में रूस अपने कृषकों को मुक्त करने पर विवश हो गया और १८७८ के संग्राम ने बाल्कन प्रायद्वीप में कृषकदासतावाद का अन्त किया। इस सर्वोच्चसत्तावाद के उन्मूलन ने सारे यूरोप की यात्रा करने में लगभग १०० वर्ष लिये। १६४८ में इंग्लैण्ड में घायल होकर १७८९ में फ्रांस में परास्त होकर राजसत्ता जो दैवी शक्ति पर आश्रित थी वह यूरोप के सारे भागों से अदृश्य हो गई। कानून की दृष्टि में समानता व जनतन्त्रीय प्रशासन यूरोप के सारे भागों में स्थापित हुए।

क्रापोटकिन ने बताया है कि साम्यवादी सिद्धान्तों को फ्रांस की क्रान्ति से कुछ वसीयत भी मिली। सारी फ्रांस की क्रान्ति के समय साम्यवादी विचार स्थायी उपस्थित रहा। गिरोंडिन्स (Girondins) के पतन के बाद इसी दिशा में अगणित प्रयत्न किए गए। एक ओर L'Ange की ओर से फोरियरवाद की प्रत्यक्ष रेखा आई और दूसरी ओर से बेबियर की। बेबुफ उन विचारों का सीधा उत्तराधिकारी हुआ जिन्होंने १७९३ में जनता को जोश से भर दिया। १७९३ के प्रत्यक्ष Enrages और १७९५ बेबुफ षड्यन्त्र के एक ओर १८६६-७८ की अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संस्था के बीच अप्रत्यक्ष रेखा पड़ी हुई थी। गणतन्त्र के पहले दो वर्षों में लोकप्रिय साम्यवाद आधुनिक समाजवाद की अपेक्षा अधिक गहरी व्याख्या के आधीन रहा। केवल उत्पादन ही में नहीं वरन् जीवन की आवश्यकताओं के उपभोग तक में साम्यवाद था। यह समुदायीकरण व राष्ट्रीयकरण ही था जिसे उपभोग कहा जाने लगा। रोब्सपायर ने घोषित किया कि केवल खाद्य-पदार्थों की अनावश्यक मात्रा ही व्यापार की वस्तु बन सकती है किन्तु अनिवार्य वस्तुएँ सभी को प्राप्त होंगी। १७९३ के साम्यवाद जिसने सब को उत्पादन के वास्ते भूमि व जीवन निर्वाह के अधिकार का समर्थन किया, जिसने यह अस्वीकार किया कि कोई भी व्यक्ति अपने या अपने परिवार के आधीन उतनी ही भूमि रख सकता है जितनी वह कृषि के हेतु प्रयोग में ला सके तथा सारे व्यापार व उद्योग का समुदायीकरण करने के विषय में उसके प्रयोजन ने हमारे समय के सारे न्यूनतम कार्यक्रमों या ऐसे कार्यक्रमों की अधिकतम प्रस्तावनाओं की अपेक्षा सीधे वस्तुओं के हृदयों में स्थान ग्रहण किया। वस्तुतः फ्रांस की क्रान्ति आधुनिक साम्यवादी अराजकतावादी व समाजवादी विचारों की उत्पत्ति का स्रोत थी। (The Great French Revolution pp 573 81)

प्रा० गुडविन के मतानुसार हमारे युग में १७८९ की फ्रांस की क्रान्ति १९१७ की रूसी क्रान्ति की छाया में दब गई है और इसके आदर्श नाजी और फासिस्ट क्रान्तियों से अस्थायी रूप से धुँधले पड़ गये थे। फ्रांस के दर्शी आलोचकों ने क्रान्ति द्वारा समाज और शासन से अधिक व्यक्ति का महत्त्व देने पर आक्षेप किया है, किन्तु विदेशी समीक्षकों ने सवदा यह प्रश्न पूछा है कि क्या यह सब एक त्रुटि थी? क्या स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त करने के युद्ध में फ्रांस की बलि ज्यादा थी? इस विषय में इतिहासकार १७८९ की क्रान्ति का विश्लेषण अठारहवीं शताब्दी में हुए

अनेक विप्लवो से तुलना करके करते हैं तथा इस तथ्य पर विशेष बल देते हैं कि इस क्रांति का आधुनिक प्रजातन्त्र की स्थापना में इतना योगदान था कि इसने सिद्धान्तो को निर्धारित किया और जनसाधारण की सर्वाधिकार-सम्पन्नता को स्पष्ट कर दिया। आधुनिक तानाशाही का स्रोत भी किसी सीमा तक फ्रास की क्रान्ति को ही माना जा सकता है क्योंकि १७९३ की जकोबिन तानाशाही और क्रांतिकारी सरकार, अस्थायी व्यवस्था थी जिसके आगे फ्रास को गृह तथा विदेशी युद्ध अपनी राष्ट्रीयता तथा उदार सिद्धान्तो की रक्षा के लिए थोड़े समय तक झुकना पड़ा था।

Suggested Readings

Butterfield H	*The Peace Tactis of Napoleon (1806-8) 1929*
Fisher H A L	*: Napoleon 1913*
Fournier	*Napoleon*
Geyl P	*Napoleon—For and Against 1949*
Gooch G P	*Germany and the French Revolution 1948*
Hales E E Y	*Nepoleon and the Pope*
Hassall	*Life of Napoleon*
Hazen	*The French Revolution and Napoleon*
Hecksher E F	*The Continental System An Economic Interpretation 1922*
Herold J C	*The Mind of Napoleon 1955*
Johnston E M	*The Corsican*
Langsam W C	*The Napoleonic Wars and German Nationalism in Austria 1930*
Ludwig	*Napoleon*
Markham F M H	*Napoleon and the Awakening of Europe 1554*
Rose J H	*The Personality of Napoleon* 1912
Rose J H	*Life of Napoleon*
Rose J H	*: Napoleonic Studies*
Rosebery Lord	*Napoleon the Last Phase*
Seeley	*Napoleon*
Sloane	*Napoleon Bonapa te*
Thompson J M	*Napoleon Bonaparte His Rise and Fall 1953*
Thomson	*Europe Since Napoleon*

अध्याय १०

विआना-व्यवस्था (१८१५)

(Vienna Settlement, 1815)

नेपोलियन ने यूरोप के मानचित्र को बुरी तरह नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। उसने अपनी सुविधा के लिए एक देश के प्रदेशों को काट कर दूसरे देश से जोड़ दिया था। परन्तु जब १८१४ में उसे परास्त करके ऐलबा द्वीप में भेज दिया गया तो यूरोप के शासकों के सम्मुख यह समस्या खड़ी हुई कि यूरोप के मानचित्र का किस प्रकार पुनर्निर्माण किया जाय। क्योंकि नेपोलियन की पराजय में मैटरनिक ने बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया था, विआना को विचार विमर्श और यूरोप की व्यवस्था का निर्णय करने के लिए चुना गया। बहुत से राजा, विदेश-मन्त्री और शासक विआना में इकट्ठे हुए और १८१४-१५ के शीतकाल में विचार करते रहे। इन विजय प्राप्त करने वालों में पोलैण्ड और सक्सनी के भाग्य निर्णय के विषय में बड़ा मतभेद था। अन्त में एक समझौता हुआ जिस पर १८१५ की वाटरलू की लड़ाई के कुछ ही दिन पहले हस्ताक्षर किये गये।

(१) विआना-व्यवस्था तीन सिद्धान्तों पर आधारित थी—पुनःस्थापन, न्याय युक्तता और क्षतिपूर्ति। पुनःस्थापन के सिद्धान्त का आशय था कि यथासम्भव फ्रांस की शान्ति तथा नेपोलियन के उदय से पहले जिस देश की जो सीमा थी और जो राज-वंश शासन स्थापित थे, उनका पुनःस्थापन किया जाय। पुनःस्थापन का सिद्धान्त न्याययुक्तता से सम्बन्धित था, जिससे फ्रांस का कूटनीतिज्ञ टलेरेण्ड (Talleyrand) फ्रांस के क्षेत्र को छीनने से बचाने के लिए तथा अपने पराजित देश को यूरोप के विचार विमर्श में भाग लेने योग्य बनाने के लिए प्रयुक्त कर रहा था। विआना-व्यवस्था ने स्पेन, सिसली और नेपल्स में बुरबोन वंश की पुनःस्थापना की। ऑरेंज वंश (House of Ora nge) को हॉलैण्ड में स्थापित किया गया। सवाय वंश को पीडमोण्ट और सार्डीनिया में पुनःस्थापित किया गया। इटली में सारे राज्यों सहित पोप को पुनःस्थापित किया गया। अनेक जर्मन जागीरदारों की जागीरें, जो राइनलैण्ड संघ में मिला दी गई थीं वापस कर दी गई। स्विस-संघ की पुनःस्थापना हुई। टायरोल आस्ट्रिया को वापस कर दिया गया। आस्ट्रियन नीदरलैण्ड्स पर आस्ट्रिया का अधिकार माना गया, किन्तु उसे इन प्रदेशों को किसी अन्य प्रदेश से बदल लेने की अनुमति दे दी गई।

(२) नेपोलियन के युद्धों में ब्रिटेन ने डच उपनिवेश लंका, केप कॉलोनी, दक्षिणी अफ्रीका तथा गायना छीन लिये थे। ये प्रदेश ब्रिटेन के पास ही रहने दिये

गए। किंतु हालण्ड की क्षतिपूर्ति तथा फ्रांस की उत्तरी सीमा पर एक शक्तिशाली देश बनाने के विचार से हालण्ड को आस्ट्रियन नीदरलण्डज़ दे दिए गए। हालण्ड के राजा को संयुक्त नीदरलण्डज़ का राजा बना दिया गया। नीदरलण्डज़ की क्षतिपूर्ति के रूप में आस्ट्रिया को इटली में लोमबार्डी और विनिशिया दे दिए गए। टुस्कन परमा और मोडिना के सिंहासनों पर हैप्सबर्ग वंश के राजाओं को बठा दिया गया। स्वीडन से पामेरेनिया और फिनलण्ड छीन कर क्रमशः प्रशिया और रूस को दे दिये गये। स्वीडन की क्षतिपूर्ति डेनमार्क से नार्वे लेकर स्वीडन को देने से हुई। डेनमार्क को नेपोलियन का बहुत समय तक साथ देने के कारण दण्ड दिया गया।

(३) प्रशिया को भी बहुत लाभ हुआ। नेपोलियन द्वारा उसके जर्मनी के छीने हुए प्रदेश उसे पुनः प्राप्त हुए। उसे स्वीडन के अधिकृत पामेरेनिया सक्सनी का २/५वाँ भाग सारा वेस्टफेलिया और बहुत सा राइनलण्ड प्राप्त हुआ। इन सब प्रदेशों को प्रशिया को देने का यह भी आशय था कि फ्रांस के विरुद्ध प्रशिया को मुख्य रोक बनाया जाय। इस विस्तार का परिणाम यह हुआ कि प्रशिया जर्मनी का नेता बन गया। इसमें उसके खनिज पदार्थों के स्रोत बन गए जिनसे उसे एक विशाल औद्योगिक देश बनने में सहायता प्राप्त हुई। पोलण्ड के प्रदेश को रूस को लौटा देने के कारण प्रशिया विशुद्ध जर्मन देश बन गया।

(४) शक्ति का संतुलन बनाये रखने तथा फ्रांस के चारों ओर घेरा बनाने के उद्देश्य से यह निर्णय हुआ कि सारडीनिया के राज्य का विस्तार किया जाय और इसे शक्तिशाली बनाया जाय। इस राज्य को सवाय और पीडमाण्ट लौटा दिये गये तथा जिनोआ भी दिया गया।

(५) जर्मनी के विषय में यह निर्णय किया गया कि फ्रांस की क्रांति के पहले के इसके छोटे छोटे राज्य न लौटाये जायें। १८०६ में नेपोलियन ने पवित्र रोमन साम्राज्य को नष्ट कर दिया था अब इसे पुनः बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया। यह सत्य है कि स्टीन जैसे व्यक्तियों ने एक शक्ति के अन्तर्गत जर्मनी को संगठित करने का समर्थन किया किन्तु फ्रेडरिक विलियम द्वितीय ने इसमें कोई रुचि नहीं दिखाई तथा दक्षिण जर्मनी के राजाओं को मेटरनिक ने आश्वासन दिलाया था कि उनकी सत्ता अक्षुण्ण रखी जायगी। प्रशिया आस्ट्रिया और छोटी छोटी जर्मन रियासतों के राजाओं में से किसी ने भी संगठित जर्मनी को बनाने में उत्साह नहीं दिखाया और इस प्रकार जर्मनी को संगठित करने का अवसर जाता रहा। ३८ राज्यों का एक ढीला जर्मन संघ बनाया गया। फ्रैंकफर्ट में एक संसद बनी जिसमें विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि भाग लेते थे। इस संसद की अध्यक्षता आस्ट्रिया को प्राप्त होती थी। इस संसद में ६ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार आस्ट्रिया को दिया गया। सारे राज्यों को इसमें प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। संस्था का समूह संघ अथवा संघ के किसी भी सदस्य के विरुद्ध किसी भी विदेशी शक्ति से सम्बन्ध स्थापित करने की मनाही थी। यद्यपि औपचारिक रूप से यूरोप के सारे देशों ने जर्मन-संघ को मान्यता दी थी किन्तु वास्तव में आस्ट्रिया को राजनीतिक क्षेत्र में बोलबाला था।

(६) फिनलैण्ड का रूस के पास रहने दिया गया क्योंकि इसे उसने स्वीडन से जीता था। तुर्कों से जीता हुआ बसारेबिया भी दे दिया गया। इस प्रकार डची आफ वारसा (Grand Duchy of Warsaw) का भी बड़ा भाग प्राप्त हुआ।

इंगलैण्ड ने उत्तरी समुद्र में हेलिगोलैण्ड, भूमध्यसागर में माल्टा और इयोनियन (Ionian) द्वीपसमूह, दक्षिण अफ्रीका में केप का उपनिवेश, लंका और अन्य द्वीपों पर अधिकार जमा लिया।

आस्ट्रिया-हंगरी को अपने पार्श्ववर्ती के प्रदेश मिले। क्योंकि हालैण्ड को बेल्जियम आस्ट्रिया-हंगरी से लेकर दिया गया अतः उसके एवज में आस्ट्रिया-हंगरी को लम्बार्डी और वेनिशिया दिए गए। उसे एड्रियाटिक के पूर्वी किनारे का इलीरियन प्रान्त भी मिला। नेपोलियन की पत्नी मेरिया लुईजा को जो आस्ट्रिया की राजकुमारी थी पर्मा की रियासत दी गई। आस्ट्रिया के राजवंश से सम्बन्धित राजकुमारों को मोडिना और टस्कनी के सिंहासनों पर आसीन किया गया।

न्यायपूर्णता के नाम पर फ्रांस का देश लौटा दिया किन्तु उसे नीदरलैण्ड्ज, प्रशिया और सारडीनिया के घेरे में डाल दिया गया। यूरोप का नेतृत्व फ्रांस के हाथ से आस्ट्रिया के हाथों में चला गया। आस्ट्रिया के राज्य विस्तार ने उसे यूरोप की एक महान् शक्ति बना दिया। उसका जर्मनी और इटली दोनों पर प्रभुत्व छा गया। वह पहले से अधिक जर्मन बन गया। यद्यपि आस्ट्रिया के राजा से पवित्र रोमन सम्राट का पद छिन गया तथापि आस्ट्रिया ने जर्मनी पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया।

आलोचना (Criticism)—प्रो० फाइफ (Prof Fyffe) के मतानुसार दो युगों के सन्धि-काल में हुई वियाना-व्यवस्था इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि १८१५ की वियाना-व्यवस्था १९१९-२० की फ्रांस-व्यवस्था' जितनी बुरी नहीं थी। केसलरे के प्रभाव के कारण १८१५ की व्यवस्था प्रतिशोधात्मक नहीं थी। उसने वियाना में उपस्थित कूटनीतिज्ञों को ठीक ही कहा था कि 'आप लोग यहाँ युद्ध की लूट बाटने के लिए नहीं अपितु एक इस प्रकार की व्यवस्था स्थापित करने के लिए आए हैं जिससे यूरोप में शान्ति की स्थापना हो सके।' *समझौते के सिद्धान्त का जहाँ भी सम्भव हो सका प्रयोग किया गया, परिणामतः* फ्रांस को दण्ड या ताड़ना नहीं दी गई। १९१९ में जर्मनी को विलियम द्वितीय की गद नीतों और त्रुटियों का उत्तरदायी ठहराया गया और उसका राज्य, उपनिवेश तथा धन इत्यादि छीन लिए गए और उसे करोड़ों डालर की युद्ध-क्षति की पूर्ति करने को कहा गया जो स्पष्टतः उसकी सामर्थ्य से परे की चीज थी। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि जिस अत्याचारपूर्ण आक्रमण ने यूरोप की व्यवस्था को बहुत बुरी तरह बिगाड़ दिया था उसके लिए नेपोलियन पूर्णरूप से उत्तरदायी था किन्तु फ्रांस को उसके दुष्कर्मों का दोषी नहीं माना गया। उस समय भी, जब १८१५ में नेपोलियन वाटरलू के युद्ध में दूसरी बार परास्त हुआ, फ्रांस पर एक बहुत

नरम सन्धि लागू की गई। उसकी सीमा को १७९१ की सीमा माना गया। १७८९ में जब क्रान्ति हुई तब फ्रांस की जो सीमा थी, उसे नहीं माना गया। विभिन्न देशों से नेपोलियन द्वारा लूटे गए कला भण्डार को फ्रांस को लौटाना पड़ा। उसे केवल ७० करोड़ फ्रैंक ही युद्ध-क्षति के रूप में देने पड़े। संयुक्त राष्ट्रों की सेना की फ्रांस में ठहरने की अवधि को १८१८ में क्षतिपूर्ति कर देने के पश्चात् घटा दिया गया। फ्रांस के प्रति इस प्रकार के दयालु व्यवहार का यह परिणाम हुआ कि ९० वर्ष (१८१५-१९१४) तक यूरोप में कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ।

सीमन के अनुसार केवल वियाना-व्यवस्था को ही हम एक शताब्दी तक युद्ध न होने देने का कारण नहीं मान सकते। इसकी बजाय यह सम्भव है कि इस व्यवस्था की किसी भी धारा में बड़ी शक्तियों में परस्पर युद्ध होने के बीज नहीं थे और इस कारण इसे युट्रिक्ट (Utrecht) और वरसाई की सन्धियों से कुछ को अच्छी शान्ति वाली सन्धि माना जा सकता है। युट्रिक्ट की सन्धि हेल्सबर्ग वंश की छाती में आग की तरह जलती रही तथा इसकी औपनिवेशिक तथा व्यापारिक शर्तें ब्रिटेन के लिए कालान्तर में फ्रांस और स्पेन पर आक्रमण करने के लिए साहस प्रदान करती थी। वरसाई की सन्धि से जर्मनी के घुटने टिका दिये गये। इस सन्धि ने आधारहीन काल्पनिक अधिकारवाले प्रजातन्त्रात्मक नवीन राज्य बनाम प्राचीन अल्पमत की समस्याओं को समाप्त करके नई समस्याएँ खड़ी कर दीं। इटली को निराश करके फ्रांस को भड़का दिया तथा बहुसंख्यक जनसाधारण की युक्तिहीन शक्तियों को प्रदीप्त करके एक ऐसी व्यवस्था उत्पन्न कर दी जो वियाना-व्यवस्था से बहुसंख्यक जनसाधारण को महत्त्व न देने के कारण इससे दुःखान्त रूप में भिन्न प्रतीत होती है। वियाना में प्रजातन्त्रवाद और राष्ट्रवाद को महत्त्व न देने से युद्ध नहीं हुआ। १८१५ में उन लोगों ने यह ठीक ही सोचा कि क्रान्ति द्वारा युद्ध उत्पन्न होने से पहले युद्ध होने हैं जिनमें क्रान्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। उन्होंने देखा कि शक्ति और युद्ध के मामले केवल बड़ी शक्तियाँ ही निपटा सकती हैं। इसलिए यह सरल सत्य है कि वियाना-व्यवस्था में कोई ऐसी धारा ही नहीं थी जिसमें बड़ी शक्तियों को युद्ध का कोई बहाना मिलता। इस व्यवस्था का सम्पूर्ण और न्यायपूर्ण होना ही इसकी शक्ति का रहस्य है। (From Vienna to Versailles pp 8 9)

(१) यह नहीं कहा जा सकता कि वियाना-व्यवस्था एक आदर्श समझौता था क्योंकि इसमें भी अनेक न्यूनताएँ थीं। प्रो० हेयस के मतानुसार क्षेत्रों का इस तरह बाँट-चूँट में केवल कम स्थायी था बाकी सब केवल अस्थायी व्यवस्था था। नीदरलैण्ड और बेल्जियम का संघ केवल १५ वर्ष ही चला। इटली और जर्मनी की व्यवस्था केवल ५० वर्ष तथा पोलैण्ड की व्यवस्था कठिनाई से एक शताब्दी ही चली। रूस द्वारा भी पोलैण्ड-व्यवस्था को ठीक प्रकार से लागू करने से मना करने पर तथा रूस ने पोलैण्ड को १८३१ में अपने राज्य में मिला लिया था। किन्तु हालैण्ड और बेल्जियम को सम्बन्धित करने में कोई युक्ति नहीं थी। हालैण्ड प्रजातन्त्री, प्रोटेस्टेंट और व्यापारिक था। बेल्जियम रूढ़िवादी कैथोलिक था और उसकी अधिकांश

जनता फ्रांस की भाषा बोलती थी। बेल्जियम की जनता का हालैण्ड की प्रमुखता रुचिकर नहीं थी और इस कारण उसने १८३० में विद्रोह करके अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। यह बात स्मरणीय है कि इस अप्राकृतिक गठजोड़ का उत्तरदायी इंग्लैण्ड था। उसे डर था कि हालैण्ड के बिना बेल्जियम फ्रांस के दबाव का विरोध नहीं कर पायेगा और इसलिए यह आवश्यक है कि इसे हालैण्ड के साथ जोड़ दिया जाय जिससे फ्रांस इसे एक ही ग्रास में न हड़प सके।

१९१७ में रूस और फिनलैण्ड तथा १९०५ में स्वीडन और नार्वे के संघ टूट गये। बिस्मार्क ने जर्मन संघ को इसके सारे आडम्बर के साथ नष्ट कर दिया। केवूर ने इटली के समझौते को पूर्णतः उलट दिया।

(२) इस व्यवस्था में यह अवगुण था कि इसमें पोलैण्ड, स्पेन, इटली और जर्मनी की जनता में हलचल मचा देने वाले राष्ट्रीयता के आन्दोलन को पूर्णतः नगण्य माना गया। पोलैण्ड का क्रान्तिकारी नेता जारटारस्की (Czartoryský) जार एलैग्जैण्डर प्रथम से इसलिए मिला कि इस प्रकार उसके देश को स्वतन्त्रता मिल जायगी किन्तु उसे प्रयत्नों में असफलता मिली। पोलैण्ड को रूस के नियन्त्रण में रखकर उसका शासन एक पृथक् राज्य की तरह चलाया गया। पोलैण्ड निवासियों को उन्नीसवीं शताब्दी भर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ा और इस संघर्ष में उन्हें काफी हानि उठानी पड़ी। वे रूस के अत्याचारी शासन से कुचल दिए गये थे। इसी प्रकार स्टाईन के जर्मनी को एक करने के स्वप्न भी अधूरे रह गये। एक ढीला जर्मन-संघ बनाया गया। आस्ट्रिया पर जर्मनी को एकता और वैधानिक शासन न देने का आरोप लगाया जाता है। यह बात उल्लेखनीय है कि इंग्लैण्ड की शासन-प्रणाली भी असंतोषजनक मानी गई थी। वियाना सम्मेलन ने जर्मनी के 'संविधानवाद' की उपेक्षा नहीं की किन्तु बाद में मैटरनिक की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई। इटली के विषय में यह उल्लेखनीय है कि यदि वियाना में उपयुक्त समय पर सरकार बना दी जाती तो इटली में जनता की सरकार की स्थापना हो गई होती। वियाना सम्मेलन के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं था जिसके द्वारा आस्ट्रिया पर इटली को स्वायत्त शासन प्रदान करने पर विवश कर दिया जाता। सम्मेलन ने सवाय और पीडमोण्ट के राज्यों को जिनोआ और नाइस के गणतन्त्रों से मिला दिया। यह संगठन अस्थायी प्रतीत होता था और इससे जिनोआ और नाइस की जनता में असन्तोष उत्पन्न हुआ। इसके होने पर भी परोक्ष रूप से इन छोटी-छोटी इटली की रियासतों के संगठित होने से सारे इटली की एकता हो गई। इटली के स्वातन्त्र्य-युद्ध का देवता मेजिनी जिनोआ का निवासी था। इटली के प्रसिद्ध गरीबाल्डी का जन्म नाइस में हुआ था। जिनोआ में ही प्रसिद्ध लाल कुर्ते वाले सैनिकों ने सिसली को स्वतन्त्र कराने के लिए समुद्री यात्रा की थी। १८५९ में केवूर ने विनीशिया और लम्बार्डी से आस्ट्रिया वालों को निकालने के लिए नाइस और सवाय देकर नेपोलियन तृतीय की सहायता खरीदी।

(३) उदारदलीय लोगों की आशाएं नष्ट हो गई। जिन शासकों को वियाना व्यवस्था के अनुसार पुनः राज्य प्राप्ति हुई उन्होंने अपने देशों में प्रतिक्रियावादी शासन की स्थापना की जिससे सब जगह दमन का बोलबाला हुआ। स्पेन और नेपल्स में विशेष रूप से दमन चक्र चला जहा बुरबोन वंश पुनः सत्ता आसीन हुआ। मेटरनिक ने स्वयं सारे यूरोप में पुलिस का कार्य करने का प्रयत्न किया। जहा कहीं भी उदार विचारों ने सिर उठाया उन्हें कुचल दिया गया। उदार विचारों को छूत समझा जाता था। ट्रापो (Trappau) के विधान ने यूरोप के देशों को अन्य देशों के आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप करने में सहायता प्रदान की। मेटरनिक की निजी धारणा थी कि यूरोप की जनता स्वतन्त्रता नहीं, अपितु शान्ति चाहती है।'

(४) प्रा० हेयस के अनुसार वियाना व्यवस्था इसलिए त्रुटिपूर्ण थी कि जनता को राजवंशों की शान बढ़ाने के खेल में दाँव पर लगाया गया था।

(५) क्रटवल (Cruttwell) के मतानुसार, गणतन्त्रों पर न्याययुक्तता के सिद्धान्त का न लागू करना ओछापन तथा धोखेबाजी थी। वेनिस और जिनोआ ने अनेक राजाओं से कहीं अधिक दीर्घ तथा यशस्वी स्वतन्त्रता का उपभोग किया था, किन्तु इन दोनों को उत्तरी इटली की आस में काल्पनिक सुरक्षा के उद्देश्य से नष्ट कर दिया गया।

(६) ग्राट और टैम्परले के अनुसार वियाना के शान्ति-स्थापकों को अत्यन्त प्रतिक्रियावादी और अनुदार बताना एक परिपाटी बन गई है। यह पूर्णतः सत्य है कि वे लोग प्राचीन परिपाटी का प्रतिनिधित्व करते थे और अधिकांश रूप से नवीन विचारधाराओं से अछूते थे। किन्तु वे प्राचीन परिपाटी की निकृष्टता का नहीं अपितु श्रेष्ठता का प्रतिनिधित्व करते थे तथा उनकी व्यवस्था ने ४० वर्ष तक यूरोप को बड़े युद्धों से बचाये रखा। उनके मापदण्ड से यह व्यवस्था न्यायपूर्ण थी। फ्रास के साथ उदारता से व्यवहार किया गया। शक्ति का सतुलन और क्षेत्रों की काट छाँट एक बीमारी की तरह नाप-तोल कर अथवा किसी डाक्टर के खाना मिलान की निपुणता से हुई। रूस को अपने भाग से अधिक मिला और इसका कारण यह था कि उसकी सेना अनुपात से कहीं अधिक थी। व्यवस्था में राष्ट्रीयता की दोनों की उपेक्षा की गई हालैण्ड और बेल्जियम तथा नार्वे और स्वीडन पर अप्राकृतिक गठबन्धन थोप गये। किन्तु प्रत्येक गठजोड़ में शक्तिशाली सहकारियों (स्वीडन और हालैण्ड) ने स्पष्ट माँग की और संगठित राष्ट्र मार्ग नहीं पाये कि उनकी इस माँग का किस प्रकार विरोध किया जाय। अन्य कटु आलोचना यह है कि छोटे देशों के दृष्टिकोण का सम्मान नहीं किया गया। यद्यपि यह व्यवस्था प्राचीन परिपाटी का तथा वर्तमान अधिकारों की समर्थक मानी जाती थी तथापि छोटे राष्ट्रों का बड़े राष्ट्रों के हित के लिए निर्दयता से बलिदान कर दिया गया। शान्ति के व्यवस्थापकों के इन कार्यों के लिए कोई औचित्य नहीं है और यही उनके कार्यों की सबसे बड़ी और गम्भीर आलोचना है।

(७) आलोचक इस बात का निर्देशन करते हैं कि वियाना सम्मेलन ने पूर्व की समस्या का सन्तोषजनक हल नहीं निकाला। किन्तु यह भी सत्य है कि वियाना सम्मेलन द्वारा इस समस्या को हल करना भी असम्भव था। यह प्रश्न यूरोप के कूटनीतिज्ञों द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी भर प्रयत्न करने पर भी नहीं सुलझा। यूरोप की सारी शक्तियाँ कुस्तुन्तुनिया (Constantinopole) को प्राप्त करना चाहती थीं और इस विषय में कोई भी निर्णय नहीं हो सका। फिर रूस की तुर्की से सन्धियाँ था, विशेषत १९१२ की बुखारेस्ट (Bucharest) की संधि ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया।

हेजन लिखता है कि "वियाना का सम्मेलन सामन्तों का सम्मेलन था जिनके लिए फ्रांसीसी क्रान्ति द्वारा प्रतिपादित स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र के विचार समझ में न आने वाले तथा घृणास्पद थे। शासकों ने अपनी इच्छानुसार यूरोप की पुनर्व्यवस्था की। उन्होंने इसका बँटवारा जनता की इच्छाओं की अवहेलना करते हुए किया तथा उस समय अद्भुत रूप से जाग्रत राष्ट्रीयता की भावना की उपेक्षा भी की। इस व्यवस्था को स्थायी बनाने वाले तत्त्वों की उपेक्षा करने के कारण यह समझौता, व्यवस्था का रूप धारण नहीं कर पाया। १८१५ के पश्चात यूरोप के इतिहास में वियाना सम्मेलन की महान भूल सुधारने के बहुधा सफल प्रयासों की पुनरावृत्ति देखी जाती है।'

एच० ए० किसिंगर, 'वियाना के शासकों की मानवता का संशोधन करने में रुचि नहीं थी क्योंकि उनकी दृष्टि में इसी प्रयत्न ने उस दुर्घटना का मार्ग खोला था जो शताब्दी के चतुर्थ भाग तक चलती रही। इच्छाकृत क्रिया से मानवता में संशोधन करना जर्मनी के नाम में फ्रांस के राष्ट्रवाद को लाँघना उन्हें ऐसा मालूम होता जैसा क्रांति द्वारा शान्ति स्थापित करना, अधकार में स्थायित्व लाना और यह मानना कि एक बार की टूटी हुई हवा फिर नहीं स्थापित हो सकती। अत वियाना पर उठाया गया विषय प्रतिक्रिया के विरुद्ध सुधार नहीं था। यही व्याख्या आगामी सन्तानों की है। वस्तुत समस्या ऐसी व्यवस्था लाने की थी जिसमें परिवर्तन सत्ता का प्रयोग करने के बजाय उपकार के भाव द्वारा हो सके।" (A World Restored p 172)

इसके आगे, "उनके द्वारा दिए गए नैतिक समाधान के विषय में कोई कुछ भी माने इसने यूरोपीय महाद्वीप से किसी भी बड़ी सत्ता को पृथक नहीं किया और इस प्रकार असमाधानीय समस्या के अभाव का प्रमाण दिया। यह समझौता केवल मत विश्वास पर आधारित नहीं था जो कि आत्म नियन्त्रण पर बहुत बड़ा भार डालता और न यह सत्ता के विकास की शुद्धता पर ही आश्रित था जो गणना को अत्यधिक अनिश्चित बना देता। इसके विपरीत वहाँ ऐसे संगठन की रचना हो गई थी जिसमें शक्तियाँ पर्याप्त रूप से समारित थीं, जिसमें आत्म नियन्त्रण आत्मत्याग से कहीं अधिक बड़ा दीख पड़ता, किन्तु जिन्होंने इसके आगे के ऐतिहासिक दावों का ध्यान में रखा जिससे इसकी सत्ता को स्वीकृति में परिणत किया जा सका। नई अन्तर्राष्ट्रीय

व्यवस्था मे कोई भी शक्ति इतनी असन्तुष्ट नही थी जिसने कि वियाना समझौते के ढाचे के भीतर ही उपाय खोजने की रुचि नही ली। चूँकि राजनीतिक व्यवस्था एक क्रान्तिकारी सत्ता की धारक नही थी इसके सम्बन्ध वृद्धि के साथ रुचिकर हो गए जो इस बढती हुई निश्चितता पर आश्रित थे कि एक विनाशकारी उथल पुथल की आशा नही की जा सकती।

वियाना समझौते की ऐसी सामान्य स्वीकृति कोई भाग्यशाली वस्तु नही थी। सारे युद्धकाल मे कसलरे व मैटरनिख ने यही आग्रह किया था कि उनका प्रयत्न स्थायित्व के लिए था प्रतिकार के लिए नही जो शत्रुता को कुचलने की बात से नही बल्कि उसकी मजबूरियो को मान्यता देने मे उचित था। यदि हम वियाना समझौते की रूपरेखा की पिट योजना और उसके औचित्य की स्वारजेनबर्ग को दिए हुए निर्देशो से तुलना करें तो हम पायेंगे कि भाग्य जैसा कि राजनीति मे बना भी अन्य कार्यों मे केवल नमूने का शेष भाग है। कहने का यह तात्पर्य नही कि इस समझौते ने किसी भविष्यवाणी का प्रदर्शन किया जिसने सारी घटनाओ का किसी दृश्य के अनुकूल बना दिया। कसलरे ने एक ऐतिहासिक सभारता के हेतु कठोर सतुलन मे अपने विश्वास को हटाकर इसके सदस्यो के बीच गोपनीय लेन देन की व्यवस्था की और अपने को अपने राज्य की आत्मा से बढती हुई मात्रा मे अलग कर दिया। मैटरनिख जो इटली व जर्मनी दोनो ही मे अपना प्रभुत्व रखने का प्रयत्न कर रहा था उस नीति को ग्रहण करने पर विवश हो गया जो उसके साधनो से परे थी। औचित्य के हेतु उसकी बढती हुई कठोर लड़ाई ने यूरोपीय काम के लिए आस्ट्रिया के महत्त्वपूर्ण आधार की अपर्याप्तता के प्रति बढती हुई चेतना का प्रदर्शन किया जो आधार उसने उसी के लिए बनाया था। यदि एक महाद्वीप के बीच मे स्थित साम्राज्य के लिए केवल शक्ति की नीति घातक है तो सहायताहीन औचित्य पर विश्वास भी साहसपूर्ण नही हो सकता और यह पतन की ओर ले जाता है। चतुराई शक्ति का स्थान ले सकती है यदि लक्ष्य निश्चित हो परन्तु यह विचारो का स्थान नही ले सकती यदि चुनौतियाँ आन्तरिक हो जावें। और प्रशा जो सन्देहो व सकोचो से युक्त था जो राष्ट्रीय अपमान लाने वाले समर्पण के भाव से व्याकुल था वह अपनी सत्ता रखते हुए भी जर्मन उद्देश्य मे विलीन होने पर विवश हो गया। अब विस्चुला से लेकर राहायन तक विस्तृत होने के कारण इसने जर्मनी की एकता के लिए ताज का प्रतीक उपस्थित किया। केन्द्रीय यूरोप मे आर-पार धरा ■ तितिर बितिर इसकी सुरक्षा के लिए आवश्यकता ने यदि राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए इसके विचार ने नहीं इसे चाहे अनिच्छा के साथ जर्मन नीति का दास बनने पर बाध्य कर दिया। मुख्य जलमार्गों व थलमार्गों के इधर उधर स्थित होने के कारण, प्रशिया ने जर्मनी को उसकी भौतिक एकता आने से पूर्व ही आर्थिक दृष्टि से अपने प्रभुत्वाधीन कर लिया था। सदोवा मे पराजय जिसका इतनी क्रूरता के साथ विरोध किया गया प्रशिया की आस्ट्रिया के ऊपर अन्तिम विजय का यन्त्र बन गई।

(Ibid pp 173 74)

पवित्र गठबन्धन (Holy Alliance) (१८१५)—स्वप्नद्रष्टा, रहस्यमय, अस्थिर स्वभाव और कल्पना वाले जार एलेग्जेण्डर प्रथम द्वारा कृत १८१५ के पवित्र गठबंधन की चर्चा भी आवश्यक है। इस प्रकार की योजना पहले फ्रांस के हेनरी चतुर्थ के मन्त्री सुले (Sully) ने भी प्रस्तुत की थी। इस 'महान् योजना' (Grand Design) का उद्देश्य था, यूरोप मे नित्य प्रति भयानक रक्तपात से छुटकारा प्राप्त करना तथा यूरोप के राजाओ के लिए एक अपरिवर्तनशील शांति प्राप्त करना, जिससे इस योजना के पश्चात् सारे राजा परस्पर भाईयो की तरह रह सकें। एक महासमिति या सीनेट की स्थापना करने की योजना थी, जिसमे विभिन्न देशो के ६० प्रतिनिधि हो जिनका कर्त्तव्य झगड़ो का निपटारा करना तथा यूरोप मे शान्ति बनाये रखना हो। किन्तु १६१० में हेनरी नेवारे की अकाल मृत्यु के कारण कुछ नही हो पाया।

नेपोलियन के पतन के पश्चात यूरोप मे जार एलेग्जेण्डर का सर्वोपरि प्रभाव होने के कारण उसे अपनी 'पवित्र गठबन्धन' की योजना रखने का प्रोत्साहन मिला। अपने स्विस शिक्षक के प्रभाव के कारण वह उदार विचारो वाला था। एलेग्जण्डर यह चाहता था कि यूरोप के देशो के शासक परस्पर व्यवहार में ईसाई धर्म के सिद्धान्तो का प्रयोग करें। एलेग्जेण्डर के शब्दो में "वर्तमान कार्य की संसार के सम्मुख घोषणा करने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नही है कि वे अपने देशो के आन्तरिक प्रशासन तथा अन्य राज्यो से उनके कूटनीतिक व्यवहार मे पवित्र धर्म न्याय, ईसाई धर्म विशाल हृदयता और शांति की मान्यताओ का प्रयोग करेंगे। ये मान्यताएँ केवल निजी व्यवहार से कहीं अधिक राजाओं के सलाहकारो पर आवश्यक रूप से लागू होती हैं और उनकी प्रजा का पथ निर्देशन करती हैं तथा मानव की मान्यताओं को शक्ति प्रदान करती हैं और उनकी अपूर्णताओं को नष्ट करके सम्पूर्ण बनाती हैं।'

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि पवित्र गठबन्धन का लोगो ने अधिकतर ताक कर ही सम्मानित किया है। यह सत्य है कि रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने आवश्यक घोषणाएं कीं किन्तु इन घोषणाओं को कार्यरूप में परिणत नहीं किया गया। पवित्र गठबन्धन अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति के क्षेत्र मे सदाचार की भावना को पैदा करने का तथा यूरोप में राजनीतिक आत्मा (political conscience) की उत्पत्ति करने का प्रयास था जो अपने ध्येय मे असफल रहा। जार 'पवित्र गठबन्धन की पारदर्शी आत्मा को भौतिक शरीर प्रदान नही कर सका' और यह योजना केवल योजना ही रही।

ग्रेट ब्रिटेन ने पवित्र गठबन्धन के सिद्धान्तो को मानने से इनकार कर दिया। कैसलरे के अनुसार 'पवित्र गठबन्धन अलौकिक रहस्यवाद तथा मूर्खता थी।" मटरनिख इसे थोथी गर्जना या 'सदाचार का ढोंग' कहा करता था। उसके शब्दो में "पवित्र गठबन्धन धर्म के चोले में एक उदारतापूर्ण महत्त्वाकांक्षा थी।" यह जनता के अधिकारों का दमन करने, स्वेच्छाचारिता की उन्नति करने अथवा अन्य अत्याचारो का बनाने का साधन-मात्र ही थी। यह सम्राट एलग्जेण्डर की धार्मिक भावना का उबाल और राजनीति में ईसाई धर्म के सिद्धान्तो का प्रयोग करने का प्रयास था।

धार्मिक गठबन्धन का क्रियात्मक रूप से बहुत थोड़ा महत्त्व है। इसके

सिद्धान्त को कभी भी कार्य रूप में परिणत नहीं किया गया। यूरोप की जनता ने पवित्र गठबंधन और चतुर्मुखी संधि को भूल से एक ही बात समझा। क्योंकि चतुर्मुखी संधि को राष्ट्रवाद और उदारवाद के कुचलने के लिए यूरोप भर में प्रयुक्त किया गया। पवित्र गठबन्धन की भी निन्दा की गई और इसको भी प्रतिक्रियावादी जनता के विरुद्ध राजाओं के गुट तथा उदार नीति के विरुद्ध षड्यन्त्र समझा गया था। इस योजना के प्रति विभिन्न राष्ट्रों के रुख से इन शक्तियों में ध्येय की एकता नहीं थी और समय आने पर उनका इससे पृथक हो जाना सम्भव था।

सीमैन का विचार है कि पवित्र गठबन्धन यूरोप में शान्ति को बनाये रखने का महत्त्वपूर्ण साधन था। जब तक यह व्यवस्था आस्ट्रिया, रूस और प्रशिया को एकता के सूत्र में बाँधे थी उस समय तक शान्ति निश्चित थी और युद्ध की सम्भावना कम थी। पवित्र बन्धन के कारण ही प्रशिया और आस्ट्रिया रूस के विरुद्ध क्रीमिया के युद्ध में नहीं लड़े। इस प्रकार युद्ध का क्षेत्र यूरोप के प्रदेश से दूर ही रहा। १८५६ के पश्चात् इस व्यवस्था का टूटना इटली और जर्मनी में १८१५ की व्यवस्था के समाप्त होने की प्रस्तावना थी। आस्ट्रिया को पीड़ित रूस से अलग कर दिया गया था ताकि नेपोलियन तृतीय तथा बिस्मार्क आस्ट्रिया के व्यय पर नया इटली और नया जर्मनी बना सकें (परोक्ष रूप से स्वायत्त शासनयुक्त हंगरी भी)। टापू की व्यवस्था के अनुसार १८७२ की तीन राजाओं की समिति (League of Three Emperors) भी गणतन्त्रवाद को रोकने के लिए सामूहिक विरोध पर आधारित थी। बिस्मार्क की बाद की विदेश नीति की चतुरता भी उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए थी जिसके लिए मेटरनिक प्रयत्न कर रहा था, प्रयास पूर्व के प्रश्न पर रूस और आस्ट्रिया को युद्ध से रोका जाय। इस प्रकार की स्थिति बन जाने पर ही यूरोप को महायुद्ध से बचाया जा सकता था।

Suggested Readings

Fyffe	: *History of Modern Europe*
Kissinger H A	*A World Restored*
Lipson	*Europe in the Nineteenth Century*
Nicholson Sir Harold	*The Congress of Vienna 1945*
Phillips	*Modern Europe*
Seaman	*From Vienna to Versailles*
Seignobos	*Political History of Europe Since 1814*
Thomson David	*Europe Since Napoleon 1957*
Webster C. K.	*The Congress of Vienna 1934*
Webster	*The European Alliance*
Ferrero G	*The Reconstruction of Europe 1941*
Cresson W P	*The Holly Alliance 1922*

अध्याय ११

कैसलरे और कैनिंग

(Castlereagh and Canning)

कैसलरे (१८१२-२२)—कैसलरे उन लोगों में से एक व्यक्ति है जिन्हें बड़ी नाज़ुक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा और जिन्होंने अपना कार्य प्रत्यन्त योग्यता से कर दिखाया। उनके शांत तथा शीघ्र ही उत्तेजित न हो जाने वाले स्वभाव ने इसमें उसके कार्य में बड़ी सहायता दी।

उसका जन्म १७३९ ई० तथा मृत्यु १८२२ ई० में हुई। इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड के मेल के समय वह इंग्लैण्ड की ओर से आयरलैंड के लिए सक्रेटरी नियुक्त था। रिश्वत आदि देकर आयरलैंड के लोगों का आयरलैंड और इंग्लैंड के एकीकरण के लिए तैयार करवाने में उसका भी हाथ था। वह कैथोलिक लोगों को कुछ प्रश तक धार्मिक स्वतन्त्रता देने के हक में था। वह कुछ समय के लिए युद्ध मन्त्री और फिर बस्तियों का मन्त्री भी रहा। १८०७ में उसने सेना का पुनर्गठन किया। परन्तु उसके द्वारा सेना का यह पुनर्निर्माण पुरानी सेना के आधार पर ही किया गया था। १८०९ ई० में उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और कैनिंग से मुकाबला किया। १८१२ ई० में वह विदेश मन्त्री (Foreign Secretary) बन गया और १८२२ ई० में आत्महत्या करने तक वह इसी पद पर रहा। लार्ड ब्राहम के शब्दों में 'कैसलरे एक सरल और प्रत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति था। तड़क भड़क वाले काल्पनिक विचार और पथ की कल्पना की उड़ानें उसे धोखा नहीं दे सकती थीं। वह सीधा बात की तह तक पहुँचता। राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु व्यक्तिगत रूप में भी वह बड़ा वीर था।

जब १८१२ ई० में वह विदेश मन्त्री बना, उस समय नेपोलियन के विरुद्ध यूरोप के राष्ट्रों की शक्ति विशेष संगठित नहीं थी। प्रत्येक देश अपना उल्लू सीधा करना चाहता था। परिणामस्वरूप नेपोलियन के विरुद्ध कोई सामूहिक पग नहीं उठाया जा सकता था। इन्हीं परिस्थितियों में कैसलरे यूरोप गया और वहाँ जाकर उसने मित्र राष्ट्रों को संगठित किया। उसके इन्हीं प्रयत्नों की बदौलत राष्ट्रों का युद्ध (Battle of Nations) आरम्भ हुआ और १८१४ ई० में नेपोलियन की शक्ति समाप्त कर दी गई। १८१४ ई० में यूरोप में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसों में इंग्लैण्ड को वही स्थान प्राप्त था जो कि १९१९ ई० में अमरिका को प्राप्त था। उस समय केवल इंग्लैंड ही एक ऐसा देश था जिसके पास युद्ध करने की शक्ति और साधन थे और जिसे युद्ध करने की इच्छा भी थी। वह अपने समय के यूरोप का भाग्य

विधाना था। इंग्लैंड को ऊंचे स्थान पर पहुँचाने का श्रेय लार्ड कैसलरे का है जिसके उच्च आदर्शों ठोस व्यवहार बुद्धि और राजनैतिक कार्यों को करने की ईश्वरदत्त प्रतिभा ने उसे ऐसा करने में समर्थ किया। वह केवल अंग्रेज़ी पार्लियामेंट और मंत्रिमण्डल में काम करने वाले अपने सहकर्मचारियों का ही विश्वासपात्र नहीं अपितु यूरोप भर के राजनीतिज्ञों की अच्छी सम्मतियाँ और विश्वास प्राप्त करने में सफल हुआ।

कैसलरे का यूरोप जाने और मित्र राष्ट्रों की राजधानियों की यात्रा करने का एकमात्र उद्देश्य इन चार बड़े बड़े राष्ट्रों को संगठित करके नेपोलियन के मुकाबले में खड़ा करना था। साथ ही साथ वह एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना करना चाहता था जो यूरोप के राजनीतिज्ञों के सम्मुख उपस्थित समस्याओं को सुलझा सके। कैसलरे के विचार में राष्ट्रों की नीति में मतभेदों को दूर करने युद्ध में विजय प्राप्त करने और इस प्रकार शान्ति स्थापित करने के लिए शत्रु के सामने सामूहिक रूप से उपस्थित होने का सर्वोत्तम ढंग बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रधानमंत्रियों में विचारों का विश्वस्त और खुला आदान प्रदान था। बीसवीं सदी में तो अन्य राष्ट्रों से अपनी रक्षा करने के लिए कान्फ्रेंसें बुलाकर योजनाएँ बनाने का विचार कोई नया नहीं प्रतीत होता परन्तु कैसलरे के समय में ऐसा विचार क्रान्ति मचा देने वाले किसी विचार से कम नहीं समझा जाता था। अपने इसी एक काम से कैसलरे इतिहास में एक महान् शान्ति स्थापित करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

कैसलरे चार बड़े-बड़े राष्ट्रों को परस्पर एक दूसरे के निकट लाने के उद्देश्य से ही यूरोप गया था और दो मास के अन्दर अन्दर की गई मार्च, १८१४ ई० की शामौण्ट (Chaumont) की संधि उसकी अत्यन्त महत्वपूर्ण और एक बड़ी भारी सफलता थी। इस संधि के द्वारा चारों राष्ट्रों ने युद्ध को तब तक जारी रखने की प्रतिज्ञा की जब तक फ्रांस शान्ति का समझौता करने के लिए तैयार नहीं हो जाता। इन राष्ट्रों में से प्रत्येक राष्ट्र ने युद्ध के लिए शस्त्र आदि देना स्वीकार किये। इंग्लैंड ने शस्त्रों के साथ-साथ प्रति वर्ष ५० लाख पौंड की राशि देनी भी स्वीकार की। यह समझौता बीस वर्षों के लिए किया गया और मित्र राष्ट्रों ने बीस वर्षों तक फ्रांस के द्वारा शान्ति के समझौतों की शर्तों को तोड़ने का प्रयत्न करने पर सामूहिक रूप से यूरोप की ओर से फ्रांस के विरुद्ध लड़ने का वचन दिया। इस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किए जाने के कुछ ही समय पश्चात् नेपोलियन को फ्रांस के सिंहासन से उतार दिया गया और अब पेरिस में समझौते की बातचीत आरम्भ हो गई। शान्ति के समझौते का पहला भाग पेरिस में और शेष का भाग वियाना (Vienna) में तैयार किया गया। नवम्बर १८१५ में ई० शान्ति के संधिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए गए।

इस संधि को तैयार करने में कैसलरे ने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। ड्यूक आफ वलिंगटन मैटर्निक और एलेक्जेण्डर प्रथम ने उस उसके इस कार्य में सहायता दी। कैसलरे और एलेक्जेण्डर प्रथम इस बात पर तुले हुए थे कि फ्रांस के साथ अधिक

कठोर व्यवहार न किया जाए। कैसलर का कहना था कि हमारा काय विजयोपहार इकट्ठे करना नहीं अपितु ससार के लोगो को फिर से शान्तिपूर्ण रहना सिखाना है। वह फ्रास से उसके साम्राज्य के किसी भी एम भाग को जबरदस्ती छीनने के विरुद्ध था, जिसको फिर प्राप्त करने के लिए फ्रास के द्वारा युद्ध किए जाने की सम्भावना हो। उसने लिवरपूल को लिखा— मैं जितना और विचार करता हूँ उतना ही मुझे उसकी (फ्रास की) शक्ति कुरदने का यह ढग पसद नही आता। हमे उस नौका दिखाकर उसके नाखूनो को काट देना चाहिए जिससे वह कई वर्षो तक हम घायल न कर सके। परन्तु मुझे विश्वास है कि जिन चीजों को वापिस प्राप्त करने के लिए फ्रास अवश्य ही प्रयत्न करेगा उन चीजो की रक्षा के लिए यूरोप म होने वाले युद्ध म यूरोप के राष्ट्रो की सहायता करने के लिए वचनबद्ध होने की नीति अवश्य ही इगलैड के लिए हानिकारक है।"

चूँकि यूरोप के राजनीतिज्ञो ने कैसलरे के द्वारा दिखाए जा रहे रास्ते पर चलकर फ्रास के साथ न्यायपूर्ण और नम्र व्यवहार किया इस लिए फ्रास ने विएना के समझौते को मानना स्वीकार कर लिया। लगभग बीस वर्षो से यूरोप मे गडबड मचाते चले आने पर भी फ्रास के साथ आश्चयजनक नर्मी का व्यवहार किया गया। युद्धकाल म उसके द्वारा जीते गए प्रदेशो म से बहुत से प्रदेश वापिस ले लिए गए परन्तु उसे अपनी उत्तरी तथा पूर्वी सीमाओ को कुछ अश तक बढाने की इजाजत मिल गई। युद्ध म होने वाली हानि के बदले उससे कोई हर्जाना न माँगा गया। लुई अठारहवें को फ्रास के सिंहासन पर बिठा दिया गया। १८१५ ई० की वाटरलू की लडाई म नेपोलियन की हार होने पर भी सधि की शर्तें फ्रास के लिए विशेष कठोर न रखी गई। केवल अपनी सीमा बढाने के सम्बन्ध म दी गई रियासतें उससे वापिस ले ली गई और उसे युद्ध के हर्जाने के रूप म छोटी-सी राशि देने के लिए कहा गया। उसे महान् कलाकारो की कृतियाँ भी वापिस लौटानी पडीं। यह भी निश्चय किया गया कि जब तक फ्रास हर्जाने की राशि नही देगा तब तक फ्रास के कुछ भाग पर मित्र राष्ट्रो की सेनाए रहेंगी। फ्रास के साथ इस प्रकार से नर्मी से सिद्ध होता है कि कैसलरे लायड जार्ज से अधिक योग्य राजनीतिज्ञ था। क्योंकि लायड जार्ज ने १९१९ ई० म जर्मनी के साथ एक अत्यन्त कठोर शर्तों वाली सधि की, जिसके परिणामस्वरूप बीस वर्षो के अदर अदर ही एक दूसरा महायुद्ध छिड गया। कैसलरे के द्वारा तैयार की गई यह सधि लगभग एक शताब्दी तक चली।

पेरिस और विएना म चल रही लम्बी और पेचीदा समझौते की बातचीत का चलाते हुए लार्ड कैसलरे ने एक क्षण भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के आदर्श को अपने ध्यान से परे न किया। जिस समय नवम्बर, १८१५ की सधि की छोटी धारा पर वाद विवाद हो रहा था उस समय उसे अपनी योजना को क्रियात्मक रूप देने का अवसर मिल गया। जिस समय यह धारा पास की गई थी उस समय तो इसमे यह लिखा था कि फ्रास के सम्बन्ध म सलाह-मशवरा करने के लिए यूरोप के राजनैतिक विद्वानो को समय-समय पर एकत्रित होना चाहिए परन्तु कैसलरे का इस धारा के

शब्द और भाव दोनों ही पसन्द न आए। उसने इस धारा को बदल कर इसके स्थान पर नीचे दी जा रही धारा रखी—

'इस संधि को क्रियात्मक रूप देने के कार्य को सरल करने और इसकी रक्षा करने के लिए तथा संसार के लिए हितकर इन चारों राष्ट्रों के मेल मिलाप को बढ़ाने वाले सम्बन्धों को और भी दृढ़ करने के लिए इस संधि में भाग लेने वाले मुख्य देशों के द्वारा इस बात को स्वीकार किया जाता है कि वे निश्चित समय के पश्चात् जलसे बुलाते रहेंगे। अपने सामान्य स्वार्थों के विषय में सलाह-मशवरा करने के लिए और समय को देखकर आवश्यक और लाभदायक पग उठाने के लिए देशों को फिर से समृद्ध बनाने और यूरोप में शान्ति को बनाए रखने के लिए या तो इन राष्ट्रों के राजा या उनके प्रतिनिधि इन कान्फ्रेंसों में भाग लेंगे।'

यूरोप में शांति स्थापित करने की दिशा में यह धारा कैसलरे की एक बड़ी भारी देन थी। इसमें हम राष्ट्र संघ (League of Nations) के कौनवनण्ट और संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) के चार्टर की झलक मिलती है। कन्सर्ट आफ यूरोप (Concert of Europe) की स्थापना भी इसी के आधार पर हुई थी। कैसलरे को आशा थी कि यूरोप में शान्ति भङ्ग करने वाली सभी समस्यायें इस संधि की छठी धारा के अनुसार बुलाई जाने वाली कान्फ्रेंसों में सुलझा ली जाया करेंगी और इस प्रकार यूरोप में शान्ति स्थापित रह सकेगी। परन्तु कैसलरे की इस योजना का असफल रहना निश्चित ही था क्योंकि उसके समकालीन राजनीतिज्ञ कान्फ्रेंस बुला कर झगड़े निपटाने के महत्त्व को न समझ सके। जब शांति भंग होने का अवसर उपस्थित हुआ तो स्वयं इंगलैण्ड भी शान्ति की रक्षा के लिए आगे न बढ़ा।

कई बार कहा जाता है कि कैसलरे ने इंगलैण्ड को होली एलायंस की दुम के साथ बांध दिया परन्तु ऐसा कहना ऐतिहासिक तथ्यों के विरुद्ध है। यह सत्य है कि कैसलरे का इस बात पर बड़ा विश्वास था और वह इस बात का प्रबल समर्थक भी था कि यूरोप के राजनीतिज्ञ अपने बीच में पैदा हुए झगड़ों को सहयोग की नीति पर चलकर स्वयं ही निपटायें। इसी उद्देश्य से एक्स-ला-चपल ट्रोपाऊ लाय्बक और वरोना के स्थान पर चार कान्फ्रेंसें हुई। इसमें सन्देह नहीं कि कैसलरे आपसी झगड़ों को विचार विनिमय के द्वारा निपटाने के पक्ष में था। विचार विनिमय की उपयोगिता में उस निश्चय ही बहुत विश्वास था परन्तु यह कहना सर्वथा गलत है कि वह Holy Alliance की इस नीति का समर्थक था जो (नीति) क्रियात्मक रूप में अपनाई जाने पर सारे यूरोप में से उदार विचारों और स्वतन्त्रता के लिए किए जा रहे आन्दोलनों को बाहर निकाल देने के लिए रूस प्रशिया और आस्ट्रिया-इंगलैण्ड के हाथों में एक अत्यन्त उपयोगी शस्त्र के रूप में आ गई। यह सच है कि इंगलैण्ड चार देशों के गठजोड़ (Quadruple Alliance) का एक सदस्य था और यूरोप के राजनीतिज्ञों के सामने उस समय उपस्थित समस्याओं को सुलझाने के लिए उन्हें सहयोग देने के लिए तय्यार था। यह भी सच है कि कैसलरे आस्ट्रिया को इटली में मनचाही करने की खुली छुट्टी देने के लिए तैयार था। उसने नेपल्ज़ और पिडमौंट में निरंकुश शासन के

स्थापित रहने दिए जाने के सम्बन्ध में आस्ट्रिया और नेपल्ज के राजा फर्डिनण्ड चतुर्थ में की गई गुप्त सन्धि को मान लिया। यही कारण था कि उसने इटली के रिसार्जिमण्टो (Resorgimento) के विद्रोह को एक नम्र और दयालु सरकार के प्रति सैनिक विद्रोह और साम्प्रदायिक षडयन्त्र का नाम दिया। कैसलरे एक 'अच्छा यूरोपियन' और शांति का मित्र था। वह आपसी झगडों को मिटाने के लिए समय समय पर बुलाई जाने वाली कान्फ्रेंसों का प्रबल समर्थक था। इन कान्फ्रेंसों के द्वारा झगड़े निपटा कर वह युद्ध के कारणों को ही दूर कर देना चाहता था परन्तु वह इन कान्फ्रेंसों को अन्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का साधन नहीं बनाना चाहता था। वह रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया के अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस के रूप में काम करने का घोर विरोधी था। यही कारण था कि उसने होली एलायंस (Holy Alliance) को अन्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार देने वाले ट्राप्पू प्रोटोकाल (Protocol of Troppau) का बड़ा विरोध किया।

१८२० ई० में कैसलरे ने अपने सब विचारों को एक स्टेट पेपर (State Paper) में संग्रहीत किया। उसके पश्चात् लार्ड कैनिंग ने इस स्टेट पेपर को अपनी नीति का आधार बनाया। उसने स्टेट पेपर को उस समय घोषित किया जिस समय स्पेन के राजा फर्डिनण्ड सप्तम के अत्याचारों और जुल्मों के विरुद्ध स्पेन में एक सैनिक विद्रोह हो रहा था। उसने अपने इस पेपर में इंग्लैण्ड की अन्य देशों के आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप न करने की नीति पर प्रकाश डाला। इसमें उसने इस बात की ओर संकेत किया कि देश के आन्तरिक झगड़ों में अन्य देशों के हस्तक्षेप को न सहने में स्पेन के लोग यूरोप के सब देशों के लोगों से बढ़कर हैं। इस विषय में उसके विचार वैलिंगटन के विचारों पर आधारित थे। परन्तु स्पेन के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाने का केवल एक ही कारण नहीं था। होली एलॉयंस में भाग लेने वाले देश फर्डिनण्ड सप्तम को पुनः स्पेन का राजा बनाने के लिए स्पेन के मामलों में हस्तक्षेप करना चाहते थे परन्तु कैसलरे उन्हें नवम्बर १८१५ की सन्धि की छठी धारा के अनुसार स्थापित किए गए चार राष्ट्रों के समझौते (Four Powers Alliance) की याद दिलाकर उन्हें ऐसा करने से रोकना चाहता था। वह समझौता १८१५ ई० की सन्धि के द्वारा स्थापित की गई व्यवस्था की रक्षा करने के उद्देश्य से किया गया था, न कि अन्य देशों के आन्तरिक मामलों की देख रेख करने या संसार के सब देशों की सरकारों के संगठन करने के उद्देश्य से। कैसलरे ने यह भी कहा कि इस समझौते को इसके आधारभूत सिद्धांतों और वास्तविक उद्देश्यों से प्रकट होने वाले कर्त्तव्यों से भी आगे धकेलने से अधिक इसकी उपयोगिता नष्ट करने वाली कोई और चीज नहीं है। उसने होली एलॉयंस के द्वारा १८१५ ई० की सन्धि की छठी धारा का दुरुपयोग किए जाने की कड़ी समालोचना की। जहाँ तक इंग्लैण्ड का प्रश्न था कैसलरे ने कहा कि इंग्लैण्ड एक बुरे व्यवहार करने वाले राजा के पक्ष में किसी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं। कैसलरे ने कहा कि सचमुच ही यूरोप की शांति भंग हो जाने का खतरा उपस्थित हो जाएगा तो हमारा यह देश अपने कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए उचित स्थान पर पहुँच जाएगा। परन्तु

हमारा यह देश खतरे से बचने के लिए परहेज के तौर पर थोथे और काल्पनिक सिद्धान्तों पर नही चलेगा। जहाँ एक ओर वास्तविक खतरा उपस्थित होते ही इंगलण्ड उसका सामना करने के लिए सामने आ जाएगा वहाँ दूसरी ओर वह अपने राष्ट्रों के द्वारा काल्पनिक खतर से लडने में और अत्याचार करने वाले के पक्ष की ओर से लडने में उनकी सहायता नही करेगा।

अपनी दृढ नीति के कारण कैसलरे चार राष्ट्रो के समझौते से अलग नही होना चाहता था। परन्तु वह इस बात पर तुला हुआ था कि वह अन्य राष्ट्रो के आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप की नीति को यूरोप के राष्ट्रों के द्वारा नही अपनाया जाने देगा। अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पहले कैसलरे वेरोना की कांग्रेस में भाग लेने के लिए तयार हो रहा था। इस कांग्रेस में स्पेन के झगडे के विषय में भी वाद विवाद होना था। उसने पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि वह यूरोप के राष्ट्रो को स्पेन में पुन फर्डिनण्ड सप्तम को गद्दी पर बठने से रोकेगा। यद्यपि उसने वेरोना की कांग्रेस के मौके पर आत्म हत्या कर ली उसका काम लार्ड कनिंग पूरा करता रहा। वेरोना की कांग्रेस में भाग लेने के लिए वेलिङ्गटन को भेजा गया। उसने कैसलरे के द्वारा स्थापित किए गए सिद्धान्तो पर ही आचरण किया। वुडवर्ड (Woodward) ने ठीक ही कहा कि कनिंग कैसलरे के सिद्धान्तो और उद्देश्यो से सहमत था। उसका तो केवल उन उद्देश्यो को प्राप्त करने के ढंग से कैसलरे से मतभेद था। जहाँ एक ओर कैसलरे अन्तर्राष्ट्रीय झगडो को सुलझाने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेसो को बुलाने के पक्ष में था वहाँ दूसरी ओर कनिंग झगडो को निपटाने के इस ढंग का विरोधी था। उसके विचार हम उसके अपने शब्दों से जान सकते हैं। उसने कहा परमात्मा का धन्यवाद है कि अब और कांग्रेसें नही होगी। उसकी इस नीति का परिणाम था कि कांग्रेसो का युग समाप्त हो गया।

यह कहना गलत है कि कैसलरे ने इंगलैंड को Holy Alliance की दुम के साथ बाँध दिया। वह निश्चय ही Holy Alliance के उन सिद्धान्तो का विरोधी था जो कि एलायंस में भाग लेने वाले राष्ट्रों को अन्य देशों के राष्ट्रों के आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप करने का अधिकार देते थे। असल बात तो यह है कि कैसलरे Holy Alliance का घोर विरोधी था। वह इसे असंगत प्रलाप और उत्कृष्ट मूढ़ विचारों का टुकड़ा कहा करता था। उसने लिवरपूल को स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि जार के (जिसे होली एलायंस बनाने की सूझी थी) मस्तिष्क में अवश्य ही कुछ गड़बड़ थी। वह होली एलायंस को स्वतन्त्र विचारों के विरुद्ध युद्ध में प्रयोग किए जाने के पक्ष में न था। कैसलरे स्वयं स्वतन्त्र विचारों का विशेष समर्थक नहीं था परन्तु दूसरे अन्य देशों के आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप करने की नीति से उसे बड़ा घृणा थी। उस कैसलरे को होली एलायंस की दुम के साथ बाँधने वाला इस लिए कहा जाता है कि ऐसा कहने वाले लोग होली एलायंस और चार राष्ट्रों के समझौते (Quadruple Alliance) में भेद को नहीं समझते। स्वतन्त्रता के विरुद्ध षड्यन्त्र के साथ उसके मित्रतापूर्ण घने सम्बन्धों ने लोगों के ऐसे विचार को और भी दृढ़

कर दिया। कैसलरे कोई विशेष अच्छा वक्ता न था। न तो उसमे इतनी योग्यता थी और न ही उसकी इच्छा थी कि वह लोगो को इस बात का विश्वास दिलाए कि वह होली एलॉयंस (Holy Alliance) का विरोधी है और यह तो केवल आधुनिक अनुसधान-कर्त्ताओं ने इस बात की खोज की है कि होली एलायस और क्वाडरूपल एलॉयस (Quadruple Alliance) दो अलग-अलग चीजें थी। इन समझौता के दो पृथक्-पृथक् समझौते होने के रहस्योद्घाटन ने कसलरे की वास्तविक महत्ता को प्रकट किया है। उसके समकालीन विद्वान् जो कि होली एलायस और क्वाडरूपल एलायस को एक ही चीज समझते थे, उसे मटर्निक के समान ही यूरोप का एक अन्य कन्सर्वेटिव और रूढ़िवादी राजनीतिज्ञ मानते थे। शैली की इसी अज्ञानता ने उसे Masque of Anarchy (१८१७) मे निम्नलिखित पक्तियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया—

> "I met Murder on the way,
> He had a mask like Castlereagh,
> Very smooth he looked yet grim
> Seven blood hounds followed him
> All were fat and well they might
> Be in admirable plight,
> For one by one and two by two,
> He tossed them human hearts to chew"

केवल आधुनिक युग मे आकर ही कसलरे की महत्ता को समझा जाने लगा है। यह सच है कि वह यूरोप के राष्ट्रो को शाति भग करने वाले आपसी झगडो को परस्पर सहयोग से सुलझाने के लिए मनवाने के अपने आदर्श को क्रियात्मक रूप देने म सफल न हो सका परतु साथ ही इस बात से भी इन्कार नही किया जा सकता कि उसी ने सबसे पहले वे सुझाव पेश किये जो कि आगे चलकर लीग ऑफ नैशन्ज के कौनवेनैण्ट और सयुक्त राष्ट्र सघ के चाटर के आधार बने। कसलरे की रचनाओं का बडी गम्भीरता से अध्ययन करने वाले इतिहास वेत्ताओं के द्वारा ही उसकी योग्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। 'कसलरे की विदेश-नीति' नाम की अपनी पुस्तक म वैब्स्टर ने कैसलरे को इगलड के इतिहास म सवश्रेष्ठ विदेश-मत्री माना है। सीटन-वाटसन (Seton Watson) ने कैसलरे को इगलैंड के इतिहास म हुए विदेश-मन्त्रियो म से एक श्रेष्ठ और सम्बन्धो को बनाने वाला विदेश मत्री कहा है। कसलरे के अपने शब्दो म "शान्ति स्थापित करने के लिए की गई सधि की सफलता के लिए उसका न्यायपूर्ण और परिमित होना आवश्यक है। आदर्श रूप म और क्रियात्मक रूप म आन्तरिक सहयोग की भावना को पैदा करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। ग्रेट ब्रिटेन को यूरोप के मामलो म अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए।' वैब्स्टर के विचार म कैसलरे यह समझ चुका था कि युद्ध म बचने के लिए शान्ति के लिए तयार होना आवश्यक है।

जार्ज कनिंग (१८२२ २७)—जार्ज कनिंग का जन्म १७७० ई० मे हुआ।

यद्यपि उसका जन्म एक छोटे घराने में हुआ था तो भी ईटन और आक्सफोर्ड में अच्छी शिक्षा प्राप्त कर वह एक ऊँचे पद पर पहुँच गया। वह एक अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति था। १८०७ ई० से १८०९ तक वह इंग्लैंड का विदेश मंत्री रहा। १८०९ ई० से १८१६ ई० के बीच के समय में वह किसी विशेष ऊँचे पद पर न रहा। परन्तु १८१६ ई० में वह बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल का अध्यक्ष बन गया। १८२१ ई० में उसने रानी करोलीन के प्रति राजा के दुर्व्यवहार के कारण अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। वह भारत का गवर्नर जनरल बनकर इंग्लैंड से यहाँ आने की तैयारी कर ही रहा था कि कैसलरे की आकस्मिक मृत्यु हो जाने के कारण उसे इंग्लैंड का विदेश मंत्री बना लिया गया। १८२२ ई० से १८२७ तक वह इंग्लैंड का विदेश-मंत्री रहा। वह एक हाज़िरजवाब, निपुण वक्ता और वाद विवाद करने में अत्यन्त योग्य व्यक्ति था। वह हाउस ऑफ कामन्स का नेता था। कैसलरे के समान कैनिंग भी पिट दी यंगर का मित्र और शिष्य था परन्तु उसके और कैसलरे के स्वभावों में बड़ा अन्तर था और दोनों अपने सार्वजनिक जीवन में एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी रहे। दोनों के दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न भिन्न थे। कैसलरे एक शाही तबियत का व्यक्ति था और शान्त ढंग से सोचता था। वह क्रियात्मक रूप दिये जा सकने वाली योजनायें बनाता था। वह अपने देश को अन्य देशों के साथ मेल मिलाप करवा कर शांति तथा सहयोग की नीति पर चलते हुए उसके हितों की रक्षा करना चाहता था। परन्तु उसकी नीति की सफलता उसके अपने व्यक्तित्व और यूरोप के राजनीतिज्ञों पर उसके आश्चर्यजनक प्रभाव पर निर्भर थी। कैनिंग भी शान्ति का समर्थक था परन्तु उसे सहयोग की नीति पर चलते हुए शांति स्थापित किये जा सकने पर विश्वास नहीं था। उसका विचार था कि इंग्लैंड को यूरोप के अन्य देशों के साथ तब तक कोई विशेष संधि या समझौता नहीं करना चाहिए जब तक वह अपनी रक्षा करने के लिए ऐसा करने पर विवश न हो जाए। जब उसे अपनी रक्षा के लिए आक्रमणकारियों को रोकना पड़े तब उसे अवश्य ही और बड़े जोर शोर के साथ यूरोप के अन्य राष्ट्रों के साथ आवश्यक समझौते करने चाहियें। शान्ति काल में उसे यूरोप के राजनैतिक झगड़ों से अलग ही रहना चाहिए। उसकी नीति कैसलरे की नीति से अधिक राष्ट्रीयता का पुट लिए हुए थी। अपने पद को ग्रहण करते हुए उसने कहा "कि यूरोप में वा [illegible] के लिए मैं चाहूँगा कि इंगलैंड वहाँ की परिस्थिति का समय-समय पर अध्ययन करता रहे। उसका आदर्श था कि प्रत्येक देश अपने लिए और परमात्मा सब देशों के लिए सोचे। सीटन वाटसन ने इस वाक्य को पूरा करने के लिए इसके साथ लिख दिया है कि शैतान के लिए सबसे पिछला भाग रह गया (Devil take the hindmost)।

कैनिंग कैसलरे की अपेक्षा अपने युग के अधिक अनुकूल था। उन्नीसवीं शताब्दी राष्ट्रीयता का युग था और कैसलरे की अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना इसके अनुकूल नहीं कही जाती थी। १८३१ ई० में इंग्लैंड में एक निर्वाचक ने ग्लैडस्टन को कहा 'भाड़ में जायें सारे अन्य राष्ट्र। हमें उन राष्ट्रों से क्या लेना-देना है ?

दन दो वाक्यों से हमें उस समय के इंग्लैंड के लोगों के यूरोप के प्रति दृष्टिकोण का पता चलता है। इंग्लैंड के लोगों के भावों को प्रकट करते हुए स्वयं कैनिंग ने कहा कि हम ऐसा सोचने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए कि हम अकेले यूरोप का पुनर्निर्माण कर सकते हैं।

वुडवर्ड ने उचित ही कहा है कि कसलर और कॅनिंग का उद्देश्य तो एक ही था केवल उस उद्देश्य को प्राप्त करने के ढंग भिन्न भिन्न थे। कैनिंग ने उसी नीति को अपनाया जो कि कैसलरे के १८२२ ई० के स्टेट पेपर में लिखी हुई थी। विदेश मंत्री बनने पर उसने उसी स्टेट पेपर को अपनी नीति का आधार बनाया चाहे उसमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर लिए गए। उसने इस बात को स्वीकार कर लिया कि इंग्लैंड और उसके यूरोपियन मित्र राष्ट्रों में अनबन है परन्तु उसने इसे दूर करने का कोई प्रयत्न न किया। उसने कहा कि परमात्मा का धन्यवाद है कि अब कांग्रेसें नहीं होंगी। इस प्रकार कसलर के द्वारा समर्थित की जा रही राष्ट्रों में सहयोग की भावना को पैदा करने की नीति का अन्त हो गया। कॅनिंग होली एलायंस में भाग लेने वाले देशों के साथ मेल मिलाप बनाने के हक में न था। इसका कारण यह था कि उसे अपने देश की पुरानी संस्थाएँ और रीति रिवाज बड़े पसन्द थे। उसे विश्वास था कि अन्य राष्ट्र भी इंग्लैंड की संस्थाओं के नमूने पर प्रथाएँ और संस्थाएं चला कर लाभ उठा सकते हैं। वह अंग्रेजी संस्थाओं को यूरोप के अन्य राष्ट्रों के द्वारा आदर्श संस्थाओं के रूप में देखा जाना चाहता था।

स्पैन (Spain)—कॅनिंग को सबसे पहले स्पेन के साथ निपटना पड़ा। वेरोना की कांग्रेस में स्पेन में पुनः पुराने राज्य की स्थापना करने का भार फ्रांस पर छोड़ा गया। कैनिंग ने अन्य देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की इस नीति का विरोध किया और इस विरोध के कारण ही इंग्लैण्ड ने अपने आपको कांग्रेस से अलग कर लिया। वह अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की और रूस आदि पुरानी पद्धति के अनुसार शामिल किए जाने वाले प्रतिक्रियावादी राष्ट्रों के द्वारा अन्य देशों का मुआयना किये जाने के सिद्धांत का विरोधी था। इंग्लैण्ड के द्वारा विरोध किए जाने पर भी फर्डिनण्ड सप्तम को स्पेन का सिंहासन वापिस दिलवाने के लिए ड्यूक आफ ऐंगोलीम को स्पेन भेजा गया। पुनः गद्दी प्राप्त करने पर फर्डिनैण्ड ने बदला लेने की नीति अपनाई। कॅनिंग को फ्रांस के हस्तक्षेप करने की इस नीति पर बड़ा क्रोध आया। परन्तु वह विवश था क्योंकि फ्रांस का विरोध करने का अर्थ यूरोप के सब राष्ट्रों से खुला युद्ध छेड़ना था। उसे केवल शब्दों में ही इस नीति का विरोध करके सन्तोष करना पड़ा। जब फर्डिनैण्ड ने दक्षिणी अमरीका में स्पेनिश बस्तियों पर अधिकार करने की सोची उस समय कॅनिंग ने निश्चय कर लिया कि वह उसे ऐसा नहीं करने देगा। उसके भाषणों की शैली भी बदल कर तेज़ हो गई। उसने कहा 'मेरा निश्चय था कि यदि फ्रांस स्पेन को ले लेगा तो वह स्पेन बस्तियों से रहित स्पैन होगा। फ्रांस को स्पेन की बस्तियों सहित स्पेन नहीं मिल सकेगा।' उसने दक्षिणी अमेरिका में स्पेन की बस्तियों की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया।

उसके इस एक ही वार ने एक साथ कई काम कर दिखाए। इससे अंग्रेजी व्यापार की रक्षा हो गई विद्रोह के लिए हर समय तयार रहने वाली बस्तियों को फ्रांस के आक्रमण का खतरा न रहा और होली एलायंस के आधारभूत सिद्धान्तों की अवहेलना कर उनकी समाप्ति कर दी गई। हाऊस ऑफ कॉमन्स मे उसने अपने काय की डींग मारते हुए कहा कि पुराना अव्यवस्था के बलस का पूरा करने के लिए मैने संसार में एक नई व्यवस्था स्थापित कर दी है। परन्तु यह दावा उचित नहीं कहा जा सकता यद्यपि स्पेन की बस्तियों को स्वतंत्रता मिल चुकी थी तो भी मित्र दलों द्वारा उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप किये जाने से उनका बचाव अभी तक अंग्रेजों की जल शक्ति के कारण हो रहा था। अंग्रेजों की सामुद्रिक शक्ति के डर से फ्रांस स्पेन के अतिरिक्त अन्य कोई अपने हस्तक्षेप के यत्न करने का साहस नहीं कर सकता था। इस प्रकार स्पेन की बस्तियों की स्वतंत्रता की रक्षा अंग्रेजों की धमनियों के जोर पर ही हो रही थी।

कनिंग की पुरानी दुनिया के संतुलन का पुनः वापिस लौटाने के लिए एक नए संसार के निर्माण करने की नीति किसी आकस्मिक भावावेश का परिणाम न थी यह एक सोच विचार के पश्चात् निश्चित की गई चिरकाल से उसके द्वारा साधी जाती हुई और बड़ी सख्ती से क्रियात्मक रूप दी जाने वाली नीति थी। १७१९ ई० में पिट और एन्ड को बता चुका था कि स्पेनिश अमरिका का उद्धार एक ऐसा विषय था जो इंगलैंड के प्रत्येक मंत्री का ध्यान आकृष्ट करेगा। १८०८ ई० मे दक्षिणी अमरिका में इंगलैंड की सुरक्षा (British Protection) में स्पेन की बस्तियों के आ जाने का विचार कनिंग और कसलरे दोनों के दिमाग में ही विद्यमान था। कनिंग के विदेश-मन्त्री बनने के दिन से लेकर जब तक यह काय पूरा नहीं कर लिया गया उस दिन तक कनिंग का ध्यान इसी विचार ने अपनी ओर लगाये रखा। १८२२ ई० में कनिंग ने ड्यूक ऑफ वलिंगटन को जो विआना की कांग्रेस में इंगलैंड का प्रतिनिधित्व कर रहा था इस प्रकार लिखा "दिन प्रति दिन मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि प्रायद्वीप का और अपने देश की आज की अवस्था में हमारे लिए यूरोप में सम्बन्धित प्रश्नों की अपेक्षा अमेरिका से सम्बन्धित प्रश्न कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। और यदि हम यत्न करके उन्हें अपने लाभ के अनुसार ठीक समय पर हल नहीं कर लेते तो हम एक ऐसे अवसर के हाथों से निकल जाने का पछतावा पड़ेगा जो कभी भी पुनः लौटाया नहीं जा सकता।"

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्पेन को अपनी बस्तियां [illegible] शासन प्रदान करने में कनिंग को कठिनाई का सामना करना पड़ चुका था। १८१७ ई० में फ्लोरिडा (Florida) का प्रदेश स्पेन ने त्याग कर अमरिका को दे दिया परन्तु इससे पश्चात् भी स्पेन न सुधरा। दक्षिण अमरिका में अराजकता थी और अंग्रेज सौदागरों को उनके जहाजों पर आक्रमण किए जाने के कारण बहुत कष्ट उठाने पड़े। इंगलैंड इन कष्टों और नुकसान के बदले हर्जाना प्राप्त करने में असफल रहा।

१८२३ ई० में कैनिंग ने अंग्रेजी व्यापार की रक्षा के लिए स्पेन की बस्तियों में कौन्सल (Consul) नियुक्त किये। अंग्रेजी सरकार ने फ्रांस को यह स्पष्ट कर दिया था कि इंग्लैंड स्पेन के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति को स्पेनिश बस्तियों को दुबारा जीतने की इजाजत नहीं देगा। इंग्लैंड की सरकार यह भी जानती थी कि अकेला स्पेन इन बस्तियों को नहीं जीत सकता। १ जनवरी, १८२५ ई० को अन्य शक्तियों को सूचना दे दी गई कि इंग्लैंड ने बुएनस एयरज (Buenos Airs) कोलम्बिया और मैक्सिको के राज्यों की सरकारों की सत्ता स्वीकार कर ली है। अन्य राष्ट्रों ने इंग्लैंड के इस कार्य के विरुद्ध आवाज उठाई परन्तु क्रियात्मक रूप में वह कुछ भी नहीं कर सकते थे। यूरोप के बड़े बड़े राष्ट्रों की नाराजगी के बावजूद भी कनिंग अपनी इस नीति पर चलता रहा।

अमेरिका के रूप में कनिंग को एक बड़ा शक्तिशाली मित्र राष्ट्र प्राप्त हुआ। दिसम्बर, १८२३ ई० में प्रेसिडेण्ट मुनरो ने प्रसिद्ध मुनरो सिद्धान्त (*Monroe Doctrine*) की घोषणा की। उसने घोषित किया कि यूरोप के बड़े-बड़े राष्ट्रों के द्वारा स्पेनिश अमेरिकन राज्यों को (Spanish American States), जो अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर चुके हैं दबाने या इनके भाग्य को निश्चित करने के उद्देश्य से किया जाने वाला किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप अमेरिका की शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरनाक होगा और अमेरिका के प्रति शत्रुता की भावना का प्रदर्शन समझा जाएगा। कनिंग ने १८२४ ई० में इस प्रकार लिखा 'मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रेसिडेण्ट की दक्षिणी अमेरिका के राज्यों के प्रति ऐसी घोषणा करने में हमारी भावनाओं की जानकारी द्वारा प्रोत्साहन मिला होगा। हमारे यंकी (Yankee) सहयोगियों की इस महान् उदारता का ऐक्स-ला-चैपल के कानूनों व घोर अत्याचारों पर जो प्रभाव पड़ा है उससे हमें ठीक वही सतुलन प्राप्त हो गया है जो मैं चाहता था।" अगले वर्ष उसने फिर लिखा 'काम हो चुका है। यह एक ऐसा काम है जो इस संसार में इतना भारी परिवर्तन लायेगा जितना परिवर्तन अब स्वतन्त्र होने वाले कान्टीनैण्ट की खोज (Discovery) होने पर हुआ था। मित्र राष्ट्र कुढ़ेंगे परन्तु अब वह इस दिशा में कोई गम्भीर पग उठाने का साहस नहीं करेंगे। फ्रांस भूल जाएगा परन्तु वह दक्षिणी अमेरिका में शीघ्र अति शीघ्र हमारा अनुकरण करने की दृष्टि से भूलेगा।' इंग्लैंड और अमेरिका का यह पग निर्णयकारी पग था। १८३० ई० तक दक्षिणी अमेरिका में स्पेन का साम्राज्य समाप्त हो चुका था और परिणामस्वरूप मैक्सिको, ग्वाटेमाला, कोलम्बिया, पीरू चाईल, बोलीविया, पैराग्वे, रियो डी ला प्लाटा और बुएनस एयरज नाम के स्वतन्त्र गणराज्य स्थापित हुए।

पुर्तगाल (Portugal)—पुर्तगाल के मामले में कनिंग को भारी कदम उठाना पड़ा। उसने यह स्पष्ट कर दिया कि इंग्लैंड किसी भी दशा में पुर्तगाल में निरंकुश शासनपद्धति के विचारों (Reactionary Forces) का प्रचार नहीं सहन करेगा। उसने फ्रांस से जबरदस्ती यह घोषणा करवा दी कि वह स्पेन में निरंकुश राजतन्त्र के हक में किये जा रहे प्रतिक्रियावादी आन्दोलन को दी जाने वाली सहायता को

पुर्तगाल तक नहीं फैलाएगा। उसने पुर्तगाल के राजा को ब्राजील की स्वतन्त्रता मानने के लिए भी मनवा लिया। १८२६ ई० में पुर्तगाल के राजा की मृत्यु हो गई। ब्राजील पर अधिकार छोड़ने की इच्छा न होने के कारण डोन पेड्रो (Don Pedro) ने पुर्तगाल के लोगों के सम्मुख देने के लिए एक संविधान (Constitution) उपस्थित किया। स्पेन के राजा फर्डिनण्ड सप्तम ने तत्कालीन शासन व्यवस्था को पलटने के लिए पुर्तगाल में षडयन्त्र रचने आरम्भ किये। पुर्तगाल की सरकार ने इंगलैंड से सहायता के लिये अपील की। सहायता के लिए की गई अपील के इंग्लैंड पहुँचते ही चार दिनों के अन्दर अन्दर अंग्रेजी सैनिक दस्ते पुर्तगाल पहुँच गये। इस प्रकार अंग्रेजी सेना की सहायता से पुर्तगाल के संविधान की रक्षा की गई। पार्लियामेण्ट में अपने द्वारा उठाये गये इस कदम का वर्णन करते समय कैनिंग ने शानदार भाषण किया जिसमें उसने घोषणा की कि हम पुर्तगाल पर शासन करने के लिए या उससे कुछ विशेष शर्तें मनवाने के लिये या उसके सम्मुख संविधान रखने के लिए नहीं अपितु एक मित्र राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जा रहे हैं। हम लिज़बन की ऊँची चट्टानों पर इंग्लैंड की धाक जमाने जा रहे हैं और जहाँ कहीं भी यह जमा दी जाएगी वहाँ विदेशी शासन असम्भव हो जाएगा।

ग्रीक का स्वतन्त्रता-युद्ध (Greek War of Independence)—ग्रीक के स्वतन्त्रता युद्ध में भी कैनिंग ने एक भारी कदम उठाया। वह तुर्की के द्वारा ग्रीक के निवासियों पर अत्याचार अधिक देर तक सहने के लिए तैयार नहीं था। इस मामले में हस्तक्षेप करने से केवल इंगलैंड का एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में ही नहीं अपितु होली एलायंस को तोड़ने में सफलता मिली। लेवण्ट (Levant) के साथ अंग्रेजी व्यापार को आक्रमण से बचाने के लिए उसने १८२३ ई० में ग्रीस को युद्ध की दृष्टि से एक स्वतन्त्र राज्य मान लिया। १८२७ ई० में उसने रूस और फ्रांस के साथ लन्दन की सन्धि (Treaty of London) की। इस सन्धि का उद्देश्य ग्रीस की स्वतन्त्रता की रक्षा करना था। लन्दन की यह सन्धि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। इसने बड़ा भारी काम कर दिखाया। इसने आस्ट्रिया को अन्य राष्ट्रों से अलग कर दिया। अब वह अकेला रह गया। साथ-ही-साथ उसने होली एलायंस में भी फूट डाल दी। रूस को इंगलैंड के साथ मिलाकर कैनिंग ने रूस के पूर्वी मेडाटिरेनियन में अपनी साम्राज्य बनाने की महत्त्वाकांक्षाओं को समाप्त कर दिया। एक नए स्वतन्त्र ग्रीक साम्राज्य की स्थापना भी अंग्रेजी व्यापार के लिए लाभकारी सिद्ध होनी निश्चित थी। ग्रीक के मामले में अपनाई जा रही नीति में कैनिंग को फ्रांस और इंगलैंड में लोगों का समर्थन करने वाले धारणा में भी सहायता मिल रही थी। यह सच है कि उसके उत्तराधिकारी वेलिंगटन ने तुर्की के साथ मिलकर और उसके साथ थोड़ी देर के लिए सन्धि करके कैनिंग के किये कराए को नष्ट करने का यत्न किया। परन्तु फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि लन्दन की इस सन्धि से ग्रीक की स्वतन्त्रता सुरक्षित हो गई। उसकी मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात् अक्तूबर १८२७ ई० में रूस, फ्रांस और इंगलैंड के सामूहिक जल-बेड़ा ने नवारिनो की खाड़ी

(Bay of Navarino) में तुर्की और मिस्र के जहाजी बेड़ा को नष्ट कर दिया। यद्यपि इन सब घटनाओं से मारा लाभ रूस ने ही प्राप्त किया तो भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कैनिंग की ग्रीक के प्रति अपनाई गई नीति सफल सिद्ध हुई।

विदेश मन्त्री का पद ग्रहण करने के बाद पांच वर्षों के अन्दर अन्दर ही कैनिंग ने इंग्लैण्ड को उस मार्ग पर ला कर खड़ा कर दिया जिस पर वह अगले पचास वर्षों तक चलता रहा। उसने इंग्लैण्ड के हितों की रक्षा की और विदेशों में उदार और वैधानिक आन्दोलनों को प्रोत्साहन दिया। उसने यूरोप और समुद्र पार अन्य देशों में नागरिक तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के विकास में वैधानिक शासन-पद्धति के विरोधी राष्ट्रों के हस्तक्षेप को रोका। बड़े-बड़े मामलों को अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से सुलझाने की प्रथा का अन्त हो गया। कैनिंग को इस बात का गर्व था कि उसने होली एलॉयंस को छिन्न भिन्न कर दिया है। उसके बताए हुए मार्ग पर चलता हुआ इंग्लैण्ड फिर से मनमानी करने की स्वतन्त्रता को पाने में समर्थ हो गया। अब वह यूरोप के राजनैतिक झगड़ों में जिस समय चाहे, जहां पर जिस किसी ढंग में हस्तक्षेप कर सकता था। अब उसे यूरोप के देशों के हाथ में उनके अपने लाभ के लिए अपने कठपुतली बनाए जाने का भय नहीं रहा था। अपनी इस नीति में कैनिंग को इंग्लैण्ड की जनता का सहयोग प्राप्त था। वह विदेश-नीति में राष्ट्रीय एकता के महत्त्व को समझता था। उसकी इच्छा थी कि इंग्लैण्ड के सारे नागरिक उसके साथ हों जिससे विदेशी सरकारों को पता हो कि वह सारे इंग्लैण्ड की ओर से बोलता है और इंग्लैण्ड की सारी शक्ति, सब साधन उसके लिए खुले पड़े हैं और वह उन सब का प्रयोग कर सकता है। उसके भाषणों और संस्था ने जनता को विदेश-नीति निश्चित करने के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देने के साधन प्रदान किये। टेम्परले के शब्दों में हम यह सकते हैं कि कैनिंग का विचार था कि यह आवश्यक है कि भविष्य में विदेशी-नीति लोकप्रिय और सरलता से समझ में आ सकने वाली हो। परन्तु कैनिंग ने जनता को इस विदेश-नीति निश्चित करवाने की छूट न दी। उसने विदेश-नीति का निरूपण बनाए बिना उसे लोकप्रिय बनाया। वह जनता के सामने केवल उतनी ही बात पेश करता जितनी कि उसका समर्थन पाने के लिए आवश्यक होती थी क्योंकि जनता का की ओर उसका कोई विशेष झुकाव नहीं था। इतना होने पर भी निरंकुश राजतन्त्र शासन-पद्धति द्वारा शासित किय जा रहे राष्ट्रों में उसकी इस नीति को क्रान्तिकारी नीति का नाम दिया गया।

सेसिल (Cecil) के शब्दों में कैनिंग के राजनैतिक विचार सम्मतियों का एक अच्छी प्रकार से इकट्ठा किया गया संग्रह था। इसका कुछ गिने-चुने वाक्यों में वर्णन किया जा सकता है। उसके सब विचारों के मूल में यह विचार था कि राजनीति के ज्ञान की इकाई राष्ट्र है। यहाँ तक उसे सब कुछ स्पष्ट था। इसके आगे जाने का उसने यत्न ही नहीं किया। हम देखते हैं कि उसने कैसलरे के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विचारों को अपनाया। हम उसे केवल होली एलॉयंस के विरुद्ध ही नहीं

अपितु कन्सर्ट ऑफ यूरोप, राष्ट्रों की कांग्रेस के अधिवेशनों और कार्यसंघ का विरोध करते देखते हैं। उसने प्रत्येक राष्ट्र को अपने कामों की ओर ध्यान देने और अन्य राष्ट्रों को ईश्वर के सहारे छोड़ने के लिए कहा। उसने अपने भाषणों में शक्ति के सतुलन (Balance of Power) के विचार को बड़ी महत्ता दी। उसने स्वार्थों, गुटों और सिद्धान्तों के परस्पर संघर्ष को एक स्वाभाविक वस्तु माना और अपनी विदेश नीति का इसी विश्वास पर आधारित किया। कसलरे ने एक बार कहा 'कि कुछ वर्ष पहले मैंने कहा था कि केवल अन्य देशों के पारस्परिक झगड़ों में ही नहीं अपितु विरोधी सिद्धान्तों के संघर्ष में भी यह देश उदासीन और निष्पक्ष रहेगा और इस उदासीनता की नीति पर चलकर ही यह शक्ति के उस सतुलन को जिसे मैं मानवता के अस्तित्व और उसकी भलाई के लिए अनिवार्य समझता हूँ रक्षा कर सकेगा। कनिंग भी यह मानता था कि हमारे लिये यह अच्छा है और इससे हमें आराम भी रहेगा कि हमारे पड़ोसी राष्ट्रों के रीति रिवाज और प्रथाएं व व्यवस्थायें ऐसी हों जिनका हमारी व्यवस्थाओं से मुकाबला न किया जा सके। कनिंग भी नैतिकता का विरोधी नहीं था। उसका सन्धियों में और सन्धि की शर्तों को पूरा करने में बड़ा विश्वास था। उसे शान्ति और न्याय पसन्द थे। समाज के अदृश्य आधारों में उसका कोई विशेष विश्वास नहीं था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्त समान रूप से सब की भलाई करने के आन्दोलन को क्रियात्मक रूप देने के लिए आवश्यक ऐसा करने की सामूहिक रूप से सब की इच्छा की भी उसे विशेष परवाह नहीं थी।

कनिंग की सहानुभूति भी समाज के उसी वर्ग के साथ थी जो वर्ग देश की रीढ़ की हड्डी का काम देता था। उसमें क्रियात्मक रूप से कार्य करने की योग्यता, आत्मविश्वास वास्तविक परिस्थितियों को भाँपने की योग्यता और भौतिकवादी दृष्टिकोण था। इन्हीं विशेषताओं की सहायता से वह विक्टोरिया के शासनकाल के मध्य भाग में इंगलैण्ड को राजनैतिक और व्यापारिक दृष्टि से इतना उन्नत कर सका। उसमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने के लिये आवश्यक नम्रता यूरोप को सगठित करने की इच्छा और शान्तिप्रिय स्वभाव की कमी थी। प्रतिस्पर्धा करने वाले लड़ाकू तथा उद्दण्ड कनिंग ने अंग्रेजी विदेश-नीति के लिए मार्ग विस्तृत कर दिया जिस पर बाद में आगे चल कर पामर्स्टन ने सब से आगे ऊंचा करके चलना था। लार्ड एक्टन के शब्दों में इंगलैण्ड का कोई भी विदेश-मन्त्री कनिंग के मुकाबले का नहीं था। परन्तु दूसरी ओर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो उसकी इतनी अधिक प्रशंसा नहीं करते परंतु वे भी उसके गुणों और भिन्न भिन्न क्षेत्रों में पाई गई सफलताओं की सराहना करते हैं।

Suggested Readings

Webster	: *Castlereagh*
Marriott	*Castlereagh*
Stewart	*Memoirs of Castlereagh*
Temperley	*Canning*
Hill F H	*George Canning*

Cambridge Theory of British Foreign Policy Vol II Chapter I

अध्याय १२

यूरोप का संघ (१८१५-२२)

(Concert of Europe, 1815-22)

१७९१ में आस्ट्रिया के चान्सलर कानिटज ने यूरोप-संघ के प्रस्ताव को प्रस्तुत किया और इस प्रस्ताव की पूर्ति मार्च, १८१४ की च्योमाण्ट की संधि द्वारा हुई। यह संधि ब्रिटेन, रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया में हुई। इन्ही चार शक्तियों ने वियाना सम्मेलन में 'यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था को पुनर्जीवित' करने का प्रयत्न किया था। वियाना-सम्मेलन में प्रतिक्रियावादी तत्वों की विजय हुई और यथासम्भव क्रान्ति से पहले की स्थिति की स्थापना हुई। किन्तु क्रान्ति का इतना अधिक भय था कि यूरोप की शक्तियाँ उस समय तक सन्तुष्ट नहीं हो सकती थी जब तक वियाना-व्यवस्था को स्थायी बनाने के साधन उनके पास इकट्ठे न हो जाते। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ब्रिटेन, आस्ट्रिया, प्रशिया और रूस ने नवम्बर १८१५ में एक चतुर्मुखी सन्धि की जिसमें फ्रांस के साथ किये गये प्रतिज्ञा-पत्रों की शर्तों की रक्षा हो तथा संसार के हित के लिए इन चार शक्तियों में पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ बने रहें। इन शक्तियों ने यह भी निर्णय किया कि इन देशों के सम्राट अथवा इनके मन्त्री समय-समय पर विचार विमर्श के लिए मिला करेंगे। इनकी बैठकों में परस्पर हित की प्रमुख समस्याओं तथा राष्ट्रों और सारे यूरोप में शान्ति और उन्नति के लिए सर्वश्रेष्ठ तरीकों पर विचार होता था। इस प्रकार यूरोप-संघ की स्थापना हुई। सम्मेलनों द्वारा कूटनीति की यह परिपाटी उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे अनोखा प्रयोग था। इस चतुर्मुखी सन्धि के बाद के काल को 'सम्मेलनों का काल' (Era of Congresses) कहा जाता है। यूरोप संघ के सदस्य बहुत बार भिन्न भिन्न स्थानों पर मिलते रहे और सामूहिक रूप से विचारणीय समस्याओं पर विचार करते रहे। इन सम्मेलनों में मेटरनिक का व्यक्तित्व छाया रहता। इसके नेतृत्व और पथ निर्देशन द्वारा चतुर्मुखी सन्धि में इन शक्तियों की तानाशाही स्थापित हुई। किन्तु एक्स ला चेपल में १८१८ में, १८२० में ट्रोप्पू में १८२१ में लॉयबक में तथा १८२२ में वेरोना में, चार सम्मेलनों के पश्चात् १८२३ में यह संघ समाप्त हो गया।

ऐक्स-ला-चेपल का सम्मेलन (Congress of Aix La Chapelle) (१८१८)—प्रथम सम्मेलन १८१८ में ऐक्स-ला चेपल नामक स्थान पर हुआ, जहाँ पर कभी नैपोलियन ने यूरोप के हित के लिए अपनी योजना रखी थी। इस सम्मेलन के विषय

था। मटरनिख ने कहा था 'मैंने इससे सुन्दर छोटा-सा सम्मेलन कभी नहीं देखा।' यह सम्मेलन संगठित राष्ट्रों द्वारा यूरोप भर में देशों पर अपना नियन्त्रण रखने का उत्तम प्रयास था। यह सम्मेलन यूरोप की सर्वोच्च सभा मान ली गई और इस सभा के सामने सभी समस्याएँ सुननी पड़ती थीं।

इस सम्मेलन के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या फ्रांस की थी किन्तु सौभाग्य से इस प्रश्न पर समझौता हो गया। क्योंकि फ्रांस युद्ध-क्षति की पूर्ति कर चुका था। यह निश्चय हुआ कि फ्रांस देश से संगठित राष्ट्रों की अधिकांश रक्षक सेनाओं को हटा लिया जाय और फ्रांस को यूरोप-संघ में सम्मिलित किया जाय। इस प्रकार यह चतुर्मुखी सन्धि पंचमुखी सन्धि बन गई। फ्रांस को पंचमुखी संगठन में सम्मिलित करने की शर्तों के विषय में एक ओर रूस तथा दूसरी ओर ब्रिटेन और आस्ट्रिया के विचारों में मतभेद था। रूस का प्रस्ताव था कि पवित्र गठबन्धन के सिद्धान्त को माना जाय किन्तु इंगलैंड और आस्ट्रिया का मत था कि फ्रांस को चारों देशों से प्रतिज्ञा-सन्धि करनी चाहिए और अन्त में यही हुआ। चतुर्मुखी सन्धि को पृथक रूप से पुनः दोहराया गया जिससे फ्रांस की ओर से कोई गड़बड़ न हो। जार एलेग्जेण्डर को प्रसन्न करने की इच्छा से इस गठबन्धन के उद्देश्य की बड़े सुन्दर शब्दों में घोषणा की गई। इस घोषणा में कहा गया कि यह सन्धि जनता के अधिकारों, शांति और ललित कलाओं की सुरक्षा, राष्ट्र की उन्नति की प्रगति, धर्म और सदाचार के नियमों को प्रोत्साहन देने तथा न्याय और सहयोग का आदर्श स्थापित करने के उद्देश्य से की गई है।

इस सम्मेलन ने स्वीडन के राजा से नार्वे और डेनमार्क के साथ सन्धि शर्तों का उल्लंघन करने के विषय में सफाई माँगी। मोनाको के शासन से शासन प्रणाली को सुधारने के लिए कहा गया। हैसे (Hesse) के निर्वाचित प्रमुख ने याचना की कि उसे राजा की उपाधि धारण करने की अनुमति दी जाय किन्तु उसकी याचिका अस्वीकार कर दी गई। सम्मेलन ने बाडिन की डची (Duchy of Baden) के विवादग्रस्त उत्तराधिकारी के प्रश्न पर विचार किया। आस्ट्रिया और रूस में यहूदी नागरिकों की स्थिति पर भी विचार किया गया।

ऐक्स-ला चेपल की उपरोक्त सफलताओं के होने पर भी सदस्य राष्ट्रों में मतभेद हो गये और ये मतभेद कालान्तर में बढ़ते ही गये। ये मतभेद निजी स्वार्थ और परस्पर ईर्ष्या के कारण हुए।

[illegible] ी अमेरिका में स्पेन के विद्रोही उपनिवेशों के प्रश्न के विषय में वहाँ फ्रांस [illegible] समय ही इंगलैंड और इन [illegible] ेशों में बहुत-सा व्यापार हो रहा था [illegible] ने इन उपनिवेशों में [illegible] लगा रखा था इंगलैंड क [illegible] किसी भी प्रस्ताव [illegible] इन उपनिवेशों को स्पेन को वापिस [illegible] और स्पेन [illegible] करने का हो तब तक मानने से [illegible] तक ब्रिटेन के [illegible] का आश्वासन नहीं जाता।

दासों के व्यापार को रोकने के विषय में ब्रिटेन ने यह सुझाव दिया कि सदस्य राष्ट्रों को एक-दूसरे के जहाजों की तलाशी लेने का अधिकार हो। इस सुझाव को इसलिए नहीं माना गया क्योंकि ब्रिटेन के बढ़े की शक्ति से सब राष्ट्र ईर्ष्या करते थे। कोई भी देश अपने व्यापार में ब्रिटेन का हस्तक्षेप सहन करने के लिए प्रस्तुत नहीं था। परिणामतः दासता के विरुद्ध कोई भी प्रभावशाली कदम नहीं उठाया जा सका।

बर्बर समुद्री लुटेरों की गतिविधि पर रोक लगाने के लिए रूस ने सुझाव दिया कि विभिन्न शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक अन्तर्राष्ट्रीय बेड़ा भूमध्यसागर में रखा जाय। ब्रिटेन ने इस सुझाव को नहीं माना। वह भूमध्यसागर में रूस के बेड़े की स्थिति नहीं चाहता था। क्योंकि बर्बर लुटेरे यूनियन जैक का सम्मान करते थे, इसलिए उनके हित सुरक्षित थे। परिणामतः बर्बर समुद्री लुटेरों का आतंक बना रहा।

कहा जाता है कि ऐक्स-ला-चैपल का वास्तविक महत्त्व बड़ा गहरा था। पहली बार ब्रिटेन को यूरोप-संघ के सदस्यों की इच्छा का ज्ञान हुआ। इस अवसर पर ज़ार एलेक्ज़ेण्डर ने प्रस्ताव रखा कि उपस्थित शक्तियाँ को एक विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर करने चाहिएँ कि वे विभिन्न राष्ट्रों की वर्तमान सीमाओं तथा राजाओं की सर्वाधिकार सम्पन्नता को मान्यता अक्षुण्ण रखेंगे। क्योंकि यह प्रस्ताव मैटरनिक के विचारों से मिलता था अतः आस्ट्रिया ने इसे मान लिया। प्रशिया ने भी इसका अनुकरण किया। यह सत्य है कि यदि सार्वभौमिक रूप से तत्कालीन स्थिति को मान्यता प्रदान कर दी जाती तो यूरोप में राष्ट्रीयता, प्रगतिवाद और विधानवाद को क्रमशः समाप्त कर दिया जाता। यह विज्ञप्ति यूरोप की प्रगतिशील शक्तियों के विरुद्ध एक धार्मिक युद्ध घोषणा होती और विश्व में उनके प्रभुत्व के लिए घातक सिद्ध होती। इटली और जर्मनी का संगठन नहीं हो पाता। बेल्जियम को हालैण्ड से अलग करना असम्भव होता। नार्वे और स्वीडन इकट्ठे बने रहते। ग्रीस रूमानिया बलगेरिया और सर्बिया को स्वतन्त्रता न मिलती। पोलैण्ड अनन्त काल तक विदेशी दासता में न रहता। यूरोप में स्वतन्त्रता और सर्वाधिकार के मूल्य पर शांति की स्थापना होती।

इस योजना को असफल करने का श्रेय ब्रिटेन को है जिसने रूस के इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। प्रश्न यह था कि क्या राष्ट्रों को किसी देश में केवल वर्तमान व्यवस्था के परिवर्तित हो जाने के कारण ही उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है अथवा नहीं? यूरोप-संघ का दिखावटी रूप से कुछ भी उद्देश्य रहा हो, इसका वास्तविक उद्देश्य यूरोप के देशों के, आन्तरिक और विदेशी सब मामलों में हस्तक्षेप करना था। ब्रिटेन इस नीति का विरोधी था और अन्य राष्ट्रों की योजनाओं के विरुद्ध कार्य किया करता था। ब्रिटेन किसी भी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण को सहन करने के पक्ष में नहीं था। किन्तु किसी भी देश में आपत्तिकालीन स्थिति में हस्तक्षेप करने के प्रश्न पर विचार करने को तैयार अवश्य था। ब्रिटेन ने संगठित राष्ट्रों की सम्मिलित सेना की वर्तमान व्यवस्था को बनाये

रखने के प्रस्ताव को भी नहीं माना। बाह्य रूप से उसका ध्येय वैसा ही प्रतीत क्यों न हो, उसका वास्तविक ध्येय यूरोप के राजाओं के आन्तरिक और बाह्य मामला नियन्त्रण रखना था। कैसलरे के शब्दों में "इस संगठन को संसार के शासनों का संगठन बनाने का उद्देश्य कभी नहीं था या। न्याय देना व आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का उद्देश्य भी नहीं था। इसका उद्देश्य यूरोप के प्रत्येक कोने में क्रान्तिकारी आन्दोलनों का, बिना उनके गुणावगुणों को जाने दमन करना भी नहीं था।

किसिंगर का विचार है कि यद्यपि ऐक्स-ला-चेपल की कांग्रेस में बाह्य मधुरता दीख पड़ी किन्तु विभिन्न प्रेरणाओं की प्रतिकूलता भी प्रगट हो रही थी। फ्रांस के शक्तियों के संघ में मिल जाने के बाद राजनीतिक संघर्ष अन्तिम रूप से समाप्त हुआ और इसी के साथ वह उद्देश्य भी जाता रहा जो महाद्वीप के विषयों में ब्रिटिश हस्तक्षेप को आभ्यन्तरिक रूप से स्वीकरणीय कर सकता। चूंकि ब्रिटिश लोगों ने इसकी प्रतिज्ञाओं को अधिकता के साथ फांस लिया एवं गत्ते चक्र की चाल शुरू हो गई। ब्रिटेन की एकान्तवादी प्रवृत्तियाँ जितनी अधिक दृढ़ हुई उतना ही आस्ट्रिया की भौतिक हीनताओं से प्रभावित मेटरनिक को जार के रोकने के सबसे अधिक प्रभावशाली यन्त्र के प्रयोग करने पर विश्वास हो गया। उसने जार के नैतिक उत्साह की प्रशंसा की किन्तु उसने जार की महानता की जितनी अधिक चापलूसी की, उतना ही कैसलरे को किसी संयुक्त कार्यवाही में भाग लेना कठिन हो गया। ज्यों ही एक्स-ला-चेपल की कांग्रेस का अन्त हुआ दोनों ही उसे पुतला बनाने के इच्छुक हो गए—मेटरनिक क्योंकि उसकी रूस के प्रति सौदेबाजी की स्थिति ब्रिटिश विकल्प के निराकरण पर निर्भर थी और कैसलरे अपने यूरोपीय दृष्टिकोण के कारण जिसके विषय में उसे यह अब भी आशा थी कि वह उस महाद्वीप की मूढ़ता और उसके लिए उसके मित्रों की सुरक्षा की तुच्छ खोज के विरुद्ध भी चला सकेगा। फिर भी उसने यह जान लिया होगा कि स्वप्नों का समय पूरा हो रहा था क्योंकि इस समय मैटरनिक एक ऐसे कार्य में व्यस्त था जिसने इस बारे में बहुत थोड़ा सन्देह रखा कि अगला युद्ध उस मैदान में होगा जहाँ कैसलरे चाहे उसकी व्यक्तिगत सहानुभूतियाँ कुछ भी हों उसका पीछा नहीं कर सकता। उसने प्रशा के राजा के सामने दो स्मरणपत्र रखे जिनमें उसने उसे अपने राज्य के प्रशासकीय ढाँचे के विषय में राय दी व अपनी वह अयोग्यता प्रगट की कि उस प्रतिज्ञा को पूरा नहीं किया जा सकता जो उसने १८१३ के उत्तेजनाशील दिनों में की थी कि वह अपनी प्रजा को एक संविधान की स्वीकृति दिलायेगा। मेटरनिक के प्रथम प्रयोजन की अपेक्षा उसके प्रयोग किए हुए निश्चित तर्क अधिक रोचक नहीं हैं जिन्होंने उसकी यह नियत स्पष्ट की कि वह यूरोप के रूढ़िवादी अन्तःकरण के अनुकूल कार्य करना चाहता है। (A World Restored pp 230 31)

ट्रोपू सम्मेलन (Congress of Troppau) (१८२०)—द्वितीय सम्मेलन १८२० में ट्रोपू के स्थान पर हुआ। नेपल्स स्पेन और पुर्तगाल में विद्रोह हुए और जनता ने अपने राजाओं को उदार संविधान देने का विवश कर दिया। शक्तिशाली

राष्ट्रों ने विद्रोहों की निंदा की किन्तु इस परिस्थिति को निपटाने के लिए क्या किया जाय, इस विषय में मत भेद था। रूस ने स्पेन के राजा को विद्रोह का दमन करने के लिए सेना देने को कहा। किन्तु मेटरनिक ने उसे रोक दिया क्योंकि क्रान्ति के प्रति घृणा होने के साथ उसे रूस की यश प्राप्तियों का डर भी था। नेपल्स अन्य मामलों से अधिक महत्त्वपूर्ण समझा गया परिणामतः इस क्रान्ति पर ही ट्रोप्पू में आये हुए कूटनीतिज्ञों का ध्यान लगा रहा। सब ने यह माना कि इटली में आस्ट्रिया का स्वार्थ अधिक है इसलिए उसे नेपल्स की क्रान्ति का दमन करने की अनुमति दे दी जाय। कैसलरे के विचार से आस्ट्रिया नेपल्स में दो कारणों से हस्तक्षेप कर सकता था। इस क्रान्ति से लाम्बार्डी और विनीशिया की सुरक्षा का भय था और ये दोनों ही आस्ट्रिया के साम्राज्य में थे। यही अवस्था परमा, मोडिना और टुस्कनी की थी जहाँ हैप्सबर्ग वंश के सदस्य शासन कर रहे थे। पुनश्च, नेपल्स और आस्ट्रिया के राजाओं में एक संधि हुई थी जिसके कारण आस्ट्रिया नेपल्स की सहायता के लिए वचनबद्ध था।

मेटरनिक केवल आस्ट्रिया और इटली के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप करने के अधिकार से ही सन्तुष्ट नहीं था, कानूनी आधार के अतिरिक्त वह हस्तक्षेप के लिए न्याय के आधार की आवश्यकता चाहता था। ब्रिटेन का विदेश मन्त्री कैसलरे इसके लिए तैयार नहीं था। उसकी धारणा थी कि कोई भी देश किसी अन्य देश के आंतरिक मामले में केवल किसी संधि के आधार पर ही हस्तक्षेप कर सकता है। पुनश्च, नेपल्स का विद्रोह ब्रिटेन के क्षेत्र के बाहर था इसलिए ब्रिटेन द्वारा हस्तक्षेप करने में कोई न्याययुक्ति नहीं थी। कैसलरे यह मानने के लिए तैयार नहीं था कि जनता द्वारा किये गए सारे विद्रोह या आन्दोलन यूरोप के सर्वसाधारण कानून के विपरीत हैं।

मैटरनिक का रूस और प्रशिया ने समर्थन किया। ट्रोप्पू के सम्मेलन में जार एलग्जेण्डर ने स्वयं को मेटरनिक का अनुयायी बताया। मेटरनिक पहले रूस की चालों से सदैव भय खाता था, क्योंकि यूरोप भर में रूस के गुप्तचर फैले हुए क्रान्तिकारी आन्दोलनों को प्रोत्साहन दिया करते थे। जार के विचार-परिवर्तन से मेटरनिक को बड़ी शान्ति मिली। एलग्जेण्डर में यह परिवर्तन कोट्जब्यु की हत्या तथा पिट्रोग्रेड में शाही अंगरक्षकों के विद्रोह के कारण हुआ। जार एलग्जेण्डर ने मैटरनिक से बातचीत करते हुए कहा "राजकुमार! अब हम एक हैं और इसका श्रेय भी तुम्हें ही है। मुझे समय नष्ट करने से घृणा है तथा जो हो चुका उसे सँभालना चाहिए। मैं यहाँ बिना किसी निश्चय अथवा योजना के आया हूँ किन्तु मैं तुम्हें अपरिवर्तनशील और दृढ़ आश्वासन दे सकता हूँ। मैं यह बात तुम्हारे सम्राट पर छोड़ता हूँ कि वह इस जिस प्रकार चाहे प्रमाण में लावे। तुम कहो कि क्या चाहते हो? अथवा मुझे जो कुछ करने को कहोगे मैं अवश्य पूरा करूँगा।' परिणाम यह हुआ कि पंचमुखी-संगठन दो गुटों में बँट गया एक ओर रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया की प्रतिक्रियावादी सरकारें थीं और दूसरी ओर ब्रिटेन और फ्रांस थे।

लिया। ब्रिटेन अन्य देशों के रंग ढंग को पसन्द न कर सका और इस संगठन से अलग हो गया। सम्मेलन-युग ब्रिटेन के अलग होते ही समाप्त हो गया था। ब्रिटिश सरकार की नीति उस गुप्त पत्र में स्पष्ट हो जाती है जो कैनिंग ने १८२२ में विरोना स्थित अपने राजदूत को लिखा— "इंग्लैण्ड किसी भी प्रकार से स्वतन्त्र राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने अथवा हस्तक्षेप में सहायता देने के लिए बाध्य नहीं है। फ्रांस में स्पेन के बचाव के लिए जो विशेष रूप से संगठन हुआ वह एक इस प्रकार का विशिष्ट अपवाद है कि उससे नियम प्रमाणित हो जाता है। नियम से मेरा आशय तो शान्ति-स्थापना के समय क्षेत्रीय अधिकार की निर्णीत सीमाओं और राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों की स्थिति से तो है किन्तु सीमाओं की स्थिति से नहीं। (केवल उपरोक्त अपवाद को छोड़ कर) इस संगठन में विचार विमर्श से हमें क्या प्राप्त हुआ? हमने लायबैक में विरोध किया विरोना में भी शिकायत की। हमारे विरोध को रद्दी कागज समझा गया हमारी शिकायतें वायु में विलीन हो गई। हमारा प्रभाव यदि इसे विदेशों में बनाये रखना है तो हमारे देश की निजी शक्ति के स्रोत के आधार पर ही रखा जा सकता है। इस शक्ति के स्रोत हमारी सरकार और जनता की पारस्परिक सहानुभूति जनता की भावनाओं और जनता की अनुमति में हैं। सम्राट और हाउस आफ कामन्स के बीच परस्पर के विश्वास और सहयोग पर भी यह आधारित है।

स्वेच्छाचारी शासन और संविधानवाद साथ-साथ नहीं चल सकते। इसमें क्या आश्चर्य है कि इंग्लैंड अपनी संसदीय प्रणाली के साथ यूरोप के अन्य स्वेच्छाचारी शासनों के साथ सहयोग नहीं कर पाया। यूरोपीय गठबन्धन स्वेच्छाचारी शासनों की रक्षा के लिए प्रजातन्त्रवाद और राष्ट्रीयता के सब प्रकारों के दमन के लिए एक षडयन्त्रकारी गुट के रूप में बदल गया।

आरम्भ से ही शक्तियों में परस्पर ईर्ष्या थी। एक्स-ला चेपल के सम्मेलन में शक्तियाँ दासों के व्यापार और बर्बर समुद्री लुटेरों के प्रश्न पर असहमत थीं। १८२० में हस्तक्षेप के प्रश्न पर वे असहमत हो गई। शक्तियों में आन्तरिक सहयोग नहीं था। थोड़े समय के लिए केवल दिखावटी सहयोग रहा। इस प्रकार की परिस्थिति अधिक समय तक नहीं चल सकती थी और यह परिस्थिति फ्रांस के स्पेन में हस्तक्षेप से और भी जटिल हो गई।

यह भी कहा जाता है कि यूरोप का गठबन्धन नेपोलियन के युद्धों की उपज था जिसका लक्ष्य सामूहिक शत्रु फ्रांस के विरुद्ध संगठित होना था। किन्तु जब फ्रांस का खतरा समाप्त हुआ तो उसके साथ संगठित राष्ट्रों की एकता भी समाप्त हो गई। प्रत्येक राष्ट्र पृथक रूप से अपनी कूटनीति चलाना चाहता था।

थामसन के मतानुसार, जहाँ तक सम्मेलन प्रणाली के उद्देश्य का प्रश्न था वहाँ तक यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्र समय-समय पर आपसी झगड़ों का निपटारा करने और यूरोप महाद्वीप में शक्ति का सन्तुलन बनाये रखने के लिए मिलते रहे इसमें कुछ सफलता मिली और शान्ति बनी रही। बाद के सम्मेलनों में दासता की

प्रथा की समाप्ति हेतु यूरोप में समुद्री व्यापार और झगड़ा की मध्यस्थता की समस्याओं पर विचार हुआ। किन्तु जहाँ तक पवित्र गठबन्धन के उद्देश्य की पूर्ति तथा पंचमुखी संगठन के सदस्यों के स्वार्थों की पूर्ति का प्रश्न है यूरोप में यह एक अशांति उत्पन्न करने वाली शक्ति थी। सामूहिक हस्तक्षेप का सिद्धान्त अपने शत्रु फ्रांस के सम्बन्ध में सब मानते थे। यह सिद्धान्त सभी स्थानों में व्यय का पचड़ा मोल लेने के लिए प्रयुक्त होने लगा। इससे मैटरनिक अथवा ब्रिटेन किसी के भी हित की पूर्ति नहीं होती थी। बारी-बारी से सारे राष्ट्रों को हस्तक्षेप करने के लिए उकसाया गया। आस्ट्रिया को पीडमाण्ट और नेपल्स में फ्रांस को स्पेन और ग्रीस में, ब्रिटेन को ग्रीस और पुर्तगाल में तथा रूस को ग्रीस में हस्तक्षेप करने के लिए कहा गया। ब्रिटेन प्रतिक्रियावादी राजाओं के हस्तक्षेप से, रूस के टर्की के मामले में गुप्त उद्देश्यों से घबरा गया और उस हस्तक्षेप को रोकने के लिए हस्तक्षेप करने की अदभुत नीति अपनानी पड़ी। युद्ध से रोकने की कठोर और लम्बी अवधि के अन्त में ग्रीक क्रान्ति आरम्भ हुई और इस दौरान में ग्रीकों को बहुत हानि उठानी पड़ी। मुनरो सिद्धान्त द्वारा वर्तमान व्यवस्था के पक्ष अथवा विपक्ष में हस्तक्षेप करने के विरोध ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के उस मौलिक प्रश्न पर जनसाधारण का ध्यान केन्द्रित कर दिया। प्राचीन परिपाटी की समर्थक शक्तियों अथवा राष्ट्रीयता और उदारता की समर्थक शक्तियों में से किसी को भी इस नीति से लाभ नहीं पहुँचा। यह हस्तक्षेप स्पेन और नेपल्स में राजाओं तथा पुर्तगाल और ग्रीस में प्रजातन्त्र के समर्थक विद्रोहियों के हित में था। किन्तु वंश-परम्परागत राजशाही अथवा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन इस सिद्धान्त को मानकर चले कि कोई बाहर की शक्ति उचित रूप से हस्तक्षेप करके अन्त तक लाभ नहीं उठा सके। अनुभव से यह पता लगा कि सम्मेलन प्रणाली का अर्थ सब दशाओं में एक-जैसा दृष्टिकोण रखना है तथा प्रत्येक झगड़े को बढ़ा-चढ़ा देना तथा जहाँ कहीं झगड़ा हो वहाँ शासन को बदल देना होता है। शान्ति को अविभाज्य बना कर इसे अत्यन्त नाजुक बना दिया गया। इसका कारण था कि प्रत्येक क्रान्तिकारी घटना में बड़ी शक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता छिपी रहती थी। यूरोपीय गठबन्धन की रूढ़िवादी शक्तियाँ शान्ति के विरुद्ध एक बाँध मानती थीं किन्तु ब्रिटेन इस राष्ट्रीयता और उदार विचार-धाराओं की प्रगति के प्रवाह को नियन्त्रित करने वाले बाँध को फाटक मानता था। (Europe Since Napoleon pp 119 20)

ग्राट और टम्परले के मतानुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय शासन के इस गम्भीर प्रथम प्रयास को बताये बिना महत्वहीन मानकर रद्द कर देना उचित नहीं। शासकों में व्यक्तिगत विचार विमर्श और परस्पर विश्वास का विचार बहुत सुन्दर था। कमनरे पुनर्गठन करने में संलग्न था और किसी हद तक मैटरनिक भी इस कार्य में लगा हुआ था। किन्तु एलेग्जेण्डर इन दोनों से ही अधिक आगे और अधिक तीव्रता से बढ़ गया। १८२० के पश्चात सम्मेलन प्रणाली कार्य रूप से राजाओं की जनता की स्वतन्त्रताओं को कुचलने के लिए एक मतादीय प्रणाली वाला इंग्लैंड अपनी अनुमति नहीं दे सकता था तथा क्रान्तिकारी फ्रांस इसमें अनचाहा सहयोगी था। छोटे राष्ट्र जो इसमें सम्मिलित नहीं थे स्वतः ही इनके विरोधी थे। बाद में भी

यूरोप मे अनेक सम्मेलन हुए जिनसे बहुत भलाई हुई। यद्यपि अब भी नेतृत्व बडे राष्ट्रो के हाथ मे ही था तथापि राजशाही को पुनर्जीवित करने या क्रांति को नियन्त्रित करने या सशस्त्र हस्तक्षेप करने की कोई आम नीति की घोषणाएँ नहीं की गई। इस कारण संसदीय प्रणाली वाले इग्लैंड और फ्रास दोनो ही पूर्वी यूरोप के तीन सर्वसत्ता राजाओं के साथ सरलता से विचार विमर्श करते रहे। जिस सम्मेलन ने बेल्जियम को स्वतन्त्रता दिलाई वह इस बात का अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार बडे राष्ट्र बिना भिडन्त के मिलकर स्थायी भलाई कर सकते हैं क्योंकि वे एक-दूसरे की विचार धाराओ और कठिनाइयो को समझते थे।

कैनिंग (Canning)—फ्रास द्वारा स्पेन पर आक्रमण को न रोक सकने के कारण कैनिंग ने कहा "मैंने एक नया संसार पुरानी दुनिया का सन्तुलन रखने के लिए बनाया है।" ब्रिटेन यूरोप के अन्य देशो के आन्तरिक मामलों मे हस्तक्षेप करने का विरोधी था। १८१८ मे यूरोप की राजनीति मे इस सिद्धान्त को प्रचलित करने के लिए उसने रूस आस्ट्रिया और प्रशिया की चालो का विरोध किया। किन्तु इग्लैण्ड के विरोध करने पर भी १८२० मे ट्रोप्पू-व्यवस्था लागू कर दी गई। इसके अनुसार यूरोप के देशो को अपने पडोसी देशों मे विद्रोह होने पर अथवा विद्रोह से उनकी सुरक्षा को डर होने की स्थिति मे उनके आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप करने की छूट मिल गई। इस नीति के अनुसार १८२१ मे आस्ट्रिया ने नेपल्स और पीडमाण्ट मे हस्तक्षेप किया। १८२२ मे विरोना सम्मेलन मे ब्रिटेन ने स्पेन के मामले मे किसी भी देश के हस्तक्षेप का विरोध किया। किन्तु फिर भी फ्रास ने स्पेन पर आक्रमण कर ही दिया और इसके राजा को पुन सारे अधिकार दिला दिये। जहाँ तक स्पेन का सम्बन्ध है ब्रिटेन असफल हुआ। उस समय कैनिंग ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह दक्षिणी अमरिका मे स्पेन के उपनिवेशो को पुन जीतने नही देगा तथा यूरोप की हानि की अमेरिका मे क्षतिपूर्ति नहीं होने देगा।

पुरानी दुनिया का सन्तुलन बनाने के लिए कैनिंग की नई दुनिया बनाने की नीति सहसा प्रेरणा का फल नही था। यह बहुत सोच विचार के पश्चात् तथा दृढता से पालन की गई नीति थी। १७९० मे पिट ने मिराण्डा को यह बता दिया था कि अमरिका मे स्पेन के उपनिवेशो का हित एक ऐसा मामला है जिस पर इग्लैण्ड का प्रत्येक मन्त्री ध्यान देगा। १८०८ मे ब्रिटेन की सरक्षता मे स्पेन के उपनिवेशो का अलग कर देना कैनिंग और कैसलरे दोनो के विचार मे था। यह विचार कैनिंग द्वारा विदेश मन्त्री का पद सभालने के पहले दिन से ही उसके मस्तिष्क मे था और इस कार्य के पूर्ण होने तक बराबर रहा। १८२२ मे कैनिंग ने ड्यूक आफ वेलिंगटन को जो विरोना मे ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व कर रहा था पत्र मे लिखा "प्रायद्वीप की वर्तमान स्थिति तथा देश की स्थिति को देखते हुए नित्य प्रति मेरे मस्तिष्क मे यह विचार घर करता जा रहा है कि हमारे लिए यूरोप के प्रश्नो से कही अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न अमरिका के है। यदि हमने वर्तमान अवसर का उपयोग करके इसे अपने हित के लिए प्रयुक्त नही किया तो भविष्य मे एक अमूल्य अवसर को खो देने के लिए सर्वदा पश्चात्ताप करते रहेगे।

यह सत्य है कि स्पेन को अपने अमेरिका के उपनिवेशों का शासन करने में बड़ी कठिनाइयाँ आ रही थीं। १८१७ में स्पेन ने ५० लाख डालर में फ्लोरिडा का प्रदेश बेच दिया। *उसके पश्चात् भी परिस्थिति नहीं सँभली। दक्षिणी अमरिका में अराजकता थी और अंग्रेजों को उनके जहाजों पर होने वाले आक्रमणों के कारण बड़ी कठिनाइयाँ होती थी। १८२३ में कैनिंग ने ब्रिटिश व्यापार की रक्षा के लिए स्पेन के उपनिवेशों में अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये। ब्रिटिश सरकार ने फ्रांस को स्पष्ट रूप से यह बता दिया था कि स्पेन के उपनिवेशों की वापसी स्पेन के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति को नहीं की जायगी। १ जनवरी १८२५ में अन्य शक्तियों को बताया गया कि ग्रेट ब्रिटेन ने ब्यूनस एयर्स, कोलम्बिया और मैक्सिको के प्रदेशों की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी है। शक्तियों ने ब्रिटेन के इस कार्य का विरोध किया किन्तु कुछ भी नहीं कर सके। कैनिंग यूरोप के राष्ट्रों की अनिच्छा होते हुए भी अपनी नीति का अनुसरण करता रहा।

कैनिंग को संयुक्त राज्य अमेरिका के रूप में एक शक्तिशाली मित्र प्राप्त हुआ। दिसम्बर, १८२३ में राष्ट्रपति मुनरो ने मुनरो सिद्धान्त की घोषणा की। उसने घोषणा की—'यूरोप की महान शक्तियों द्वारा दक्षिणी अमरिका का स्पेन के उपनिवेशों का नियन्त्रण करने अथवा दमन करने के उद्देश्य से हस्तक्षेप करना संयुक्त राज्य अमरिका की सुरक्षा के लिए घातक कार्य समझा जायगा। क्योंकि ये प्रदेश अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर चुके हैं। इसलिए किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप उनके प्रति अमैत्रीपूर्ण काम समझा जायगा। १८२४ में कैनिंग ने लिखा, "मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि राष्ट्रपति ने यह घोषणा दक्षिणी अमरिका में स्पेन के उपनिवेशों के प्रति हमारी भावना को जान कर की है। हमारे अमरिकी सहयोगियों की कट्टर गणतन्त्रीय विचारधारा का जो प्रभाव हमारे ऐक्स-ला चपल के कट्टर रूढ़िवादी कानूनों पर हुआ है उसने ठीक उसी प्रकार का शक्ति-सतुलन कर दिया है जिसकी इच्छा मैं सदा से कर रहा था।' अगले वर्ष १८२५ में उसने लिखा कार्य पूरा हो चुका एक ऐसा कार्य जो संसार का चेहरा बदल डालेगा और जो लगभग उतना ही महान है जितना कि अमरिका महाद्वीप का पाया जाना था। मित्र राष्ट्र तिलमिलायेंगे। किन्तु वे कोई गम्भीर कदम नहीं उठायेंगे। फ्रांस भूल जायेगा, किन्तु दक्षिणी अमरिका हमारे उदाहरण का शीघ्रता से अनुगमन करेगा। ब्रिटेन और अमरिका के कदम निर्णायक थे। १८३० के आरम्भ होते ही दक्षिणी अमरिका में स्पेनिश साम्राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया और परिणामतः मैक्सिको, ग्वाटेमाला, कोलम्बिया, पीरू, चिली, बोलीविया, पराग्वे और रियो डी ला प्लाटा अर्थात् ब्यूनस एयर्स में स्वतन्त्र गणतन्त्रों की स्थापना हुई।

स्पष्ट है कि जहाँ यूरोप में कैनिंग असफल रहा वहाँ अमरिका में सफल हुआ। वह स्पेन में फ्रांस का हस्तक्षेप नहीं रोक सका किन्तु वह स्पेनिश अमेरिका में स्पेन तथा अन्य किसी भी देश का हस्तक्षेप रोकने में सफल हुआ और इस प्रकार अमेरिका में वह स्पेन के उपनिवेशों की स्वतन्त्रता की स्थापना करा सका। कैनिंग का यह

कहना सत्य ही था कि उसने दक्षिणी अमेरिका में एक नई दुनिया की सृष्टि की है और जो सन्तुलन आस्ट्रिया, रूस, प्रशिया और फ्रांस के इकट्ठे हो जाने से बिगड़ गया था पुनः ठीक हो गया है।

Suggested Readings

Fyffe	*History of Modern Europe*
Phillips W A	*The Confederation of Europe A Study of the European Alliance (1813 '3) 1920*
Phillips	*Modern Europe*
Schenk H G	*The Aftermath of the Napoleonic Wars the Concert of Europe—an Experiment 1947*
Seignobos	*Political History of Europe Since 1814*
Thomson	*Europe Since Napoleon*
Kissinger	*A World Restored*
Ward Sir A W	*The Period of the Congreses 1919*

अध्याय १३

लुई अठारहवें से नेपोलियन तृतीय तक

(Louis XVIII to Napoleon III)

लुई अठारहवाँ (Louis XVIII) (१८१४-२४)—नेपोलियन के १८१४ में राज त्याग देने और ऐलबा द्वीप में निष्कासित होने के पश्चात् फ्रांस के राजसिंहासन पर लुई अठारहवें को बठाया गया। वह लुई सोलहवें का भाई था। राज्यारोहण के समय उसकी आयु ५९ वर्ष की थी। वह अस्वस्थ और गठिया से पीडित था तथा घोडे पर सवारी नही कर सकता था। मानसिक तथा चारित्रिक रूप से वह राजा होने योग्य था। वह अनुभवी व्यक्ति था और आरम्भ से ही उसने यह जान लिया था कि कालचक्र को पीछे की ओर चलाना असम्भव है। वह इग्लैंड के चार्ल्स द्वितीय की तरह पुन झझट मे नही पडना चाहता था तथा समझौते और शान्ति की नीति का समर्थक था। १८१८ में उसने लिखा था, "जिस प्रणाली को मैंने अपनाया है तथा जिसे बड परिश्रम से मेरे मत्री पालन कर रहे हैं वह इस कहावत पर आधारित है कि 'दो प्रकार की जनता का राजा होना कभी उचित नहीं है। क्योंकि प्रजा के दो भाग स्पष्ट हैं इसलिए मेरे शासन का पूरा प्रयत्न यह है कि उनका भेद क्रमश समाप्त कर दिया जाय।'

१८१४ का अधिकार-पत्र (Charter of 1814)—४ जून १८१४ को लुई अठारहवें ने एक उदार अधिकार-पत्र प्रसारित किया। इस विज्ञप्ति पर जार एलेजेण्डर प्रथम का प्रभाव था। इस विज्ञप्ति में १८४८ तक फ्रांस के सारे सविधान विहित हैं। इसकी प्रस्तावना थी, "अपने पूर्वज राजाओं के आदर्श का अनुकरण करते हुए यह हमारा कर्तव्य है कि हम ज्ञान की उत्तरोत्तर होती हुई प्रगति के परिणामों, इस प्रगति द्वारा समाज मे हुए नवीन सम्बन्धो, पिछली अर्धशताब्दी मे जो प्रभाव इसने जनसाधारण के विचारो पर डाला है तथा जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन इस काल मे हुए हैं, उन सब की हम प्रशसा करते हैं। हमने अनुभव किया है कि हमारी प्रजा की इच्छा एव आवश्यकता है। किन्तु प्रजा की इस इच्छा को मान्यता देते हुए हमने ध्यान रखा है कि यह सविधान हमारे तथा जिन प्रजाजनो पर हम शासन करते हैं, उनकी शान के उपयुक्त हो।'

इस अधिकार-पत्र के अनुसार सम्राट् को देश का प्रमुख माना गया। उसे सब नियुक्तियाँ, कानून, युद्ध, शांति, सधि और व्यापार-सम्बन्धी प्रतिज्ञा पत्र इत्यादि करने का अधिकार दिया गया। जल और स्थल की सेनाओं के सचालन तथा

कानूनों की स्वीकृति का अधिकार लिया गया। दो सदन अर्थात् चेम्बर ऑफ पीयर्स और चेम्बर ऑफ डिपुटीज की समद को व्यवस्था की गई। चेम्बर ऑफ पीयर्स के सदस्य आजीवन अथवा वंशपरम्परागत अधिकार के अनुसार सम्राट नियुक्त करता था। इसके अधिवेशन गुप्त होते थे तथा यह देश का सर्वोच्च न्यायालय भी था। यह सम्राट के विरुद्ध अविश्वास अभियोगों की सुनवाई भी करता था। चेम्बर ऑफ डिपुटीज के सदस्य ३०० फ्रैंक सीधा कर (Direct taxes) देने वाले लोग ही चुन सकते थे। इसकी अवधि पाँच वर्ष थी तथा इसका पाँचवाँ भाग प्रत्येक वर्ष अवकाश प्राप्त करता था। इसका अधिवेशन वार्षिक होता था। यह सम्राट से किसी विशेष विषय पर कानून बनाने की प्रार्थना कर सकता था।

रोमन कैथोलिक चर्च को मान्यता दी गई किन्तु अन्य धर्मों को भी स्वतन्त्रता प्रदान की गई। नेपोलियन के काल में तथा क्रान्ति से पूर्व के सारे सामन्तों को मान्यता दी गई। समाचारपत्रों को स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया गया। फ्रांस के सारे नागरिकों को राज्य-पद प्राप्त करने की स्वतन्त्रता दी गई। क्रान्ति-काल में जब्त की गई सम्पत्ति के वर्तमान स्वामियों को आश्वासन दिया गया कि यह सम्पत्ति उनसे छीनी नहीं जायगी।

इस घोषणा का मुख्य महत्व यह था कि इससे क्रान्ति तथा नेपोलियन द्वारा किये गए कार्यों को मान्यता दी गई। यह मान्यता जनसाधारण की समानता पद प्राप्त करने की योग्यता धार्मिक सहिष्णुता नेपोलियन-संहिता तथा कानकार्डट इत्यादि की मान्यता से स्पष्ट है। यह अधिकारपत्र राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त से प्रतिकूल भी नहीं था। वास्तव में सम्राट ने उदारता से यह अधिकार जनता को प्रदान किया था। सिटाब्रियाड के अनुसार अधिकारपत्र फ्रांस में बने हुए दो दलों के बीच समझौता था जिसमें दोनों ही दलों ने अपनी कुछ मान्यताएँ छोड़कर देश के लिए इकट्ठा होकर कार्य करने का निर्णय किया।

टलीरण्ड (Talleyrand)—फ्रांस में उत्पन्न चतुर व्यक्तियों में सबसे अधिक कुशल व्यक्ति टैलारण्ड था। यह क्रान्ति-काल में नेपोलियन के राज्य में तथा सम्राट के आसीन होने पर किसी न किसी पद पर काम करता ही रहा। यह सामन्त वर्ग का था तथा चर्च का सदस्य भी था। नेपोलियन ने उसे बहुत कठिन कार्यों के लिए नियुक्त किया था। यह बहुत चतुर और चालाक व्यक्ति था। यह परिस्थितियों के अनुसार चालाकी से अपनी स्वामि भक्ति बदल लेता था। नेपोलियन सब जटिल समस्याओं में उसकी सलाह लिया करता था। इतना विश्वस्त होने पर भी अन्त में वह नेपोलियन का साथ छोड़कर आस्ट्रिया से जा मिला। अपनी चतुरता के कारण ही उसने वियाना सम्मेलन में महत्वपूर्ण भाग लिया। इसने ही न्याययुक्तता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके अपने देश की रक्षा की। यद्यपि फ्रांस परास्त हो गया किन्तु इसकी कुशलता के कारण उसके प्रदेश नहीं छीने गये।

टलीरण्ड आदर्शक व्यक्तित्व वाला नहीं था। नेपोलियन ने एक बार उसे रेशम के वस्त्र पहिननेवाला गन्दगी का ढेर कहा था। एक बार नेपोलियन ने यह भी

कहा, "तुम इसान नही शैतान हो । मैं तुम्हें अपने मामलों के बारे में बताने या तुम्हें पसन्द करने से रोक नहीं सकता ।"



टलीरण्ड

राजनतिक दल (Parties)—फ्रास मे दो राजनतिक दल अर्थात मॉडरेटस' (Moderates) और अल्ट्रा रायलिस्ट' (Ultra Royalists) थे । मॉडरेटस अर्थात उदार दलीय १८१४ के सविधान के समथक थे और अल्ट्रा रायलिस्ट अर्थात् राजशाही दल, सम्राट की सर्वाधिकार-सम्पन्नता और विशेषाधिकारो के समथक थे । वे चच और सम्राट म मैत्री चाहते थे । वे चाहते थे कि शिक्षण-काय चच के हाथ में रहे । वे समाचारपत्रो पर सेन्सर के समथक और जागीरदारा की जागीरो की जब्ती के विरुद्ध थे । लुई अठारहवें ने उदार नीति का पालन किया और इनकी मांगा पर कोई ध्यान नही दिया । वह सेना और किसाना का प्रिय नहीं हो पाया । वलिंगटन के मतानुसार 'फ्रास का सम्राट विना सेना के सम्राट नही हो सकता ।' किसानो और सेना की अप्रियता का परिणाम यह हुआ कि नपोलियन ऐलबा से लौट आया और किसान और सेना उसमे जा मिले । किन्तु सौ दिन बाद लुई अठारहवें को पुन राज्य प्राप्त हुआ ।

श्वेत आतक (White Terror)—जस ही फ्राम म वाटरलू की लडाई मे नेपोलियन की हार की खबर पहुँची सम्राट के समथको ने देश मे आतक फैला दिया। राजशाही दल ने बोनापाट के समथका पर आक्रमण किये । कैथोलिका ने प्रोटैस्टण्टो

पर आक्रमण किये। देश भर में लूट मार और हत्याएं आरम्भ हो गईं और इस उथल-पुथल को श्वेत आतंक के नाम से पुकारा गया। इस प्रकार के हिंसा और आतंक के वातावरण में आम चुनाव हुए और यह कोई हैरानी की बात नहीं कि राजशाही दल बहुत बड़ी संख्या में जीत गया। टैलीरैण्ड और फाँश को पदच्युत कर दिया गया। नये मंत्रिमण्डल का प्रमुख रिशेलु बना और उसका मुख्य सहायक डिकाजेस (Decazes) था। नवीन चेम्बर आफ डिपुटीज सम्राट से कहीं अधिक राजशाही का समर्थक था।' यद्यपि सम्राट उसके मंत्री और चेम्बर ऑफ पीयस के सदस्य उदारता की नीति के समर्थक थे तो भी सम्राट के भाई काउन्ट आफ आर्टोइस (Count of Artois) के नेतृत्व में चेम्बर ऑफ डिपुटीज ने जनता से प्रतिशोध की माँग की। काउण्ट ऑफ आर्टोइस १८२४ में फ्रांस का सम्राट् बना। बोनापार्टवादी मार्शल नियु को देशद्रोही कहकर गोली मार दी गई। बोनापार्ट के हजारों समर्थकों को कैद कर लिया गया या देशनिकाला दे दिया गया। कुछ लोगों को मृत्युदण्ड दिया गया एवं बाकी सब को पदच्युत कर दिया गया। सितम्बर, १८१६ में चेम्बर आफ डेपुटीज को भंग कर दिया गया।

उदार दल सत्तासीन (Moderates in Power)—१८१६ में फिर चुनाव हुए और उदार दल बहुसंख्या में चेम्बर आफ डेपुटीज में आया। वह १८२० तक सत्तासीन रहा। १८१८ में ऐक्स-ला चेपल के सम्मेलन में फ्रांस द्वारा युद्ध क्षति की पूर्ति करने पर, संगठित राष्ट्रों की सेनाओं को फ्रांस से हटा लिया गया। १८१७ में उदारदल के हित में चुनाव सम्बन्धी एक नया कानून बनाया गया। १८१९ में एक नया कानून बना जिससे समाचारपत्रों पर से प्रतिबन्ध हटा लिया गया। समाचारपत्रों द्वारा किये गए अपराधों का निर्णय पंच फैसले द्वारा करने का निर्णय किया गया।

फरवरी १८२० में एक मदान्ध व्यक्ति द्वारा ड्यूक डी बेरी की हत्या कर दी गई। ड्यूक काउन्ट ऑफ आर्टोइस का पुत्र था और इससे बुरबोन (Bourbon) राजवंश को बड़ी आशाएँ थी। यद्यपि हत्या एक व्यक्ति का कार्य था तो भी राजशाही के समर्थकों ने इसे सम्राट की उदार नीति का परिणाम बताया। किसी ने कहा "जो छुरा ड्यूक डी बेरी की छाती में धुसाया गया वह एक उदार विचार था। अन्य लोगों ने कहा, पदासीन राजवंश और सम्राट की समाप्ति से पहले डिकाजेस को अपदस्थ होना चाहिए।" स्वयं डिकाजेस ने कहा कि 'ड्यूक के साथ हम लोगों की भी मृत्यु हो गई है। डिकाजेस को अपदस्थ कर दिया गया और राजशाही दल सत्ता में आया।

१८२० में पुनः रिशेलु मंत्रिमण्डल का नेता बना और १८२१ तक पदासीन रहा। उसके काल में प्रतिक्रिया का युग आरम्भ हुआ। समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। चुनाव के कानून बदल दिए गए। गुप्त मतदान प्रणाली समाप्त कर दी गई। मतदान का क्षेत्र संकीर्ण कर दिया गया। भूस्वामियों को दो मत (Double Vote) प्रदान किए गए।

रिशेलु का उत्तराधिकारी विल्लेली (Villele) बना, जो एक योग्य और सचेत शासक था, किन्तु प्रसिद्ध प्रतिक्रियावादी था। वह अपने पद पर १८२७ तक रहा। १८२२ में समाचारपत्रों पर कठोर प्रतिबंध लगा दिया गया। सम्राट और चर्च का प्रचार करने के लिए चर्च को शिक्षा का कार्य सौंप दिया गया। जागीरदारों और उद्योगपतियों के हितों की रक्षा के लिए विदेशों से माल मंगाने पर बहुत कठोर चुंगी लगा दी गई। १८२३ में बुरबोन (Bourbon) वंश को पूर्ण सत्ता दिलवाने के लिए स्पेन में फ्रांस की सेनाएँ भेजी गई। चेम्बर ऑफ पीयर्स में उदार सदस्यों के बहुमत को समाप्त करने के लिए उपाधियाँ प्रदान की गई। सप्तवर्षीय कानून (Septennial Act) द्वारा चेम्बर ऑफ डेपुटीज की अवधि पाँच वर्ष से बढ़ाकर सात वर्ष कर दी गई।

चार्ल्स दशम (Charles X) (१८२४-३०)—१८२४ में लुई अठारहवें की मृत्यु के पश्चात् काउण्ट ऑफ आर्टोइस (Count of Artois) चार्ल्स दशम के नाम से गद्दी पर बैठा। काउण्ट होते हुए वह देश से भागे हुए सामन्तों का नेता रहा था। लुई अठारहवें के शासन में वह राजशाही दल का नेता था। वह एक दृढ़ धारणा और कलुषित हृदय का व्यक्ति था। उसके विषय में कहा जाता था कि 'उसने कोई नवीन धारणा नहीं अपनायी तथा वह कुछ भी भूला नहीं।' उसे गर्व था कि उसमें और लफायट (Lafayette) में समय में इतनी उलट फेर होने पर भी कुछ परिवर्तन नहीं आया। वह चर्च की महत्ता का समर्थक था और चर्च के लिए अपना सिंहासन भी छोड़ने के लिए प्रस्तुत था। वेलिंगटन (Wellington) के शब्दों में, "इसने धर्माचार्यों की सरकार, धर्माचार्यों के द्वारा, धर्माचार्यों के लिए स्थापित की।" वास्तव में उसकी तुलना स्पेन के फिलिप द्वितीय से की जा सकती है।

इसके शासन-काल में शक्तिशाली विदेश-नीति से फ्रांस का सम्मान बढ़ा। अल्जीयर्स (Algiers) पर विजय हुई और फ्रांस ने ब्रिटेन से गठजोड़ करके तुर्कों के विरुद्ध ग्रीक लोगों की सहायता की। जब १८२७ में नवारिनो (Navarino) की लड़ाई में तुर्कों का बेड़ा नष्ट हुआ, उस अभियान में फ्रांस भी था। यद्यपि फ्रांस ग्रीक के स्वातन्त्र्य युद्ध से हट गया परन्तु उसने बलकान में रूस के प्रभाव को कम करने के लिए इंगलैण्ड का साथ दिया।

विल्लेली (Villele)—१८२७ तक विल्लेली मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व करता रहा। क्योंकि देश के समाचारपत्र सम्राट की चर्च-नीति के विरोधी थे, समाचारपत्रों को शासन का भक्त बनाने का निर्णय किया गया। आदेश प्रसारित किया गया कि सम्राट की आज्ञा के बिना कोई भी समाचारपत्र प्रकाशित न किया जाय। पत्रों के सारे समाचार शासन द्वारा स्वीकृत हों। किसी ऐसे लेख के लेखक को अथवा चित्र के चित्रकार को, जिसके द्वारा देश के धर्म पर आक्षेप या व्यंग्य किया गया हो अथवा जिससे किसी वर्ग के विरुद्ध घृणा का प्रचार हो बहुत बड़े जुर्माने या सात वर्ष की कैद से दण्डित करने की घोषणा हुई। १८२७ में एक ऐसा कानून बनाने का प्रयास किया गया, जिससे समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता पूर्णतः समाप्त हो गई। सब ओर से

विरोध होने पर भी चेम्बर ऑफ डेपुटीज ने इस कानून को स्वीकार कर लिया, किन्तु चेम्बर ऑफ पीयर्स के घोर विरोध के कारण सरकार को यह विधेयक रद्द करना पड़ा।

१८२५ में क्रान्ति के दिनों में भागे हुए जागीरदारों की जागीरों की क्षतिपूर्ति के लिए एक कानून बनाया गया। जनसाधारण से लिये हुए ऋण पर सूद की दर पाँच प्रतिशत से घटाकर चार प्रतिशत कर दी गई और यह क्षतिपूर्ति की गई। सूद की दर घटा देने से मध्यवर्ग को हानि पहुँची और इससे यह वर्ग अवश्य ही रुष्ट हुआ होगा। कुछ अनुबन्धों के साथ स्त्रियों के लिए भी धार्मिक संस्थाओं की स्थापना हुई। ज्येष्ठाधिकार के कानूनों को पुनः लागू करने का प्रयत्न किया गया किन्तु चेम्बर ऑफ पीयर्स के विरोध के कारण यह विफल रहा। गिरजाघरों से पूजा के पवित्र बर्तनों को चुराने के अपराध पर मृत्यु-दण्ड देने के लिए एक कानून बनाने का प्रस्ताव रखा गया। पूजा की वेदी को अपवित्र करने वालों के हाथ काटने का भी कानून बनाने का प्रयत्न किया गया। कुछ संशोधनों के साथ यह कानून स्वीकृत तो हो गया, किन्तु जनता के घोर विरोध के कारण यह लागू नहीं किया जा सका।

१८२७ में राष्ट्र रक्षक (National Guards) सेना भङ्ग कर दी गई। यह इसलिए हुआ कि एक बार सम्राट सेना के निरीक्षण के पश्चात् लौट रहा था राष्ट्र रक्षक सेना के सदस्यों ने 'मन्त्रियों का नाश हो' 'जसुइटस (Jesuits) का नाश हो' आदि नारे लगाने आरम्भ कर दिये। पेरिस के निवासी इस सेना के भङ्ग होने पर अत्यधिक क्षुब्ध हुए और इसका परिणाम बड़ा ही घातक हुआ।

मार्टिगनक (Martignac)—विल्लेली (Villele) का उत्तराधिकारी मार्टिगनक बना और यह जनवरी १८२८ से जुलाई १८२९ तक सत्तासीन रहा। यह एक योग्य, अनुभवी और उदार व्यक्ति था। इसने समझौते की नीति का अनुसरण किया। जसुइटस (Jesuits) का शिक्षा पर से नियन्त्रण हटा दिया गया। समाचार पत्रों का सेन्सर बन्द कर दिया गया। मताधिकार प्रान्तीय सभाओं को दिया गया। स्थानीय स्वायत्त शासन के लिए अनेक सुधार प्रस्तावित हुए। प्रतिक्रियावादी इससे बहुत नाराज हुए परिणामतः इसे त्याग-पत्र देना पड़ा।

पोलिगनक (Polignac)—चार्ल्स दशम की धारणा थी कि रियायतों (concessions) ने लुई सोलहवें का नाश किया था अतः उसने प्रजा को कोई भी सुविधा न देने का निर्णय किया। 'इन लोगों के साथ व्यवहार का यह तरीका नहीं है अब इन सुविधाओं को बन्द करना चाहिए।' सम्भ्रान्त प्रतिक्रियावादी और क्रान्ति काल में भगोड़े राजकुमार पोलिगनक को सरकार का प्रमुख बनाया गया। चेम्बर आफ डेपुटीज में उसके समर्थकों का बहुमत नहीं था। इससे सरकार की सारे देश में घोर आलोचना हुई। मार्च १८३० में चेम्बर आफ डेपुटीज में चार्ल्स दशम ने भाषण दिया, "अधिकार पत्र ने फ्रांस की स्वतन्त्रताओं को सम्राट के अधिकारों के अन्तर्गत रखा है। ये अधिकार पवित्र हैं और यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इन्हें अपने उत्तराधिकारी को अक्षुण्ण सौंपूँ। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तुम लोग मेरी इस

सम्भावना को कार्य परिणत करने में सहायता दोगे तथा विदेशों में अनिष्टकारियों द्वारा जो लज्जाजनक आक्षेप लगाये जा रहे हैं, उनका निराकरण करोगे। यद्यपि मुझे आशंका नहीं है फिर भी यदि षड्यन्त्रों ने मेरी सरकार के कार्य में रोड़ा अटकाया, जो मेरे लिए असह्य है तो मुझे देश में शान्ति बनाए रखने के लिए फ्रांस की प्रजा में विश्वास रखते हुए तथा उनके सम्राट के प्रति प्रेम को देखते हुए और अपने संकल्प में दृढ़ रहकर इन अड़चनों को दूर करने के साधन जुटाने पड़ेंगे।" सम्राट के इस भाषण को जनता ने चुनौती समझा। थीयर्स (Thiers) जैसे लोग सम्राट की इस प्रतिक्रियापूर्ण नीति का विरोध करने के लिए अगुआ बने। पोलिगनक-मन्त्रिमण्डल को हटा दिया गया। सम्राट ने चेम्बर ऑफ डेपुटीज को पहले स्थगित किया और बाद में भंग कर दिया गया। जून और जुलाई १८३० में नये चुनाव हुए, किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि विरोध पक्ष और अधिक बलवान हो गया।

२५ जुलाई, १८३० को चार्ल्स दशम ने चार अधिनियम (Ordinances) प्रसारित किए और इनके समर्थन में यह सफाई दी कि, 'अराजकता फैलाने वाली एक प्रजातन्त्र की लहर कानून द्वारा स्थापित शासन को नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रही है। यह संगठनों और समाचारपत्रों द्वारा चुनावों पर छा जाना चाहती है। यह सम्राट के अधिकारों को बंधन में डालकर संसद को भंग करना चाहती है।'

'वह सरकार जिसे देश की सुरक्षा का अधिकार प्राप्त न हो, अपना अस्तित्व बनाए नहीं रख सकती। यह अधिकार, जो कानूनों से भी प्राचीन है, प्राकृतिक विधान में निहित है। एक अत्यन्त कठिन परिस्थिति इस अधिकार के प्रयोग की माँग करती है कि इस विषय में कदम उठाए जायें। यदि परिस्थिति साधारण वैधानिक कार्यों से नियन्त्रण में न आए तो जो भी कार्य किया जाएगा यह इस अधिकार-पत्र की विज्ञप्ति के अनुसार होगा।' चार अधिनियमों के द्वारा चार्ल्स दशम ने समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता छीन ली, नवनिर्वाचित चेम्बर ऑफ डेपुटीज को भंग कर दिया, विधानमण्डल की अवधि सात वर्ष से पाँच वर्ष कर दी और नियन्त्रित मतदान द्वारा नये चुनावों की घोषणा की।

ये अधिनियम जनता के लिए चुनौती थे और इसे स्वीकार किया गया। पेरिस की गलियों में मोर्चाबन्दी की गई, किन्तु सरकार ने इसे नष्ट कर दिया। राष्ट्रीय रक्षक सेना और नियमित सेना जनता से मिल गई, और २९ जुलाई, १८३० को पेरिस पर जनता का राज्य स्थापित हो गया। थीयर्स, ग्युजोट और टैलीरैण्ड ने ड्यूक ऑफ ओरलीन्स लुई फिलिप को राजसिंहासन सौंपने की योजना बनाई और उसने इसे स्वीकार कर लिया। चार्ल्स दशम ने अपने पौत्र हनरी ड्यूक ऑफ बोरडो के लिए राज्य का परित्याग किया। किन्तु इसकी उपेक्षा कर दी गई। परिणामतः चार्ल्स दशम और उसका परिवार इंग्लैंड चला गया। इस प्रकार के वातावरण में फ्रांस में जुलाई १८३० की क्रान्ति हुई।

जुलाई की क्रांति का महत्त्व (Importance of July Revolution)—फ्रांस के इतिहास में जुलाई क्रान्ति का बड़ा महत्त्व है। इससे राजवंश का परिवर्तन हुआ।

बुरबोर्न वंश के स्थान पर ओरलीन्स वंश की स्थापना हुई। प्रजातन्त्रवादियों के विरोध पर भी राजशाही चलती रही। १८१४ के अधिकार पत्र में कुछ बाद में वधानिक परिवर्तन किये गए। आपत्तिकालीन अथवा साधारण रूप से अधिनियम प्रसारित करने का अधिकार सम्राट से छीन लिया गया। विधानमण्डल को कानून बनाने का अधिकार दिया गया। कथालिक मत फ्रांस का राज्य धर्म माना गया। समाचारपत्रों को पुन स्वतन्त्रता प्रदान की गई। मतदान बढ़ा दिया गया। यद्यपि सार्वजनिक वयस्क मतदान की प्रतिज्ञा की गई थी किन्तु २८० व्यक्तियों को एक मत माना गया। सम्राट का दैवी अधिकार के आधार की अपेक्षा जनता की इच्छा से शासक माना गया। उस प्रकार नियासियों का सम्राट कहा जाने लगा। राजशाही दल अपने कार्यक्रम के साथ बुरबोन वंश के साथ-साथ फ्रांस के रंगमंच से अदृश्य हो गया। १८३० की क्रान्ति १७८९ की पूरक थी। इससे समानता स्वतन्त्रता और सम्पत्ति के अधिकार मान्य हुआ। १८१४ का अधिकार पत्र सम्राट द्वारा दिया गया कृपादान नहीं बल्कि राष्ट्र का अधिकार बन गया। जो भी नागरिक अपने गणवेश के लिए व्यय कर सकता था उसे राष्ट्र रक्षक सेना में भर्ती कर लिया गया। इस सेना का काय इस अधिकार पत्र की रक्षा करना था।

लुई फिलिप (Louis Philippe) (१८३०-४८)—लुई फिलिप गड़डचिह्न (Egalite) वाले ओरलीन्स (Orleans) वंश का पुत्र था। इस वंश ने १७८९ की क्रान्ति में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। युवा अवस्था में इसने वाल्मी (Valmy) के स्थान पर फ्रांस की क्रांतिकारी सेना के साथ युद्ध में भाग लिया था। इसके बाद उसने फ्रांस से भागकर दक्षिणी यूरोप सिसली संयुक्तराज्य अमरिका इंगलण्ड स्विटजरलण्ड इत्यादि संसार के अनेक देशों में भ्रमण किया। स्विटजरलण्ड में उसने शिक्षक का काय किया। १८१४-१५ में राजशाही की स्थापना के पश्चात वह फ्रांस लौटा और अपनी पतक सम्पत्ति प्राप्त करके चेम्बर आफ पीयर्स का सदस्य बन गया। उसने पेरिस के मध्यमवर्गीय श्रमिकों के साथ अपना सम्बन्ध रखा। यद्यपि वह धनी था फिर भी वह नम्र स्वभाव का और मिलनसार व्यक्ति था। परिणामत जनता को प्रजातन्त्र और गणतन्त्र में उसकी आस्था पर विश्वास हो गया। जुलाई १८३० के विकट समय में चार्ल्स दशम को



लुई फिलिप

अनुभव हुआ कि यह केवल एक 'विद्रोह' नहीं, अपितु क्रान्ति है, फलतः अपने चारों आदेश रद्द कर दिये और पोलिगनक को अपदस्थ कर दिया। किन्तु बहुत देर हो चुकी थी और लुई फिलिप फ्रांस के सिंहासन पर बैठाया जा चुका था।

लुई फिलिप ने अठारह वर्ष तक राज्य किया और इस अवधि में मध्यमवर्ग बड़ा प्रसन्न रहा। उसे 'नागरिक सम्राट' (Citizen King) कहा जाता था। वह 'राज करता था, 'शासन' नहीं। उसने सम्राट् पद के प्राचीन चिह्नों का धारण करना छोड़ दिया था। 'मुकुट और राजदण्ड' उठाकर रख दिए गए थे। वह सफेद टोपी और हरी छतरी का प्रयोग करता था। उसने अपने बच्चों को साधारण विद्यालयों में भेजा तथा वह स्वयं जनसाधारण की तरह बाजार में सामान खरीदने जाया करता था। 'उसने फ्रांस और नवारे का सम्राट' की उपाधि छोड़कर 'फ्रांसीसियों का सम्राट् (King of the French) की उपाधि धारण की। पुष्टि-वाक्य 'परमेश्वर की कृपा से (By the Grace of God) के साथ 'और राष्ट्र की इच्छा से' (And by the Will of the Nation) वाक्य और जोड़ दिया गया। तिरंगे झण्डे को राष्ट्र ध्वज माना गया। उपाधिधारी जागीरदारों को पदों से हटाकर उनका स्थान साधारण योग्य प्रजाजनों को दिया गया और यह घोषित किया गया कि यह शासन प्रतिनिधि और संसदीय शासन है।

डी टॉकविले (De Tocqueville) के मतानुसार लुई फिलिप में वे गुण और अवगुण थे जो विशेषतः समाज के मध्यम वर्ग में हुआ करते हैं। उसका जीवन नियमित था और वह अपने सम्पर्क में रहने वालों से भी ऐसा ही चाहता था। वह चरित्र से संयमी और स्वभाव से सादा था। वह नियम का कठोर समर्थक सब प्रकार के सीमोल्लंघन और अति का शत्रु तथा महत्त्वाकांक्षाओं से मुक्त गम्भीर स्वभाव का स्वामी था। वह भावुकता से दूर मानवता का प्रतिपादक, लोभी तथा नम्र था। उसे किसी भी व्यसन से लगाव नहीं था और न ही उसमें उसे नष्ट करने वाली कोई दुर्बलता ही थी। उसमें स्पष्ट रूप से प्रतीत होने वाली कोई बुराई भी नहीं थी, हाँ, उसमें एक राजोचित गुण था, अर्थात् साहस। वह अत्यन्त मिष्टभाषी था, किन्तु उसकी नम्रता में किसी प्रकार की विशेषता या महानता नहीं थी। उसकी नम्रता एक सम्राट् की महानता न होकर एक व्यापारी की नम्रता थी। उसने शायद ही कभी साहित्य या कला की प्रशंसा की हो। हाँ उसे उद्योग से अवश्य प्रेम था। उसकी स्मरण शक्ति अगाध थी और छोटी-से-छोटी बात भी उसे भूलती नहीं थी। उसकी बातचीत बड़ी लम्बी वर्णनपूर्ण, मौलिक, साधारण, मनोरंजनपूर्ण, छोटी-छोटी बातों से भरी हुई तीखी और सारगर्भित हुआ करती थी। वह बुद्धिमान् तीव्र बुद्धि दूसरों की बात मानने वाला था। जीवन में उसका दृष्टिकोण केवल लाभदायक बातों के मानने के लिए ही रहा, इसलिए गुणों में उसे अरुचि थी। वह अठारहवीं शताब्दी की विचारधारा के अनुरूप धर्म में आस्था नहीं रखता था। वह ठीक उन्नीसवीं शताब्दी की तरह राजनीति के प्रति आस्थाहीन था। उसका स्वयं में विश्वास न होने के कारण वह किसी भी अन्य व्यक्ति का भी विश्वास नहीं करता था।

यह बात उल्लेखनीय है कि लुई फिलिप के राज्य के प्रारम्भ में लैफाईट (Lafyette) और केसिमिर पेरियर (Casimir Perrier) जसे पूँजीपति और धार्मिक सुधारवादी सत्तारूढ थे, इसलिए उसकी सरकार का उभार और बुर्जुआ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इस काल की फ्रांस की सरकार इग्लैंड के प्रथम सुधार कानून १८३२ के पश्चात् बनी सरकार का प्रतिरूप थी। केसिमिर पेरियर ने अपनी नीति की बिल्कुल संतुलित (just mean) कहकर परिभाषा की है। वह 'क्रमश प्रगति' का समर्थक था। उसका ध्येय देश के विदेशी व्यापार की उन्नति करना तथा अन्य देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना था। उसकी मृत्यु के पश्चात् समय-समय पर गुईज़ोट और थीयस ने शासन की बागडोर सँभाली। दोनो ही महत्वाकांक्षी, तीव्र और महान् लेखक थे। गुईज़ोट १८३२ से १८३६ तक शिक्षा मन्त्री और १८४० से १८४८ तक मुख्य मन्त्री रहा। वह किसी भी मूल्य पर शान्ति' की नीति का समर्थक था। वह शान्ति बनाये रखने के लिए कुछ भी कर सकता था। वह अत्यन्त भ्रष्ट व्यक्ति था और भ्रष्टाचार के सहारे ही वह ८ वर्ष तक विधान मण्डल पर छाया रहा। थीयस एक स्वतन्त्र विचारक और अवसरवादी व्यक्ति था। उसे विवाह में बहुत धन मिला था। राजनीति में उसे टलिरण्ड ने शिक्षा दी थी। यद्यपि उसने जनसाधारण से ही उठकर इतनी उन्नति प्राप्त की थी, तो भी वह इन पर विश्वास नहीं करता था। वह अठारहवी शताब्दी की सुधारवादी विचारधारा को मानने वाला था और लुई फिलिप के स्वेच्छाचारी शासन का विरोधी था। वह एक महान् लेखक था तथा चार्ल्स दशम को हटाने वाले व्यक्तियों में से वह भी एक था। वह शक्तिशाली विदेश-नीति का समर्थक और १८३२ से १८३८ तक मन्त्रिमण्डल में मन्त्रियो मे मुख्य रहा और १८४० मे प्रधान मन्त्री बना। उसे इस लिए हटा दिया गया कि वह इग्लड से युद्ध होने के खतरे पर भी मेहमत अली की सहायता करना चाहता था।

लुई फिलिप का शासन काम प्रणाली ध्येय और कार्यकर्ताओं मे मध्यमवर्गीय (Bourgeois) था। उद्योगो को प्रोत्साहन दिया गया। इग्लैण्ड से मशीनें मँगाकर देश मे उद्योगो की स्थापना की गई। देश भर म रेलो का जाल बिछाने की योजना बनाई गई और उनमे से कुछ बना भी दी गई। सार्वजनिक हित के कार्यों को ठेके पर व्यापारियो को दिया गया। उसने कोई भी ऐसा काय नहीं किया जिसे समाज प्रणाली का काम कहा जा सके। वह जनता के नेतृत्व और व्यक्तिगत अल्पव्यय का समर्थक था। एक अच्छे मध्यवर्गीय गृहस्थ की तरह सम्राट ने अपने परिवार की सारी आय उद्योग धधो मे लगा दी।

देश म स्वतन्त्र व्यापार की स्थापना के लिए आन्दोलन हुआ। किन्तु यह सोच कर कि फ्रांस के नवनिर्मित उद्योग इग्लड के उद्योग से मुकाबला नही कर सकेंगे, उद्योगो की रक्षा की नीति अपनाई गई। इग्लड की तरह फ्रांस मे कॉर्न लॉ (Corn Law) जसा कोई कानून नही बना। १८४६ मे बास्टिया (Bastiat) नाम के एक अर्थशास्त्री और व्यापारी ने फ्रांस मे एक 'स्वतन्त्र व्यापार-संघ (Free Trade Association) की स्थापना की।

देश म औद्योगिक क्रान्ति के कारण श्रमिको की अवस्था बडी असतोषजनक हो गई, किन्तु नगण्य वैधानिक नियमो के अतिरिक्त श्रमिको के हित के लिए कोई कानून नही बनाया गया। १८४१ मे एक 'उद्योग कानून (Factory Act) बनाया गया जिसके अनुसार आठ वर्ष से कम आयु के बालको से मजदूरी कराना बन्द कर दिया गया, सोलह वर्ष से कम आयु के बालको के लिए कार्य दिवस बारह घटे का रखा गया तथा बारह वर्ष से नीचे की आयु तक के बालको के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गई। इस कानून का कोई प्रभाव नही पडा क्योकि इसे लागू करने के लिए कोई व्यवस्था नही की गई।

गुईजोट (Guizot) के निर्देशन मे १८३३ म शिक्षा सम्बन्धी एक कानून बनाया गया। प्रारम्भिक शिक्षा चर्च के लिए छोड दी गई। माध्यमिक और उच्च शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण कठोर कर दिया गया। सारी शिक्षा-सस्थाओ के लिए आध्यात्मिक और सामाजिक कर्त्तव्यो की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। यद्यपि विद्यालयो की सख्या म वृद्धि कर दी गई तो भी विद्यार्थियो की उपस्थिति अनिवार्य नही थी।

धर्म के विषय मे शासन की निष्पक्ष नीति थी। पोप के साथ हुई कानकार्डेट-व्यवस्था प्रचलित रही और सरकार बिशप इत्यादि नियुक्त करके उनको वेतन देती रही। सरकार सब धर्मों को समान समझती थी और १८३१ म यहूदी धर्म को ईसाई धर्म के समान मान्यता दी गई। जिस प्रकार कैथोलिक और प्राटेस्टेन्ट पादरियो को वेतन दिये जाते थे उसी प्रकार यहूदी रब्बीयो (Rabbis) को भी वेतन मिलने लगा था।

यह काल फ्रास मे साहित्यिक दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण काल रहा है। १८३० मे विक्टर ह्यू गो का 'हिरनानी' (Hernani) नाटक प्रस्तुत हुआ। शेटोब्रियाड, मदाम डी स्टील न एक नई प्रेरणा दी जिसको ला मार्टिनी विक्टर ह्यू गो अल्फ्रेड डी मुस्सेट ने इसे कविता मे जीवन-दान दिया। बल्जाक, जाज सेण्ड और ह्यू मस ने इसे कला मे परिणत कर दिया। शास्त्रीय और नवीन कला म सघर्ष चल रहा था और इस प्रकार हमे गरीकोल्ट और डिलाक्रोइक्स के आकृतिक और सुन्दर चित्र दर्शन को मिलते हैं। '१८३० की दार्शनिक विचारधारा' के (School of 1830) कोरोट, ह्यू परे और थ्योडोर रूसो अग्रणी थे। इस काल न मूर्ति निर्माण कला के क्षेत्र म रयूडे, मार्क-डी-ले इटोले की महान् कला के प्रदर्शन दर्शन। शेटोब्रियाड की प्रेरणा से इस काल म महान् ऐतिहासिक ग्रन्थो की रचना हुई। ऐतिहासिक ग्रन्थो म थियरे (Thierry), मिचलेट (Michelet), गुइजाट, मिगनट और थीयर्स के लेख उल्लेखनीय हैं। इस राज्य-काल ने साहित्य और कला के अनेक महान फ्रासीसी निर्माताओ के दर्शन किए।

विदेश-नीति (Foreign Policy)—वस्तुत लुई फिलिप विदेशी मामलो म शान्ति की नीति का अनुसरण करता था। किन्तु वह अपने देशवासियो की यश की इच्छा (La Gloire) की पूर्णत उपेक्षा नही कर पाया। यद्यपि वह यामस्टन से अधिक अच्छे सम्बन्ध नहीं रख पाया तथापि सम्राज्ञी विक्टोरिया स उसके अच्छे

साम्राज्य था। इस प्रकार की नीति का अनुसरण करने का प्रयत्न किया गया जो इंगलैण्ड की नीति के अनुकूल हो। प्रारम्भ में जब बेल्जियम ने हालैण्ड के विरुद्ध विद्रोह किया तो लुई फिलिप की इच्छा हस्तक्षेप करने की थी किन्तु बाद में वह इंगलैण्ड की नीति अपनाने के लिए सहमत हो गया कि वह स्वतन्त्रता प्राप्त करके अपना राजा चुनने दिया जाय। उसने यूनान के नये राज्य का एक उदार राजा पाने में सहायता दी। वह बलकान में रूस का प्रभाव बढ़ने नहीं देना चाहता था।

थीयर्स इंगलैण्ड से स्वतन्त्र शक्तिशाली विदेश-नीति का समर्थक था। १८३६ में वह स्पेन की रानी इसाबेला के विरुद्ध विद्रोह को दबाने के लिए फ्रांस की सेनाएं स्पेन भेजने का समर्थक था। किन्तु सम्राट ने उसे अस्वीकार कर दिया। १८४० में इंगलैण्ड और फ्रांस में युद्ध की सम्भावना थी। इसका कारण यह था कि थीयर्स उस समय प्रधान मन्त्री था और वह मिस्र के पाशा मेहमतअली की सहायता करने के लिए दृढ़-सकल्प था। इंगलैण्ड का विदेश-मन्त्री पामर्स्टन मेहमतअली की बढ़ती हुई शक्ति को कुचलकर उसके विरुद्ध तुर्की की सहायता करना चाहता था। ब्रिटेन को आस्ट्रिया और रूस का समर्थन प्राप्त था। यदि लुई फिलिप ने थीयर्स को मनमानी करने दी होती तो इंगलैण्ड और फ्रांस में युद्ध अवश्य ही होता। उस समय थीयर्स को पदच्युत कर दिया गया और युद्ध टल गया। गुईज़ोट को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया गया जो स्वयं शान्ति में विश्वास रखता था। परिणामतः मेहमतअली को अदन और सीरिया छोड़ने पड़े और उसे मिस्र का वंश परम्परागत राज्यपाल मान लिया गया।

चार्ल्स दशम के काल में फ्रांस की सेनाओं ने अल्जियर्स नगर पर अधिकार करके उसके शासक को देश निकाला दे दिया था। बहुत वर्षों तक लुई फिलिप अल्जीरिया के विषय में नीति का निर्णय नहीं कर पाया। सरकार के सम्मुख तीन मार्ग थे—सारे देश पर अधिकार कर लिया जाय, देश के थोड़े से भाग पर अधिकार किया जाय या इस देश को बिलकुल छोड़ ही दिया जाय। उदार दल वाले इससे अपनी सेनाएं बुला लेने के पक्ष में थे। १८३४ से १८३६ तक फ्रांस की सरकार ने अल्जियर्स और कुछ समुद्री तट के छोटे कस्बों पर अधिकार किये थे। सम्राट ने इन देशों में धीरे धीरे अन्दर घुसने की आज्ञा दे दी। १८३६ में अबेद अल-कादिर द्वारा फ्रांसीसियों के विरुद्ध जिहाद की घोषणा करने पर नक्शा बदल गया। सम्राट को सेनापति ब्युगाड (Bugeaud) के नेतृत्व में अबेद अल कादिर का दमन करने और सारे देश पर अधिकार करने के लिए एक लाख सेना भेजने के लिए विवश होना पड़ा। लड़ाई बहुत लम्बी चली और बड़ी हानि हुई। १८४७ में अबेद-अल-कादिर पकड़ लिया गया और अल्जीरिया में शांति हुई। लगभग ४० हजार फ्रांसीसी इस उपनिवेश में बसा दिये गए। यह फ्रांस के औपनिवेशिक साम्राज्य का प्रारम्भ था।

लुई फिलिप अपने परिवार के हित के लिए बड़ा जागरूक था। उसकी एक पुत्री का विवाह बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड प्रथम के साथ और दूसरी का वुर्टेमबर्ग के राजा से हुआ। १८४६ में उसने अपने एक पुत्र का विवाह स्पेन की साम्राज्ञी इसाबेला द्वितीय की बहन से किया।

क्रान्ति की ओर (Towards Revolution)—१८४६ के आरम्भ होने से पहले लुई फिलिप की मध्यमवर्गीय राजशाही से देश के सारे वर्ग बड़े असन्तुष्ट हो गये। न्याय युक्ति' के समर्थक (Legitimist) लुई फिलिप को राज्य के अधिकारी नहीं मानते थे, क्योंकि उनके विचार से सिंहासन पर चार्ल्स दशम के पौत्र काउण्ट ऑफ चेम्बोर्ड का अधिकार था। वे उसकी सरकार का क्रान्तिकारी और बुर्जुआ मानते थे। गणतन्त्र के समर्थक राजशाही का समाप्त करके देश में गणतन्त्रीय शासन की स्थापना करना चाहते थे। वे सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के समर्थक थे और लुई फिलिप की बुर्जुआ राजशाही से नितान्त असन्तुष्ट थे।

समाजवादी भी लुई फिलिप की बुर्जुआ सरकार की निन्दा करते थे। मजदूरों की हालत बड़ी असंतोषजनक थी और सरकार ने उनके हित के लिए कुछ भी नहीं किया था। वास्तव में सरकार ने मजदूरों की मीटिंगों को तोड़ने के लिए शक्ति का प्रयोग किया था और श्रमिक संगठनों को रोकने के लिए कानून भी बनाये थे। फ्रांस के प्रमुख समाजवादी नेता सेण्ट साइमन, फोरियर, काबेट लुई, ब्लांक और प्राउडन थे। सण्ट साइमन दस्तकारों और इंजीनियरों द्वारा संचालित एक सहकारी सरकार का समर्थक था। उसके शिष्यों ने पेरिस के पास समाजवादी सेवाश्रम की स्थापना की, जिसने १८३० में सरकार को पर्याप्त रूप से परेशान किया। फारियर देश में सहकारी बस्तियाँ बसाने का समर्थक था। १८३० से १८४० तक फ्रांस में इसके कुछ अनुयायी थे। लुई ब्लान्क एक लोकप्रिय क्रान्तिकारी था, जिसकी माँग थी कि सरकार को सब मजदूरों को जीवनयापन के लिए उपयुक्त वेतन देना चाहिए। उसके शब्दों में, 'स्वस्थ शरीर लोगों के लिए सरकार को काम, वृद्धों और अशक्तों के लिए सहायता और सुरक्षा देनी चाहिए। यह सब बिना प्रजातन्त्रीय शक्ति के असम्भव है। प्रजातन्त्रीय शक्ति वह शक्ति है जिसका सिद्धान्त जनता का सर्वाधिकार-सम्पन्नता है, जिसका उद्गम वयस्क मताधिकार में है और जिसका चरम ध्येय स्वतन्त्रता, समानता और मैत्री की प्राप्ति है। प्राउडन एक उग्र क्रान्तिकारी था। वह व्यक्तिगत सम्पत्ति और अधिकारपूर्ण शासन के विनाश तथा स्वेच्छा से सहयोग के आधार पर निर्मित नवीन व्यवस्था का प्रतिपादक था। प्राउडन के अनुयायी थोड़े थे, किन्तु वे लोग किसी निर्माण की अपेक्षा विनाश के लिए अधिक उत्सुक थे। समाजवादी प्रचार से भी जनता में असंताप फैला।

फ्रांस के कैथोलिक गुइज़ाट की भ्रष्टाचार-पूर्ण नीति से प्रसन्न नहीं थे। वे धर्म के मामले में सरकार की उदार नीति को भी नहीं चाहते थे। वे जुलाई की राजशाही के अप्रजातान्त्रिक ढंग की निन्दा करते थे और श्रमजीवियों के हित के लिए कानून बनाने की माँग करते थे। देशभक्त, लुई फिलिप की दब्बू विदेश-नीति की निन्दा करते थे। वे अपनी विदेश-नीति को इंगलैण्ड की नीति की अनुचरी नहीं देखना चाहते थे। वे राष्ट्रीय सम्मान और यश के समर्थक थे। उन्होंने थीयर्स को अपदस्थ करने पर सम्राट की निन्दा की। थीयर्स गुईज़ाट के विरुद्ध देशभक्तों का अग्रणी बना।

लुई फिलिप के राज्यकाल में नेपोलियन की विजयों की बड़ी प्रसिद्धि हुई।

नेपोलियन की कमियों को भूलकर उसकी सफलताओं का बड़ा यशोगान हुआ। उसे एक महान् नेता तथा समाज का पुनसंस्थापक कहा जाने लगा। लुई फिलिप ने नेपोलियन की सफलताओं को चिरस्मरणीय बनाने के लिए नेपोलियन विजय-स्तम्भ का निर्माण कराया। उसने नेपोलियन द्वारा जीते गए युद्धों के नाम पर सड़कों के नाम रखे। उसने ब्रिटिश सरकार को राजी करके सेण्ट हेलेना द्वीप से नेपोलियन के अवशेषों को लाकर फ्रांस में बड़ी धूमधाम से दफनाया। लुई बोनापार्ट जो नेपोलियन का भतीजा था वे लोगों से भी नेपोलियन की यशोगाथा का और भी प्रचार हुआ। नेपोलियन के यशोगान का परिणाम यह हुआ कि जनता ने नेपोलियन की सफलताओं की तुलना में लुई फिलिप की सरकार की सफलताएं नगण्य पाई।

सुधारवादियों ने भी लुई फिलिप की सरकार की बड़ी निन्दा की। इसका कारण यह था कि इन लोगों की मनाधारण माँगें कि मताधिकार का क्षेत्र बढ़ा दिया जाय और भ्रष्टाचार को समाप्त किया जाय इत्यादि पर भी गुइजोट और लुई फिलिप ने कोई ध्यान नहीं दिया और अकर्मण्यता की नीति पर अड़े रहे। ये दमन प्रयोग समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध तथा श्रमिकों के सम्मेलनों पर रोक लगाने की नीति का व्यवहार करते रहे।

१८४७ में उदार सुधारवादियों ने जलसे करने शुरू कर दिये जिनमें सुधारों पर वाद विवाद होता तथा इस प्रकार उन्होंने जनमत को अपनी ओर आकर्षित किया। कई अवसरों पर श्रमिकों की अवस्था में सुधार के नाम पर शराब के प्यालों पर शपथें उठाई जाती थी। एक अवसर पर लमार्टिने ने राजशाही के अन्त की भविष्यवाणी की। २२ फरवरी १८४८ को सुधारवादियों ने एक विशिष्ट भोज (Monster Banquet) का आयोजन किया किन्तु सरकार ने इस पर रोक लगा दी। इससे परिस्थिति और भी जटिल हो गई। नियत दिवस पर श्रमिकों और विद्यार्थियों ने इकट्ठे होकर सुधारों की माँग के लिए नारे लगाये। मारसिलेस का क्रान्ति-गीत गाया गया और सड़कों पर जगह-जगह आग (bonfire) जलाई गई। २३ फरवरी १८४८ को राष्ट्रीय रक्षक सेना (National Guards) को व्यवस्था स्थापित करने का आदेश मिला किन्तु सरकार की आज्ञा पालन करने की अपेक्षा वे जनता से जा मिले। जनता ने गुइजोट का नाश हो के नारे लगाये और सम्राट ने गुईजोट से त्याग पत्र देने को कहा। परिस्थिति बिगड़ती नहीं यदि गुईजोट के निवास-स्थान की रक्षा करने वाले सैनिकों ने जनता की भीड़ पर गोली न चलाई होती। इस गोली चलाने से २३ प्रदर्शनकारी मारे गये और ३० घायल हुए। प्रदर्शनकारियों ने मृतकों को गाड़ी पर लादकर मशालें जलाकर सारे पेरिस नगर में घुमाया और इस कृत्य का परिणाम क्रान्ति हुआ। सड़कों पर मोर्चाबन्दी कर दी गई और 'लुई फिलिप हमारी हत्या उसी तरह कर रहा है जिस तरह चार्ल्स दशम ने की थी इस लिए उसे भी चार्ल्स का राह जाना चाहिए' इस प्रकार के सूचना-पत्र सारे पेरिस भर में लगाये गये। लुई फिलिप ने स्थिति संभालने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहा। अन्ततः उसने अपने पौत्र काउंट आफ पेरिस के लिए राज्य त्याग करके 'मिस्टर स्मिथ' के रूप में इंगलैण्ड को प्रस्थान किया।

१८४८ की क्रान्ति का वर्णन किसी ने इस प्रकार किया है "मैं अभी पूरे चार वर्ष का भी नहीं हुआ था कि एक प्रातः मेरी माता ने मुझे बिस्तर पर से गोदी में उठाया और मेरे पिता ने, जिसने नेशनल गार्ड का गणवेश पहिन रखा था बड़ी भावुकता से मुझे प्यार किया। गली से रणभेरी बजी और सड़क पर घोड़ों की टापें गूँज उठीं। कभी-कभी हमें चिल्लाने की आवाज और दूर गोली चलाने की धमक सुनाई पड़ जाती थी। मेरी माता ने खिड़की से कपड़े का पर्दा उठाकर बाहर झाँका और फूट-फूटकर रोने लगी। यह क्रान्ति थी।' (Anatole France, Le Petit Pierre)

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि लुई फिलिप का अंत इसलिए हुआ कि वह देश के सब वर्गों का प्रिय नहीं हो पाया था। वह अल्पसंख्यक मध्यमवर्ग के समर्थन पर निर्भर रहा जिसका न कोई चरित्र ही था और न ही सरकार का नियन्त्रण सँभालने का ऐतिहासिक आधार, पर ये लोग सामन्तवर्ग तथा साधारण जनता दोनों से घृणा करते थे। यदि लुई फिलिप ने सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में सुधार के प्रयत्न किये होते तो वह जनता का समर्थन प्राप्त करने में सफल हुआ होता, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह फ्रांस की जनता का प्रेम शक्तिशाली विदेश-नीति का अनुसरण करके प्राप्त कर सकता था, किन्तु उसने यह भी नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि जुलाई की राजशाही का पतन हो गया।

१८३० और १८४८ की क्रान्तियों की तुलना

१८३० की क्रान्ति मूलतः मध्यमवर्ग की क्रान्ति थी। बुर्जुआ-वर्ग पर चार्ल्स दशम की नीति से बड़ा आघात पहुँचा था और इस कारण जुलाई-क्रान्ति हुई। १८२५ में 'क्षतिपूर्ति विधेयक' लागू हुआ, इसके अनुसार भगोड़े सामन्तों की सम्पत्ति को फ्रांसीसी क्रान्ति के समय जब्त कर ली गई थी, क्षतिपूर्ति करने की व्यवस्था की गई। यह क्षतिपूर्ति राष्ट्रीय ऋण के सूद की दर ५ प्रतिशत से घटाकर ४ प्रतिशत करके की गई। इससे मध्यमवर्ग को बड़ी हानि हुई। दूसरा कारण था 'अपमान-विधेयक' (Sacribge Act) जिसके अनुसार धार्मिक काल में निर्दयता से दण्ड देने का विधान था। चार्ल्स दशम के चरित्र ने भी मध्यमवर्ग को अपने विरुद्ध कर लिया। प्रो० हैयस के अनुसार, 'चार्ल्स जिन सिद्धान्तों को मानता और प्रतिपादित करता था, वे थे सिंहासन और पूजा की वेदी की एकता, प्राचीन युग के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और बौद्धिक सिद्धान्त की स्थापना, और क्रान्तिकारी सिद्धान्तों से घृणा करना।' चार्ल्स स्वयं कहा करता था कि समय मुझे और लफायट को १७८९ से बदल नहीं पाया। इस प्रकार के विचारों वाला व्यक्ति, समानता, स्वतन्त्रता और मित्रता के सिद्धान्तों से प्रभावित फ्रांस के निवासियों पर राज्य करने के उपयुक्त नहीं था। उसकी व्यवस्था का घोर विरोध अवश्यम्भावी था। जनता जेसुइटों का देश की शिक्षा का नियन्त्रण देने को उद्यत नहीं थी। वे अपनी सन्तानों को धर्म-निरपेक्ष शिक्षा दिलाना चाहते थे। समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लग जाने से भी बड़ा असन्तोष फैला। सम्राट की अनुमति के बिना कुछ भी प्रकाशित नहीं हो सकता था। चार्ल्स दशम की सरकार ने मताधिकार में सम्पत्ति की योग्यता का स्तर ऊँचा कर

किया जिससे मध्यम श्रेणी के लोगों का मताधिकार बहुत कम हो गया। गुप्त मतदान-प्रणाली समाप्त कर दी गई और जागीरदारों को दुगने मतदान का अधिकार दिया गया। १८२७ में राष्ट्रीय रक्षक सेना को भंग कर दिया गया। संक्षेप में चार्ल्स की अनेक भूलों और त्रुटियों के कारण मध्यमवर्ग की जनता का उसके प्रति विरोध बढ़ता गया और अन्त में १८३० में उसकी सरकार का अन्त हो गया।

१८३० की क्रान्ति मूलतः एक मध्यवर्गीय क्रान्ति थी, किन्तु १८४८ की क्रान्ति मूलतः एक समाजवादी क्रान्ति थी। लुई फिलिप की सरकार के पतन में समाजवादियों का बड़ा हाथ था। फ्रांस में औद्योगिक प्रगति के कारण देश में एक नागरिक श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ। क्योंकि सरकार ने श्रमिकों की अवस्था में सुधार करने के लिए कुछ नहीं किया अतः समाजवादी नेताओं ने परिस्थिति से लाभ उठाया। सेण्ट साइमन, फोरियर, प्राउधन और लुई ब्लैन की विचारधारा ने श्रमिकों में हलचल पैदा कर दी और सामाजिक और राजनीतिक सुधारों की माँग होने लगी। श्रमिक चिल्लाते थे 'हमें रोटी दो या गोली दो'। लुई फिलिप की सरकार ने जनता द्वारा आन्दोलन करने पर भी सुधार की ओर ध्यान नहीं दिया। जनता में असन्तोष बढ़ता गया और जिसका परिणाम फरवरी क्रान्ति हुई।

इन दो क्रान्तियों के तात्कालिक कारण भिन्न भिन्न हैं। १८३० में इसके तात्कालिक कारण चार्ल्स दशम के चार अपमानजनक विधेयक थे, किन्तु १८४८ में तात्कालिक कारण २२ फरवरी के महान् उत्सव पर रोक लगाना और प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाना था।

चार्ल्स दशम का समझौता न करने वाला व्यक्तित्व जुलाई क्रान्ति का कारण था। लुई फिलिप की अलोकप्रियता उसके पतन का कारण थी। देश भर में उसका एक भी समर्थक नहीं था। थीयर्स (Thiers) को इसके पद से हटाने और १८४० से १८४८ तक गुइजोट के घूँसखोर शासन से जनता के सारे वर्ग उसके विरुद्ध हो गये थे। प्रो० हम्मों के मतानुसार उसे कोई भी नहीं चाहता था, केवल कुछ ही लोग उसका आदर करते थे और बहुत ही थोड़े मध्यमवर्गीय लोग उसके समर्थक रहे।

दोनों ही शासनों की अवधि में फ्रांस की जनता सरकार से शक्तिशाली विदेश नीति अपनाने की माँग करती रही किन्तु सरकारों ने जनता की माँग की उपेक्षा की इस कारण दोनों का पतन हुआ। चार्ल्स दशम के समय १८३० में अल्जियर्स जीत लिया गया था किन्तु यह सूचना उपयुक्त समय पर नहीं पहुँची जिससे उसकी रक्षा हो पाती। लुई फिलिप की अकर्मण्य नीति से फ्रांस की जनता तंग आ गई थी। उसके अपने शब्दों में मैं युद्ध करने की अपेक्षा बारह संसदों का दमन करने के लिए तैयार हूँ। वह विदेश-नीति का देश के हित के लिए संचालन करने की अपेक्षा अपने परिवार के हित में संचालन करता था। उसने पोलैण्ड और उत्तरी इटली के लोगों की सहायता नहीं की। जब थीयर्स तुर्की के सुलतान मेहमत अली की सहायता करना चाहता था तब लुई फिलिप ने उसे पदच्युत करके पामर्स्टन से समझौता कर लिया। गुइजोट निरन्तर शान्ति की नीति का अनुसरण करता

रहा। उसका आदर्श था, 'सब वर्गों और स्थानों में शान्ति की सुरक्षा करना।' ले मार्टिने ने इसका उत्तर दिया कि 'इस नीति का केवल एक पाषाण-स्तम्भ बना सकता है।' १८४७ में फ्रांसीसी संसद के एक सदस्य ने पूछा "इन लोगों ने गत वर्षों में क्या किया? कुछ नहीं, कुछ नहीं।'

यह बात उल्लेखनीय है कि जहाँ जुलाई क्रान्ति चार्ल्स दशम की कैथोलिक-समर्थक नीति का परिणाम थी वहाँ फरवरी क्रान्ति गुइज़ोट की धर्म विरोधी नीति का परिणाम थी। प्रधान मन्त्री पादरियों के विरोधी विश्वविद्यालयों को सहायता देता था। वह धार्मिक सहिष्णुता का समर्थक था जिसके कारण कैथोलिक बड़े रुष्ट थे।

जुलाई क्रान्ति ने देश के सिंहासन पर एक अन्य बुर्जुआ सम्राट् को बैठाया, फरवरी क्रान्ति ने प्रजातन्त्र की स्थापना की। १८३० में सार्वजनिक मताधिकार का वचन दिया गया था किन्तु १८४८ में यह अधिकार वास्तव में जनता को प्राप्त हुआ। १८३० की क्रान्ति ने सामाजिक-व्यवस्था में उथल पुथल नहीं की तथा जुलाई क्रान्ति अत्यन्त अल्पजीवी थी। लुई फिलिप के राज्यासीन होते ही व्यवस्था स्थापित हो गई थी। किन्तु फरवरी क्रान्ति में फ्रांस को जून १८४८ में घोर रक्तपात देखना पड़ा। १८३० में क्रान्ति ने दैवी अधिकारपूर्ण राजशाही को उखाड़ा किन्तु १८४८ की क्रान्ति ने मध्यमवर्ग की सीमित राजशाही को उखाड़कर एक प्रजातन्त्र शासन प्रणाली की स्थापना की जो चार वर्ष तक चली।

प्रो० हेज़ के शब्दों में 'फरवरी १८४८ की क्रान्ति आधारभूत रूप से जुलाई १८३० की क्रान्ति से भिन्न नहीं थी। दोनों ही क्रान्तियाँ पेरिस नगर की घटनाएँ थीं। दोनों ही मूलतः राजनीतिक तथा केवल सूक्ष्म रूप से सामाजिक थीं। दोनों ही प्रारम्भिक रूप से सुधारवादी थी। यह सत्य है कि एक ने सीमित मताधिकार सहित राजशाही की स्थापना की तो दूसरी ने प्रजातन्त्र की स्थापना करके वयस्क मताधिकार प्रणाली प्रचलित की। दोनों ने ही जनता की सर्वाधिकार-सम्पन्नता के सिद्धान्त को मान्यता दी। दोनों ने ही तिरंगे ध्वज को तथा मारसिलेज़ के शान्तिगान को अपनाया। दोनों में ही सम्पत्ति के स्वामियों की विजय हुई तथा दोनों ने ही उन नीतियों का अनुसरण किया जिनमें सम्पत्ति के स्वामियों की इच्छाओं का प्रतिबिम्ब झलकता था।'

सामयिक सरकार (Provisional Government)—लुई फिलिप के पतन के पश्चात् २६ फरवरी १८४८ को द्वितीय गणतन्त्र की घोषणा हुई। लिमार्टिन के मतानुसार 'राजशाही की समाप्ति और गणतन्त्र की स्थापना हुई। पुनश्च 'सामयिक सरकार ने काम देकर श्रमजीवियों का अस्तित्व सुरक्षित किया।' सरकार ने प्रत्येक नागरिक को काम देने का दावा किया। कामचलाऊ सरकार में लिमार्टिन एक उदार कैथोलिक, लिदरु-रोलन एक जेकोबिन प्रजातन्त्रवादी, लुई ब्लाक समाजवादी नेता, तथा एल्बर्ट एक श्रमजीवी थे।

लिमार्टिने के विचार से गणतन्त्र एक लक्ष्य था किन्तु लुई ब्लाक इसे लक्ष्य का

मानता था। ब्लांक द्वारा तैयार की गई एक घोषणा में व्यवस्था थी कि 'सामयिक सरकार अपने श्रमजीवियों को काम देकर उनका अस्तित्व बनाए रखने में सक्षम होगा। सरकार प्रत्येक नागरिक को काम देने का दावा करती है। २७ फरवरी, १८४८ की एक घोषणा में कहा गया था 'सामयिक सरकार राष्ट्रीय कारखानों की स्थापना की घोषणा करती है। सार्वजनिक निर्माण विभाग के मन्त्री (Minister for Public Works) को इस घोषणा की पूर्ति का कार्यभार सौंपा गया है।

लुई ब्लांक को एक आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस आयोग का कार्य था कि यह श्रमजीवियों के दावा पर विचार करे तथा उनके हितों की रक्षा करे। उसका कार्यालय लक्समबर्ग महल में था। लक्समबर्ग में लुई ब्लांक काम चलाऊ सरकार का गम्भीर प्रतिद्वन्द्वी बन गया और सरकार को अपदस्थ करके जन सुरक्षा समिति की स्थापना के कई प्रयास किये गए। लक्समबर्ग आयोग की चार माँग थी अर्थात् दिन में दस घण्टे की कार्य अवधि काम के बटवारे पर प्रतिबन्ध काम को तोड़ने की प्रथा की समाप्ति और उचित निम्नतम वेतन। इस आयोग ने अनेक योजनाओं पर विचार किया किन्तु लक्समबर्ग आयोग को एक ही बात का श्रेय दिया जा सकता है कि इससे सहकारी उत्पादन के विचार को प्रोत्साहन मिला। कहा जाता है कि दर्जियों घोड़ों के साज बनाने वालों जुलाहों और अन्य श्रमजीवियों की लगभग एक सौ सहकारी समितियों की स्थापना की गई।

पेरिस की भीड़ की हिंसावृत्ति से भी बड़ा भारी खतरा था। १७ मार्च १६ अप्रैल और १५ मई को इन तीन अवसरों पर आंतरिक मतभेद से पीड़ित सामयिक सरकार को अपदस्थ करने के प्रयत्न किये गए। इसके एक गुट का नेता लिमार्टिने और दूसरे का लुई ब्लांक और एल्बर्ट थे।

सार्वजनिक चुनाव २३ और २४ अप्रैल १८४८ को हुए और राष्ट्रीय सभा का प्रथम अधिवेशन ४ मई १८४८ को हुआ। मतदान वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ किन्तु उग्रपन्थीय व्यक्ति नहीं चुने गये। निर्वाचित सदस्यों का बहुत बड़ा बहुमत नरमदलीय व्यक्तियों का था। सामयिक सरकार ने अपनी सारी सत्ता राष्ट्रीय सभा के हाथों सौंपकर पदत्याग कर दिया। सभा ने एक कार्यकारिणी चुनी जिसमें लुई ब्लांक और एल्बर्ट दोनों में से कोई भी नहीं था। इन्हें मन्त्रिमण्डल में भी नियुक्त नहीं किया गया।

राष्ट्रीय सभा का राष्ट्रीय उद्योगों की समस्या को सुलझाना था। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि २५ फरवरी १८४८ को सामयिक सरकार ने राष्ट्रीय कारखाना की स्थापना का सिद्धांत रूप से स्वीकार कर लिया था तथा २७ फरवरी की घोषणा द्वारा इनकी स्थापना तुरन्त ही करनी थी। किन्तु वास्तव में कोई कारखाने नहीं थे और कुछ हजार व्यक्तियों को काम दिलाया जा सका था। काम माँगने वालों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती गई परिणामतः सरकार को बिना काम के भी वेतन देने को विवश होना पड़ा। केवल पेरिस निवासी ही काम की माँग नहीं करते थे

अपितु देश के ग्रामों से विभिन्न प्रकार के व्यक्ति काम प्राप्त करने के लिए पेरिस चले आए। इनकी संख्या इतनी अधिक हो गई कि सार्वजनिक व्यवस्था का खतरा पैदा हो गया और राष्ट्रीय सभा असमंजस में पड़ गई कि क्या करें? इस प्रकार की परिस्थिति में ऐमिली थामस का राष्ट्रीय कारखानों का संचालक नियुक्त किया गया। यद्यपि थामस सभी बेरोजगार व्यक्तियों को काम नहीं दे सका तथापि वह घोर अव्यवस्था में कुछ व्यवस्था स्थापित कर पाया। उसने कामदिलाऊ कार्यालय की स्थापना की। उसने आर्थिक सहायता के बाँटने के कार्य को केंद्रित किया और बेकार व्यक्तियों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी किया। धोखाधड़ी और अव्यवस्था की आशंका घट गई। कहा जाता है कि १६ अप्रल, १८४८ को ६६ हजार बेकार व्यक्तियों के नाम लिखे गये किन्तु मई समाप्त होते-होते यह संख्या एक लाख बीस हजार हो गई।

१५ मई को लगभग एक लाख व्यक्तियों की भीड़ ने राष्ट्रीय सभा भवन पर आक्रमण किया और नई सामयिक सरकार बनाई। किन्तु लिमार्टिने और लेडरू-रोलिन ने दृढ़ता से परिस्थिति संभाली। सेना की सहायता से उन्होंने भीड़ को हटा कर भगा दिया और विद्रोही नेताओं को पकड़ लिया। राष्ट्रीय कारखानों से उत्पन्न अव्यवस्था को ठीक करने के लिए तैयारियाँ की गईं। सेनापति केवैगनेक (Cavaignac) को युद्ध मंत्री नियुक्त किया गया और सेना में बहुत संख्या में लोग भर्ती किए गये। आज्ञप्ति प्रसारित की गई कि जो लोग पेरिस में अपना निवास छः महीने का सिद्ध नहीं कर सकेंगे उन्हें पारपत्र देकर राजधानी से बाहर निकाल दिया जाएगा। ठेके के काम की प्रथा के स्थान पर दिन के काम की प्रथा प्रचलित हुई। उद्योग-पतियों को आदेश हुआ कि रिक्त स्थानों को सरकार के माध्यम से पूरा करें। जो कर्मचारी गैर-सरकारी संस्थाओं में काम करने से मना करें तथा १८ से २५ वर्ष की आयु के बीच के सारे अविवाहित कर्मचारी जो सेना में भर्ती होने से मना करें उन्हें सरकारी कारखानों से निकाल दिया जाय। सरकार ने २२ जून, १८४८ को इन आज्ञाओं को लागू करने का प्रयत्न किया जिससे श्रमिकों ने बड़ा उत्पात किया। २३ जून को सारे पेरिस में बड़ा भारी दंगा हुआ और गलियों में मोर्चेबन्दी की गई। २४ जून से २६ जून तक पेरिस की गलियों में घोर युद्ध हुआ। बहुत रक्तपात हुआ और लगभग ४००० विद्रोहियों को समुद्र पार के उपनिवेशों में निष्कासित कर दिया गया। एक व्यवस्थित आंदोलन के रूप में समाजवाद नष्ट कर दिया गया। लुई ब्लाक को मृत्युदण्ड का भय दिखाया गया। वह इंगलैण्ड भाग गया। प्राउधन को कैद कर लिया गया। किन्तु समाजवाद को नष्ट करके सामयिक सरकार ने स्वयं अपना विनाश कर लिया।

यद्यपि केवैगनेक ने अपनी तानाशाही सत्ता का परित्याग कर दिया था तो भी राष्ट्रीय सभा ने उसे कार्यकारिणी (Council) का अध्यक्ष चुना। दिसम्बर, १८४८ में राष्ट्रपति के चुनाव होने तक वह भारत का शासक रहा। किन्तु वह गणतंत्र के प्रति भक्त रहा और बोनापार्ट-दल ने साम्यवादियों तथा न्यायवादियों से इसकी रक्षा का प्रयत्न किया। राष्ट्रीय कारखानों को समाप्त कर दिया गया। विद्रोही विचारों को फैलाने वाले क्लबों को बन्द कर दिया गया। कुछ समाचारपत्रों को

भग कर दिया गया। राष्ट्रीय रक्षक सेना का नियन्त्रण कर्वानियर को सौंप दिया गया।

बहुत विचार विमर्श के पश्चात् राष्ट्रीय सभा ने गणतन्त्रीय प्रणाली का संविधान तयार किया। संविधान म व्यवस्था हुई कि वयस्क मताधिकार के आधार पर उपनिवेशो और प्रदेशो द्वारा ७५० सदस्य एक ही विधान सभा के लिए चुने जायेंगे। ये सदस्य वेतनभोगी होगे। मतदान सीधा (direct) होगा। इस सभा का तीन वर्ष बाद भग कर दिया जायगा। राष्ट्रीय सभा द्वारा एक राज्य सभा (Council of State) बनाई जायेगी जो कानूनो का ममविदा तयार करेगी। फ्रास का एक राष्ट्रपति होगा जिसे जनता वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे मतदान (direct election) द्वारा चुनेगी। राष्ट्रपति अपने मत्री नियुक्त करेगा किन्तु मत्री विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होगे। राष्ट्रपति और मत्री दोनो ही सर्वोच्च न्यायालय के प्रति उत्तरदायी होंगे। राष्ट्रपति को विधेयको पर निलम्ब निषेधाधिकार (Suspensive Veto) होगा। राष्ट्रपति की कार्यावधि चार वर्ष होगी तथा वह दूसरी बार नही चुना जाएगा। एम ग्रेव (M Grevy) ने राष्ट्रपति म सम्बन्धित व्यवस्था का विरोध करते हुए कहा क्या आप लोगो को विश्वास है कि एक वह महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति जिसे आप राष्ट्रपति के सिंहासन पर बठायेंगे अपनी शक्ति को निरन्तर बनाये रखने का प्रयत्न नही करेगा ? विशेषत यदि वह व्यक्ति फ्रास पर शासन करने वाले राजवशो का वशज हुआ तो क्या आपके पास कोई आश्वासन है कि वह व्यक्ति वह महत्त्वाकांक्षी गणतन्त्र की समाप्ति नही करेगा ? ग्रीवे के विरोध होने पर भी फ्रास की संविधान सभा ने राष्ट्रपति से सम्बन्धित व्यवस्थाओ को स्वीकार करके गणतन्त्र पर घातक प्रहार किया।

नये संविधान के अनुसार चुनाव हुए और लुई नेपोलियन को राष्ट्रपति चुना गया। उसे ५४ ३४ २२६ केविगनक को १४४८ १०७ और लिमार्टिने को केवल १७ ६१० मत प्राप्त हुए। लुई नेपोलियन के राष्ट्रपति बनने से फ्रास के इतिहास मे एक नए अध्याय का आरम्भ हुआ। इसलिए आवश्यक है कि उसकी जीवनी और सफलताओ का उल्लेख किया जाय।

लुई नेपोलियन (Louis Napoleon)—लुई नेपोलियन बोनापाट का जन्म १८०८ म पेरिस म हुआ था। वह हालण्ड के सम्राट के भाई लुई बोनापाट तथा नेपोलियन प्रथम की रानी जोसफीन के प्रथम विवाह से उत्पन्न सौतेली पुत्री होर्टेन्सी व्युहारनिऐस का पुत्र था। इसलिए नामकरण के समय नेपोलियन प्रथम ने अपना नाम बोनापाट-वश की नामावलि म लिखवाया था। १८१४ म जब सयुक्त राज्य की सेनाओ ने पेरिस पर अधिकार किया प्रशिया का राजा विलियम अपने बच्चो को होर्टेन्सी के बालको के साथ खेलने के लिए ले आया था। लुई नेपोलियन की भावी जमन सम्राट से यह प्रथम भेंट थी। वाटरलू की लडाई के पश्चात होर्टेन्सी और उसके बालको ने स्विटजरलण्ड म शरण ली। १८३० की क्रान्ति के समय युवा राजकुमार रोम मे थे और वे एक गुप्त संस्था (Carbonari) के सदस्य थे। लुई नेपोलियन का बड़ा भाई इटली मे मर गया तथा जुलाई १८३२ म आस्ट्रिया की

राजकुमारी से उत्पन्न नेपोलियन प्रथम के पुत्र नेपोलियन द्वितीय की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् लुई नेपोलियन को बोनापार्ट के समर्थकों का नेता और उत्तराधिकारी माना जाने लगा।

१८३६ में पहली बार लुई नेपोलियन ने अपने अधिकारों की माग की। स्ट्रासबर्ग (Strasburg) जहाँ नेपोलियन की कट्टर समर्थक सेनाओं का पड़ाव था लुई बोनापार्ट आया और उसने मांग की कि वे देश में नेपोलियन साम्राज्य की स्थापना में उसकी सहायता करें। किन्तु वह लगभग तीन घण्टों में ही पकड़ा गया और लुई फिलिप ने इसके विरुद्ध कारवाई करने के बजाय इसे केवल संयुक्त राज्य अमेरिका भिजवा दिया। १८४० में वह पुनः बोलोने (Boulogne) नामक स्थान पर उतरा और घोषणा की 'नेपोलियन प्रथम के प्रताप केवल फ्रांस के पुनर्निर्माण होने पर ही शान्ति से रह सकेंगे। उसे फिर कैद करके हैम (Ham) के किले में बन्द कर दिया गया। बन्दीगृह से भी उसने अपना आन्दोलन जारी रखा। १८३६ तक वह एक पुस्तक 'नेपोलियनवाद की विचारधारा' (Napoleonic Ideas) लिख चुका था जिसमें उसने निजी राजनीतिक विचारों का प्रतिपादन किया था। उसके विचारानुसार 'नेपोलियनवादी साम्राज्य' से ही १७८६ के सिद्धान्तों की पूर्ति की जा सकती है। इस साम्राज्य की नींव 'राष्ट्रीय सर्वाधिकार-सम्पन्नता' के सिद्धान्त पर आधारित थी। इसका मुख्य आधार सार्वजनिक वयस्क मताधिकार था। विदेशनीति के क्षेत्र में इसका लक्ष्य राष्ट्रीय-संघ बनाना था जिसे रोम के सम्राट सीजर के सिद्धान्तों पर संगठित करना, संचालन करना तथा व्यवस्था बनाना था। १८४१ में जब वह बन्दीगृह में ही था उसने 'Fragments of Historiques' लिखा जिसमें उसने गृहयुद्ध द्वारा फ्रांस की १८३० की और इंगलैंड की १६८८ की क्रान्तियों की तुलना का वर्णन किया था। १८४४ में उसने 'The Extension of Pauperism' लिखा जिसमें उसने देश में बेकारी हटाने और आर्थिक अवस्था सुधारने की योजना का उल्लेख किया। उसका दावा था कि "वह उद्योगों का नया क्षेत्र खोल कर देश के श्रमिकों के लिए नवीन योजनाएं बनायेगा और किसानों को सहायता देकर खेती की उन्नति करेगा। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-यापन के साधन उपलब्ध होंगे और देश से गरीबी खत्म की जाएगी। उसके शब्दों में 'ईसाई धर्म की विजय के कारण संसार से दासता की प्रथा समाप्त हुई', फ्रांस क्रान्ति की विजय ने मुजारेदारी समाप्त कर दी और प्रजातन्त्र की विजय गरीबी को नष्ट कर देगी।' १८४५ में उसने 'History of Artillery' लिखा। मई १८४६ में नेपोलियन हैम के दुर्ग से भागने में सफल हुआ और इंगलैण्ड चला गया जहाँ वह दो वर्ष टिका रहा।

फरवरी १८४८ में जब क्रान्ति हुई तो लुई नेपोलियन ने द्वितीय गणतन्त्र को अपनी सेवाएँ समर्पित कीं। किन्तु उसकी सेवाएँ स्वीकार नहीं हुई और उसे आज्ञा दी गई कि वह चौबीस घण्टों के भीतर ही देश छोड़ कर चला जाए। अप्रैल, १८४८ में जब चुनाव हुए तो उसने भाग नहीं लिया। किन्तु उसके समर्थक निरंतर उसके लिए प्रचार करते रहे। जून, १८४८ में जब चुनाव हुए वह अपने क्षेत्र से अनुपस्थित होने पर भी चुन लिया गया। लुई नेपोलियन ने राष्ट्रीय सभा का

लन्दन से इस प्रकार लिखा—'मेरा नाम ही व्यवस्था, राष्ट्रीयता और यश का प्रतीक है। मुझे अत्यन्त दुःख होगा यदि इसका प्रयोग देश में अशांति पैदा करने के लिए किया गया। किन्तु जनता ने यदि मुझ पर कार्य भार डाला है तो मैं उसे पूर्णतया निभाना भी जानता हूँ।' राष्ट्रीय सभा बड़ी परेशान हुई किन्तु लुई नेपोलियन ने अपने स्थान से त्यागपत्र दे दिया। जून १८४८ के रक्तपात के दिनों में नेपोलियन दूर था इसलिए उसका नाम इन घटनाओं में नहीं आया। सितम्बर में दूसरी बार वह पाँच चुनाव क्षेत्रों से चुना गया और २६ सितम्बर १८४८ को उसने राष्ट्रीय सभा में अपना स्थान ग्रहण कर लिया। दिसम्बर, १८४८ में जब राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव हुआ तो वह आशातीत बहुमत से राष्ट्रपति के पद के लिए चुन लिया गया।

राष्ट्रपति नेपोलियन (Napoleon as President) (१८४८-१८५२)—१८४८ से १८५२ तक द्वितीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति होने के नाते लुई नेपोलियन ने इस प्रकार की नीति अपनाई कि वह फ्रांस देश की जनता का प्रेमपात्र बन सके। उसने कारखाने के श्रमिकों की प्रशंसा की। १८५० में उसने राष्ट्रीय सभा को एक कानून बनाने के लिए विवश कर दिया जिसके अनुसार वृद्धावस्था के लिए स्वयमेव बीमा हो जाता था। उसने कथोलिकों और बुर्जुआ वर्ग को भी प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। उसने फ्रांस में उद्योगों की वृद्धि के लिए प्रोत्साहन भी दिया। पोप को पुनः पदासीन करने के लिए १८४९ में एक सैनिक अभियान को रोम भेजा गया। १८५० के एक कानून के द्वारा (Falloux Law of 1850) फ्रांस में शिक्षा के अधिकार जो पादरियों को चार्ल्स दशम के समय प्राप्त थे उन्हें पुनः दे दिये गये।

१८४९ की चुनी हुई सभा में बहुत थोड़े बोनापार्टवादी थे। ७५० सदस्यों में से ५०० राजशाही के समर्थक थे। गणतन्त्रवादी अल्पमत में थे। सभा में राजनैतिक दल के नाम से कोई भी दल संगठित नहीं था और यह बात नेपोलियन के लिए हितकर सिद्ध हुई। प्रतिक्रियाशील नीति का अनुसरण करने के कारण राष्ट्रीय सभा उसके हाथों में खेलती रही। जनता के जलसों और समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगाया गया। सभा के सदस्य वैतनिक बना दिए गए। १८५० में एक कानून बनाया गया जिसके अनुसार यदि किसी व्यक्ति ने एक ही क्षेत्र में तीन वर्ष तक निवास न किया हो और राजस्व न दिया हो तो उसे मतदान का अधिकार नहीं होगा। इस कानून का यह परिणाम निकला कि श्रमजीवी लोग जो रोजगार की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते फिरते थे पूर्णतः मताधिकार से वंचित कर दिए गए। ९० लाख मतदाताओं में से ३० लाख मतदाता कम हो गए। इस कानून का विरोध हुआ। पेरिस में बड़ा असन्तोष फैल गया। लुई नेपोलियन ने इस परिस्थिति से लाभ उठाया और घोषणा की— 'जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि होने के नाते मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं राष्ट्रीय सभा को जनता के अधिकार छीनने से रोकूँ।' सभा और राष्ट्रपति में लगभग एक वर्ष तक संघर्ष चलता रहा। किन्तु जब राष्ट्रीय सभा ने उसके विरुद्ध खुले रूप से युद्ध घोषणा कर दी तो उसने राष्ट्रीय रक्षक सेना के सेनापति चंगार्नियर को पदच्युत कर दिया। चंगार्नियर के अपदस्थ कर दिए जाने से

परिस्थिति और भी जटिल हो गई। देश में राष्ट्रीय सभा की प्रतिष्ठा दिन प्रतिदिन घटती जा रही थी और नेपोलियन की प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। फ्रांस में बहुत-से लोग ऐसे थे जो देश में राजशाही अथवा तानाशाही की स्थापना करने की सोच रहे थे। उस समय की अद्भुत परिस्थिति के विषय में किसी ने कहा था 'यदि विश्व का कोई पूर्णतया नई शासन प्रणाली है तो फ्रांस उसे अपनाकर संसार को चकित कर देगा। देश राजशाही के समर्थकों से भरा है किन्तु वे उसकी स्थापना नहीं कर सकते तथा जो गणतन्त्र के भार से तिलमिला रहे हैं तथा जिसकी रक्षा के लिए गणतन्त्रवादी नहीं हैं। इस अव्यवस्था में केवल दो ही व्यक्तित्व स्थिर हैं एक नेपोलियन और दूसरा पवन। केवल दो ही घटनाएँ सम्भव हैं। अर्थात् तानाशाही या क्रान्ति। मेरी दृढ़ धारणा है कि शक्ति ही इसका हल निकालेगी।

सभा ने मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकार करके उसे त्यागपत्र देने के लिए विवश कर दिया। किन्तु राष्ट्रपति ने दूसरा मन्त्रिमण्डल नियुक्त करने से इन्कार कर दिया। इसके विपरीत उसने सभा द्वारा अपदस्थ मन्त्रिमण्डल को पुनः नियुक्त कर दिया। सभा ने राष्ट्रपति का वेतन बढ़ाने से इन्कार कर दिया। संविधान में संशोधन करने का विधेयक बहुमत से स्वीकार हुआ, किन्तु यह बहुमत संविधान के अनुसार पर्याप्त बहुमत नहीं था। किन्तु कालान्तर में संविधान में संशोधन की माँग बढ़ती गई।

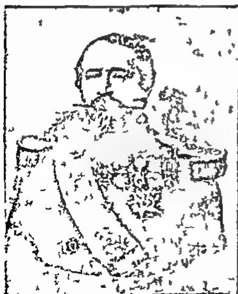
नवम्बर, १८५१ में लुई नेपोलियन ने सभा को चुनौती दी कि वह सार्वजनिक मताधिकार की स्थापना करे। सभा ने यह आदेश नहीं माना तब राष्ट्रपति ने इस विषय में कदम उठाने का निर्णय किया। उसकी गुप्त योजना को सेंट अर्नाड मापस, मोर्नी परसिगन, फ्लाहुल्ट और मोकार्ड जानते थे। १-२ दिसम्बर १८५२ की रात्रि को सरकार के विरोधियों को सोते हुए कैद कर लिया गया। पेरिस में नागरिक जिस समय जागे, उन्होंने दो घोषणा-पत्र सारे नगर में चिपके हुए देखे। जिनमें से एक जनता और सेना के प्रति था और दूसरा आज्ञप्ति था। आज्ञप्ति में घोषणा थी कि राष्ट्रीय सभा भंग कर दी गई है सार्वजनिक मताधिकार पुनः प्रचलित कर दिया गया है तथा जनता को आश्वासन दिया गया था कि उन्हें अनुमति अथवा विरोध प्रकट करने का अवसर दिया जाएगा। महत्त्वपूर्ण स्थानों पर सेना तैनात कर दी गई और विरोधियों का दमन कर दिया गया। १८५१ की यह घटना सफल हुई। देश में कोई गम्भीर गड़बड़ नहीं हुई और यह समझा जा सकता है कि जनता ने अपनी अनुमति दे दी है। प्रसिद्ध नेता थीयर्स, चंगानियर इत्यादि देश छोड़ चुके थे। २० दिसम्बर, १८५१ को देश भर में मतदान हुआ जिसके अनुसार राष्ट्रपति को द्वितीय गणतन्त्र का संविधान बनाने का अधिकार दिया गया।

नवीन संविधान (New Consitution) (१८५२)—१४ जनवरी १८५२ को राष्ट्रपति ने नया संविधान लागू किया। राष्ट्रपति की पदावधि १० वर्ष कर दी गई। उसे सारे कानून और आज्ञाएँ लागू करने का अधिकार दिया गया। मन्त्रिमण्डल केवल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी था। राज्यसभा की नियुक्ति भी वह ही करता था तथा राज्यसभा उसके ही आदेशानुसार कानूनों का मसविदा तैयार

करती थी। विधान मण्डल में दो सदन थे। सीनेट में स्थल सेना और जल सेना के सेनापति तथा धर्माध्यक्ष पदाधिकार (Ex-officio) के अनुसार सदस्य बनते थे। इसमें १५० सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते थे 'कोर लेजिसलेटिफ (Corps Legislatif) में २६१ सदस्य थे इसे निषेधाधिकार (Veto) प्राप्त था, किन्तु कानून को बनाने अथवा संशोधन करने का अधिकार नहीं था। फ्रांस की जनता ने नवीन संविधान की प्रशंसा की अर्थात् केवल यही संविधान आधुनिक फ्रांस की सामाजिक और प्रशासनिक परिपाटियों के अनुकूल है तथा देश में स्वतन्त्रता तथा नेपोलियनवाद के सिद्धान्तों का रक्षक है।" सार्वजनिक मताधिकार भी इस संविधान में था।

१८५२ के वर्ष में फ्रांस राजशाही के पथ पर अग्रसर हो रहा था। यद्यपि लुई नेपोलियन राष्ट्रपति था तो भी उसकी मूर्ति मुद्राओं पर छापी जाने लगी। सैनिक तथा सरकारी कार्यालयों पर गरुड़ का चिह्न लगाया गया। उसने देश के सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त करने के लिए समूचे देश में भ्रमण किया और भाषण दिये। नवम्बर १८५२ में सार्वजनिक मतदान द्वारा जनता ने राष्ट्रपति पद को वंशक्रमानुगत राजशाही में परिवर्तित करने के लिए अनुमति दे दी। २ दिसम्बर १८५२ को लुई नेपोलियन को नेपोलियन तृतीय सम्राट घोषित कर दिया गया। उसने १८५२ से १८७० तक फ्रांस पर शासन किया।

सम्राट नेपोलियन तृतीय (Napoleon III as Emperor) (१८५२-७०)—नेपोलियन तृतीय के शासन के दो अंग हैं अर्थात् गृहनीति और विदेशनीति। उसने अक्टूबर १८५२ में बोर्डो (Bourdeax) में दिए गए भाषण में अपने कार्यक्रम की रूपरेखा बताई थी "एक भय है जिसका निराकरण मुझे करना चाहिए। लोग शंका की भावना से कहा करते हैं साम्राज्य युद्ध है। मैं कहता हूँ साम्राज्य शान्ति है तथापि मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे भी सम्राट की तरह अनेक विजयें प्राप्त करनी हैं। मेरी इच्छा उसकी तरह कभी एक न हो सकने वाले निरंतर झगड़ने वाले दलों की दुर्भावना को शान्त करने की है और किसी को भी लाभ न पहुँचाने वाले व्यर्थ के झगड़ों को नष्ट कर देने की है। मैं अपने देश की बहुसंख्यक जनता को जो इस धर्म और आस्था के देश



सम्राट नेपोलियन तृतीय

म भी ईसा के उपदेशों से अनभिज्ञ है तथा जो संसार के सब से अधिक उर्वर देश में रहते हुए भी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को कठिनाई से जुटा पाती है, उसके लिए धर्म, सदाचार, समृद्धि जीतकर लाना चाहता हूँ। हमारे पास बहुत-सी बंजर धरती है जिसे मुझे खेती योग्य बनाना है। सड़कें बनानी हैं, बन्दरगाहों को गहरा करना है नहरों को ठीक करना है नदियों को यात्रा के योग्य बनाना है और देश में रेलों का जाल बिछाना है। मार्सेलीज के सामने एक बहुत बड़ा देश है जिसे फ्रांस में मिलाना है। हमें अपर्याप्त यातायात के तीव्र साधनों की वृद्धि करके पश्चिम की सारी बड़ी बन्दरगाहों को फ्रांस के निकट लाना है। हमारे चारों ओर ध्वंसावशेष हैं जिनका पुनर्निर्माण करना है झूठे देवताओं को नष्ट करना है और सत्य की जय करानी है। मैं साम्राज्य की स्थापना का यही वास्तविक रूप समझता हूँ। इस प्रकार की विजय प्राप्त करना चाहता हूँ। आप लोग जो मेरे चारों ओर हैं, जो इस प्रकार के साम्राज्य को चाहते हैं सब मेरे सैनिक हैं।

गृह-नीति (Home Policy)—नपोलियन तृतीय ने जनता को दिए गए वचनों को पूरा करने का प्रयत्न किया। अव्यवस्था फैलाने वाली शक्तियों का दमन किया गया। उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन मिला। डाक की व्यवस्था में सुधार हुआ। सड़कें नहरें और बन्दरगाहें बनाई गई। पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक फ्रांस में रेलों का जाल बिछा दिया गया। खेती व्यापार और उद्योग के लिए ऋण दिया जाने लगा। देश में दो केन्द्रीय बैंकों की स्थापना हुई—Credit Foncier and Credit Mobilier। पेरिस तथा अन्य प्रान्तों में खेती के लिए बैंक बनाए गए। यातायात के साधनों की उन्नति के कारण किसानों की हालत में बड़ा सुधार हुआ। सरकार किसानों की खेती और फलों के बागों में बड़ी दिलचस्पी लेती थी। घोड़ों की नस्ल सुधारने के लिए सहायता दी जाती थी। दलदल वाले स्थानों को सुखा कर खेती कराई जाने लगी।

पेरिस का पुनर्निर्माण किया गया और इसे अधिक खुला, अधिक स्वच्छ अधिक सुन्दर तथा अधिक सुरक्षात्मक बनाया गया। पेरिस में सुन्दर चौराहे और शानदार सरकारी इमारतें बनाई गई। बेरन हाउसमन (Baron Haussmann) के प्रबन्ध में पेरिस को संसार का सबसे सुन्दर तथा आकर्षक नगर बनाने का प्रयत्न किया गया।

नपोलियन ने श्रमजीवियों में यह धारणा जमाने का यत्न किया कि वह स्वयं भी उनका एक सहयोगी है। वह रेलवे के इंजीनियरों के साथ इंजन के डिब्बों में बैठकर घूमता, सड़कों पर मिस्त्रियों और मजदूरों से बातें करता, उनके साथ बैठकर उनकी खुशहाली के लिए शराब पीता था। उनके संगठनों को वह आर्थिक सहायता देता था। मरणवालों को भी आर्थिक सहायता दी जाती थी जिससे मजदूरों को सस्ते दामों पर रोटी प्राप्त हो। मजदूरों को त्योहारों पर छुट्टियाँ मिलती थीं। श्रमजीवियों के लिए घर बनाने दुर्घटना तथा वृद्धावस्था के लिए बीमे की योजनाएँ भी चलाई गई। श्रमिक-संघों को वैधानिक मान्यता प्रदान की गई थी। १८६३ के एक कानून

के अनुसार मजदूरों को सामूहिक क्रय विक्रय के लिए सहकारी समितियाँ बनाने की अनुमति दी गई थी। १८६४ के एक अन्य कानून के अनुसार मजदूरों द्वारा हड़ताल करने के अधिकार को मान्यता दी गई। १८६८ के एक कानून के अनुसार मृत्यु और काम करते समय दुर्घटना के शिकार होने की अवस्था में काम की व्यवस्था भी की गई थी।

औद्योगिक क्षेत्र में सरकार की नीति उदार थी। निजी व्यापार पर सरकार का नियन्त्रण क्रमशः कम कर दिया गया। मशीनों के प्रयोग तथा औद्योगिक संघों के बनाने के लिए सुविधाएं दी जाने लगी। बचत के लिए बैंक चालू किए गए। कर क्रमशः कम कर दिए गए। १८६० में इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच एक व्यापारिक संधि हुई जिसके अनुसार दोनों देशों के बीच व्यापार सरल हो गया। १८५५ में महान् अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी पेरिस में हुई जिसका उद्देश्य लोगों पर देश की आर्थिक प्रगति और खुशहाली का प्रभाव डालना था।

नेपोलियन तृतीय ने कैथोलिकों को खुश रखने की नीति का निरन्तर अनुसरण किया। १८४९ में उसने रोम में पोप को पुनः पदस्थ करने के लिए फ्रांस की सेनाएँ भेजी थी। उसने सार्वजनिक विद्यालयों और विश्वविद्यालयों पर पादरियों का नियन्त्रण बढ़ाने में सहायता दी थी। १८५९ में इटली के अभियान को मध्य में ही बन्द करने का एक कारण यह भी था कि उसे फ्रांस के कैथोलिकों के विरोध का भय था। महारानी इयुगनी कैथोलिक चर्चों को बहुत दान दिया करती थी। नेपोलियन तृतीय ने फिलस्तीन (Palestine) के कैथोलिक साधुओं की सहायता के उद्देश्य से ही क्रीमिया के युद्ध में हस्तक्षेप किया था। वह संसार भर के कैथोलिकों का संरक्षक बनना चाहता था।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि कम-से-कम १८६० तक तो नेपोलियन तृतीय फ्रांस का तानाशाह बना रहा। वह देश में सब चीजों का नियन्त्रण करता था। समाचारपत्रों पर कड़ा नियन्त्रण था। जनता की गतिविधि पर दृष्टि रखने और प्रतिबन्ध लगाने के लिए गुप्तचरों का जाल फैला हुआ था। विधानमण्डल पर उसका नियन्त्रण इस प्रकार था कि सरकारी सदस्यों के चुनाव का खर्चा राष्ट्रीय-कोष से दिया जाता था जबकि अन्य सदस्यों को चुनाव के लिए स्वयं खर्च करना पड़ता था। चुनाव-यन्त्र पूर्णतः सम्राट के वश में था। १८५८ के एक कानून के अनुसार प्रत्येक सदस्य को सम्राट के प्रति वफादार रहने की सौगंध उठानी पड़ती थी। उसी वर्ष में प्रचलित एक अन्य कानून के अनुसार फ्रांस अथवा अल्जीरिया को राजनीतिक अपराधियों को बिना अभियोग चलाए नजरबन्द अथवा निष्कासित किया जा सकता था।

यह परिस्थिति उस समय तक बनी रही जब १८६० में संविधान को संशोधित किया गया तथा सरकार को अधिक उदार बनाया गया था। सीनेट और विधान सभा के सम्राट के भाषण पर प्रति वर्ष वाद विवाद तथा मतदान करने की अनुमति दी गई थी। संसद् में हुए वाद विवाद की अक्षरशः विज्ञप्ति प्रकाशित होने

लगी थी। बायमण्डल अपनी कारवाई की सूचना विधानमण्डल को दे देता था।

इन सब छूटों के होने पर भी १८६३ के सार्वदेशिक चुनावों में गणतन्त्रवादियों को बहुमत से जीत हुई। ज्यूलिस साइमन, थीयस फ़ेरी और गमबट्टा संसद् में पुनः सदस्य बनकर आए। प्रिफ़क्ट्स के प्रभाव के कारण सरकार को बहुमत प्राप्त हुआ तथापि विरोधी दल शक्तिशाली था और नेपोलियन तृतीय को परेशान करने के लिए पर्याप्त था।

१८६६ में ओलीवियर ने 'सुधारवादी सरकार की विचारधारा का समर्थन करने के विचार से एक नया राजनीतिक दल बनाया। १८६७ में सम्राट् ने 'राष्ट्र की इच्छा से निर्मित वर्गों का मुकुट पहनाने की घोषणा की। समाचारपत्रों का प्रतिबन्ध ढीला कर दिया गया। सार्वजनिक जलसा को करने का सीमित अधिकार माना गया। मन्त्रियों को विधानमंडल में बैठकर प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते थे तथा विवाद में भाग लेना पड़ता था।

१८६६ के सार्वदेशिक चुनावों के पश्चात् ओलीवियर को मन्त्रिमंडल बनाने के लिए कहा गया। नया मन्त्रिमण्डल विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी तथा सुधारवादी था। विधानमण्डल को विवाद करने की राष्ट्र-धन पर नियन्त्रण रखने की प्रतिबन्धहीन छूट दी गई थी। ओलीवियर के शब्दों में "यह १७८६ के पश्चात् सबसे पूर्ण और वास्तविक उदार संविधान था जिसका फ्रांस ने उपभोग किया है।"

२६ नवम्बर १८६६ को नेपोलियन तृतीय ने राज्यसिंहासन से दिए भाषण में साम्राज्य पर किए गए आक्षेपों का उल्लेख तथा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार पर आधारित फ्रांस साम्राज्य की शक्ति का वर्णन भी किया था। उसने घोषणा की, 'स्पष्ट है कि फ्रांस स्वतन्त्रता चाहता है किन्तु व्यवस्था सहित स्वतन्त्रता चाहता है। भद्र पुरुषो! आप लोग स्वतन्त्रता की रक्षा करने में मेरी सहायता करें और व्यवस्था को बनाए रखना मेरा उत्तरदायित्व है।' सम्राट ने अधिक सुधारों के कार्यक्रम की रूप रेखा भी बनाई। सत्ता विकेन्द्रित करने की घोषणा की गई। कम्यूनों द्वारा उनके महापौर चुने जाने की व्यवस्था हुई। जनता को परिषदों के सदस्यों को चुनने का अधिकार दिया गया। कैण्टनों को भी परिषद् बनाने की अनुमति दी गई। निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा में सुधार किया गया। कारखानों में बालकों द्वारा मजदूरी करने पर नियन्त्रण रखा जाने लगा। जनता के हित के लिए ग्रामों में बचत के बैंक खोले गए। इन सुधारों की योजना जनता की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए प्रकाशित हुई तथा इसको अत्यन्त बहुमत से समर्थन हुआ। किन्तु १८७० में सीडान के युद्ध में नेपोलियन तृतीय की पराजय हुई और उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा। इसके कारण द्वितीय राजशाही समाप्त हुई और तृतीय गणतन्त्र की घोषणा सितम्बर १८७० में हुई।

नेपोलियन तृतीय की विदेश-नीति (Foreign Policy of Napoleon III)—फ्रांस के गणतन्त्र के राष्ट्रपति होने के नाते तथा फ्रांस का सम्राट होने के नाते, लुई नेपोलियन ने शान्ति के समर्थक होने का प्रचार किया किन्तु वास्तव में वह शक्ति

वादी विदेश-नीति का अनुसरण करता रहा जिसके कारण फ्रांस को कई बार युद्धों में उलझना पड़ा। उसकी आक्रामक विदेश-नीति के अनेक कारण थे। लुई नेपोलियन एक राष्ट्रवादी व्यक्ति था और इटली, जर्मनी और पोलैण्ड की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती हुई जनता के साथ उसे हार्दिक सहानुभूति थी। उसकी देशभक्ति ही थी जिसके कारण फ्रांस की जनता उसकी ओर आकर्षित हुई। उसका नेपोलियन नाम ही १८४८ में उसके राष्ट्रपति चुने जाने तथा बाद में उसकी प्रतिष्ठा का मूल कारण था। वह अपने नाम को अपने चाचा के पदचिह्नों पर चल कर ही सार्थक कर सकता था किन्तु इसका अर्थ युद्ध-ग्रस्त हो जाना था। नेपोलियन ने यह भी अनुभव किया कि शक्तिशाली विदेश-नीति का पालन करने से ही वह देश की सारी जनता का प्रिय हो सकेगा क्योंकि फ्रांस की जनता यश की भूखी थी। वह सभ्यता का केन्द्र तथा यूरोप की दलित जातियों द्वारा सहायता प्राप्त करने का मुख्य स्रोत भी था। यूरोप के राष्ट्र सहायता के लिए उसकी ओर देखा करते थे। स्वयं नेपोलियन को आशा थी कि वह अन्य प्रदेशों को अपने देश की सीमा में मिला कर राष्ट्र के यश और प्रतिष्ठा की वृद्धि कर सकेगा।

उपनिवेशों के क्षेत्र में नेपोलियन ने सारे अल्जीरिया को फ्रांस में मिला लिया और यह देश एक बड़ा धनधान्यपूर्ण सरक्षित प्रदेश बन गया था। चीन के विरुद्ध इसने इंगलैण्ड के साथ सैनिक प्रदर्शन में भाग लिया जिसके परिणामस्वरूप चीन की अनेक बन्दरगाहें यूरोपीय देशों के लिए खुल गई। १८५१ में उसने अनाम और कोचीन चीन के विरुद्ध सैनिक अभियान किए तथा १६६३ में उसने कम्बोडिया को फ्रांस के संरक्षण में रख लिया था।

रोम (Rome)—१८४६ में लुई नेपोलियन ने रोम में फ्रांस की सेनाओं को गणतन्त्रीय शासन का दमन करके पोप की पुनर्स्थापना करने के लिए भेजा। गणतन्त्र पराजित हुआ और पोप का राज्य स्थापित हुआ। फ्रांस की सेनाएँ १८४६ से १८७० तक रोम में रहीं। उसने रोम में इसलिए हस्तक्षेप किया कि उसे फ्रांस के कैथोलिकों का समर्थन प्राप्त हो जाएगा जिनकी इच्छा पोप को पुनः प्रतिष्ठित देखने की थी।

क्रीमिया का युद्ध (Crimean War)—१८५४ में नेपोलियन तृतीय ने क्रीमिया के युद्ध में हस्तक्षेप किया। नेपोलियन और ज़ार निकोलस प्रथम के सम्बन्ध अत्यन्त कटु थे। ज़ार नेपोलियन को एक नीच व्यक्ति समझता था और नेपोलियन १८१२ में हुए फ्रांस के अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता था। फ्रांस के व्यापारी सुधारवादी और कैथोलिक अनेक कारणों से रूस से घृणा करते थे। फिलिस्तीन में किन्हीं कारणों से कैथोलिक और कट्टर-पन्थी साधुओं में झगड़े हुए। ज़ार निकोलस प्रथम ने तुर्की से तुर्क साम्राज्य में ईसाइयों की रक्षा के लिए रूस के अधिकार को मान्यता देने के लिए कहा। नेपोलियन ने तुर्की के सुल्तान को रूसी आक्रमण को रोकने के लिए सुझाव दिया। तुर्की के सुल्तान ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था। रूस और तुर्की में युद्ध छिड़ गया। तुर्क-साम्राज्य की रक्षा के लिए फ्रांस और इंगलैंड का गठबन्धन हो गया था। प्रारम्भ में इंगलैण्ड और फ्रांस, दोनों की ही सेनाओं ने मार

खाई और बहुत हानि उठाई। किंतु निकोलस प्रथम की मत्यु तथा १८५५ मे पामस्टन के इग्लण्ड का प्रधान मन्त्री बन जाने के पश्चात् पासा पलट गया। रूस पराजित हुआ और १८५६ मे 'पेरिस-सन्धि' द्वारा शांति स्थापित हुई। पेरिस के सन्धि सम्मेलन की अध्यक्षता करके नेपोलियन को निश्चय ही बडी सतुष्टि हुई होगी। इससे भी उसकी प्रतिष्ठा म वृद्धि हुई।

इटली (Italy)—नेपोलियन ने इटली के मामलो म देश के सगठित होने म सहायता देने के विचार से हस्तक्षेप किया। युवावस्था म वह स्वय एक गुप्त सस्था (Carbonari) का सदस्य था जो इटली से आस्ट्रिया का निकालन तथा देश को सगठित करने के लिए काम कर रही थी। बोनापार्ट के वशजो के शरीर मे इटली का रक्त था। इटली के सगठन के लिए आस्ट्रिया से युद्ध करना फ्रास के उदारदलीय लोगो के लिए भी प्रिय था। नेपोलियन को भी कुछ क्षतिपूर्ति मिलने की सम्भावना थी। इन सब परिस्थितियों के होने पर भी नेपोलियन इटली के मामले म हाथ डालने स बचाव करता रहा। उसकी धारणा थी कि आस्ट्रिया की शक्ति को देखते हुए युद्ध करना एक खतरनाक काय है। पुनश्च, सगठित इटली भूमध्यसागर के क्षेत्र म फ्रास का बलवान प्रतिद्वन्द्वी बन सकता था। फ्रास के कैथोलिक इटली मे पोप की प्रभुत स्थिति के कारण इटली के सगठन के लिए फ्रास के हस्तक्षेप का विरोध अवश्यमेव करते। ऐसी परिस्थिति मे नेपोलियन का घोर असमजस म पड जाना स्वाभाविक ही था। किन्तु १८५८ म ओरसिनी नाम के एक इटली के क्रान्तिकारी द्वारा इसकी हत्या के प्रयत्न करने पर इसकी हिचकिचाहट समाप्त हो गई। नेपोलियन ने इस प्रभावशाली इटली के हत्यारे की शिकायत को दूर करने का निर्णय किया। उसने पोप और फ्रास के कैथोलिको का विरोध सहन करने का निर्णय भी किया।

१८५८ में नेपोलियन और कैवूर म प्लाम्बीयस के स्थान पर यह समझौता हुआ कि नेपोलियन आस्ट्रियनो को लोम्बार्डी और विनिशिया से निकालने के लिए पीडमाण्ट की सहायता करेगा। इस सहायता के बदले मे उसे सवाय और नाईस दिया जाएगा। अप्रैल, १८५९ म आस्ट्रिया की सरकार ने सारडीनिया को चुनौती दी कि वह अपनी सेनाओ को कम कर दे। सारडीनिया ने यह आदेश मानने म इन्कार कर दिया, परिणामत सारडीनिया पीडमाण्ट के विरुद्ध युद्ध छिड गया। क्योंकि आस्ट्रिया आक्रमणकारी था, नेपोलियन सारडीनिया पीडमोण्ट की सहायता के लिए आगे बढा और इनकी इकट्ठी सेनाओ की मजेन्टा और सालफर्नो की लडाई म विजय हुई। सोलफर्नो की लडाई के बाद नेपोलियन ने यकायक लडाई बन्द करके आस्ट्रिया के साथ सुलह कर ली जिसका समर्थन ज्युरिच सन्धि मे हुआ। ज्युरिच सन्धि के अनुसार जब आस्ट्रिया की सेना ने लोम्बार्डी खाली किया, परमा माडिना और टुस्कने की जनता ने विद्रोह करके अपने अपने राजाओ को देश से निकाल भगाया। इन लोगो ने सारडीनिया-पीडमाण्ट के साथ सगठित होने की योजना भी स्वीकार की। टयुरिन की सन्धि के अनुसार नेपोलियन तृतीय ने पीडमाण्ट द्वारा टुस्कने, परमा, मोडिना और लोम्बार्डी को मिला लेने को मान्यता दी और स्वय नाइस और सवाय पर अधिकार कर लिया।

टेलर के विचार में 'सेवाय के विलीनीकरण (Annexation) ने दूसरे साम्राज्य के इतिहास में महान् परिवर्तन किया। तब तक यह दलील देना स्वीकार करने योग्य था कि नेपोलियन फ्रांस के प्रत्यक्ष अभियान के बिना दूसरों का स्वतन्त्र कर यश की खोज कर रहा था। अब उसने प्राकृतिक सीमाओं की क्रान्तिकारी नीति ग्रहण कर ली थी जो प्रत्यक्षतः यूरोप के ऊपर फ्रांस का आधिपत्य जमाने की ओर बढ़ती मालूम होती थी। ब्रिटिश सरकार युद्ध के द्वारा घटनाओं के एस घत्र का विरोध न कर सकी जो इटली के एकीकरण में सहायता दे सकता था, लेकिन उनमें नेपोलियन तृतीय के प्रति वह विश्वास न आ सका जो मार्च १८६० ई० में जा चुका था।" (The Struggle for Mastery in Europe p 118)

यद्यपि नेपोलियन तृतीय को सवाय और नाइस मिल गए तथापि अन्ततः उसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। रूस पहले से ही शत्रु था अब आस्ट्रिया एक नया शत्रु बन गया। इटली के देशभक्त अत्यन्त कठिन समय में दिए गए नेपोलियन के धोखे को नहीं भूल सकते थे। नेपोलियन तृतीय अकेला रह गया और इसके अतिरिक्त वह धोखेबाज कहा जाने लगा। इटली में हस्तक्षेप करने के कारण फ्रांस का राष्ट्रवादी दल दो दलों में बँट गया। फ्रांस के कैथोलिक उस पर इस मामले में औचित्य की सीमा लाँघने का आरोप और दूसरी ओर उदार दल के लोग उस पर इस मामले में ढिलाई से काम लेने का आरोप लगाते थे। इन दो दलों के मतभेद दिन प्रति दिन बढ़ते ही गए और नेपोलियन इनको अपने वश में नहीं रख सकता था। १८६० में उदार दल का समर्थन प्राप्त करने के लिए उसे अपनी सरकार को सुधारवादी बनाने के लिए विवश होना पड़ा।

सोलफर्नो के युद्ध के बाद नेपोलियन द्वारा सहसा युद्ध बन्द करने के अनेक कारण बताए जाते हैं। कहा जाता है कि नेपोलियन हार्दिक रूप से कायर व्यक्ति था और वह सालफर्नो के युद्ध में हुए घोर रक्तपात को सहन नहीं कर पाया। उसके गुर्दे (Kidney) खराब हो गए थे और उसका स्वास्थ्य युद्ध के कठोर परिश्रम सहन कर सकने में असमर्थ था। उसने यह भी सोचा कि यदि सारा इटली एक हो गया तो इटली में पोप का कोई स्थान नहीं रहेगा और वह इस परिस्थिति के लिए तैयार नहीं था। यदि उसने इटली के राष्ट्रवादियों द्वारा पोप को इटली से बाहर निकालने दिया होता तो फ्रांस के कैथोलिकों की कटु आलोचना के कारण वह बड़ी कठिन परिस्थिति में हो जाता। आस्ट्रिया की सेनाएँ विनिशिया में दृढ़ता से जमी हुई थीं और वहाँ पर फ्रांस की सेनाओं की पराजय की पूरी सम्भावना थी। इस परिस्थिति में प्रशिया की ओर से भी खतरा था, क्योंकि रहायन नदी के किनारे उसने अपनी सेनाएँ इकट्ठी कर रखी थीं।

रूमानिया (Rumania)—रूमानिया के संघर्ष में सहायता करने के कारण नेपोलियन तृतीय की प्रतिष्ठा बढ़ी। १८५६ में मोलडाविया और वालाचिया को अपने प्रशासन के लिए स्वायत्तता दे दी गई थी। दो वर्ष बाद नेपोलियन ने उन्हें अपने राजा तथा संविधान प्राप्त करने का अधिकार दिला दिया था। तीन वर्ष बाद

नेपोलियन ने यूरोप की शक्तियों को इस बात के लिए राजी कर लिया कि दोनों प्रदेश संयुक्त हो जायें और उनका एक ही राजा हो। इस प्रकार उसने रूमानिया को संयुक्त होने में सहायता दी थी।

पोलण्ड के निवासी (The Poles)—नेपोलियन तृतीय को फ्रांस के सब वर्गों का संगठित समर्थन प्राप्त था कि पोलैण्ड के निवासियों को रूस की दासता से छुटकारा प्राप्त करने के संघर्ष में सहायता की जाये। फ्रांस के उदार दल के लोग पोलण्ड की स्वतन्त्रता के समर्थक थे। फ्रांस के कैथोलिक चाहते थे कि नेपोलियन पोलैण्ड निवासियों की सहायता करे क्योंकि ये कैथोलिक थे। किन्तु १८६३ में जब पोलैण्ड के लोगों ने विद्रोह किया तो नेपोलियन ने उनकी सहायता नहीं की थी। उसे डर था कि प्रशिया और आस्ट्रिया रूस का साथ देंगे और रूस के साथ युद्ध का परिणाम फ्रांस के लिए आत्मघात के बराबर था। परिणाम यह हुआ कि पोलैण्ड के विद्रोहियों का बड़ी निर्दयता से दमन किया गया और फ्रांस का उदार दल तथा कैथोलिक नेपोलियन से असंतुष्ट हो गए।

मैक्सिको (Mexico)—जब मैक्सिको की सरकार ने दश के कर्ज को देने से इन्कार कर दिया तो फ्रांस इग्लैण्ड और स्पेन ने अपने अधिकारों को मान्यता दिलाने का निर्णय किया था। इनमें से अन्य दो देशों ने सैनिक कार्यवाही न करके विचार विमर्श द्वारा मामला सुलझाने का प्रयत्न किया किन्तु १८६२ में नेपोलियन ने तीस हजार सैनिकों की सेना मेक्सिको भेजी। उसका उद्देश्य मेक्सिको में एक कैथोलिक और लेटिन साम्राज्य स्थापित करना था। फ्रांस कैथोलिकों को मेक्सिको के लोगों को कैथोलिक धर्मानुयायी बनाने का अवसर देकर नेपोलियन को प्रसन्न करना चाहता था। फ्रांस के देशभक्तों को यश तथा व्यापारियों को कच्चा माल और नई मण्डियाँ प्राप्त होने की आशा थी। १८६४ में नेपोलियन ने आस्ट्रिया के सम्राट के भाई मैक्सिमिलियन को मेक्सिको का राजा बनाया। संयुक्त राज्य अमेरिका जब तक देश में गृह-युद्ध चलता रहा, तब तक चुप रहा किन्तु युद्ध समाप्त होते ही अमेरिका की सरकार ने मुनरो सिद्धांत (Monroe Doctrine) के आधार पर फ्रांस को मेक्सिको खाली करने का आदेश दिया। १८६७ में नेपोलियन तृतीय को मेक्सिको से अपनी सेनाएँ हटाने के लिए विवश होना पड़ा। मेक्सिमिलियन ने थोड़ी देर कर दी और उसे गोली मार दी गई। मेक्सिको का अभियान पूर्णत असफल रहा और नेपोलियन तृतीय की प्रतिष्ठा को बड़ा गम्भीर धक्का पहुँचा। मेक्सिमिलियन की मृत्यु से आस्ट्रिया शत्रु बन गया था। फ्रांस की सेनाएँ मेक्सिको में व्यस्त होने के कारण नेपोलियन १८६६ के आस्ट्रिया प्रशिया युद्ध में प्रभावशाली रूप से भाग नहीं ले सका।

हैजन के मतानुसार, "फ्रांस के सम्राट् को इस अभियान का बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ा। १८६४ ६६ के समय मध्य यूरोप की घटनाओं में वह उचित रूप से भाग नहीं ले सका। डेनिश युद्ध और आस्ट्रिया प्रशिया के युद्धों के परिणामों ने यूरोप में फ्रांस का महत्त्व घटा दिया और प्रशिया जैसे महत्त्वाकांक्षी, आक्रमणकारी और

सनिक दृष्टि से शक्तिशाली राष्ट्र का महत्व बढ़ गया। यूरोप म उसको चरित्रहीन माना जाने लगा क्योंकि उसने संयुक्त राज्य की धमकी के सामने घुटने टेक कर अपने गरक्षित प्रदेशों को भयानक परिस्थितियों म उनके भाग्य पर छोड दिया था। इससे देश म भी उसकी प्रतिष्ठा को बडा धक्का पहुँचा।

आस्ट्रिया प्रशिया युद्ध (Austro-Prussian War) (१८६६)—१८६६ म आस्ट्रिया और प्रशिया म युद्ध हुआ जो केवल सात सप्ताह चला। आस्ट्रिया की सेनाए साडोवा (Sadowa) के युद्ध म पराजित हुई और आस्ट्रिया न प्रशिया से सधि कर ली। जिस तेजी और पूर्णता से प्रशिया को विजय प्राप्त हुई उससे नपोलियन तृतीय की सारी योजनाएँ उलट-पुलट हो गइ। उसे आशा थी कि यह युद्ध पर्याप्त अवधि तक चलेगा और वह इस युद्ध म प्रभावशाली रूप से हस्तक्षेप कर सकेगा। नपोलियन की धारणा थी कि प्रशिया पराजित होगा और जमनी अत्यन्त शक्तिहीन हो जाएगा। किन्तु साडोवा के युद्ध म आस्ट्रिया की पराजय से सारी योजनाए असफल हो गइ। युग युगान्तर से फ्रास की नीति थी कि जमनी को विभाजित और निबल रखा जाय किन्तु प्रशिया की विजय और जमनी के सगठित हो जाने के कारण फ्रास का बडा खतरा हो गया था। प्रशिया की सनिक सफलता फ्रास के लिय चुनौती तथा उसकी सुरक्षा के लिए एक बहुत बडा भय था। यह ठीक है कि साडोवा के युद्ध म वास्तव मे फ्रास की ही पराजय हुई। नेपोलियन अपनी इस कूटनीतिक हार का बदला लेना चाहता था और इससे फ्रास और प्रशिया के युद्ध की सम्भावना और भी दृढ हो गई।

फ्रास प्रशिया युद्ध (Franco Prussian War) (१८७० ७१)—१८६५ म बियारित्ज के स्थान पर नेपोलियन तृतीय बिस्माक से मिला। इस भेंट म बिस्माक न नपोलियन तृतीय को यह आश्वासन दिया कि फ्रास को बेल्जियम या रहायनलण्ड का प्रदेश क्षतिपूर्ति के रूप म दिया जाएगा। १८६६ के युद्ध के पश्चात् नेपोलियन न क्षतिपूर्ति के रूप म बल्जियम की माँग की। किन्तु उसकी माँग ठुकरा दी गई। वह रहायन पलटाइनेट भी प्राप्त नही कर सका। उसन लक्सम्बग को खरीदने का प्रस्ताव रखा। हालण्ड का राजा लक्सम्बग बेचने को तयार था किन्तु बिस्माक ने आक्षेप किया। नपोलियन ततीय युद्ध के लिए तयार नही था इसलिए उसने इस मामले को १८१५ की सधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों की सभा को निणय के लिए भेजा। १८६७ म लन्दन म इसका निणय हुआ जिसके अनुसार लक्सम्बग को एक स्वतत्र राष्ट्र बना दिया गया और सब महान् शक्तियों ने इसे मान्यता दी। इस प्रकार नेपोलियन का लक्सम्बग भी नही मिला।

फ्रास की जनता नेपोलियन तृतीय की कूटनीति से तग आ गई थी। बहुत से लोग देश म बुरबोन या ओरलियन राजवश की स्थापना की सोचने लगे थे। बहुत से मध्यमवर्गीय व्यापारी तथा कमचारी लोग फ्रास म गणतत्र की स्थापना करने की सोचने लग थ। फ्रास म राजशाही तथा गणतत्रीय प्रवृत्तियों की प्रगति से भी नेपोलियन की स्थिति निबल हुई। नपोलियन ने सोचा कि अपनी स्थिति बनाए रखने

के लिए जनता को सुविधाएँ देनी चाहिएँ। परिणामतः समाचारपत्रों के प्रतिबन्ध ढीले कर दिए गए। उसने सरकारी सदस्यों के चुनाव का व्यय भी बन्द कर देना स्वीकार किया। मन्त्रिमण्डल सम्राट की अपेक्षा विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। उसने उदार राजशाही के समर्थक ओलिवियर को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। १८७० में द्वितीय साम्राज्य के लिए नया संविधान बनाया गया। इसमें व्यवस्था की गई कि विधानमण्डल का द्वितीय सदन सम्राट के अधिकार में नहीं रहेगा। इन सुधारों से उदार राजशाही के समर्थकों का समर्थन प्राप्त हुआ। किन्तु इनसे देश के न्यायवादियों और गणतन्त्रवादियों की सन्तुष्टि नहीं हुई।

फ्रांस में प्रशिया के प्रति अत्यन्त विरोधी विचारधाराएँ प्रचलित थीं। फ्रांस के सुधारवादी प्रशिया को एक प्रतिक्रियावादी राष्ट्र मान कर घृणा करते थे। फ्रांस के कैथोलिक प्रशिया को असहनीय प्रोटेस्टैण्ट राष्ट्र मानते थे। फ्रांस के देशभक्त प्रशिया से इसलिए घृणा करते थे क्योंकि इससे उनके देश को सर्वदा खतरा बना रहता था। फ्रांस १८६६ की कूटनीतिक पराजय का प्रतिशोध लेना चाहता था। निस्सन्देह प्रशिया से युद्ध करना फ्रांस के सब ही वर्गों को प्रिय था। किन्तु नेपोलियन तृतीय में प्रशिया से युद्ध करने का साहस नहीं था। उसका स्वास्थ्य बिगड़ चुका था। रूस क्रीमिया के युद्ध में फ्रांस के कार्य भूला नहीं था तथा उसका प्रशिया के प्रति मैत्री का भाव होना और फ्रांस से वैमनस्य रखना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। आस्ट्रिया का सम्राट् नेपोलियन तृतीय के हाथों किए गए अपने अपमान को भूल नहीं सका था। इटली के निवासियों का भी फ्रांस के प्रति मैत्री भाव नहीं था क्योंकि नेपोलियन तृतीय ने उन्हें स्वातन्त्र्य युद्ध के बीच में असहाय अवस्था में छोड़ दिया था। रोम में फ्रांस की सेनाओं के पड़ाव डाले रहने के कारण इटली के देशभक्त फ्रांस से चिढ़े हुए थे क्योंकि रोम को बिना मिलाए उनके देश का संगठित होना अधूरा रह जाता था। इंग्लैण्ड की जनता और सरकार दोनों ही नेपोलियन तृतीय की गतिविधि को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। जर्मनी की दक्षिणी रियासतों को बिस्मार्क ने अपनी समझौते की नीति द्वारा अपने पक्ष में कर लिया था। इन परिस्थितियों में क्या आश्चर्य है कि नेपोलियन ने प्रशिया से युद्ध करने को देश का आत्मघात समझा। फिर भी नेपोलियन प्रशिया से युद्ध करने को प्रस्तुत हो गया क्योंकि इस चाल के द्वारा ही वह सारे फ्रांस के देशवासियों को संगठित करके कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता था।

बिस्मार्क की भी धारणा यही थी कि फ्रांस से युद्ध अवश्यम्भावी है क्योंकि फ्रांस की पराजय हो जाने पर ही जर्मनी का संगठित होना सम्भव था। युद्ध छेड़ने के लिए एक बहाना चाहिए था और वह बहाना स्पेन के उत्तराधिकार के रूप में मिल गया। स्पेन का राजसिंहासन ल्योपोल्ड को दोबारा दिये जाने की योजना बनी। ल्योपोल्ड प्रशिया के राजवंश का राजकुमार था, किन्तु उसने इसे लेने से मना कर दिया था। बिस्मार्क के उकसाने पर स्पेन का राजत्व एक बार फिर राजकुमार ल्योपोल्ड को देने का प्रस्ताव हुआ और बिस्मार्क ने इस नए निमन्त्रण का पूरा लाभ उठाना चाहा। इस नई चाल की फ्रांस में बड़ी आलोचना हुई क्योंकि फ्रांस स्पेन और

प्रशिया में बीच में बसा हुआ था। नेपोलियन तृतीय ने प्रशिया और स्पेन को विरोध पत्र भेजे और स्पेन में घोषणा हुई कि राजकुमार ने प्रस्ताव मानने से इन्कार कर दिया है। मामला यहीं समाप्त हो जाता यदि फ्रांस के सम्राट पर उसके सलाहकारों ने यह दबाव न डाला होता कि इस अवसर को प्रशिया की एक भूमी कूटनीतिक पराजय बनाया जाय। बर्लिन स्थित फ्रास के राजदूत विनिदिट्टी (Benedittı) को आदेश दिया गया कि वह प्रशिया के राजा से एक स्पष्ट प्रतिज्ञा कराए कि प्रशिया के राजवंश का कोई भी राजकुमार भविष्य में स्पेन के राजसिंहासन के लिए कभी भी उम्मीदवार नहीं बनेगा। इम्स (Ems) में विनिदिट्टी की प्रशिया के राजा से भेंट का कोई निर्णायक परिणाम नहीं हुआ। कहा जाता है कि विनिदिट्टी का फ्रास से आदेश मिला कि 'वह प्रशिया के राजा से राजवंश के उम्मीदवार के विषय में स्पष्ट आश्वासन प्राप्त करे अन्यथा युद्ध होगा। प्रशिया का राजा विलियम प्रथम एक समझदार और मिलनसार व्यक्ति था और शान्तिपूर्ण समझौता पसन्द करता था। विनिदिट्टी को बड़े आवश्यक आदेश दिये जा रहे थे कि वह एक स्पष्ट और शीघ्र उत्तर प्राप्त करे। विलियम प्रथम ने फ्रास और स्पेन को तार भेजे कि स्पेन के राजसिंहासन की स्वीकृति वापस ले ली गई है। किन्तु ग्रेमोंट तथा फ्रांस के सैनिक दल सन्तुष्ट नहीं हुए। राजदूत विनिदिट्टी ने इस बात की प्रतिज्ञा करने पर जोर दिया कि स्पेन का सिंहासन भविष्य में कभी भी स्वीकार नहीं किया जाएगा। प्रशिया के राजा ने चिढ़ कर उससे भेंट बन्द कर दी।

बिस्मार्क राजसिंहासन के मामले में शान्ति हो जाने से प्रसन्न नहीं था। उसे जब 'इम्स' में हुई विनिदिट्टी की और प्रशिया के राजा की भेंट के विषय का तार मिला तो उसे अवसर मिला। उसने इस तार को संक्षिप्त रूप से समाचारपत्रों में प्रकाशित होने के लिए भेजने का निर्णय किया। बिस्मार्क के शब्दों में यदि मैंने यह किया तो इसका प्रभाव फ्रास रूपी सांड को लाल झण्डी दिखाने जैसा होगा (If I do this it will have the effect of red rag upon the Gallic Bull)। बिस्मार्क, रून और मोल्टके के युद्ध की सम्भावना से अत्यन्त प्रसन्न थे। रून ने कहा, हमारा बूढ़ा खुदा अभी जीवित है और वह हमें अपमान की मृत्यु नहीं मरने देगा। मोल्टके ने कहा यदि मैं इस युद्ध में अपनी सेनाओं का नेतृत्व करने के लिए जीवित रहा तो भले ही शैतान बाद में आकर मेरी बूढ़ी लाश उठा ले जावे मुझे कोई चिन्ता नहीं। इस तार को इस प्रकार संक्षिप्त किया गया कि फ्रास यह समझे कि उसके राजदूत का अपमान किया गया है और प्रशिया यह समझे कि उनके राजा का अपमान हुआ है।

फ्रास में प्रशिया के विरुद्ध युद्ध की सार्वजनिक मांग की जा रही थी। युद्ध और शान्ति के विषय में निर्णय करने के लिए मन्त्रिमण्डल की तीन बैठकें हुई। ग्रेमोंट ने धमकी दी, "यदि आपने और बैठक बुलाई तो मैं अपना त्यागपत्र आपके सामने फेंक दूंगा। परिणामतः फ्रास ने प्रशिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ग्रेमोंट ने कहा 'हम आपको आश्वासन तो नहीं अपितु आपके लिए युद्ध ला रहे हैं।

युद्ध का दोनो देशो मे स्वागत हुआ। फ्रांस को आक्रमणकारी माना गया। जर्मनी की दक्षिणी रियासतें फ्रांस के विरुद्ध प्रशिया से मिल गई। समूचे जर्मनी में स्वातन्त्र्य युद्ध के गीत गूंजने लगे और सगठित जर्मनी राष्ट्रगीत (Die Wacht-Am Rhein) की धुन पर मोर्चों पर जा जमा। जर्मनी वालों का नारा था 'पेरिस चलो' दूसरी ओर पेरिस वाले 'बर्लिन चलो' का नारा लगाते थे। मारसिलेस गीत गूंजने लगा। मार्शल ली बोयुफ (Marshall Le Boeuf) ने घोषणा की कि जेना (Jena) के सनिक पूरी तरह लैस हैं, किन्तु फ्रांस की सेना के पास अत्यावश्यक युद्ध सामग्री भी नहीं थी। उनके पास तोपखाना, सामान, दवाइयाँ तथा गोला-बारूद नहीं था। उनका प्रशिक्षण भी कम हुआ था। सैन्य सचालन अकुशल और अपर्याप्त थे। रेलों में कम स्थान था तथा उनके गुप्तचर भी कम थे। फ्रांस की सेनाओं के पास जिस फ्रांस की रक्षा करना अनिवार्य था, उनके मानचित्रों की अपेक्षा उनके पास जर्मनी, जिस पर वे आक्रमण करने जा रहे थे उसके मानचित्र अधिक थे। फ्रांस को किसी से भी सहायता नहीं मिली थी। बिस्मार्क ने रूस का १८५६ की पेरिस सन्धि की कालासागर (Black Sea) सम्बन्धी शर्तों को तोड देने की अनुमति देकर अपनी ओर मिला लिया था। इटली भी प्रशिया से प्रसन्न था क्योंकि १८६६ मे उसने वेनिशिया इटली को वापिस दिला दिया था। इटली को यह भी आशा थी कि यदि फ्रांस हार गया तो उसे रोम भी मिल जाएगा। ग्लैडस्टोन की नीति के कारण इंग्लैण्ड ने निष्पक्षता की नीति अपना ली थी।

जर्मनी ने आक्रमण करके फ्रांस को वीसिनबर्ग (Weissenburg), स्पीचिरेन (Spicheren), वोर्थ (Worth), ग्रेवलॉट (Gravelotte) और सीडन (Sedan) के युद्धों मे हराया। सीडान की विजय निर्णायक थी। इसके पश्चात् फ्रांसीसी सेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया और नेपोलियन तृतीय को बन्दी बना लिया गया। इस प्रकार फ्रांस की दूसरी राजशाही की समाप्ति होकर सितम्बर, १८७० में तृतीय गणतन्त्र की घोषणा हुई। बिस्मार्क इतने से सतुष्ट नही हुआ और पेरिस की ओर बढ़ता चला गया। उसका घोर मुकाबला हुआ और बहुत दिन घेरा डालने के पश्चात् पेरिस नगर ने आत्मसमर्पण किया। १८७१ की फ्रैन्कफर्ट की सन्धि के अनुसार युद्ध बन्द हुआ।

उपर्युक्त घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया कि नेपोलियन तृतीय की विदेश नीति आरम्भ मे थोडी सी चमक कर पूर्णत असफल रही। १८६० के पश्चात् फ्रांस पर नियन्त्रण रखने के लिए सफलता प्राप्त करना अत्यावश्यक था किन्तु सफलता मिली नहीं। वह न तो शत्रु से उलझ सका और न मित्रों को अपने साथ रख सका। डेन, पोलैण्ड और आस्ट्रिया के मामलो म से किसी से भी उसकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ पाई।

उसने मेक्सिको म लेटिन कैथोलिक साम्राज्य के प्रयत्न म व्यर्थ ही बहुमूल्य समय गँवा दिया जबकि दूसरी ओर प्रशिया निरन्तर शक्तिशाली होता जा रहा था और अत्यन्त दुःखद बात यह है कि मेक्सिको के मामले म भी वह बुरी तरह असफल

रहा। १८६४ तक क्रीमिया के युद्ध में बना इंग्लैण्ड फ्रांस संगठन बिल्कुल निर्बल हो चुका था। पेरिस सम्मेलन के पश्चात् जो मित्रता नेपोलियन तृतीय ने रूस के साथ की थी यह १८६३ में पोलैण्ड के विद्रोह से सहानुभूति रखने के कारण समाप्त हो गई। बिस्मार्क ने जब भी किसी के साथ भलाई का उसे अपना मित्र बना कर रखा किन्तु नेपोलियन तृतीय ने इटली को बहुमूल्य सहायता और पारितोषिक दिए किन्तु फिर भी उसकी कृतज्ञता प्राप्त नहीं कर पाया। पोप का समर्थन करने के कारण वह पीडमोण्ट-सारडीनिया की मित्रता खो बैठा था। १८६६ में वह आस्ट्रिया की सद्भावना प्राप्त किए बिना ही प्रशिया में न्यूना कर बैठा था। जो भी हो उसकी नीति समकालीन यूरोपी शासकों की तरह स्वार्थी नहीं थी। वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का प्रबल समर्थक था। उसकी सहानुभूति सारे देशों के राष्ट्रवादियों के साथ थी यद्यपि इस सहानुभूति का मूल्य वह साथ ही से लिया करता था। उसने यूरोप का पथ निर्देशन करने की अपेक्षा असमंजस में डाल दिया परिणामतः लोग उसे समझ नहीं सके और न उस पर विश्वास कर सके। उसकी नीति अस्थिर और अविश्वसनीय थी। उसके अपने शब्दों में "मैं कभी लम्बे चौड़े नक्शे नहीं बनाता मैं केवल वर्तमान की आवश्यकता को महत्त्व देता हूँ। उसके विषय में सत्य ही कहा गया कि, 'बेचारे शान्तिप्रिय नेपोलियन में नेपोलियन महान जैसी बुद्धि नहीं थी।' ('Napoleon le petit had not the genius of Napoleon le grand) "

सीमैन के विचार में उस क्षेत्र के सबसे अधिक रोचक अभ्यासों में, जिसे तुलनात्मक जीवनी कहा जा सकता है लुई नेपोलियन तथा एडोल्फ हिटलर के बीच समानताओं व असमानताओं का अध्ययन करना है। कई दशाओं में उनके जीवन समानान्तर रेखाओं पर चलते मालूम होते हैं और इनका अध्ययन एक के द्वारा दूसरे को समझने की शक्ति को चमकाने में सहायता देता है। वे सदिग्धताओं के नियमों को एक समान प्रकार से विलक्षणता के साथ हटाते हुए ऊपर उठे। उन्होंने एक-सा ही काम किया, पहले पुनःस्थापन और फिर अपने ग्रहण किए हुए राज्यों की शक्ति का खण्डन और दोनों ने उस अन्तर्राष्ट्रीय नींव को नष्ट किया जिस पर उनके समय के यूरोप की स्थापना की गई थी। जैसे बड़ी चीज़ों में वैसे ही छोटी चीज़ों में दोनों विचित्र रूप से समान थे। दोनों उन लोगों से अपरिचित थे जिनका उन्होंने पथ प्रदर्शन किया। हिटलर ने आस्ट्रियन स्वर में जर्मन भाषा बोली और लुई नेपोलियन ने जर्मन स्वर में फ्रांस की भाषा बोली। दोनों ने असफल आन्दोलन किए और उनके फलस्वरूप बन्दी हुए। स्ट्रेसबर्ग व बोलोन लुई नेपोलियन के लिए वही हुए जो हिटलर के लिए १९२३ में म्युनिक का उपद्रव। और लैंडसबर्ग हिटलर को बहुत कम महत्त्वपूर्ण लगा जितना कि हैम लुई नेपोलियन को लगा था फिर भी प्रथम नेपोलियन के संस्मरणों को मिलाकर The Extinction of Pauperism ने बहुत मात्रा में दूसरे साम्राज्य की उत्पत्ति से वही सम्बन्ध दिखाया जो Mein Kampf ने तीसरे जर्मन राज्य को बनाने में किया। अनिवार्य रूप से, दोनों का उत्पादक स्वभाव था और यह उनकी आँखों से ही टपकता था। हिटलर के बिखरे बिखरे बाल और उसकी पेटीदार बरसाती पिछड़ी हुई असभ्यता

का अटल प्रभाव डालती थी और लुई नेपोलियन के यदि कुछ कम चाटुकारीपूर्ण चित्र देखे जावें तो कोई भी यह विचार बनाने से नहीं रुक सकता कि वह ऐसा लगता है जैसे कोई इटली का नीच नौकर हो, जिसे हाल ही में किसी चतुर्थ स्तर के होटल से निकाल दिया गया हो। और यदि लुई नेपोलियन की आँखें बहुत कम दिखाई देती थीं तो हिटलर की आँखों से बचना असंभव था लुई नेपोलियन की आँखें भी जबकि वे आधी बंद मालूम होती थीं, ऐसी मालूम पड़ती थीं कि उन्होंने उसकी पीढ़ी के लोगों को जादू से प्रभावित कर दिया है ऐसे जैसे हिटलर की आँखें जो हमेशा पूरी खुली रहती थीं।

"दोनों के पास गिरोह थे। दोनों ही उन राजनीतिज्ञों के द्वारा से सत्ताधारी बने जिन्होंने अपनी योग्यताओं को हीन समझा। दोनों ने भौतिक समृद्धि पर केंद्रित और लाभ प्रदान को खूब प्रोत्साहित कर लोगों का ध्यान राजनीति से हटाया। दोनों का प्रारम्भिक प्रचार यह दिखाता है कि उन्होंने अपने समय की विरोधी राजनीतिक शक्तियों के नारे चुराने की कला का चतुर प्रयोग किया और यह बहाना किया कि उन्होंने उन बातों में समन्वय लाने का रहस्य ढूंढ लिया है जिन्हें उनके शासक समन्वय के अयोग्य बताते थे। अतः हिटलर ने राष्ट्रवाद की छाप अपनी चालबाजियों पर लगाई, और अपनी समाजवादी छाप अपने शत्रुओं पर और तब दोनों पक्षों को यह फुसलाकर मिलाया कि वह उनका मित्र है। इसी तरह लुई नेपोलियन ने फ्रांस को जनतन्त्र और व्यवस्था, सामाजिक कल्याण व सामाजिक अनुशासन, दोनों ही पेश किए। उसने जनता को सर्वमताधिकार दिया, सेना को साम्राज्य वाला वैभव, धर्म वालों को स्वतन्त्रता दी और व्यापारियों को लाभकारी विनियोग का खुला क्षेत्र ठीक उसी प्रकार जैसे हिटलर ने साथ-साथ यह दावा किया कि वह बहुरूपी भंडारों के एकाधिकार से जर्मनी को मुक्त कर रहा है, और जबकि उसी के साथ वह उसे रूहर के उद्योगपतियों के लिए सुरक्षित कर रहा था। अन्त में यह भी पता चल सकता है कि यदि दोनों ने निर्माण में कुछ काम किए तो वह भिन्न कारणों से नहीं।

'फिर भी लुई नेपोलियन व अन्य तानाशाहों व लुटेरों तथा हिटलर के बीच एक अनिवार्य अन्तर है जिसे यदि समझ लिया जाये, तो वह उसके चरित्र की कुंजी प्रदान करता है। इस प्रकार के बहुत से लोगों को महान् निर्दयता के साथ राक्षसी जैसा अधिकार मिल जाता है। यह बात लुई नेपोलियन के बारे में सच नहीं। उसके पेट में ऐसी कोई ज्वाला नहीं थी जो उसे नेपोलियन प्रथम या हिटलर या मुसोलिनी तक के तुल्य करती। उसके पास न तो शक्ति थी, न संगठन करने वाली योग्यता, और न अभ्यस्त प्रशासन में वास्तविक निरन्तर प्रयोग का उपहार जो उसके चाचा, या महान् फ्रेडरिक, या लुई चौदहवें में स्पष्ट हुआ था। किसी भी वस्तु के विषय में एक स्पष्ट निर्णय करने की योग्यता का अभाव उसके चरित्र का बड़ा लक्षण था। जब कभी कोई निर्णय हर हाल में उसी के ऊपर आ पड़ता था, तो बड़ी कठिनाई से उसे यह समझाया जा सकता था कि अब उससे

जावे। शान्ति, क्रीमिया व इटली की लड़ाई में प्रवेश, १८६६ में कोई काम न करने का निश्चय और १८७० में क्रिया के सम्पन्न करने का विचार—ज्यों ही वे घटित हुए उसने खेद प्रकट किया और उनकी ओर फिर वापस जाने का प्रयत्न किया, सिवाये १८७० के निर्णय के—जो घातक सिद्ध हुआ।

Suggested Readings

Arnaud R : *The Second Republic and Napoleon III 1930*

Aubry O *The Second Empire 1940*

Dickinson G Lowes *Revolution & Reaction in Modern France 1927*

Elton G *The Revolutionary Idea in France (1789-1871) 1923*

Fisher H A L. *Bonapartism*

Fisher : *The Republican Tradition in Europe*

Forbes A : *A Life of Napoleon the Third*

Guedalla P *The Second Empire*

Guerard H *Napoleon III 1943*

Huddleston S *France*

Marriott, Sir J *The French Revolution of 1848 in its Economic Aspect 1913*

Mckay D C. *The National Workshops A Study in the French Revolution of 1848 1933*

Plamenatz J *The Revolutionary Movements in France (1815 1871) 1952*

Partgate R *Story of a Year 1848*

Schapiro J S *Liberalism and the Challenge of Fascism Social Forces in England and France (1815 1870) 1949*

Seignobos C *A History of the French People*

Simpson F A *The Rise of Louis Napoleon 1950*

Simpson F A *Louis Napoleon and the Recovery of France (1848 1856) 1923*

Thompson J M *Louis Napoleon and the Second Empire 1954*

Whitridge A : *Men in Crisis The Revolutions of 1848*

अध्याय १४

बेल्जियम की स्वतंत्रता

(Independence of Belgium)

हालैण्ड और बेल्जियम संघ (Union of Holland and Belgium)— चार्ल्स पंचम के राज्य काल में नीदरलैण्ड्ज के सत्रह प्रान्त स्पेन के आधीन थे। स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय के शासनकाल में विद्रोह हुआ और अन्तत उत्तर के सात प्रान्तों ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली और संयुक्त प्रान्त (या हालैण्ड) के नाम से पुकारे जाने लगे तथा शेष दस प्रान्त स्पेन के ही आधीन रहे। १७१३ में स्पेन का उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध समाप्त हो गया और यूट्रिक्ट की सन्धि हुई। उसके अनुसार बेल्जियम के दस प्रान्त आस्ट्रियन के नाम से पुकारे जाने लगे। फ्रांस की क्रांति के समय फ्रांस ने आस्ट्रियन-नीदरलैण्डज जीत लिया और ये प्रान्त बीस वर्ष तक फ्रांस का भाग रहे। फ्रांस ने हालैण्ड को जीत लिया और बहुत समय तक यह भी फ्रांस का एक भाग बना रहा था।

१८१४ में नेपोलियन के पतन के पश्चात हालैण्ड के राजा को पुन पदासीन किया गया तथा उसने हालैण्ड की जनता को एक नया संविधान दिया था। वियाना सम्मेलन में फ्रांस के उत्तर-पूर्वी सीमान्त पर एक शक्तिशाली प्रतिरोध करने योग्य राज्य बनाने का निर्णय किया गया और परिणामत आस्ट्रियन-नीदरलैण्ड्ज अर्थात बेल्जियम और हालैण्ड का संयुक्त कर दिया गया था।

कठिनाइयाँ (Difficulties)—पिट (Pitt) की उत्कट अभिलाषाओं की पूर्ति हुई किन्तु वियाना में उपस्थित कूटनीतिज्ञों ने कतिपय तथ्यों की अवहेलना कर दी थी। नवीन राष्ट्र के दो भागों में राष्ट्रीयता और धर्म के मतभेदों की खाई थी। दोनों भाग शताब्दियों तक पृथक् रहे, इस कारण दोनों देशों में अधिक समन्वय नहीं रहा। हालैण्ड के निवासी प्रोटेस्टेण्ट और बेल्जियम के कैथोलिक थे। वे भाषा के दृष्टिकोण से भी परस्पर भिन्न थे। फ्रांस की भाषा बेल्जियम की साहित्यिक भाषा ही नहीं अपितु उच्चवर्ग की बोलचाल की भाषा भी थी। यद्यपि जनता का फेलिमश (Felmish) अंग डच लोगों से सम्बन्धित था तथापि डच सभ्यता इतनी विकसित नहीं हुई थी कि उसे भिन्न तत्त्व मान कर मान्यता दी जा सकती।

प्रो० फाईफ (Fyffe) के मतानुसार, 'यद्यपि बेल्जियम और हालैण्ड की विषमता अजेय नहीं थी तथापि यह इतनी अधिक थी कि दोनों देशों में तारतम्य स्थापित करने का कार्य चलाना कठिन था। हेग (Hague) स्थित सरकार ने विरोधी तत्त्वों में समझौता कराने के लिए ठीक मार्ग नहीं अपनाया था। संयुक्त राज्य के

लिए एक संविधान का निर्माण करने के लिए आयोग की नियुक्ति की गई। बेल्जियम की जनता के विरोध करने पर भी इस बात की परवाह न की गई कि बेल्जियम की जनसंख्या हालण्ड से कहीं अधिक है। दोनों देशों को राज्य सभा (States General) में बराबर का प्रतिनिधित्व दिया गया था। बेल्जियम की जनता द्वारा संविधान का निषेध कर देने पर भी इसे लागू कर दिया गया। आगामी पन्द्रह वर्षों में बेल्जियम की जनता को सारे राज्यपदों से वंचित कर दिया गया और अधिकांश पद हालण्ड की जनता को ही दिए गए। इसमें आश्चर्य नहीं कि बेल्जियम की जनता ने इन विदेशियों का स्वागत नहीं किया। राज्यसभा का अधिवेशन हमेशा डच प्रदेश में ही होता रहा, कभी भी बेल्जियम प्रदेश में नहीं हुआ। इससे भी बड़ा असन्तोष फैला। डच भाषा को देश की राज्य भाषा घोषित किया गया इससे भी बेल्जियम की जनता में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। डच सरकार की आर्थिक नीति को भी बेल्जियम की जनता अन्यायपूर्ण मानती थी। जिन करों को बेल्जियम की जनता पसन्द नहीं करती थी उन्हीं करों (Taxes) को जब लगा दिया गया तब जनता द्वारा उनका घोर विरोध हुआ। जो भी पत्रकार सरकार विरोधी लेख लिखते हुए पाये जाते उन्हें कड़ा दण्ड दिया जाता था। दोनों देशों का ऋणभार बराबर नहीं था। हालण्ड बेल्जियम की अपेक्षा अधिक ऋणी था। ऋण को चुकाने के लिए सारे देश पर समान कर लगाया गया इससे बेल्जियम की जनता बहुत असन्तुष्ट हुई। १८२१ में आटे और मांस पर नए कर लगाने से स्थिति और भी बिगड़ गई। धर्मभेद के विषय में तो देश के दोनों भाग बिल्कुल पृथक-पृथक थे। राज्य संयोजन के समय बेल्जियम के कैथोलिक बिशपों ने प्रोटेस्टण्टों को धार्मिक सहिष्णुता प्रदान किये जाने का बड़ा विरोध किया। बेल्जियम के चर्च अधिकारी शिक्षा पर पूर्णाधिकार रखने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे किन्तु सरकार ने शिक्षा को धर्मनिरपेक्ष अधिकारियों को सौंपने का प्रयत्न किया। हालण्ड का कठोर शत्रु बेल्जियम का चर्च था। बेल्जियम के धर्माधिकारी-दल ने बेल्जियम से डचों को निकालने के उद्देश्य से राजनीतिक विरोधी दल से गठजोड़ किया।

विद्रोह (Revolt)—१८३० के फ्रांस के जुलाई विद्रोह के कुछ महीने पूर्व बेल्जियम के निवासियों का अपने शासन से इतना विरोध था कि इसके प्रकट होने के लिए किसी अन्य झटके की आवश्यकता नहीं थी। जुलाई क्रांति से आवश्यक चिनगारी प्राप्त हुई। क्रांतिकारी नाच समारोह इस विस्फोट का अग्रदूत था। पालिगनेक (Polignac) द्वारा इस विद्रोह की योजना तैयार की गई तथा विदेशी आन्दोलनकारियों ने जो मुख्यतः फ्रांसीसी थे इसे उभारा। फ्रांस बेल्जियम के विद्रोहियों से सहानुभूति रखता था क्योंकि विद्रोह के कारण सीमान्त का शत्रु राष्ट्र निर्बल होता था तथा उन्हें बेल्जियम को फ्रांस में मिलाने का सुअवसर प्राप्त होता था। विद्रोह नगरों से ग्रामों में फैला।

हालण्ड के राजा ने बेल्जियम के लिए एक अलग राज्य बनाने का आश्वासन दिया था किन्तु इससे बेल्जियम की जनता सन्तुष्ट नहीं हुई। ब्रुसेल्स में डच सेना के आने से शान्ति की सारी आशाएँ व्यर्थ हो गई। कई बार आकस्मिक युद्ध हुए। सेना

के हट जाने पर एक अस्थायी सरकार की स्थापना हुई और बेल्जियम की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई। हालैण्ड के उत्तराधिकारी राजकुमार को नए देश का राजा बनाने की आशाएँ थीं, किन्तु विद्रोह की हिंसात्मक कार्रवाई, फ्रांस के दूतों और स्वयंसेवकों की गतिविधि और डच सेना द्वारा ऐंटवर्प पर गोलाबारी के कारण समझौते की सारी आशाओं पर पानी फिर गया था।

इस झगड़े में यूरोपीय शक्तियों के टकरा जाने का भय था। बेल्जियम की स्वतन्त्रता और हालैण्ड से अलग हो जाना १८१५ के शान्ति-समझौते का अतिक्रमण था और यूरोप की सारी शक्तियों ने इस समझौते को निबाहने की प्रतिज्ञा की थी। केवल एक ही बात से बचाव हुआ था। यूरोप के अधिकांश देशों ने लुई फिलिप को फ्रांस का राजा मान लिया था तथा वे बेल्जियम के मामले में उसका समर्थन करने के लिए प्रस्तुत थे। लुई फिलिप का स्वार्थ था कि शान्ति बनी रहे क्योंकि उसे पता था कि यदि वह विद्रोहियों की सलाह पर चलेगा तो उसे अपना राज्यसिंहासन तथा जीवन खोने का डर है। उसे मालूम था कि वह यूरोप के देशों के संगठन के सम्मुख नष्ट हो जाएगा। टैलीरेण्ड बड़ी योग्यता से उसका पथप्रदर्शन कर रहा था और उसे विश्वास था कि उस समय सबसे बड़ी आवश्यकता यह थी कि फ्रांस को कुछ साथी मिल जाएँ जिससे वह अकेला न रहे। इस ध्येय को सामने रखते हुए टलीरेण्ड फ्रांस का राजदूत बन कर इंग्लैण्ड गया। वहां उसने वैलिंगटन और विलियम चतुर्थ से भेंट करके आश्वासन दिया कि फ्रांस बेल्जियम के विद्रोह को अपनी शक्ति की वृद्धि करने के निमित्त उपयोग नहीं करेगा। उसने यूरोप के देशों की नीति का निर्देशन करने के लिए 'हस्तक्षेप मत करो' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस विषय में इंग्लैण्ड और फ्रांस का इतना गहरा विश्वास पैदा हुआ कि यूरोप के अन्य राष्ट्रों द्वारा फ्रांस के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करने की चर्चा ही समाप्त हो गई। लन्दन सम्मेलन में बेल्जियम के मामलों की व्यवस्था करने के प्रस्ताव पर विचार हुआ। लड़ाई बन्द कर दी गई। १८३० के समाप्त होने से पहले ही बेल्जियम की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी गई थी। जनवरी १८३१ में बेल्जियम की सीमाओं को निर्धारित करने के सम्बन्ध में बड़ी शक्तियों ने एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये।

किन्तु मामला यहीं नहीं सुलझा क्योंकि बेल्जियम के राजा के विषय में समझौता नहीं हुआ था। हालैण्ड और बेल्जियम की सरकारों को उनकी सीमाओं के सम्बन्ध में किए गए निर्णय को मान्यता देनी थी। बेल्जियम की जनता लुई फिलिप के दूसरे पुत्र को राजा बनाने के पक्ष में थी। यद्यपि लुई फिलिप ने प्रकट रूप से इस प्रस्ताव का विरोध किया, परोक्ष रूप से वह इसे प्रोत्साहन देता रहा। परिणाम यह हुआ कि उसका पुत्र ड्यूक डी नीमोर्स (Duc de Nemours) फरवरी १८३१ में राजा चुन लिया गया। इस व्यवस्था को यूरोप की शक्तियाँ मानने के लिए तैयार नहीं थीं और इसलिए लुई फिलिप ने अपने पुत्र के लिए राजमुकुट लेने से इन्कार कर दिया। इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच यह समझौता हुआ कि सेक्से-कोबर्ग (Saxe Coburg) के ल्योपाल्ड को राज्यसिंहासन दिया जाय और वह लुई फिलिप की पुत्री से

विवाह करे। ल्योपोल्ड ने राजसिंहासन को इस बात पर स्वीकार किया कि बेल्जियम के हित में सीमाओं में कुछ परिवर्तन कर दिया जाएगा।

बेल्जियम की सीमाओं में परिवर्तन करने में केवल ग्राण्ड-डची ऑफ लक्सम्बर्ग की स्थिति के कारण कठिनाई पड़ी। १८१४ में ग्राण्ड-डची हालैण्ड को दे दी गई थी। १८३० में ग्राण्ड-डची के निवासियों ने बेल्जियम की जनता से विद्रोह किया और दुर्ग को छोड़ कर सारा प्रदेश बेल्जियम के हाथ में चला गया। लन्दन सम्मेलन ने लक्सम्बर्ग को हालैण्ड का भाग माना था। किन्तु ल्योपोल्ड की प्रार्थना पर जब लक्सम्बर्ग पर पुनः भविष्य में विचार करने को कहा गया तो हालैण्ड ने शस्त्र उठाए और पचास हजार सैनिकों को बेल्जियम भेजा। ल्योपोल्ड ने फ्रांस से सहायता माँगी और फ्रांस की सेनाएँ तुरन्त सीमा पार कर गई। डच सेना पीछे हट गई और फ्रांस की सेना भी वापिस बुला ली गई। लन्दन सम्मेलन में यह मामला पुनः विचारार्थ आया और सुझाव दिया गया कि लक्सम्बर्ग का हालैण्ड और बेल्जियम के बीच बाँट दिया जाए। बेल्जियम ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया किन्तु हालैण्ड ने इसे ठुकरा दिया। परिणामतः ल्योपोल्ड और महान शक्तियों में एक संधि हुई। १८३२ के प्रारम्भ तक बेल्जियम को सारी शक्तियों ने मान्यता दे दी थी तथा पामर्स्टन ने फ्रांस को बेल्जियम का थोड़ा-सा भाग भी देने से इन्कार कर दिया।

यद्यपि बेल्जियम राज्य की स्थापना हो गई थी तो भी हालैण्ड के राजा के विरोध से निपटने की समस्या शेष थी। डच राजा ऐंटवर्प के दुर्ग पर अपना अधिकार किए बैठा था और वह तर्क अथवा शक्ति किसी भी बात का मानने से इंकार करता था। फ्रांस की सेना ने दुर्ग पर घेरा डाला और इंग्लैण्ड के समुद्री बेड़े ने शेल्डट नदी में यातायात पर रोक लगा दी। घोर गोलाबारी होने के पश्चात् दुर्ग का पतन और युद्ध का अन्त हो गया। शान्ति के लिए पुनः बातचीत आरम्भ हुई। बेल्जियम को मनचाहा स्थान मिल गया इसलिए वह कोई जल्दी में नहीं था और हालैण्ड का राजा केवल हठ के कारण सकोच कर रहा था। यह स्थिति कई वर्षों तक बनी रही। अन्ततः १८३९ में लन्दन संधि के द्वारा हालैण्ड राज्य की स्वतन्त्रता और तटस्थता को सारी शक्तियों ने जिनमें हालैण्ड भी था मान्यता प्रदान की। १९१४ में इस मान्यता के अतिक्रमण के कारण ही ब्रिटेन को जर्मनी से सहसा युद्ध में उतरना पड़ा।

यह बात उल्लेखनीय है कि इस सारे काल में पामर्स्टन का रुख बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सहनशीलता का रहा। उसने डचों के हठ और बेल्जियनों को चिढ़ाने वाले रुख से सुलझने में अत्यन्त सहनशीलता दिखाई। उसने बड़ी बुद्धिमत्ता से इस बात को माना कि १८१४ की व्यवस्था असफल रही और उसके स्थान पर नई व्यवस्था बनानी चाहिए।

Suggested Readings

Cambridge Modern History Vol X
Ensor *Belgium*
Fyffe : *History of Modern Europe*
Phillips *Modern Europe*

१८१५ से १९१८ तक आस्ट्रिया-हंगरी

(Austria Hungary from 1815 To 1918)

आस्ट्रिया-हंगरी ने नेपोलियन की पराजय में बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि वियाना नगर को यूरोप के मानचित्र के पुनर्निर्माण के लिए चुना गया हो। आस्ट्रिया के चांसलर मेटरनिक ने आस्ट्रिया की नीति को इतना शक्तिशाली और ठोस बनाया कि बाद में वह अपने आप को नेपोलियन का विजेता कहने लगा। आस्ट्रिया-हंगरी पर १७९२ से १८३५ तक फ्रांसिस प्रथम ने, १८३५ से १८४८ तक फर्डिनेण्ड प्रथम ने तथा १८४८ से १९१८ तक फ्रांसिस जोसेफ प्रथम ने राज्य किया।

मेटरनिक प्रणाली (Metternich System)—राजकुमार मेटरनिक का जन्म १७७३ में हुआ तथा १८५९ में उसकी मृत्यु हुई थी। वह जन्म से ही धनाढ्य था तथा बहुत छोटी आयु में वह आस्ट्रिया की कूटनीतिक सेवा में प्रविष्ट हुआ। बहुत थोड़े से समय में उसे बहुत सा कूटनीतिक अनुभव हुआ क्योंकि उसे यूरोप की एक राजधानी से दूसरी राजधानी में बदला जाता रहा था। जब उसकी आयु कठिनता से ३६ वर्ष की थी तो उसे आस्ट्रिया का चांसलर नियुक्त किया गया तथा वियाना में इंगलैंड भाग जाने के अवसर तक लगभग ४० वर्ष तक वह इस पद पर आसीन रहा था।



मेटरनिक

मेटरनिक का व्यक्तित्व केवल आस्ट्रिया और जर्मनी की ही नहीं, अपितु सारे यूरोप भर की कूटनीति

का केन्द्र था। वह उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे अधिक विख्यात आस्ट्रिया का राजनीतिज्ञ था। वह कूटनीतिज्ञों का शिरोमणि तथा यूरोप की कूटनीति के दाव-पेंचों से पूर्णरूपेण परिचित था। वह अत्यन्त घमण्डी व्यक्ति था। उसकी धारणा थी कि सारे संसार का भ्रम उसके सहारे चल रहा है। उसके शब्दों में, मेरी स्थिति में यह अद्भुत बात है कि जहाँ भी मैं होता हूँ सब की आशाएँ सब की आँखें उसी स्थान पर लगी होती हैं। क्या कारण है कि असंख्य व्यक्तियों में केवल मैं ही विचार करता हूँ जब कि अन्य लोग कुछ भी नहीं सोचते, केवल मैं ही काम करता हूँ जबकि अन्य लोग कुछ भी नहीं करते तथा मैं ही लिखता हूँ क्योंकि अन्य लोग इस योग्य नहीं हैं। उसकी धारणा थी कि उसकी मृत्यु से पूर्ण न होने वाली रिक्तता रह जायगी।

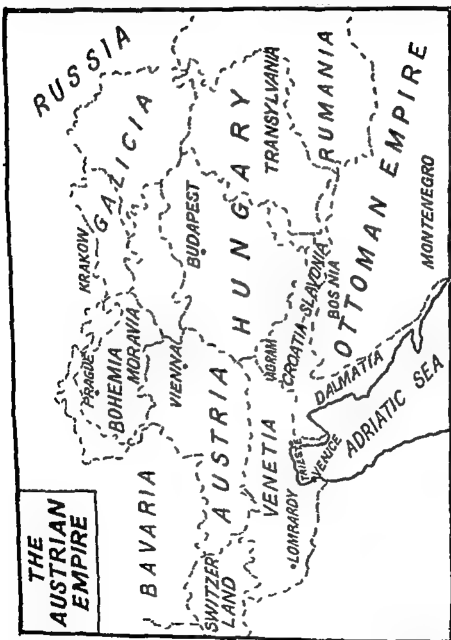
मेटरनिक फ्रांस की क्रांति तथा उसके ध्येय का शत्रु था। वह क्रान्ति को एक रोग जिसका उपचार करना चाहिए एक ज्वालामुखी जिसे बुझाना चाहिए एक सड़ा फोड़ा जिसे गर्म सलाखों से जला देना चाहिए तथा एक दानव समझता था जो समूची सामाजिक व्यवस्था को निगलने के लिए मुँह खोले खड़ा था। उसके विचार से प्रजातन्त्र दिन के प्रकाश को रात्रि के घोर अन्धकार में बदल सकता है।

आरम्भ में उसे बड़ा कठिन कार्य करना था। नेपोलियन आस्ट्रिया के राजघराने का सम्बन्धी था इस कारण उसके विरुद्ध कार्य करना बड़ा कठिन था। ठीक इसी प्रकार मेटरनिक रूस का पूर्ण नाश नहीं चाहता था क्योंकि इससे यूरोप में शक्ति-सन्तुलन के बुरी तरह से अस्तव्यस्त हो जाने का अन्देशा था। १८१० से १८१३ तक मेटरनिक नेपोलियन को जार से भिड़ाने की नीति का अनुसरण करता रहा। जब १८१२ में नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण किया उस समय मेटरनिक ने उसे सहायता का आश्वासन दिया किन्तु साथ-ही साथ रूस को भी वचन दिया कि रूस के विरुद्ध आस्ट्रिया की सेना प्रयुक्त नहीं की जायगी। १८१३ में राष्ट्रों के युद्ध में (Battle of Nations) तथा १८१४ के युद्ध में आस्ट्रिया के हस्तक्षेप से नेपोलियन का पतन हो गया और विजेता राष्ट्रों में आस्ट्रिया का महत्व प्राप्त हुआ।

विआना सम्मेलन (१८१४ १५) में मेटरनिक का सबसे अधिक महत्व रहा गया और उसके नेतृत्व में यूरोप की बागडोर फ्रांस से हटकर आस्ट्रिया के हाथों में आ गई। दूरस्थ आस्ट्रियन-नीदरलण्डज के बदले में उसे इटली में लोम्बार्डी और विनिशिया मिले थे। उसने परमा मोडिना और टुस्कने के सिंहासनों पर हैप्सबर्ग राज्य-वंश के वंशजों को बैठाया था। इस प्रकार उसने इटली पर सक्रिय नियन्त्रण स्थापित किया था। इसी प्रकार उसने जर्मनी के मामलों में भी अपने देश के लिए महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। आस्ट्रिया जर्मन डायट का नियन्त्रणकर्त्ता बना और उसके अनुमोदन के बिना वहाँ कुछ भी नहीं बन सकता था। उसने फ्रांस के चारों ओर शक्तिशाली सीमान्त दुर्गों का निर्माण किया जिससे वह भविष्य में उत्पात न कर सके।

मेटरनिक यूरोप में 'यथा स्थिति (status quo) बनाए रखने के पक्ष में

ग्रौर ग्रेट ब्रिटन के साथ चतुमुखी सधि की थी। महान् शक्तियों ने निणय किया कि वे समय-समय पर मिलते रहग, जिसस कि व आपम की समस्याओं पर विचार करके यूरोप मे शान्ति बनाए रखें। १८१८ मे ऐक्स-ला चेपल म प्रथम सम्मेलन



हुआ। इस सम्मेलन में यह प्रयत्न किया गया कि वियाना म देशों की जो सीमा निर्धारित की गई थी उसे सारे राष्ट्र स्थायी मान लें, किन्तु ब्रिटेन नहीं माना। १८२०

मे ब्रिटेन के न चाहने पर भी टाप्पू की व्यवस्था ब्रिटेन के विरोध करते रहने पर भी मान ली गई। इस व्यवस्था के अनुसार यूरोप की नरेशों को यह अधिकार दिया गया कि यदि किसी भी देश में क्रांति हो और उस क्रांति से अन्य देशों को खतरा हो तो उन्हें उस देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा। इस व्यवस्था से मेटरनिक सारे यूरोप में पुलिस का काम करके जहाँ भी सुधारवादी और राष्ट्रवादी का आन्दोलन हो उन्हें कुचल देने में समर्थ हो गया था। इस नीति का अनुसरण करके आस्ट्रिया ने नेपल्स और पीडमाण्ट के विद्रोह का दमन किया था। इसी प्रकार फ्रांस ने स्पेन में हस्तक्षेप करके स्पेन के राजा को पुनः आसीन करने की छूट दी गई थी। १८१२ में सम्मेलन-युग समाप्त हुआ। ब्रिटेन ने विशेषतः सम्मेलन में स्पेन और अपने अमरिका के उपनिवेशों के मामलों को लेकर संगठन को छोड़ दिया। किन्तु मेटरनिक अपनी इच्छानुसार काय कर चुका था। हजारों राष्ट्रवादियों को कैद कर लिया गया था अथवा उन्हें देशनिकाला या मृत्यु दण्ड दिया जा चुका था। निकृष्ट तथा जनता से प्रतिरोध की प्यासी सरकारों की स्थापना हो चुकी थी। मेटरनिक इन परिणामों से अत्यन्त सन्तुष्ट था। मेटरनिक के शब्दों में "मैं एक अच्छे दिन का उषाकाल देख रहा हूँ। प्रभु की इच्छा यही है कि विश्व का विनाश न हो।

मेटरनिक और जर्मनी (Metternich and Germany)—जर्मनी के देशभक्तों की इच्छा और प्रयत्नों के विरुद्ध जर्मनी में एक ढीला संघ बनाया गया क्योंकि इसमें आस्ट्रिया का स्वार्थ था। जर्मन-संघ में उनतालीस सम्पूर्ण अधिकारसम्पन्न राज्य थे जिन्हें आस्ट्रिया अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग में ला सकता था। मेटरनिक ने छोटे छोटे जर्मन देशों की प्रशिया के प्रति ईर्ष्या से लाभ उठाया। जर्मनी में गुप्त क्रांतिकारी संगठनों पर रोक लगाने के लिए १८१६ में कार्ल्सबड आज्ञप्तियाँ (Carlsbad Decrees) प्रसारित की गई और समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगाए गए थे। विश्वविद्यालयों को राज्य के नियंत्रण में रखा गया था। षड्यन्त्रों का पता लगाने तथा दमन करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति हुई। इन प्रतिबन्धों का परिणाम हुआ जनता की स्वतंत्रता का दमन। देशभक्तों को बड़ी कठिन परिस्थितियों में अपना काम करना पड़ा। फ्रांस की जुलाई क्रांति के परिणामस्वरूप जर्मनी के कुछ राज्यों में भी गड़बड़ हुई किन्तु मेटरनिक ने उसका दमन कर दिया था। १८४८ में जब मेटरनिक का शासन समाप्त हुआ इस प्रकार की परिस्थिति बनी रही। प्रो० हेयस के शब्दों में "जर्मनी पर मेटरनिक का पूर्ण नियन्त्रण था।

मेटरनिक और इटली (Metternich and Italy)—इटली को मेटरनिक केवल एक भौगोलिक वाक्य मानता था। उसने लोम्बार्डी और विनिशिया को आस्ट्रिया में मिला लिया था। परमा, मोडिना और टुस्कन के राज्यों पर हेप्सबर्ग राजवंश के वंशज राज्य कर रहे थे। १८१५ में मेटरनिक ने सिसली और नेपल्स के राजाओं से एक गुप्त संधि की जिसके अनुसार आवश्यकता पड़ने पर वे आस्ट्रिया से सहायता माँग सकते थे। १८२० में नेपल्स में विद्रोह हुआ और इसके राजा ने आस्ट्रिया से

सहायता मांगी। आस्ट्रिया की सेना ने नेपल्स में जाकर इसके राजा का पूर्ण अधिकार दिला कर पुनः पदस्थ कर दिया था। १८२१ में पीडमोण्ट में विद्रोह हुआ और नेपल्स से लौटती हुई आस्ट्रिया की सेना ने इसका भी दमन कर दिया। ह्यूम के शब्दों में, 'इटली के हाथ और पांव, जकड़ कर उसे आस्ट्रिया के प्रतिक्रियावादी युद्ध रथ के साथ बांध दिया गया था।"

मेटरनिक और स्पेन (Metternich and Spain)—फर्डिनण्ड सप्तम १८१५ में पुनः राजा बना। उसने प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण करके १८१२ के सुधारवादी संविधान को भंग कर दिया। १८२० में स्पेन की जनता ने १८१२ के संविधान को लागू करने की मांग करते हुए विद्रोह कर दिया। फर्डिनण्ड ने कुटिलता से स्वीकार करते हुए यूरोप की शक्तियों से सहायता की अपील की। यूरोप की शक्तियों ने स्पेन में शान्ति का 'भूत' देखा और १८२२ के विएना-सम्मेलन ने फ्रांस को अधिकार दिया कि वह स्पेन में हस्तक्षेप करे और बोर्बन-वंश के राजा को पुनः पदासीन कर दे। जब फ्रांस की सेनाएं स्पेन में घुसी और फर्डिनण्ड को पुनः पदस्थ किया गया तो मेटरनिक बहुत प्रसन्न हुआ था।

मेटरनिक और रूस (Metternich and Russia)—आरम्भ में जार एलेग्जेण्डर के विचार उदार थे किन्तु क्रमशः वह अपनी नीति को नहीं चला पाया। १८१५ के बाद जार के विचार बदल गए। १८१५ में जार के अंगरक्षक सैनिक अधिकारियों ने एक क्रान्तिकारी षड्यन्त्र रचा था। १८१९ में कोटजेबु जिसे जर्मनी में रूस का गुप्तचर समझा जाता था मार डाला गया। १८२० में ड्यूक डी बेरी की फ्रांस में हत्या कर दी गई। इन सब घटनाओं से एलेग्जेण्डर बुरी तरह डर गया और उसकी यह धारणा बन गई कि उदार विचारधारा खतरनाक है। १८२० में ट्रोपू सम्मेलन के अवसर पर उसने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह मेटरनिक का अनुयायी है। उसने मेटरनिक को अपना गुरु मानकर आज्ञा देने के लिए कहा। १८२० से १८२५ तक वह पूर्णतः मेटरनिक के प्रभाव में था और इसी कारण जब यूनानियों ने तुर्कों के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह किया तो एलेग्जेण्डर ने उनकी सहायता नहीं की थी।

मेटरनिक व पूर्वी प्रश्न—यूनानियों ने इप्सीलेंटी (Ypsilanti) के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया और उन्होंने विश्वास के साथ रूसी मदद की आशा की। रूस तुर्की से घृणा करता था और यूनान वालों की मदद कर सकता था जो उसी के धर्म के अनुयायी थे। हितों की समानता होते हुए भी मेटरनिक ने फुसलाकर एलेग्जेण्डर को इप्सीलेंटी से अलग कर दिया। फल यह हुआ कि विद्रोह को तुर्की ने दबा दिया और मेटरनिक ने सात वर्षों तक इप्सीलेंटी को आस्ट्रिया के बन्दीगृह में रखने का आनन्द लिया। १८२१ में मारिया व एजियन द्वीपों में भी यूनानियों ने उपद्रव किया और इस बार पुनः मेटरनिक ने एलेग्जेण्डर को उनकी सहायता देने से रोक लिया। मेटरनिक ने रूखे स्वर में कहा कि 'उपद्रव को यह चाहिए कि वह अपने को सभ्यता के दायरे से बाहर कर भस्म कर ले।

मेटरनिक व फ्रांस—नेपोलियन का पतन कराने के बाद, मेटरनिक ने एक लौह चक्र में फ्रांस को घेरना चाहा। इसी उद्देश्य से, बेल्जियम व हालैंड को मिला लिया गया और राइनलैंड प्रशिया को तथा जेनोग्रा पीडमोण्ट को दे दिया गया। मेटरनिक को इस तत्त्व का भी ज्ञान नहीं था कि क्रान्तिकारी विचार फ्रांस से आये थे जो एक बार फिर परेशानी का कारण हो सकता था, लेकिन जब १८१८ में फ्रांस ने युद्ध-क्षति का भुगतान कर दिया तो मित्र राष्ट्रों की सेना का कब्जा हटाने का निश्चय किया गया। फ्रांस को चौमुखी संघ (Quadruple Alliance) का सदस्य मान लिया गया जिसे पाँचमुखी संघ में बदल दिया गया। मेटरनिक अपनी रक्षा कर रहा था जबकि १८३० में फ्रांस में एक क्रान्ति हुई।

मेटरनिक और ग्रेट ब्रिटेन (Metternich and Great Britain)—मेटरनिक ने परस्पर के स्वार्थ अर्थात् नेपोलियन को हराने के लिए ब्रिटेन का साथ दिया था। जब यह स्वार्थ पूरा हुआ तो मेटरनिक और कैसलरे ने वियाना सम्मेलन में सहयोग दिया। ब्रिटेन ने चतुर्मुखी सन्धि में सहयोग किया जिससे यूरोप में 'यथा स्थिति' (status quo) को बनाए रखा जाए। किन्तु इस प्रश्न पर कि 'एक देश को दूसरे देश के मामले में हस्तक्षेप का अधिकार है' दोनों देशों में मतभेद हो गया। १८१८ में ऐक्स-ला चैपल के सम्मेलन में यह मतभेद प्रकट हो गया था। १८२० में कैसलरे ने ट्रोप्पू व्यवस्था का विरोध किया था। यद्यपि वियाना सम्मेलन से पूर्व ही कैसलरे ने आत्महत्या कर ली थी। ब्रिटेन ने स्पेन में फ्रांस के हस्तक्षेप का विरोध किया तथा सम्मेलन से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्मेलन व्यवस्था का अन्त हो गया। कनिंग ने स्पेन द्वारा दक्षिणी अमेरिका में अपने उपनिवेशों पर पुनः अधिकार जमाने के प्रयत्न का भी विरोध किया था। इस विषय में अमेरिका की सरकार ने उसकी सहायता प्रसिद्ध 'मुनरो सिद्धान्त' का प्रतिपादन करके की थी।

मेटरनिक और आस्ट्रिया (Metternich and Austria)—मेटरनिक आस्ट्रिया हंगरी में प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण करता रहा। उसने अपने देश में सुधार वाद और राष्ट्रीयता का दमन करने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी थी। उसकी धारणा थी कि आस्ट्रिया के साम्राज्य की तत्कालीन परिस्थिति में केवल ऐसी नीति की ही आवश्यकता थी। उसकी नीति 'ध्वंसात्मक' (negative) थी और जो कार्य उसे करना पड़ता था वह उसे अरुचिकर था। उसके अपने शब्दों में 'मैं इस संसार में आया हूँ। यदि मैं शीघ्र आया होता तो मैं युग का आनन्द भोगता यदि देर से आया होता तो इसके पुनर्निर्माण में हाथ बटाता। किन्तु आज तो मुझे युग के सन्धि-काल में बनती हुई व्यवस्थाओं को सँवारने में अपना जीवन लगाना पड़ रहा है। गृहनीति में उसका मूलमन्त्र प्रतिरोध (Prevention) था। उसके कार्यक्रम का आदि और अन्त 'शासन करो किन्तु परिवर्तन मत करो' इस वाक्य में निहित था। उसके शब्दों में 'हम प्रतिरोध की नीति इसलिए अपनाए हुए हैं कि हम दमन की नीति का अनुसरण न करना पड़े। हमारा दृढ़ विश्वास है कि सरकार

द्वारा दी गई प्रत्येक सुविधा इसके अस्तित्व पर कुठाराघात करती है। जिन्हें सुविधाएँ कहा जाता है वे राजा के स्वाधिकार में कमी करती हैं, इसलिए यदि राजा कोई सुविधा देता है तो वह अपने अस्तित्व पर कुठाराघात करता है।' मेटरनिक ने अपनी नीति की व्याख्या इस प्रकार की है, जहां तक नीति का प्रश्न है आस्ट्रिया की कोई नीति नहीं है। हमारी नीति की सीमा केवल शान्ति बनाए रखना तथा संधि प्रतिज्ञाओं का पालन करना है। फ्रांसिस (Francis) द्वितीय ने अपनी सरकार की नीति का सम्पूर्ण वर्णन इन शब्दों में किया है 'मेरी व्यक्तिगत जागीरें भी हैं मैंने उन्हें विधान प्रदान कर रखा है और मैं उन्हें तंग नहीं करता। किन्तु यदि वे बहुत आगे बढ़ने का प्रयत्न करेंगे तो मैं उन्हें खदेड़ कर सीधा उनके घर भेज दूंगा। जो मेरी सेवा में है उसे मेरी आज्ञा का प्रचार भी करना होगा।'

अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए मेटरनिक ने समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। सारे देश में गुप्तचरों का जाल फैला दिया गया था। विश्वविद्यालयों को कठोर सरकारी नियन्त्रण में रख दिया गया था। विदेश यात्रा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था। आस्ट्रिया को यथासम्भव यूरोप के अन्य देशों से अलग करने का प्रयत्न किया गया था। शिक्षा का स्तर नीचा था और देश में व्यापार तथा उद्योग की उन्नति नहीं हो रही थी। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के अनुसार जहां कहीं भी आस्ट्रिया देश की सीमा किसी अन्य सभ्य देश की सीमा को छूती थी वहां चुंगी की चौकियों के साथ-साथ बड़ा कठोर साहित्यिक प्रतिबन्ध लगा हुआ था। प्रत्येक चुंगी पर वहां के पदाधिकारी प्रत्येक विदेशी पुस्तक और पत्रिका उस समय तक देश में नहीं आने देते थे जब तक वे उसे कई बार पड़ताल करके संतुष्ट नहीं हो जाते थे कि उसमें युग की भावनाओं का लेशमात्र भी वर्णन नहीं है।'

इन सब प्रतिबन्धों के होने पर भी १८२१ में मेटरनिक को यह मानना पड़ा था कि जनमत बुरी तरह बीमार है। विआना में भी पेरिस, बर्लिन और लन्दन, सारे जर्मनी और इटली में भी रूस और अमरिका की तरह हमारी विजयों को महान् अपराध, हमारी सफलताओं को महान् भूलें और हमारे प्रस्ताव महान् मूर्खताएँ मानी जाती हैं।'

यद्यपि आस्ट्रिया चीन जैसी 'अकमण्यता' की नीति का अनुसरण करता प्रतीत होता था, तथापि देश में गुप्त रूप से आन्दोलन चल रहा था जिसने मेटरनिक के प्रयास विफल कर दिये थे। चीजें बनाने वालों और व्यापारी लोगों तथा मध्यमवर्गीय लोगों का धन और प्रभाव बढ़ गया था। उद्योग धन्धों में मशीनों और वाष्प शक्ति के प्रयोग ने अन्य देशों की भाँति समाज के सारे वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों को एकदम बदल दिया था। इसके कारण मुख्तार स्वतन्त्र व्यक्ति हो गए, छोटे किसान औद्योगिक प्रबन्धक बन गए तथा इस परिवर्तन से पुराने व्यापार-संघों को बड़ी हानि पहुँची और इन में से अनेक का तो जीवन ही समाप्त हो गया। नवीन उद्योगों तथा व्यापार में लगे हुए लोगों को लगभग सभी स्थानों पर समाज की प्राचीन मान्यताओं से टक्कर लेनी पड़ती थी। मध्यमवर्ग के लोग व्यापार के सम्बन्ध में अधिकाधिक

विदेश यात्रा करते थे और स्वदेश आकर आस्ट्रिया की धुंधली से परे बसे हुए देशों के विषय में अद्भुत बातें सुनाया करते थे। रेलमार्ग की प्रगति के कारण देशवासियों की औद्योगिक तथा मानसिक उन्नति को अधिक गति प्राप्त हुई। आस्ट्रिया के राज्यों के संगठन में साम्राज्य के लिए एक खतरनाक बात थी अर्थात् हंगरी का सामन्तशाही संविधान जिसमें संसदीय विधान और निधन तथा सरकार के विरोधी सामन्तवर्ग में निरन्तर संघर्ष रहता था। हंगरी की विधान सभा (Diet) का आगमन प्रमवर्ग विधाता के द्वार पर था। इन सभी चीजों ने नगरों में रहने वाले मध्यमवर्गीय लोगों में असन्तोष की भावना को उत्पन्न कर दिया। जन-साधारण की इच्छा थी कि सुधार होने चाहिएँ। इन सुधारों से संवैधानिक सुधारों की अपेक्षा प्रशासनिक सुधारों की अधिक इच्छा थी। इन सुधारों की योजना अत्यन्त सीधी-सादी और राजनीतिक विचारधारा से नितान्त शून्य थी। आस्ट्रिया में संविधान और समाचार पत्रों की पूर्ण स्वतन्त्रता एक काल्पनिक धारणा थी। आस्ट्रिया के नम्र और सज्जन नागरिकों की इच्छा प्रान्तीय विधान सभाओं के अधिकारों में वृद्धि, विदेशी पुस्तकों को स्वदेश में लाने की अनुमति तथा समाचार-पत्रों पर साधारण प्रतिबन्धों से बढ़ कर और कुछ भी नहीं था। (Karl Marx)।

मेटरनिक का मूल्यांकन (Estimate of Metternich)—मेटरनिक यूरोप की राजनीति पर १८१५ से १८४८ तक छाया रहा। अतः इसमें कोई अत्युक्ति न होगी यदि इन ३३ वर्षों की अवधि को मेटरनिक युग के नाम से पुकारा जाये। काफी लम्बे समय तक वह यूरोप में होने वाली घटनाओं का भाग्यनिर्णय करता रहा था। १८२४ में उसने एक बार कहा था 'ये लोग मेरी ओर इस प्रकार देखते हैं मानो मैं इनका मसीहा हूँ।' किन्तु अन्त में मेटरनिक को मानना पड़ा कि वह एक बीते हुए युग के लिए संघर्ष कर रहा है। प्रो० हेमस के मतानुसार मेटरनिक के प्रयत्नों के बावजूद भी प्राचीन परिपाटी का विनाश हो चुका था और इसे किसी भी प्रकार बचाया नहीं जा सकता था। प्रो० ऐलिसन फिलिप्स के शब्दों में 'एक डरपोक और श्रान्त पीढ़ी के लिए वह एक आवश्यक पुरुष था किन्तु यह उसका दुर्भाग्य था कि वह उपयोगी होने के साथ-साथ इस तथ्य को भूल गया कि जब स्वयं दुर्बल और बूढ़ा हो रहा था संसार अपनी जवानी पुनः प्राप्त कर रहा था।

प्रो० फिशर के मतानुसार मेटरनिक प्रणाली में आस्ट्रिया के शासकों को एक पीढ़ी की प्रशंसा प्राप्त हुई। इन लोगों को उन दिनों युद्धों की कठिनाइयों का ही ज्ञान था। मेटरनिक में एक महान राजनीतिक नेता के अनेक गुण थे। उसमें तीव्र और प्रखर बुद्धि, शान्त चित्त मामलों की गहरी सूझ बूझ तथा एक देशभक्ति की भावना थी। अपने देश के मुक्तिदाता तथा नए यूरोप के निर्माता के रूप में उसका महान सम्मान था। जर्मन भाषा बोलने वाले देशों को तो उसमें असीम विश्वास था। स्वेच्छाचारी राजाओं के सम्मेलनों में वह उनका सचालक था। इसलिए १८१५ से १८४८ की अवधि को सत्य ही मेटरनिक युग कहा जाता है। किन्तु यह महान् योग्य सामन्त जिसका चरित्र इतना हीन, जिसके सिद्धान्त अत्यन्त कठोर तथा

जिसका प्रभाव इतना विशाल था, एक अत्यन्त घोर मानसिक दुर्बलता का शिकार था, उसने 'क्रान्ति और 'स्वच्छाचारी शासन' इन दो प्रणालियों के बीच का कोई मार्ग खोजने का प्रयत्न ही नहीं किया। क्योंकि क्रांति से उसे घोर घृणा थी इसलिए उसने उस भावना का दमन करने का बीड़ा उठाया जो समाज में मानवता-पूर्ण जीवन की आत्मा होती है अथवा जो स्वतन्त्रता के प्राण होते हैं।'

हेनरी ए० किसिंगर के मत में, "यह आस्ट्रिया का भाग्य था कि संकट के वर्षों में इसका पथ प्रदर्शन एक ऐसे व्यक्ति ने किया जिसने उसके सार ही को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन यह उसका भाग्य अवश्य था पर भाग्यशालिता नहीं क्योंकि ग्रीक दुःखान्त नाटकों की भाँति मेटरनिक की सफलता ने राज्य के उस पतन को भी अटल बना दिया जिस राज्य को सुरक्षित रखने के लिए वह इतने दिनों तक लड़ा था।

"जिस प्रकार के राज्य का उसने प्रतिनिधित्व किया मेटरनिक उस युग की देन था जो लाँघे जाने की प्रक्रियाधीन था। वह अठारहवीं शताब्दी में पैदा हुआ था जिसके बारे में टैलीरैंड कहा करता था कि कोई भी जो फ्रांस की क्रान्ति के बाद रहा यह नहीं जान सकेगा कि जीवन कितना मधुर व उत्तम भी हो सकता है। और अपनी युवावस्था के समय के दृढ़ निश्चय ने मेटरनिक को कभी नहीं छोड़ा। उसके द्वारा दृढ़ विवेक के सिद्धान्तों की प्रार्थना पर, उसके सुगम दर्शनीकरण पर और उसके सजे हुए अलंकारों पर समकालीन हास्य कर सकते थे। वे यह नहीं समझते थे कि यह एक इतिहास की घटना है जिसने मेटरनिक को एक क्रांतिकारी संग्राम में खींच लिया जो उसके स्वभाव से इतना परे था। जिस शताब्दी में उसकी रचना हुई उसकी शैली यथा प्रदत्त तत्वों को मिलाने में अधिक उपयुक्त थी, अपेक्षाकृत निश्चय के मथन के जो पैमाने की अपेक्षा अनुपात द्वारा अधिक भली प्रकार प्राप्त हो सकता था। वह एक अनन्त सुन्दरतायुक्त प्रतिमा था विषम सुन्दरता के साथ कटा हुआ, बिल्कुल समतल जैसे कि कोई बारीकी से कटा हुआ घनक्षेत्र का टुकड़ा। उसका मूल कोमल था लेकिन गहनताहीन और उसकी वार्तालाप चमकदार लेकिन अन्तिम, अन्त में गम्भीरताहीन थी। जैसा कि घर पर वैसा ही कैबिनेट में मनोरम व सुगम वह अठारहवीं शताब्दी में कुलीनतन्त्र की सुन्दरता का आदर्श था जो अपने को अपनी सत्ता से, न कि अपने सत्य से औचित्यतापूर्ण बता रहा था। और यदि उसका नये युग से कभी मेल न हो सका तो इस लिए नहीं कि वह उसकी गंभीरता समझने में असफल हुआ, वरन् इसलिए कि वह उससे घृणा करता था। उस में भी उसका भाग्य आस्ट्रिया का भाग्य रहा।"

फिर, मेटरनिक के आत्म प्रसन्न संतोष व कठोर आस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया ने अब एक शताब्दी से अधिक यह मनाही करने के स्वरूप में लगा दी है कि उसकी महानताएं में वास्तविकता नहीं थी किन्तु एक व्यक्ति जिसने प्रत्येक उस मिश्रित शासन पर आधिपत्य रखा जिसमें भाग लिया जिसे दो विदेशी राजाओं ने अपने निजी मन्त्रियों से अधिक विश्वसनीय पाया, जो तीन वर्षों तक सारे यूरोप

का सम्यत प्रधानमन्त्री रहा ऐसा व्यक्ति नीच परिणाम वाला नहीं हो सकता। विश्वास की बात यह है कि, वह सफलता जो कि वह अपने सिद्धान्तों की नैतिक उत्तमता को देना चाहता था यह उसकी कूटनीति की असाधारण कुशलता ही के कारण थी। उसकी बुद्धिमत्ता सृजनात्मक नहीं वरन् प्रयोगात्मक थी यह निर्माण में नहीं बल्कि जोड़-तोड़ में दक्ष था। अठारहवीं शताब्दी की कैबिनेट कूटनीति से प्रशिक्षित होकर उसने सामने चोट करने की चतुर चाल को पसंद किया, जबकि उसके विवेकवाद ने प्राय एक सफल क्रिया की जगह एक सुनिश्चित उद्देश्यपत्र के प्रति दोषपूर्ण बनाया। नेपोलियन ने उसके बारे में कहा था वह नीति और चालबाजी के बीच भ्रम पैदा करता है और वियाना में हेनोवर के दूत हार्डेनबर्ग ने १८१२ के संकट की पराकाष्ठा को देखते हुए मेटरनिक की कूटनीतिक विधियों की व्याख्या इस प्रकार की, अपनी योग्यता की उत्तमता के विषय में एक उच्च विचार में भरकर वह राजनीति में चालबाजी पसन्द करता है और उसे अनिवार्य समझता है। चूंकि उसके पास इतनी काफ़ी शक्ति नहीं है कि वह अपने देश के साधनों को गतिशील बना सके वह ऐसा प्रयत्न करता है कि शक्ति व चरित्र की जगह मक्कारी को मिल जाये। *यह उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त होगा यदि एक भाग्यशाली घटना—नेपो*लियन की मृत्यु या रूस की महान् विजय—ऐसी स्थिति पैदा कर दे जहाँ वह आस्ट्रिया को एक महत्त्वपूर्ण भाग पूरा करने योग्य बना सके।' फ्रेडरिक वॉन गैंटज जो काफ़ी समय तक मेटरनिक का निकट सहयोगी रहा ने कदाचित् एक सर्वोत्तम संकेत दिया है जो कि मेटरनिक की रीतियाँ व व्यक्तित्व बताता है—वह दृढ भावनाओं व साहसी प्रयत्नों का पुरुष नहीं था, विद्वान् नहीं वरन् बड़ा चतुर था। अपने शान्त मन्द, अविच्छिन्नीय स्वभाव में सबसे बढ़िया था। (A World Rostored pp 11 12)

१८४८-४९ की क्रान्तियाँ (Revolutions of 1848-49)—फ्रांस की फरवरी क्रान्ति का हंगरी के भाग्य पर बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा। जब फ्रांस में क्रान्ति की खबर हंगरी पहुँची, तो कोस्सुथ (१८०२-९४) ने आस्ट्रिया के राजा के सम्मुख केवल उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल की ही नहीं अपितु आस्ट्रिया की जनता के एक भाईचारे की हंगरी के नेतृत्व में माँग करने का निर्णय किया। ३ मार्च, १८४८ के भाषण में कोस्सुथ ने इस प्रकार कहा, 'दम घोटने वाले शाप के धुएँ का बादल हम पर मँडरा रहा है। वियाना के मन्त्रिमण्डल रूपी मुर्दाघर से एक सड़ाँद भरी वायु हमारी इंद्रियों को शिथिल करती हुई और हमारी राष्ट्रीयता की भावना को सुन्न करती हुई बहती है। हंगरी का भविष्य कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता जब तक अन्य प्रान्तों में, विशेषत वियाना में सब प्रकार के संविधानों के विरुद्ध सरकार वर्तमान है। यह हमारा कार्य है कि हम आस्ट्रिया की समस्त जातियों के भ्रातृ भाव की नींव पर एक सुन्दर भविष्य का निर्माण करें तथा तलवार की धार पर थोपी गई एकता की अपेक्षा स्वतन्त्र संविधान के आधार पर अटूट एकता का निर्माण करें। इस भाषण की हजारों प्रतियाँ छापकर हंगरी और आस्ट्रिया में बाँटी गई। परिणाम यह हुआ कि मार्च १८४८ में वियाना में जोरदार प्रदर्शन हुए और मेटरनिक को भागना

पड़ा। बहुत से सुधार करने के बाद आस्ट्रिया का राजा भी वियाना से इन्सब्रुक भाग गया।

जैसे ही वियाना के विद्रोह तथा मेटरनिक के पलायन की सूचना इटली पहुँची वैसे ही मिलान में भी विद्रोह हो गया और राज्यपाल भाग गया। लोम्बार्डी से भी आस्ट्रिया की सेनाएँ राडेटज्की (Radetzky) के नेतृत्व में वापिस लौट गई। वेनिस में एक प्रजातन्त्रात्मक सरकार की स्थापना हुई। परमा और मोडिना के भी राजा भाग गए। मार्च, १८४८ में पीडमोण्ट के शासक ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इटली भर में देश से आस्ट्रिया को भगा देने के लिए बड़ा उत्साह था। इटली के कोने-कोने से आस्ट्रिया से लड़ने के लिए सेनाएँ आईं। ऐसा प्रतीत होता था मानो इटली में आस्ट्रिया का प्रभाव बिल्कुल समाप्त हो जाएगा।

जर्मनी पर आस्ट्रिया का नियन्त्रण १८१५ से था। मार्च १८४८ में बर्लिन में विद्रोह हुआ और प्रशिया के राजा ने विद्रोहियों का नेतृत्व किया। १८४८ में सारे जर्मनी के प्रतिनिधियों की एक संसद् फ्रैंकफर्ट में सारे जर्मनी के लिए एक संविधान का मसविदा बनाने के लिए एकत्रित हुई। देश भर में बड़ा उत्साह था और आस्ट्रिया का जर्मनी पर नियन्त्रण समाप्त हो गया।

हंगरी में हंगरी के नेता कास्सुथ ने हंगरी के लिए एक अलग संसदीय प्रणाली की सरकार की माँग की और आस्ट्रिया के राजा ने यह स्वीकार कर लिया। हंगरी में प्रसिद्ध 'मार्च कानून' प्रचलित हुए जिनके अनुसार देश में सामन्तशाही, मुजारेदारी और विशेषाधिकार समाप्त कर दिए गए।

बोहीमिया में भी विद्रोह हुआ। चैक लोगों ने जर्मनों के आधिपत्य का विरोध किया तथा वियाना विद्रोह के पश्चात् उन्होंने आस्ट्रिया के सम्राट के सम्मुख अपनी माँगें पेश कीं किन्तु इन माँगों को नहीं माना गया। चैक लोगों ने प्रेग में एक सम्मेलन किया जिसमें चैक, सिलिसियन्स पोल्स, रुथिनियन्स, सर्ब्स, क्रोट्स इत्यादि जातियों के प्रतिनिधि आए। प्रेग निवासी चैकों ने विद्रोह करके आस्ट्रिया के सैनिक राज्यपाल की पत्नी की हत्या कर दी। परिणामस्वरूप उनकी माँगें मान ली गई और शान्ति हो गई।

अग्राम (Agram) एक अन्य क्रान्तिकारी आन्दोलन का केन्द्र बना हुआ था। इसका उद्देश्य क्रोट, स्लोवन और सब कबीलों का संगठन करना था।

इस प्रकार की परिस्थिति में आस्ट्रिया-हंगरी की हालत बड़ी जटिल हो गई और ऐसा प्रतीत होता था कि सर्वनाश होने ही वाला है। किन्तु कुछ अपने प्रयत्नों से तथा कुछ विरोधियों की त्रुटियों के कारण आस्ट्रिया पुनः जीवन प्राप्त कर सका।

इटली में कस्टोजा (Custozza) की लड़ाई में चार्ल्स अलबर्ट पराजित हुआ। विनिशिया और लोम्बार्डी आस्ट्रिया के अधिकार में आ गए। मार्च १८४९ में चार्ल्स अलबर्ट ने आस्ट्रिया के विरुद्ध पुनः युद्ध छेड़ दिया किन्तु वह नोवारा (Novara) की लड़ाई में फिर हार गया। रोम का प्रजातन्त्र फ्रांस की सेनाओं ने समाप्त कर दिया

और वेनिस का प्रजातन्त्र आस्ट्रिया की सेनाओं ने नष्ट कर डाला। इस प्रकार इटली फिर एक बार आस्ट्रिया के अधिकार में आ गया।

जर्मनी में फ्रांकफर्ट संसद् के सदस्यों ने अपना बहुमूल्य समय जनता के मौलिक अधिकारों तथा नवीन जर्मन देश की सीमाओं के विषय में साहित्यिक वादविवाद में नष्ट कर दिया। बहुत वादविवाद के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि जर्मनी का सिंहासन प्रशिया के राजा को दिया जाए। किन्तु प्रशिया के राजा ने आस्ट्रिया के डर से जो पुनः पनप रहा था इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार १८४९ में प्रजातन्त्र के आधार पर जर्मनी को संगठित करने का प्रयास विफल हो गया। फ्रैंकफर्ट संसद द्वारा राज्य की भेंट अस्वीकार करने के पश्चात् प्रशिया के राजा ने हैनोवर, सक्सोनी, वुटमबर्ग और बावेरिया के राज्यों से प्रशिया के साथ एक संघ बनाने के लिए कहा। आस्ट्रिया ने इस संघ का विरोध किया और अन्ततः प्रशिया को १८५० में ओल्मुटज (Olmutz) सम्मेलन में आस्ट्रिया के सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ा।

हंगरी की समस्या बहुत कठिन थी। हंगरी निवासियों के आन्दोलन का उद्देश्य हंगरी की सीमा में बसने वाली सारी जातियों पर मैग्यार (Magyar) कबीले का अधिकार जमाना था। कास्सुथ ने एक बार कहा था "मुझे मानचित्र पर क्रोशिया (Croatia) नजर नहीं आता।" उसने, वही स्वतन्त्रता जो अपने लिए चाहता था क्रोटस रूमानिया स्लोवेक्स और सर्ब जातियों को देने से इन्कार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन अल्पसंख्यक जातियों ने मैग्यार जाति के प्रभाव को रोकने का आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

हंगरी के नेताओं विशेषकर कास्सुथ और गोर्गी में भी परस्पर मतभेद था। दिसम्बर, १८४८ में गोर्गी को मैग्यार सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। जैसे ही आस्ट्रिया की सेनाएँ हंगरी की राजधानी की ओर बढ़ने लगीं उदारदलीय हंगरी के लोगों ने डीक (Deak) के नेतृत्व में आस्ट्रिया से सुलह करने का प्रयास किया। किन्तु कास्सुथ और गोर्गी ने सुलह करने से इन्कार कर दिया। हंगरी की राजधानी को आस्ट्रिया ने जीत लिया किन्तु हंगरी वालों ने इसे पुनः जीत लिया।

मार्च, १८४९ में हैब्सबर्ग साम्राज्य का संविधान घोषित हुआ। इसमें सब कुछ वियाना में केन्द्रित था किन्तु विभिन्न जातियों को अपनी प्रांतीय सभाएँ बनाने की छूट दी गई थी। हंगरी निवासियों को अन्य जातियों के समान ही एक स्तर पर माना जाना रुचिकर नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि हंगरी ने स्वयं को आस्ट्रिया से स्वतन्त्र घोषित कर दिया। अप्रैल १८४९ में कास्सुथ को हंगरी के प्रजातन्त्र राज्य के राष्ट्रपति के रूप में चुना गया। यह कास्सुथ की महान् भूल थी। उसे इस प्रकार खुले रूप से आस्ट्रिया की अवहेलना नहीं करनी चाहिए थी। हंगरी को स्वतन्त्रता की घोषणा से तो कुछ प्राप्त नहीं हुआ किन्तु इससे आस्ट्रिया को रूस के जार निकोलस प्रथम से हंगरी के विरुद्ध सहायता मांगने का बहाना

मेल गया। परिणामत आस्ट्रिया की सहायता के लिए रूस की लगभग एक लाख पचास हजार सेना आ पहुँची। हंगरी निवासियों की हार हुई। कास्सुथ भाग गया। गार्गी बड़ी शान से लड़ा किन्तु बाद में पकड़ लिया गया। यद्यपि उसकी जान बख्श दी गई तो भी एक अन्य सेनापति का मृत्युदण्ड दे ही दिया गया। हंगरी की जनता पर घोर अत्याचार किए गए और आस्ट्रिया के सेनापति का 'कसाई' (Butcher) का उपनाम दिया गया। यह बात उल्लेखनीय है कि आस्ट्रिया को हंगरी के अल्पसंख्यकों के नेता जेलासिक (Jellacic) से बड़ी सहायता प्राप्त हुई। उसने आस्ट्रिया की सेना की उस समय सहायता की जब वह वियाना को पुन प्राप्त करने के लिए सलग्न थी। उसने कास्सुथ द्वारा वियाना के विद्रोहियों की सहायता के लिए भेजी गई सेना से युद्ध किया और उसे पराजित किया। उसने आस्ट्रिया द्वारा हंगरी पर किए गए आक्रमण में भी हाथ बँटाया। इस प्रकार हंगरी के नेताओं की आपसी फूट तथा कास्सुथ की सकीर्ण राष्ट्रीयता के कारण आस्ट्रिया ने हंगरी के विद्रोह का दमन करके पुन हंगरी पर अधिकार जमा लिया।



कास्सुथ

आस्ट्रिया और इटली (Austria and Italy)—१८५६ में एक ओर आस्ट्रिया और दूसरी ओर फ्रास और पीडमाण्ट की लड़ाई का वर्णन आवश्यक है। केवूर (Cavour) की दृढ धारणा थी कि आस्ट्रिया की दासता से उसके देश का छुटकारा किसी ऐसे विदेश की सहायता से हो सकता, जिसकी सैन्य शक्ति आस्ट्रिया जैसी ही विशाल हो। इस विचार से जुलाई १८५८ में प्लोम्बियस (Plombieres) के स्थान पर नेपोलियन तृतीय के साथ समझौता किया। दोनों पक्षों में यह समझौता हुआ कि नेपोलियन तृतीय पीडमाण्ट की सहायता करके आस्ट्रिया के चगुल से विनिशिया और लाम्बार्डी को मुक्त करा देगा तथा इसके बदले उसे नाइस और सवाय के राज्य दे दिए जायेंगे। इस समझौते के अनुसार १८५६ में नेपोलियन तृतीय ने आस्ट्रिया के विरुद्ध पीडमाण्ट के साथ रह कर युद्ध किया। आस्ट्रिया मालर्फेना के युद्ध में पराजित हुआ किन्तु जुलाई १८५६ में नेपोलियन तृतीय ने विलाफ्रैंका में आस्ट्रिया से सुलह कर ली और इसकी शर्तों की ज्यूरिच सधि में पुष्टि हुई। पीडमाण्ट को आस्ट्रिया से लाम्बार्डी मिल गया और नेपोलियन ने नाइस और सवाय नहीं मांगा। लोम्बार्डी से आस्ट्रिया की सेनाओं के चले जाने के पश्चात, टुस्कन, परमा

और मोडिना की जनता ने विद्रोह करके अपने राजाओं को मार भगाया। अन्त में मार्च, १८६० में ट्यूरिन की सधि के अनुसार फ्रांस ने टुस्कन, परमा और माडिना के पीडमोण्ट में सम्मिलित होने को मान्यता दी और १८५८ के वचन के अनुसार उसे नाइस और सवाय प्राप्त हुए।

१८६६ में इटली ने प्रशिया से मित्रता स्थापित कर ली तथा १८६६ में आस्ट्रिया और प्रशिया में युद्ध में उसने प्रशिया की ओर से युद्ध किया। यद्यपि इटली की सेना कुस्टोज्जाया के युद्ध में पराजित हुई तथापि क्योंकि इसके साथी ने आस्ट्रिया के दाँत खट्टे कर दिए थे इस कारण उसे भी विनिनिया प्राप्त हुआ।

१८६७ का समझौता (Ausgleich of 1867)—यह पहले ही लिखा जा चुका है कि १८४६ में रूस और आस्ट्रिया की सम्मिलित शक्ति ने हगरी की जनता को कुचल दिया था। उसके पश्चात् हगरी के प्रति एक केन्द्रीय तथा तानाशाही सरकार स्थापित की गई। अधिकृत रूप से यह घोषित किया गया कि 'हगरी का क्रान्ति से पूर्व का सविधान विद्रोह के कारण रद्द कर दिया गया है। स्थानीय स्वायत्त शासन समाप्त कर दिया गया तथा समस्त प्रशासनिक तथा न्यायिक पदों की पूर्ति आस्ट्रिया के पदाधिकारियों द्वारा कर दी गई। मेग्यार भाषा के स्थान पर जर्मन भाषा को राज्य भाषा घोषित किया गया तथा हगरी को आस्ट्रिया का एक दास राष्ट्र बना दिया गया था।

किन्तु इस प्रकार की स्थिति अधिक समय तक नहीं चल सकती थी। १८५६ ६० के इटली के स्वातन्त्र्य युद्ध से यह स्पष्ट हो गया कि आस्ट्रिया अपने साम्राज्य की अक्षुण्णता बनाए रखने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली नहीं है। यह अनुभव किया गया कि जिस देश पर विदेशों से आक्रमण हो रहा हो वह देश अपनी प्रजा से युद्ध नहीं कर सकता। परिणामत आस्ट्रिया के शासकों को हगरी से समझौता करने पर विवश कर दिया गया।

इस गुत्थी को किस प्रकार सुलझाया जाये—इस प्रश्न पर मतभेद था। जर्मन सुधारवादी केन्द्रस्थ और 'एकात्मक' (Unitary) प्रणाली की सरकार के समर्थक थे। किन्तु कुछ अन्य लोग सघीय' (Federal) प्रणाली की सरकार के समर्थक थे। इस प्रकार की परिस्थिति में अनेक प्रकार के अन्वेषण करके दोनों पक्षों के मानने योग्य हल पर पहुँचने का प्रयत्न किया गया था।

१८६० के अक्टूबर अधिकार पत्र द्वारा हगरी को १८४८ की वस्तुस्थिति पर स्थिर किया गया। पाँच शासन प्रांत समाप्त कर दिए गए। हगरी की विधान सभा पुन स्थापित हुई तथा हगरी में स्थानीय स्वायत्त शासन पुन लागू कर दिया गया। हगरी के लोगों को हा राज्य के पदों पर लगाया जाने लगा। निस्सदेह १८६० के अधिकार-पत्र द्वारा हगरी से समझौते का मार्ग बन गया था।

किन्तु हगरी की मेग्यार जाति (Magyars) केवल १८४८ की व्यवस्था तथा परिपाटी की पुनस्स्थापना से प्रसन्न नहीं थी। उन्होंने मार्च १८४८ के कानूनों के लागू करने की माँग की थी। विभिन्न दलों के हठ के कारण फिर झगड़ा हुआ।

श्मिरलिंग (Schmerling) मन्त्रिमण्डल का ध्येय सत्ता को केन्द्रस्थ करना तथा आस्ट्रिया के साम्राज्य की अक्षुण्णता को बनाए रखना था। मन्त्रिमण्डल ने फरवरी, १८६१ में एक घोषणा की थी। समूचे आस्ट्रियायी साम्राज्य के लिए एक संविधान बनाया गया और हंगरी की स्थिति केवल एक प्रांत जैसी रह गई। हंगरी की विधान सभा ने इस घोषणा-पत्र को अस्वीकार कर दिया। हंगरी ने वियाना की केन्द्रीय सभा (Reichsrath) में अपने प्रतिनिधि भेजने से इन्कार कर दिया। हंगरी के नेता डीक (Deak) का नारा था १८४८ के कानूनों को मान्यता दो। हंगरी की जनता का दावा था कि वे बहुत समय से एक भिन्न राष्ट्र रहे हैं। आस्ट्रिया से उनका सम्बन्ध केवल एक व्यक्तिगत सम्पर्क है। आस्ट्रिया का सम्राट तभी हंगरी का राजा बन सकता है जब वह हंगरी के मौलिक कानूनों की रक्षा करने की शपथ लेता है तथा जब उसको सेंट स्टफन के मुकुट को धारण करके अभिषेक होता है। हंगरी के मौलिक कानून शताब्दियों पुराने थे और १८४८ मार्च के कानूनों द्वारा इनकी पुष्टि मात्र हुई थी। इन कानूनों में बिना हंगरी की अनुमति के कोई परिवर्तन नहीं हो सकता था। आस्ट्रिया का सम्राट अपनी निरंकुशता के द्वारा इन्हें रद्द नहीं कर सकता था। हंगरी एक प्राचीन ऐतिहासिक देश था जिसकी सुविख्यात सीमाएं थीं जिन्हें आस्ट्रिया का सम्राट अपनी इच्छा द्वारा नहीं बदल सकता था।

यह मामला १८६१ से १८६५ तक उलझा रहा। इस सुलझाने के लिए विचार विमर्श चलता रहा था। १८६६ की आस्ट्रिया प्रशिया की लड़ाई के कारण यह वार्ता बन्द हो गई किन्तु १८६७ में पुनः चालू हो गई थी। परिणाम यह हुआ कि उसी वर्ष 'समझौता' हो गया था। कहा जाता है कि १८६६ में आस्ट्रिया की पराजय के पश्चात डीक से पूछा गया कि हंगरी क्या चाहता है? उसने उत्तर दिया कि हंगरी जो कानिग्राटज (Konnigratz) के पहले मांगता था उसके पश्चात उससे अधिक नहीं मांगता। डीक के समझौता करने के रुख से फैसला अत्यन्त शीघ्रता से हो गया। पुनश्च आस्ट्रिया प्रशिया के युद्ध के बाद आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर निकाल दिया गया था। यह आवश्यक हो गया था कि वह किन्हीं अन्य देशों से सहायता प्राप्त करे जिससे कि वह प्रशिया के विरुद्ध जमने योग्य हो जाए। यह उसी स्थिति में सम्भव हो सकता था जब हंगरी से सुलह हो जाती। समझौते को आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस जोसेफ तथा दोनों देशों की संसदों ने भी मान्यता दी था। फ्रांसिस जोसफ को हंगरी के राजा के रूप में अभिषिक्त किया गया।

१८६७ के समझौते से एक अनोखा राज्य बन गया जो न तो संघीय' और न 'एकात्मक' प्रणाली का था। इससे आस्ट्रिया हंगरी में दोहरी राजशाही बन गई। आस्ट्रिया हंगरी दो भिन्न भिन्न पूर्णतः स्वतन्त्र तथा एक दूसरे के बराबर के दो राज्य बन गए। इनका राजा तथा राष्ट्र ध्वज एक ही था किन्तु राजा को आस्ट्रिया में सम्राट (Emperor) तथा हंगरी में राजा (King) कहा जाता था। आस्ट्रिया और हंगरी दोनों में अलग अलग संसदें मन्त्रिमण्डल तथा सरकारें थीं। दोनों राज्य आन्तरिक मामलों में पूर्णतः स्वतन्त्र थे। किन्तु विदेश, युद्ध, तथा वित्त मन्त्रालय

दोनो के संयुक्त थे। दोना देशो की कोई सामूहिक संसद् नही थी किन्तु 'प्रतिनिधि मण्डल' प्रणाली की व्यवस्था थी। प्रत्येक देश की संसद् ६० सदस्यों का एक प्रतिनिधिमण्डल चुनती थी और ये प्रतिनिधिमण्डल बारी-बारी से कभी वियाना और कभी बुडापेस्ट म मिलते थे। वास्तव म ये प्रतिनिधिमण्डल दोना ससदो की दो समितियाँ थी। इनके अधिवेशन अलग अलग होते थे दोनो ही भिन्न भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते थे तथा अपने विचार लिखित रूप म भेजा करते थे। दोनों प्रतिनिधिमण्डलो म मतभेद की अवस्था म दोना के संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था थी। संयुक्त अधिवेशन का निर्णय बहुमत के आधार पर होना था। कर-व्यवस्था और मुद्रा-व्यवस्था इत्यादि संयुक्तमण्डला के अधिकार म नही थी। इस विषय दानो राज्यो की संसदें दस-वर्षीय प्रतिज्ञा पत्र द्वारा निर्णय करती थीं और इस व्यवस्था का यह परिणाम होता था कि प्रत्येक दस वर्ष की अवधि के पश्चात् दोनों राज्यो म पर्याप्त तनाव रहा करता था।

यह बात उल्लेखनीय है कि आस्ट्रिया-हंगरी की दोहरी राजशाही व्यवस्था ही तत्कालीन परिस्थिति का एकमात्र निपटारा था। आस्ट्रिया-सम्राट फ्रांसिस जोसफ कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने को उद्यत नही था। यह समझौता प्राचीन परिपाटी के अनुकूल था और इसका उद्देश्य सम्राट की महत्ता को बनाए रखना था। यद्यपि मेग्यार राष्ट्रीयता को अनेक सुविधाएं दी गई तथापि समझौते से कई लाभ हुए। इससे सैनिक तथा दूतावास की सेवाएँ यथायोग्य बनी रही और इनको आस्ट्रिया का सम्राट अत्यन्त महत्व देता था। इस समझौते से इन महत्त्वपूर्ण मामलों का संचालन सम्राट के हाथो म सुरक्षित रहता था तथा आस्ट्रिया और हंगरी को दो पृथक स्वाधिकारपूर्ण राष्ट्र बनने से रोकता था। दोनो देशो के प्रशासन सामन्त तथा धनी मध्यमवर्ग के लोग चलाते थे। सम्राट को दोनो देशो के विधेयकों पर अखण्ड निषेधाधिकार प्राप्त था। संसद का समर्थन ना देने पर भी सम्राट मन्त्रिमण्डलो को बनाए रख सकता था।

१८६७ के पश्चात आस्ट्रिया और हंगरी के बीच मतभेद बढ गए। आस्ट्रिया को उत्तरोत्तर औद्योगिक दृष्टि म विकसित किया गया था। इस कारण वहाँ उत्पादन व्यापार तथा बैंकों की प्रगति हुई और कृषि सम्बन्धी मामलो पर कम ध्यान दिया जाने लगा। दूसरी ओर हंगरी मुख्यत कृषिप्रधान देश था। अत वहाँ औद्योगिक उन्नति पर ध्यान नही दिया गया था। दोना देशो की आर्थिक असमानता के कारण दोनो देशो म साम्राज्य के संयुक्त खर्चे के विषय म काफी झगडा चलता था। आस्ट्रिया की राजस्व नीति हंगरी की नीति स भिन्न थी। आस्ट्रिया उद्योगो की रक्षा तथा कृषि के उत्पादन म खुले व्यापार का समर्थक था। दूसरी ओर हंगरी कृषि उत्पादन की रक्षा और तैयार माल के खुले व्यापार की नीति का समर्थक था। इस विषय म एक समझौता हुआ जिसके द्वारा उद्योग और खेती दोनो को रक्षा प्राप्त हुई थी।

१८६८ के बाद सुधारों के कारण दोनों देशों म असन्तोष था। हंगरी की

सरकार ने इस बात पर जोर दिया कि हंगरी की सेना में केवल मग्यार जाति के ही पदाधिकारी हों तथा उन्हें मग्यार भाषा में ही आदेश दिए जायँ। आस्ट्रिया ने हंगरी की बात नहीं मानी और १८६७ में हंगरी ने आस्ट्रिया के साथ सैनिक-सन्धि का पुन नहीं दोहराया। सम्राट दोनों देशों की सेना का नियन्त्रण वार्षिक आज्ञप्तियों द्वारा करता रहा तथा सेना आदेशों की भाषा जर्मन ही बनी रही। १६०३ में हंगरी ने आस्ट्रिया के साथ सैनिक-सन्धि की जिसका मुख्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय कठिन परिस्थितियाँ थी।

१८७८ में एक केन्द्रीय आस्ट्रिया-हंगरी बैंक की स्थापना भी एक मतभेद का परिणाम था। हंगरी अलग राष्ट्रीय बैंक की स्थापना करना चाहता था और वे केवल सामूहिक सचालन चाहते थे। १६१७ में यह समझौता हुआ कि दोहरी राजशाही के साथ प्रत्येक वैदेशिक और व्यापारिक सन्धि पर केवल विदेश-मन्त्री के ही हस्ताक्षर नहीं होंगे अपितु आस्ट्रिया और हंगरी की सरकार के प्रतिनिधियों के भी हस्ताक्षर होंगे।

अनेक कमियों के होने पर भी १८६७ के समझौते से दोनों देशों को अनेक लाभ हुए थे। दोनों को यह अनुभव हुआ कि संयुक्त होने पर ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में उनका कुछ प्रभाव बन पायेगा। उनका सम्मान बढ़ गया और उनकी आर्थिक स्थिति में भी बहुत उन्नति हुई। संयुक्त आर्थिक व्यवस्था से आस्ट्रिया और हंगरी के माल के लिए विशाल मण्डी का क्षेत्र खुल गया था। आस्ट्रिया के उद्योग के लिए हंगरी में एक सुविधाजनक मण्डी मिली और हंगरी के कच्चे माल को इसी प्रकार सुविधाजनक मण्डी प्राप्त हुई। इनकी संयुक्त सैनिक शक्ति ने हैप्सबर्ग वंश को एक सम्मानयुक्त महान शक्ति बनाए रखा था। आस्ट्रिया और हंगरी दोनों ही रूस से डरते थे और इसलिए इन दोनों ने एक विशाल सेना का व्यय भार उठाने के लिए एकता कर ली थी।

१८६७ के समझौते पर टिप्पणी करते हुए वाटसन कहता है "यह सत्य है कि इस समझौते को १७२३ के अधिकार-पत्र (Pragmatic Sanction of 1723) का युक्तियुक्त परिणाम कहा जा सकता है किन्तु तत्पश्चात् होने वाली घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि इसका आधार ऐतिहासिक प्रगति के सिद्धान्त की अपेक्षा मानसिक ईर्ष्या अधिक है। दोहरी राज-व्यवस्था का वास्तविक आधार-तत्त्व दो शक्तिशाली जातियों अर्थात् जर्मन और मग्यार के बीच पारस्परिक संगठन है। इन दो जातियों ने राजशाही को आपस में बाँट लिया और अन्य दो कम शक्तिशाली जातियों—पोल और क्रोट—को स्वायत्त शासन प्रदान करके उन्हें अन्य शेष आठ जातियों को अपने अधिकार में रखने के लिए अपना साथी बना लिया था। स्लाव (Slavs) जाति दोहरी राजशाही की प्रणाली तथा प्रणाली की सरकार के अधिक पक्ष में थी। वे आस्ट्रियायी साम्राज्य के अन्तर्गत समस्त जातियों को स्वायत्त अधिकार देने के पक्ष में थे क्योंकि यह उनका ऐतिहासिक अधिकार था। बोहेमिया (Bohemia) विशेष रूप से दुखी था क्योंकि वह समझता था कि उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ

था। इस प्रकार १८६७ के समझौते में ही फूट के बीज पड़े थे। १८६७ के पश्चात् हंगरी में भी परिस्थिति विकट होती जा रही थी। यह सत्य है कि शासन ने एक नागरिक रूप में व्यवहार करके हंगरी में ग्र मग्यार (Non Magyar) तत्वों से समझौता करने का प्रयत्न किया था। उसने क्राट जाति का प्रसिद्ध कोरा अधिकार पत्र (Blank Sheet) देकर कहा था कि वे उस अपनी इच्छानुसार भर लें। क्रोशिया (Croatia) का प्रशासन न्याय धर्म के मामलों में पूर्ण स्वाधिकार दिया गया तथा क्रोशिया भाषा उनके विधान मण्डल तथा कार्य मण्डल की भाषा थी। हंगरी का संसद के पास केवल विदेश मामले ही रहे और क्रोशिया हंगरी की संसद में चालीस सदस्य भेजा करता था। क्रोशिया की अग्राम (Agram) में अपनी अलग संसद भी थी।

१८६८ के जातियों के कानून (Law of Nationalities) द्वारा हंगरी में ग्र मग्यार जातियों की समस्या सुलझाने का प्रयत्न किया गया था। मग्यार भाषा को हंगरी के विधान मण्डल और कार्य मण्डल की राज्यभाषा बनाकर विद्यालयों और न्यायालयों में अन्य भाषाओं के प्रयोग करने की छूट दे दी गई थी। इससे हंगरी की अन्य जातियों के युक्तियुक्त राष्ट्रीय दावों की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया था किन्तु यह कानून आरम्भ से ही एक मृत विधेयक बना रहा और इसे क्रियात्मक रूप देने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। दूसरी ओर ग्र मग्यार तत्वों को मग्यार बनाने के लिए कोई भी प्रयत्न अधूरा नहीं रखा गया था। इससे बड़ा असन्तोष फैला और इसका परिणाम अन्त में हंगरी का छिन्न भिन्न हो जाना था।

१८६७ का समझौता आस्ट्रिया हंगरी के सम्मुख समस्याओं का वास्तविक हल न था। आस्ट्रिया हंगरी की अन्य अल्पसंख्यक जातियां १८६७ में हंगरी को मिले विशेषाधिकारों से ईर्ष्या करती थीं। १८६७ के पश्चात् उनसे समझौता करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि असंतोष निरन्तर बढ़ता गया और अन्तत आस्ट्रियायी साम्राज्य टुकड़े टुकड़े हो गया।

आस्ट्रिया हंगरी और बलकान (Austria Hungary and the Balkans) — आस्ट्रिया हंगरी के लिए बलकान राज्य बड़े महत्व के थे। इसका कारण यूरोप में आस्ट्रिया की भौगोलिक स्थिति थी। यह स्थल से घिरा हुआ देश था और इसे समुद्री मार्ग की आवश्यकता थी। डेन्यूब नदी से आस्ट्रिया को समुद्र का मार्ग प्राप्त हो जाता था किन्तु कुस्तुनतुनिया (Constantinople) शत्रुओं के हाथ में था। इस लिए इस मार्ग के लाभ नगण्य थे। ट्रिस्टी (Trieste) आस्ट्रिया का लिवरपूल और वाला इसका पोर्ट समझौता था। यदि किन्हीं कारणों से ट्रिस्टी इटली के पास चला जाता और इस्टिया और फ्यूम इटली या साईबेरिया या युगोस्लाविया के हाथ पड़ जाते तो आस्ट्रिया हंगरी की सामुद्रिक व्यापार की परिस्थिति अत्यन्त भयंकर हो जाती। एड्रियाटिक में उसकी स्थिति अत्यन्त गम्भीर थी। विलोना और ट्रिस्टी को प्राप्त करके इटली अत्यन्त सरलता से आस्ट्रिया का भूमध्यसागर में जाने का मार्ग रोक सकता था। बलकान में माण्टीनीग्रो और सर्बिया दोनों आस्ट्रिया हंगरी के

प्रतिद्वन्द्वी थे। यद्यपि माण्टीनीग्रो का समुद्री तट केवल ३० मील के घेर में था, तथापि उसे एड्रियाटिक समुद्र में जाने का मार्ग प्राप्त था। यदि युगोस्लाव साम्राज्य के स्वप्न वास्तविक रूप से भी पूरे हो जाते तो ट्रिस्टी फ्यूम और पोला का महत्त्व न रह पाता। इन तथ्यों के कारण आस्ट्रिया बलकान में बड़ी दिलचस्पी रखता था। यदि उसे काला सागर और एड्रियाटिक समुद्र में भी पहुँचने का मार्ग नहीं मिलता था तो वह एजियन समुद्र (Aegean Sea) से अपना मार्ग निकाल सकता था। इन सब कारणों से आस्ट्रिया और रूस तथा सर्बिया के बीच तनाव होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी।

१८६६ में जर्मनी और इटली से निकाल दिए जाने के पश्चात् आस्ट्रिया हंगरी बलकान में अधिक दिलचस्पी दिखाने लगा था। १८७८ की बर्लिन सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया हंगरी को बोसनिया, हर्जीगोविना नावी बाजार का सन्जक (Sanjak) मिला था। नोवी-बाजार सर्बिया और मोण्टीनीग्रो की स्लाव जाति के बीच बफर राज्य का काम ही नहीं करता था अपितु आस्ट्रिया-हंगरी को वारदार (Vardar) घाटी में आगे सालोनिका तक प्रसार का निमन्त्रण भी देता था।

१९०३ तक सर्बिया का राजवंश आस्ट्रिया-हंगरी का सेवक रहा था। किन्तु उस वर्ष राजा एलेक्जेण्डर और उसकी रानी की हत्या कर दी गई थी और इनकी मृत्यु के साथ, जिस ओब्रिनोविक (Obrenovic) वंश का वह वंशज था समाप्त हो गया था। अतः एक नया राजवंश (Karageorgevic) सत्ता में आया। नवीन वंश उग्र तथा आस्ट्रिया विरोधी था। परिणामतः सर्बिया और आस्ट्रिया-हंगरी के बीच तनाव बढ़ता गया। इसका परिणाम १९०५-६ का पिग युद्ध (Pig War) निकला। इससे सर्बिया की यह धारणा और अधिक दृढ़ हो गई कि जब तक उसे एड्रियाटिक अथवा एजियन समुद्र पर तट प्राप्त नहीं होगा उसके देश की उन्नति असम्भव है। एजियन समुद्र पर मार्ग मिलना असम्भव था किन्तु एड्रियाटिक सागर का मार्ग भी उसे बोसनिया हर्जीगोविना और डालमेटिया की कुछ बन्दरगाहों के मिले बिना प्राप्त नहीं होता था।

सर्बिया को आशा थी कि उसे हर्जीगोविना और बोसनिया मिल सकता है किन्तु जब १९०८ में आस्ट्रिया-हंगरी ने जिसे बर्लिन-सन्धि के द्वारा केवल प्रशासन का अधिकार दिया गया था उन्हें अपने राज्य में मिला लिया तो सर्बिया को घोर निराशा हुई। सर्बिया में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं किन्तु रूस ने उसे समझाया कि वह ऐसा न करे क्योंकि वह आस्ट्रिया और जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करने की स्थिति में नहीं है। जर्मनी ने भी अपने साथी आस्ट्रिया का साथ देने की घोषणा कर दी थी। सर्बिया ने नावी बाजार में सन्जक की क्षतिपूर्ति माँगी किन्तु उसे कुछ नहीं दिया गया। इसके विपरीत उसे नीचा देखना पड़ा और यह घोषणा करनी पड़ी कि बोसनिया और हर्जीगोविना पर उसका कोई दावा नहीं है तथा उसे आस्ट्रिया द्वारा इनको अपने राज्य में मिला लेने में आपत्ति नहीं। टर्की को २० लाख पौण्ड क्षति-पूर्ति के लिए गए और उसने आस्ट्रिया द्वारा इनके राज्य में मिलाने

को मान्यता दे दी। आस्ट्रिया ने बलगारिया को २ करोड़ पौण्ड दिए। इस प्रकार १६०८ ई० का बोसनिया समस्या का निपटारा हुआ था। किन्तु इस घटना ने सर्बिया के निवासियों के मन में इस बात की कटु-स्मृति छोड़ दी कि उन्हें बोसनिया तथा हरजीगोविना को प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर दिया गया है।

१६१२-१३ के बलकान-युद्ध में सर्बिया ने अपने राज्य और सम्मान में वृद्धि की थी। उसने सलोनिका और आस्ट्रिया-हंगरी के बीच की रोक को भी शक्तिशाली बनाया था। बलकान युद्ध में विजय प्राप्त करने से सर्बिया का आत्मविश्वास बढ़ गया और वह महत्वाकांक्षी भी बन गया था। सर्बिया की शक्ति की इस महान वृद्धि को आस्ट्रिया सहन नहीं कर सकता था और १६१३ में इस बात की बड़ी आशंका थी कि इन दोनों में युद्ध छिड़ जाएगा। किन्तु यह भय टल गया। किन्तु २८ जून १६१४ को बोसनिया की राजधानी सिराजिवो (Serajevo) में आस्ट्रिया के आर्क ड्यूक फ्रांसिस फर्डिनण्ड की सर्बिया के निवासियों ने हत्या कर दी। आस्ट्रिया ने सर्बिया को चुनौती (ultimatum) दी और घोषित अवधि की समाप्ति पर आस्ट्रिया ने सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। आस्ट्रिया का साथ जर्मनी ने तथा सर्बिया का साथ रूस, फ्रांस और ब्रिटेन ने दिया था। आस्ट्रिया हंगरी युद्ध में आस्ट्रिया पराजित हुआ और सेंट जर्मेन तथा ट्रियानान की संधियों के द्वारा इसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए।

Suggested Readings

Andrews	*Historical Development of Modern Europe*
Cecil A	*Metternich 1933*
Drage	*Austria Hungary*
Fyffe	*History of Modern Europe*
Flenley R	*Maker of the Nineteenth Century Metternich*
Herman A	*Metternich*
Kissinger H A	*A World Restored 1957*
Auernheimer	*Metternich Statesman and Lover 1940*
Malleson C B	*Life of Prince Metternich*
Sandemans	*Metternich 1911*
Woodward	*Three Studies in European Conservatism 1929*
Mahaffy	*Francis Joseph*
Pribram A F	*The Secret Treaties of Austria Hungary*
Redlich J	*Francis Joseph of Austria*
Rumbold	*Francis Joseph and His Times*
Seton Watson	*The Future of the Hungarian Nation*
Steed H Wickham	*The Hobsburg Monarchy*
Taylor A J P	*The Hobsburg Monarchy*
Thayer W R	*Throne Makers*

अध्याय १६

इटली का एकीकरण

(Unification of Italy)

१८१५ की व्यवस्था (Settlement of 1815)—१८१५ की विधाना व्यवस्था से इटली का सगठन नहीं हो सकता था। वास्तव म यह बहुत से शासको के अधिष्ठन बहुत से राज्यो म बँटा हुआ था। फर्डिनण्ड प्रथम को सिसली और नेपल्स का राज्य पुन दे दिया गया था। पोप को रोम तथा अन्य प्रदश तथा हैप्सबर्ग राजवश को परमा, माडेना टुस्कन पुन द दिए गए थे। लोम्बार्डी और विनिशिया का आस्ट्रियायी साम्राज्य म तथा सार्डीनिया और जिनाआ को पीडमोण्ट राज्य मे मिला दिया गया था। इटली को बहुत स स्वतत्र राज्यो म मिला देने के कारण ही मेटरनिक इटली को एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' कहा करता था। मेजिनी ने इटली की अवस्था का इन शब्दो मे वणन किया है, "उनसे उनका देश उनकी स्वतत्रता और उनका भ्रातभाव छीन लिया गया है। उन लोगो ने जो उनकी प्रवत्तियो, आवश्यकताओ तथा इच्छाओं से अनभिज्ञ हैं उनकी रुचि का अपमान करके उन्ह बाध कर एक अत्यन्त सकीण वत्त म डाल दिया है। उनकी परिपाटियो को आस्ट्रिया के साधारण सनिको की दल रेख म नष्ट किया जा रहा है और उनकी आत्मा आज विश्राना के राज्य सिंहासन पर बैठने वाले एक व्यक्ति के लोभ के कारण दासता के बन्धन मे बन्दी बना दी गई है।"

१८१५ मे भूतपूव शासको को पुन पदासीन करने के पश्चात उन देशो मे सावजनिक रूप से प्रतिक्रियावादी अथवा आचरहीन प्रशासन स्थापित हुए। फर्डिनण्ड ने प्राचीन घृणास्पद पुलिस व्यवस्था समाचारपत्रो पर प्रतिबन्ध तथा धर्माचार्यों की सत्ता का पुनःस्थापन किया। उसने सुधारवादियो को दण्ड दिया राजशाही के समयको का सम्मानित किया तथा सिसली का स्वाधिकारपूण सविधान भग करके देशवासियो की भावनाओ का निरादर किया। पोप के राज्यो मे धार्मिक दण्ड व्यवस्था (Inquisition and Index) तथा अन्य मध्यकालीन चच शासन का आडम्बर पुन लागू कर दिया था। भ्रष्टाचार से पूण तथा निकृष्ट शासन व्यवस्था से जनता मे अत्यन्त असतोष फैला। देश म सामाजिक अराजकता फैल गई थी। मोडेना म अत्याचारी सरकार थी। लोम्बार्डी और विनिशिया म जनता के राजनीतिक जीवन पर जान-बूझ कर आस्टिया की विचारधारा और परिपाटी थोपने का प्रयत्न किया गया। सूक्ष्म रूप से यह कहा जा सकता है कि इटली में अत्यधिक प्रांतीयता की भावना थी और देश के सम्पूण क्षेत्रो पर आस्टिया का पूण अधिकार था।

नेपोलियन के शासन[1] ने इटली में एक नया जीवन फूँक दिया था तथा अनेक युद्ध क्षेत्रों में कठिनता से प्राप्त की गई एकता को और भी दृढ़ करने को प्रोत्साहन



दिया गया था। यद्यपि पुनः राजप्राप्ति के बाद राजाओं ने प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण किया, इटलीवासियों में प्रजातन्त्रात्मकता और राष्ट्रीयता की भावना का बड़ी तेजी

1 इटली पर नेपोलियन के राज्य के कारण उत्तरी प्रदेश पर बहुत अच्छा शासन था। नेपल्स का राज्य मुरट के अधिकार में था और उसने अपने शासन में सारे इटली को एक करने की साहसपूर्ण योजना बनाई। १८१४-१५ में उसने अपनी योजना को क्रियात्मक रूप दे दिया और इटली के संघ की घोषणा की। वह पराजित हुआ और उसे गोली मार दी गई किन्तु जिन आदर्शों को उसने बनाया उनकी मृत्यु नहीं हुई। मुरट को आज भी इटली की स्वतन्त्रता और एकता का सर्वप्रथम आधुनिक अग्रदूत माना जाता है।

मारवहम (Markham) के मतानुसार, "इटली में नेपोलियन के शासन में भले ही आरंभिक

से प्रगति हुई थी। देशभक्ता में देश की अपमानजनक अवस्था के कारण जाग्रति हुई और प्रजातन्त्र के समर्थकों ने सिसली देश के निवासी होने के नाते नहीं अपितु इटली के निवासी होने के नाते दमन और अत्याचार का विरोध करने के लिए जाग्रति पैदा की थी। देश के कोने-कोने में गुप्त क्रान्तिकारी संस्थाओं का निर्माण हुआ जिनमें कारबोनारी (Carbonari) नाम की संस्था सबसे प्रमुख थी। इसके अपने रहस्यमय और गुप्त प्रतीक तथा आचार व्यवहार थे। किन्तु इसका गुप्त तथा दृढ़ राजनीतिक ध्येय देश में से विदेशियों को निकालकर सावधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। इसमें सारे वर्ग, यथा सामन्त सैनिक पदाधिकारी किसान, धर्माधिकारी इत्यादि सभी सदस्य थे। उच्च तथा बुर्जुआ वर्गों में सुधारवाद तथा प्रजातन्त्रवाद के विचार अत्यन्त गम्भीरता से जड़ पकड़ चुके थे। कारबोनारी की सदस्यता इटली में बाहर भी थी तथा काले, लाल और नीले रंग का इसका तिरंगा ध्वज क्रान्ति का ध्वज बन गया था।

नेपल्स का विद्रोह (Revolt in Naples) (१८२०)—गुप्त सभाओं से प्रेरणा पाकर १८२० में विद्रोह आरम्भ हुआ जो तीस वर्ष तक भी समाप्त नहीं हुआ था। प्रथम विद्रोह नेपल्स में आरम्भ हुआ था। १८१५ में सिंहासन पर पुनः आसीन होने पर फर्डिनण्ड प्रथम ने पूर्ण भक्ति के साथ यह शपथ ली थी कि वह सिसली के सुधारवादी संविधान की रक्षा और सम्मान करेगा किन्तु १८१६ में उसने इस संविधान को भंग कर दिया जिससे यह इटली के अन्य राज्यों के लिए आदर्श न बन जाए। १८२० की स्पेन क्रान्ति के कारण स्पेन के बोर्बन वंशजों के अधिकृत इटली के राज्यों में बड़ी उत्तेजना फैली। नेपल्स के निवासियों को सेना का समर्थन प्राप्त था, उन्होंने स्पेन की तरह के संविधान की मांग की। फर्डिनेण्ड प्रथम ने बड़ी उदारता से विद्रोहियों की माँगें मान ली थी। "उसने परमेश्वर का धन्यवाद किया कि उसने उसे यह अवसर प्रदान किया कि वह अपनी प्रजा को यह वरदान दे सके।" उसने बड़ी सच्चाई के साथ सब सुविधाएँ देने की प्रतिज्ञा की थी। दरबार और मन्त्रियों की उपस्थिति में वह वेदी की ओर बढ़ा और यह शपथ ली—'हे सर्वज्ञ परमात्मा! आप असीम ज्ञान द्वारा भूत और भविष्यत् के द्रष्टा हैं। यदि मैं असत्य

और अनियमित प्रशासनिक एकता रही हो किन्तु नेपोलियन द्वारा 'संहिता' (code) तथा नामबन्द के कारण इटली पर पृथक् आक्रमण के बाद से ही रिसोरजिमेण्टो (Risorgimento) की वृद्धि में प्रगति होने लगी थी। नेपोलियन के नेतृत्व में इटली की सेनाएँ अपनी टुकड़ियों में डट कर लड़ती थीं और इनके लगभग ६० हजार सैनिक मारे गए। इनके पदाधिकारी मोर्चों से नवीन राष्ट्रीयता की प्रेरणा प्राप्त करके लौटते थे। अलफायरी (Alfieri) और फोसकोलो (Foscolo) जैसे रिसोरजिमेंटो के अग्रदूत लेखक नेपोलियन के विरुद्ध भावना रखते थे क्योंकि उसने उनकी राष्ट्रीय एकता की आशाएँ विफल कर दी थीं। १८११ के पश्चात् मुरट इटली की ओर झुकने लगा क्योंकि वे लोग फ्रांसीसी पदाधिकारियों की अधिकता के कारण बड़े दुःखी थे। नेपोलियन ने मुरट को अपदस्थ कर देने की धमकी दी था। १८१५ में '१०० दिन' की अवधि में मुरट ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और सारे इटली निवासियों को राष्ट्रीय एकता और स्वतन्त्रता के नाम पर युद्ध करने के लिए आवाहन किया था।"

यदि अथवा इस सौगन्ध को तोड़ने का मैंने कभी विचार भी किया हो तो आप अपने दण्ड के वज्र से मेरा सिर इसी समय तोड़ दें।' बादशाह ने बाईबल को चूमा और यह शपथ उसके पुत्र ने भी दोहराई और नवीन संविधान की सार्वजनिक रूप से घोषणा हुई।

किन्तु फर्डिनण्ड प्रथम ने ट्रापू में एकत्रित राजाओं को एक गुप्त सन्देश भेजा कि उसकी इच्छा अपना देश छोड़ने की है तथा आस्ट्रिया की सेना की सहायता से पूर्णाधिकार प्राप्त करने की है। दिसम्बर, १८२० में वह लाईबक (Laibach) गया था। ज्यों ही वह आस्ट्रिया की सीमा की सुरक्षा में पहुँचा उसने आस्ट्रिया के सम्राट से अपनी पूर्ण सत्ता प्राप्त करने के लिए सहायता की याचना की। परिणामतः आस्ट्रिया की सेनाएँ नेपल्स में भेजी गई और नेपल्स की सेनाएँ भाग गई। संविधान फाड़ दिया गया और विद्रोही नेताओं को बन्दी बना लिया गया या मार डाला गया।

पीडमोण्ट का विद्रोह (Revolt in Piedmont) (१८२१)—क्रांतिकारी आन्दोलन केवल नेपल्स तक ही सीमित नहीं रहा था। उस समय सारे इटली में गुप्त सभाओं का जाल फैला हुआ था। पीडमोण्ड में विक्टर इमेन्युल (Victor Emmanuel) की सरकार दुर्बल और प्रतिक्रियावादी थी और यहाँ मार्च १८२१ में विद्रोह हुआ। किन्तु सिवाय राजवंश के प्रति कोई हिंसा नहीं की गई। जनता के नारे थे हमारा हृदय राजा के प्रति पूर्णतः स्वामिभक्त है किन्तु हम उसे दुराचारी सलाहकारों से बचाना चाहते हैं। आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध देश में एक संविधान यही दो इच्छाएं हम प्रजाजनों की हैं। जब आस्ट्रिया की सेनाएँ नेपल्स की ओर प्रयाण कर रही थी पीडमाण्ट के क्रान्तिकारियों ने आस्ट्रिया की सेना पर पीछे से धावा करने की योजना बनाई। दुर्भाग्य से योजना बुरी तरह क्रियान्वित हुई और असफल हुई। विक्टर इमेन्युल ने अपने भाई चार्ल्स फेलिक्स के लिए राज्य का परित्याग कर दिया। कुछ लोग सिंहासन चार्ल्स अल्बर्ट को दिलाना चाहते थे। इन मतभेदों के कारण यह आन्दोलन बुरी तरह समाप्त हुआ।

लोम्बार्डी (Lombardy)—लोम्बार्डी पर आस्ट्रिया की दासता पुनः पूरी शक्ति से जड़ दी गई थी। विद्रोही नेताओं को आस्ट्रिया ले जाया गया जहाँ उन्हें अपना सारा जीवन बन्दीगृह में बिताना पड़ा। युवकों को आस्ट्रिया की सेनाओं में भर्ती कर दिया गया था। लोम्बार्डी की जेलें राजनीतिक कैदियों से ठसाठस भरी थीं। सब सन्देहजनक व्यक्तियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। अपराध स्वीकार कराने के लिए अत्याचार किये जाते थे।

फ्रांस की जुलाई १८३० की क्रांति का इटली की राजनीति पर भी प्रभाव पड़ा था। पोप के राज्यों पर इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा था। पोप के राज्यों से आन्दोलन पीडमोण्ट, परमा और मोडना में फैल गया था। किन्तु सब स्थानों पर विद्रोह असफल रहा था। पोप ग्रिगोरी सोलहवें ने आस्ट्रिया से सहायता माँगी थी। मेटरनिक ने आस्ट्रिया की सेनाएं इटली में भेजी और पोप के राज्यों पर 'सफेद कोट (White Coats) वालों ने अधिकार कर लिया था। व्यवस्था स्थापित हुई और

पाप को पुन पदस्थ कर दिया गया था। फ्रांसिस चतुर्थ को माडना के सिंहासन पर तथा मेरी लुई को परमा के सिंहासन पर पुन आसीन कर दिया गया था। किन्तु ज्यो ही आस्ट्रिया की सेनाएँ इटली से निकली नए विद्रोह फूट पडे और सेनाओ को पुन लौटना पडा। इस बार (१८३२ मे) फ्रास ने भी अनकोना (Ancona) पर अधिकार करने के लिए सेनाए भेजी और ६ वर्षो तक आस्ट्रिया तथा फ्रास की सेनाएँ पाप के राज्यो म एक दूसर के सामने डटी रही थी।

य विद्रोह इसलिए असफल रहे क्योकि प्रयत्नो म एकता और व्यवस्था नहीं थी। जनता अभी विद्रोह क लिए उद्यत नहीं थी। एकता केवल कुछ नेताओ की ही पुकार थी, सवसाधारण की भावना नही थी। एक बात अर्थात प्रतिक्रियावादी इटली के राज्यो की निबलता स्पष्ट थी। उनकी रक्षा केवल आस्ट्रिया के हस्तक्षेप के द्वारा ही हो पाई थी।

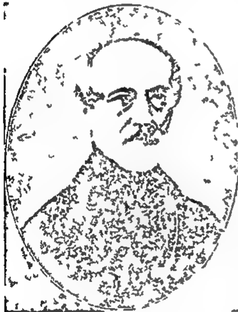
रिसोर्जिमेण्टो (Risorgimento)—तत्कालीन परिस्थिति के विरुद्ध इटली में अनक विद्रोह हुए और हजारो व्यक्तियो को बन्दीगृहों म डाल दिया गया अथवा देशनिकाला द दिया गया था। इन घटनाओ से विचार और भावनाओ का एक गम्भीर आन्दोलन आरम्भ हुआ, जो कालान्तर मे इटली के इतिहास म इतना महत्त्वपूर्ण हो गया कि उसे 'इल रिसोर्जिमण्टो (Il Risorgimento) अथात पुनरावृत्ति या पुनर्जीवन क नाम स पुकारा जान लगा था।

यह आन्दोलन मूल रूप से एक सदाचार का आन्दोलन था। इसका आधार 'स्वतन्त्र और सगठित इटली' का आदश था। इस साहित्यिक गाथाओ से शक्ति की प्रेरणा प्राप्त होती थी। यह इटली की जनता को उनके महान अतीत की स्मृति दिलाता था। राजनीतिक दृष्टि से यह पुनरावृत्ति देशभक्ति और राष्ट्रीयता से परिपूर्ण थी। यह आस्ट्रिया के शासन क विरुद्ध विरोध तथा एकता की माग थी। यह सुधारवादी तथा प्रजातन्त्रवादी था। देश म ससदीय प्रणाली की सरकार समाचार पत्रो की स्वतन्त्रता सब के अधिकारो मे समी तथा गणतन्त्र की स्थापना की माँग थी। यह इटली के मध्यमवग की आर्थिक उन्नति करने की महत्त्वाकाक्षा भी थी। इसका सम्बन्ध विज्ञान और शिक्षा की प्रगति से था। इतना विशाल आन्दोलन एक मात्र अथवा कायक्रम मे आयोजित नही हो सकता था। मैजिनी जैसे विद्वानों के विचार और प्रयत्न भी इस आन्दोलन मे निहित थे।

मेजिनी (१८०५-७२) (Mazzini)—ग्यूसेप मेजिनी (Giuseppe Mazzini) जिनोआ के एक डाक्टर और शरीर विज्ञान के आचार्य का पुत्र था। बाल्यकाल से ही वह इटली क राष्ट्रीय युद्ध से बडा प्रभावित था। जब उसकी आयु मुश्किल से १० वर्ष की थी तब १८१५ म जिनोआ पीडमाण्ट के अधिकार म कर दिया गया था। इस बात स लोगो म बडा असतोष था। १८२० मे मेजिनी ने इटली फ्रांस ब्रिटेन और जमनी के साहित्यिको का साहित्य पढा था। उसके प्रिय साहित्यकारों म डान्टे (Dante) शेक्सपीयर बॉयरन, गेटे शिलर (Schiller) स्काट और ह्यूगो इत्यादि प्रमुख थे। छोटी आयु से ही उस पर स्वदेश की दुदशा का बडा गहरा

था। उसके शब्दों में 'अपने सहपाठियों में घोर और बहुत पहले भर जीवन में मैं गम्भीर और विचारों में डूबा हुआ रहता था और ऐसा प्रतीत होता था कि मैं सहसा ही अत्यन्त बूढ़ा हो गया हूँ। मैं बचपन के भावावेश में आकर स्वयं अपने देश के लिए शोक करने के लिए सदैव काले वस्त्र पहनने लगा था।

उसका झुकाव साहित्यिक जीवन की ओर था। हजारों ऐतिहासिक और साहित्यिक स्वप्न मेरी मानसिक आँखों के आगे नाचा करते थे। किन्तु उसने देश के लिए युद्ध करने के लिए इस जीवन का परित्याग कर दिया। इसको वह अपना प्रथम और महान त्याग मानता था। वह कार्बोनारी का सदस्य इसलिए नहीं बना कि वह इसके तरीकों से सहमत था बल्कि इसलिए कि यह और कुछ नहीं तो एक क्रान्तिकारी संस्था तो थी ही। उसे १८३० में बन्दी बनाकर सवोना (Savona) के किले में डाल दिया गया किन्तु उसे ६ महीने बाद ही मुक्त कर दिया गया था। जिनोआ के राज्यपाल ने मेजिनी के पिता से कहा आपका पुत्र प्रतिभाशाली है किन्तु वह रात्रि के समय विचारों में डूबा हुआ अकेला घूमने का अत्यन्त शौकीन है। आखिर इस आयु में उसे कौन सी समस्या पर विचार करना है? हम युवकों का इस प्रकार विचारमग्न होना पसन्द नहीं जब तक कि हमें यह मालूम न हो कि वे किस विषय पर विचार करते हैं।



मेजिनी

मेजिनी के विशाल अनुभव ने एक नई संस्था— युवा इटली (Young Italy) की नींव डालने में सहायता की। राष्ट्रीयता के आन्दोलन के केन्द्र के रूप में यह संस्था कार्बोनारी से भी अधिक प्रसिद्ध हुई थी। इसका नारा था परमेश्वर और जनता (God and the People)। इसके प्रत्येक सदस्य को शपथ लेनी पड़ती थी कि, मैं स्वतन्त्र और गणतन्त्रात्मक इटली की स्थापना के लिए पूर्णरूप से अपना सर्वस्व बलिदान कर दूँगा।

मेजिनी का विश्वास था कि यदि इटली के युवकों को अपने ध्येय में दृढ़ विश्वास हो तो स्वयं वे ही लोग इटली का संगठन कर सकते थे। उसके शब्दों में युवकों को क्रान्तिकारियों का नेतृत्व सौंप देना चाहिए हमें इन युवकों के हृदयों में निहित गुप्त शक्ति का अनुमान भी नहीं है और हमें इनकी ओजस्वी वाणी के जन

साधारण पर प्रभाव का अनुमान भी नहीं है। तुम्हें इन युवकों में देशभक्ति के नवीन १८२१ के धर्म के धर्माचार्य प्राप्त होंगे। मेजिनी ने इटली के लिए बलिदान करने वाला के नाम पर देश को जाग्रत किया। उसने इटली की जनता को बताया कि उनकी कोई नागरिकता, कोई देश और कोई राष्ट्रीय ध्वज नहीं है। युवक इटली का नारा 'परमेश्वर जनता और इटली' था। इसकी कार्य प्रणाली शिक्षा, साहित्यिक प्रचार और विद्रोह थी।

मेजिनी का विश्वास था कि युवक इटली षडयन्त्रकारियों का संगठन मात्र नहीं था। इसका मुख्य उद्देश्य इटली की जनता में आत्मत्याग और देश के लिए बलिदान करने की भावना को जाग्रत करना था।

मेजिनी इटली की मुक्ति और संगठन को धर्म मानता था। वह इसके लिए जान और मरने के लिए तैयार था। वह एक निर्भीक नेता था। वह एक सूझबूझ वाला, कवि और कुशाग्र-बुद्धि व्यक्ति था। उसकी लेखन शैली हृदयग्राही थी। उसका उत्साह अदम्य था। मेजिनी के इन महान गुणों से इटली के संगठन में बड़ी सहायता मिली।

मेजिनी की धारणा थी कि आस्ट्रिया को जितनी शीघ्रता से इटली से निकाल दिया जाए उतना ही शुभ होगा। वह आस्ट्रिया को निकालने में विदेशी सहायता प्राप्त करने के पक्ष में नहीं था। वह कहा करता था अपना उद्धार चाहने वाले 'इटली के दो करोड़ निवासियों को अपनी मुक्ति के लिए शक्ति की नहीं अपितु विश्वास की आवश्यकता है।'

मेजिनी की इटली को सब से बड़ी देन इस वास्तविकता में है कि जिस समय इटली के निवासी इटली के एकीकरण और मुक्ति को एक असम्भव स्वप्न मानते थे उस समय उसने इसे एक क्रियात्मक आन्दोलन बना दिया था। वह इस ध्येय के प्रति जनता में आस्था उत्पन्न करने में सफल हुआ था। वह अपनी ही तरह सेवा और बलिदान की भावना से प्रेरित बहुत से लोगों को इटली के एकीकरण के लिए जाग्रत करके संगठित करने में सफल हुआ था।

१८४६ में जब 'पायस नवम' (Pius IX) इटली में पोप बना उस समय लोगों में बड़ा उत्साह था। वह सुधारवादी नीति का अनुसरण करता था और यह आशा की जाती थी कि वह देश की राष्ट्रीय और गणतन्त्रात्मक शक्तियों का नेता बन जाएगा। जहाँ-तहाँ महान पोप की जय हो (Viva Pio Nono) के नारे सुनाई पड़ते थे। मेटरनिख घबरा गया। उसने कहा "हम एक सुधारवादी पोप के अतिरिक्त सब चीजों के लिए तैयार हैं। अब पोप भी सुधारवादी है। कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में क्या होगा।' आस्ट्रिया की सेनाओं ने फिरारा (Ferrara) पर अधिकार कर लिया। पीडमाण्ट के चार्ल्स अल्बर्ट ने इस अपमान को समझा और विरोध प्रकट किया था किन्तु पोप का उत्साह शीघ्र ही ठण्डा पड़ गया और उसने आगे कुछ भी करने से इनकार कर दिया। किन्तु इसके विपरीत इटली के प्रत्येक राज्य में एक नवीन भावना दीख पड़ती थी और देशभक्ति की भावना सार्वदेशिक थी।

इटली में जनसाधारण की भावना का ब्राउनिंग (Browning) ने तीव्र प्रकार से चित्रण किया है। एक कविता में उसने लन्दन स्थित एक इटली निवासी के मुख से इस प्रकार कहलवाया है —

'However if I pleased to spend,
Real wishes on myself—say three—
I know at least what one should be
I would grasp Metternich until
I felt his red wet throat distil
In blood through these two hands

१८४८-४९ (1848-49)—१८४८ का वर्ष अनेक समस्याओं के साथ आरम्भ हुआ। नेपल्स और सिसली में सुधारों के लिए जनता का आन्दोलन प्रगति पर था। पोप के राज्यों, टुस्कनी और पीडमोण्ट के प्रजातन्त्रवादी इस प्रकार के संविधान की माँग कर रहे थे जिसमें राजसत्ता जनता के हाथों में आ जाए। *लोम्बार्डी और विनिशिया में भी आस्ट्रिया का शासन असहनीय हो रहा था।* १८४८-४९ के सारे आन्दोलन राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्रवाद के समर्थक थे।

जनवरी १८४८ में पालेरमो (Palermo) में विद्रोह हुआ और सुधारों सिसली के स्वशासन और १८१२ के संविधान को पुनः लागू करने की माँग की गई थी। थोड़े विरोध के पश्चात् इन माँगों को मान लिया गया। नेपल्स में भी प्रदर्शन हुए और वहाँ भी नया संविधान लागू कर दिया गया। परिणामतः पोप के राज्यों में, पीडमोण्ट और टुस्कनी में भी संविधान के लिए सार्वजनिक विद्रोह हुए। मार्च १८४८ में पीडमोण्ट और टुस्कनी में सांविधानिक सरकारों की स्थापना कर दी गई थी।

मार्च में ही सूचना प्राप्त हुई कि वियाना और बुडापेस्ट में विद्रोह हुआ है और मेटरनिक लन्दन भाग गया है। मिलान में विद्रोह हुआ, राडेटजकी के नेतृत्व में आस्ट्रिया की सेनाएँ पीछे हट गईं और राज्यपाल देश से भाग गया। वेनिस में प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी गई। माडेना और परमा के राजा भी भाग गए। देश में आस्ट्रिया से युद्ध करके उसके शासन को समाप्त करने की माँग की जाने लगी। केवूर ने अपील की, "सार्डीनिया के राजा का सर्वोत्तम समय आ पहुँचा है। इस समय सरकार, देश और राजा के लिए एकमात्र मार्ग केवल युद्ध ही है।" चार्ल्स अलबर्ट ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। टुस्कनी, नेपल्स और पोप के राज्यों से भी सेनाएँ युद्ध के लिए आईं किन्तु कुछ समय पश्चात् ये सब पीछे हट गईं। जुलाई १८४८ में कस्टोज्जा की लड़ाई में चार्ल्स अलबर्ट की पराजय हुई। लोम्बार्डी और विनिशिया पुनः आस्ट्रिया के अधिकार में आ गए। कस्टोज्जा के युद्ध का परिणाम यह हुआ कि नरम दल के अनुयायियों की निन्दा हुई और मजिनी के नेतृत्व में उग्रदल को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। देश में राजाओं का युद्ध समाप्त हुआ और जनता का युद्ध आरम्भ हुआ।

रोम में गणतंत्र की घोषणा हुई और मेजिनी को इसका प्रमुख बना दिया गया था। पोप की सत्ता समाप्त हो गई। पोप नेपल्स भाग गया और वहाँ जाकर यूरोप की शक्तियों से सहायता माँगी। मार्च, १८४९ में चार्ल्स अल्बर्ट ने फिर आस्ट्रिया से लड़ाई लड़ी किन्तु नोवारा के युद्ध में हार गया। उसने राज्य छोड़ दिया। उसके पुत्र इमेन्युल द्वितीय ने आस्ट्रिया से सन्धि कर ली। नोवारा के पश्चात इटली में प्रतिक्रिया का चक्र चला। नेपल्स ने सिसली पर पुनः अधिकार जमा लिया। टुस्कनी के राजा को भी पुनः पदासीन किया गया। फ्रांस के राष्ट्रपति लुई नेपोलियन ने रोम में एक सैनिक अभियान भेजा। गैरीबाल्डी का पतन हुआ और पोप को पुनः पदस्थ कर दिया गया। अगस्त, १८४८ में आस्ट्रिया की सेना ने वेनिस पर पुनः अधिकार कर लिया। यद्यपि १८४८-४९ का संघर्ष असफल रहा तथापि इससे लाभ हुआ था। उन लोगों की जो गणतंत्र के अथवा पोप के अधिकृत राज्य के समर्थक थे निंदा की गई और पीडमाण्ट की राजशाही के अन्तर्गत इटली के एकीकरण के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया था। इस संघर्ष में बिना प्रान्तीयता का विचार किए इटली के सभी प्रदेशों के लोगों ने भाग लिया था। इटली की जनता का स्वाभिमान जागृत हुआ और इस संघर्ष से इटली को अपनी रक्षा के लिए एक राष्ट्र और प्रतिनिधित्व करने के लिए एक राजवंश प्राप्त हुआ।

केवूर के प्रसिद्ध होने से पूर्व इटली के विद्रोहों के असफल होने के कई कारण थे। आस्ट्रिया की स्थिति इटली में बहुत शक्तिशाली थी। बिना विदेशों की सहायता के उसे इटली से निकालना असम्भव था। किन्तु इटली के देशभक्तों का नारा था कि वे बिना विदेशी सहायता के ही स्वतन्त्रता और संगठन प्राप्त करने में सफल हो जाएँगे। यह असम्भव था। यह सत्य है कि कार्बोनारी और युवा इटली जैसी संस्थाओं के कारण इटली में राष्ट्रीयता की भावना प्रगति कर रही थी किन्तु अभी भी लोगों में स्वार्थ और प्रांतीयता की भावना प्रबल थी। बहुत थोड़े लोग समस्त इटली के हित की दृष्टि से विचार करते थे। इटली के सामन्तों और राजाओं में संगठन के लिए एकता नहीं थी। वास्तव में पीडमाण्ट को छोड़कर सारे ही इसके विरोधी थे। लाम्बार्डी और विनिशिया के साथ आस्ट्रिया एकीकरण का विरोधी था। परमा, मोडना और टुस्कनी के आस्ट्रिया के वंशज राजा भी इसके विरोधी थे। पोप इटली के एकीकरण का सबसे बड़ा शत्रु था क्योंकि इटली के एकीकरण से उसका राज्य, राजधानी, आमदनी और प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती थी। इटली को विशृंखल बनाए रखने के प्रयत्नों में फ्रांस और आस्ट्रिया उसके सहायक थे। इटली के देशभक्तों के ध्येय भी भिन्न भिन्न थे। कुछ प्रजातंत्र के, कुछ पोप के नेतृत्व के और कुछ पीडमोण्ट के समर्थक थे।

एकता के अभाव के कारण ध्येय के लिए संघर्ष दुर्बल हो गया था। देशभक्त अपनी अपनी विचारधारा का प्रचार करते थे और उनकी विभाजित शक्तियाँ अधिक प्राप्त नहीं कर सकती थीं। जिस समय केवूर प्रकाश में आया उस समय इस प्रकार की परिस्थिति थी। किन्तु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि विद्रोहों की असफलता से केवूर का कार्य सरल हो गया। प्रजातंत्र और पोप के नेतृत्व का

समर्था करने वालों के विरुद्ध प्रचार किया गया था। इसलिए सारे इटली की जनता पीडमोण्ट के राजवंश में संगठित इटली के गठन के लिए भरोसा कर सकती थी। पुनश्च विद्रोह की पुनरावृत्ति में पीडमोण्ड इटली के जनता का नेता सिद्ध हो चुका था।

केवूर (Cavour) (१८१० ६१)—इटली के संगठन के लिए केवूर के कार्य का उल्लेख भी आवश्यक है। वह चतुर और कूटनीतिज्ञ था। उसने मजिनी द्वारा बोए गए देशभक्ति के बीज की खेती की रक्षा की। १८५० में वह पीडमाण्ट मन्त्रिमण्डल का सदस्य बना और १८५२ में वह वहाँ का प्रधानमन्त्री बना और १८६१ तक मृत्यु-पर्यन्त वह इस पद पर आसीन रहा था। केवूर से पूर्व जनता का नारा इटली अपनी रक्षा स्वयं करेगा (Italia Fara da se) था। इटली की जनता की धारणा थी कि वे अपना उद्धार बिना बाहरी सहायता के स्वयं ही कर सकेंगे। किन्तु १८४८ ४९ की असफलताओं से सिद्ध हो गया कि बिना विदेशी सहायता के आस्ट्रिया को देश से निकालना असम्भव है। केवूर ने अपना कार्य इस धारणा से प्रारम्भ किया कि बिना विदेशी सहायता के आस्ट्रिया को इटली से नहीं निकाला जा सकता था। इसी कारण उसने क्रीमिया युद्ध में भाग लिया और फ्रांस के नेपोलियन तृतीय की सहायता भी प्राप्त की।

पुनश्च केवूर की यह दृढ़ धारणा थी कि यदि पीडमोण्ट को इटली का नेता बनना है तो उसे इसके योग्य बनना चाहिए। पीडमोण्ड को राजनीतिक और आर्थिक उन्नति करनी चाहिए। इसे एक आदर्श राज्य बनना चाहिए जिसमें कि इटली के अन्य राज्य इसे अपना नेता स्वीकार कर। यदि इस प्रकार प्रगति हो जाए तो इटली के देशभक्त पीडमोण्ट का नेतृत्व स्वीकार कर लेंगे। केवूर के शब्दों में पीडमोण्ट इटली की सारी जाग्रत शक्ति को एकत्र कर सकेगा और जिस कार्य की इससे आशा की जा रही है उस उच्च उद्देश्य को यह पूरा करने में समर्थ हो जाएगा। पीडमोण्ट की आर्थिक उन्नति के लिए उसने कृषि और उद्योग को प्रोत्साहन दिया था। स्वतन्त्र व्यापार की नीति का अनुसरण करके उसने व्यापार की उन्नति कराई। उसने अपने राज्य में सड़कें नहरें और रेलें बनवाई। उसने



केवूर

आय-व्यय के लेखे (Budget) का पुनर्गठन किया और राजस्व में वृद्धि करके अधिक धन प्राप्त किया। उसने स्वतन्त्र राज्य में स्वतन्त्र चर्च की नीति का अनुसरण

किया और राजनीति से धर्म का पृथक्करण निकाल दिया। सेनापति ला-मारमोरा (General La Marmora) के नेतृत्व में सेना का निर्माण किया गया।

क्रीमिया में हस्तक्षेप (Intervention in Crimea)—अपने देश को तैयार करने के पश्चात् कवूर एक मित्र की खोज में था जो उसे क्रीमिया के युद्ध में प्राप्त हुआ। १८५५ में इसने इंगलैंड, फ्रांस और तुर्की के पक्ष में और रूस के विरुद्ध क्रीमिया के युद्ध में भाग लिया। यह सत्य है कि पीडमाण्ट का पूर्व के प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं था किन्तु केवूर पीडमाण्ट की प्रतिष्ठा बढ़ाने के अवसर की प्रतीक्षा में था। यह नीति का एक कुशल दाव था। जब क्रीमिया में इटली की सेनाओं ने कीचड़ बहुत हाल की शिकायत की तो कवूर ने लिख कर भेजा इस कीचड़ से ही इटली का निर्माण होगा। युद्ध पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् १८५६ में पेरिस सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में कवूर ने इटली में आस्ट्रिया के दमन की ओर निन्दा की और इटली के प्रश्न को एक स्थानीय प्रश्न के स्तर से उठा कर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का प्रश्न बना लिया था। केवूर ने अपने प्रश्न पर यूरोप विशेषत: नेपोलियन तृतीय की सहानुभूति प्राप्त की थी।

नेपोलियन और इटली (Napoleon and Italy)—केवूर इटली के लिए नेपोलियन तृतीय का समर्थन प्राप्त करने पर कटिबद्ध था। नेपोलियन तृतीय स्वयं कार्बोनारी का सदस्य था। वह इटली के संघर्ष के प्रति सहानुभूति रखता था और फ्रांस के सुधारवादियों को प्रोत्साहन देता था। किन्तु फ्रांस के कैथोलिक इटली की सहायता के पक्ष में नहीं थे क्योंकि इससे रोम के पोप की सत्ता समाप्त हो जाने का डर था। नेपोलियन तृतीय को इस बात का भी भय था कि यदि इटली में आस्ट्रिया अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ तो वह स्वयं पराजित हो सकता था। फ्रांस के इटली में युद्ध करने समय प्रशिया द्वारा फ्रांस पर आक्रमण किए जाने का डर था। नेपोलियन तृतीय का सकोच करना स्वाभाविक था। इटली के एक देश भक्त ओरसिनी ने नेपोलियन तृतीय की हत्या करने का प्रयत्न किया था। ओरसिनी ने बन्दीगृह से लिखा 'जब तक इटली स्वतन्त्र नहीं होता उस समय तक आप सम्राट तथा सारे यूरोप की शान्ति एक मृगमरीचिका मात्र है। आप मेरे देश को मुक्त करा दें मेरे देश के बाईस करोड़ निवासियों की शुभ इच्छाएँ भविष्य में आप के साथ रहेंगी।' इटली की जय हो का नारा ओरसिनी के होठों पर मृत्यु के समय भी था। इसका परिणाम यह हुआ कि केवूर और नेपोलियन तृतीय प्लोम्बियर्स नामक स्थान पर मिले और यह निश्चय हुआ कि नेपोलियन लोम्बार्डी और विनिशिया से आस्ट्रिया को निकालने में पीडमाण्ट की सहायता करेगा। नेपल्स और रोम को पृथक रखा जाएगा। उत्तरी इटली का एक राज्य बना लिया जाएगा। नेपोलियन को नाइस और सेवाय दे दिए जाएँगे। नेपोलियन पीडमाण्ट की सहायता आस्ट्रिया द्वारा आक्रमण करने की स्थिति में ही करेगा।

सीमन (Seaman) के मतानुसार यह मानना कि नेपोलियन तृतीय ने स्वयं स्वेच्छा से इटली के मामले को हाथ में लिया क्योंकि इटली के राष्ट्रीय संघर्ष के

प्रति उसका भावुकतापूर्ण लगाव था अत्यन्त भ्रमपूर्ण बात है। उसने जो कार्य किया इस आशय से किया कि इससे इटली में फ्रांस का प्रभाव बढ़ जाएगा। इटली के लिए कुछ करने पर इटली भी फ्रांस के लिए कुछ करेगा और वह स्वयं बोनापार्ट दल के लिए कुछ कर सकेगा। निस्सन्देह यह पुरुष अपने युग की उपज थी जो केवल स्वतन्त्र और पुनर्जीवित इटली के स्वप्न का ही द्रष्टा नहीं था और उसकी निजी कार्यप्रणाली जिसके द्वारा स्वतन्त्र इटली का निर्माण होना था, अधिक न्याय की दृष्टि से नहीं देखी जाती थी।

अपने निर्णय को क्रियान्वित करते समय वह नपोलियन की परिपाटी और नेपोलियन गाथा के अनुसार चल रहा था। सेण्ट हेलिना द्वीप से उसे आदेश मिला था कि 'प्रथम राजा जो जनता के हित का समर्थन करेगा वह यूरोप का निर्विवाद नेता बनेगा। इटली को आस्ट्रिया के चंगुल से छुड़ाने का प्रयत्न उसके द्वारा स्वयमेव 'राष्ट्रों का नेता' की पदवी धारण करने के अनुकूल ही था। उसकी धारणा थी कि इस कार्य को करने से वह स्वयं को तथा फ्रांस को उस युग की सबसे बलशाली शक्ति का अगुआ बना रहा था। वह स्वयं और फ्रांस इतिहास के साथ सहयोग करके यूरोप के भाग्यविधाता बन सकते थे। इस प्रकार का सदाचारपूर्ण नेतृत्व एक अत्यन्त सूक्ष्म तथा अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति का कुशल दाव था।

प्लोम्बियस के समझौते तथा वास्तविक युद्ध आरम्भ होने में ६ महीने का समय लगा और इस अवधि में केवूर को युद्ध के लिए बहाना ढूँढना तथा युद्ध के लिए तैयारियाँ करनी थीं। इससे पहले कि नेपोलियन अपना विचार बदलता वह युद्ध आरम्भ करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था। बहुत से सैनिक प्रदर्शन और परेडें हुई। आस्ट्रिया पर समाचार पत्रों द्वारा आक्रमण किए गए तथा आस्ट्रिया को युद्ध करने के लिए उकसाने के लिए सारे साधनों का प्रयोग किया गया। पीडमोण्ट के राजा ने विधान सभा में कहा "हम इटली के विभिन्न भागों से आती हुई दुःख की पुकारों के प्रति सोए हुए नहीं हैं।" नपोलियन तृतीय ने भी घोषणा की कि उसके आस्ट्रिया के साथ उतने अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं जितने कि पहले थे। आस्ट्रिया ने पीडमोण्ट को चुनौती दी कि वह युद्ध की तैयारियाँ बन्द कर दे। केवूर ने उसे ठुकरा दिया। और आस्ट्रिया ने १८५९ में युद्ध छेड़ दिया। इस अवसर पर केवूर ने कहा "हमने बाजी लगाई है और इतिहास का निर्माण किया है।" नपोलियन तृतीय पीडमोण्ट की सहायता को आया और इटली वालों ने उसे अपना मुक्तिदाता रक्षक और संरक्षक माना। उसने इटली वालों से कहा "इस सौभाग्यपूर्ण आए हुए अवसर का उपयोग करो। यदि तुम इस योग्य सिद्ध हुए तो समझो कि तुम्हारे स्वतन्त्रता के स्वप्न पूरे होने जा रहे हैं। अपने देश के इस महान् कार्य के लिए संगठित हो जाओ।" आस्ट्रिया को मजेण्टा सालफरनो के युद्ध में पराजय मिली और उसे लोम्बार्डी से निकाल दिया गया। किन्तु नपोलियन का विचार बदल गया और उसने सहसा युद्ध बन्द कर दिया। उसने सारडीनिया से सलाह किये बिना ही आस्ट्रिया से १८५९ में विलाफ्रांका की संधि कर ली। आस्ट्रिया ने पीडमाण्ट को लोम्बार्डी तो देना स्वीकार किया किन्तु वेनिशिया नहीं दिया था। परमा, मोडेना और टुस्कनी के राजाओं को

पुन पदासीन कर दिया गया। पोप के नतृत्व मे इटली का एक संघ बनाने का निर्णय किया गया। ज्यूरिच की संधि द्वारा 'युद्ध रोका' समझौते की शर्तें पक्की कर दी गई थी।

टेलर के मत मे '१८५६ का युद्ध आधुनिक इतिहास मे अद्वितीय था, यही ऐसा युद्ध था जो वास्तव रूप म पारस्परिक आशंकाओं से नहीं उपजा था। आक्रमण कारी अभियानों तक में निरोध का एक तत्व होता है। नेपोलियन प्रथम को यह सोचने की कुछ गुन्जायश थी कि एलक्जेण्डर प्रथम उस पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहा है जबकि उसने १८१२ मे रूस पर आक्रमण किया था। जर्मन लोगो को भी अपने लिए 'घिरा हुआ' सोचने की कुछ गुन्जायश थी जबकि उन्होंने बीसवी शताब्दी म प्रथम व द्वितीय महायुद्ध किए। बिस्मार्क भी ऐसा स्वीकरणीय व सहमनीय दावा कर सकता था कि वह सबसे पहले आस्ट्रिया व फ्रास के विरुद्ध अपनी तैयारी कर रहा था। १८५६ म न तो फ्रास और न ही सार्डीनिया को आस्ट्रिया की ओर से कोई आशंका होने का कारण हो सकता था और व भी तब तक उस पर धावा नही बोल सकते थे जब तक कि वह उन्हे अवसर न देता। भय के कारण नही बल्कि दूसरे पक्ष को युद्ध म जाने पर बाध्य करने के लिए दोनों तरफ म सेनाए चल पड़ीं। १८५६ में केवल यही वास्तविक आशंका थी कि आस्ट्रिया म आन्तरिक शांति न हो जाय और यह भी बहुत भविष्यवाणीपूर्ण था।"

(The Struggle for Mastery in Europe pp 114 12)

कैवूर (Cavour) न नेपोलियन ततीय के कार्य का समर्थन नहीं किया और इमेन्युल द्वितीय से ज्यूरिच संधि का विरोध करने के लिए कहा। किन्तु इमन्युल न ऐसा करने स इन्कार कर दिया क्योंकि वह समझता था कि इटली वाले अपनी इच्छानुसार नेपोलियन को विवश नही कर सकते। कैवूर न पदत्याग कर दिया किन्तु थोड़े समय पश्चात उसने पुन कार्यभार सँभाला। जब आस्ट्रिया न लोम्बार्डी खाली किया तब परमा, माडेना टस्कनी और रोमगना की जनता न सार्डीनिया के राज्य में मिलने का निर्णय किया। नेपोलियन न इस स्वीकार कर लिया और उसे नाइस और सवाय दे दिए गए थे। कैवूर न भी राजनैतिक लाभ के कारण इसे स्वीकार किया। यह बात उसके इस वाक्य स स्पष्ट है, 'अब हम दोनो अपराधी हैं।'

सिसली और नेपल्स (Sicily and Naples)—कैवूर (Cavour) के शब्दों म 'मुझे उत्तर की ओर से कूटनीति द्वारा इटली का निर्माण करने से रोक दिया गया किन्तु अब मैं दक्षिण म क्रान्ति द्वारा इसका निर्माण करूंगा।' अत्यन्त सावधानी और दक्षता म उसने इटली को सगठित करने के इतिहास म अत्यन्त आश्चर्यजनक योजना आरम्भ की। सिसली की जनता ने विद्रोह करके गैरीबाल्डी स सहायता की याचना की। गैरीबाल्डी न अपने प्रसिद्ध एक हजार लाल कुर्ती दल के साथ सिसली की ओर प्रस्थान किया। आन्तरिक रूप से कैवूर का गैरीबाल्डी के साथियों से सहानुभूति थी किन्तु प्रकट रूप म वह उस अधिकतर स्वतन्त्र भावना व्यक्ति मानता था। इसलिए उसने कठोर निष्पक्षता का पालन किया। उसने गुप्त रूप म उसे धन

प्रकार की सहायता दी और शक्तियों द्वारा विरोध में सैनिक अभियान भेजने के सम्बन्ध में चुनौती का मुकाबला करने के लिए तैयारियाँ कर ली थीं। ब्रिटिश सरकार ने भी सहानुभूति का रुख दिखाया था। गैरीबाल्डी अपने कार्य में सफल हुआ और उसने सारा सिसली विजय कर लिया। यह कार्य पूरा करके वह मुख्य द्वीप में आया और नेपल्स के राजा को भी पराजित किया। तब गैरीबाल्डी ने रोम जाने का निर्णय किया था। यदि उसने ऐसा किया होता तो फ्रांस से युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना थी क्योंकि वहाँ फ्रांस की सेनाएँ (१८४९ से) पड़ाव डाल पड़ी थीं। केवूर ने उस समय घोषणा की "इटली को विदेशियों [illegible] तथा बुरे व्यक्तियों और सिद्धान्तों से रक्षा करनी चाहिए।" उसने विक्टर इमैनुएल के नेतृत्व में गैरीबाल्डी को रोकने के लिए भेजा था। इमैनुएल गैरीबाल्डी से टक्कर लेने के लिए बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ा और गैरीबाल्डी ने उसे सारी सत्ता सौंप दी। नेपल्स और सिसली पीडमाण्ट राज्य में मिला दिए गए। रोम और वेनिशिया को छोड़कर सारा इटली इमैनुएल द्वितीय के अधिकार में आ गया था। इन दो राज्यों को क्रमशः १८६० और १८६१ में पीडमाण्ट राज्य में मिला लिया गया था। १८६१ में इटली की प्रथम संसद का अधिवेशन हुआ और इसके बाद शीघ्र ही केवूर की मृत्यु हो गई। इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि एक राष्ट्र के रूप में इटली का निर्माता केवूर ही था। फिलिप्स के शब्दों में "एक राष्ट्र के रूप में इटली केवूर का जीवन भर का काम तथा उसकी दी हुई विरासत है। अन्य नेता देश को मुक्त कराने का प्रयत्न करते रहे किन्तु किस प्रकार इसे एक सम्भव कार्य बनाया जाए इस बात को वही जानता था। उसने इस संघर्ष को सब प्रकार की फूट डालने वाली प्रवृत्तियों से अछूता रखा, इसे कल्पनिक तथाकथित उच्च सिद्धान्तों से दूर रखा, इसे दुस्साहसी षड्यन्त्रों से पवित्र रखा, विद्रोहियों और प्रतिक्रिया के मध्य सीधा पथनिर्देशन किया और अपने देश को एक सुव्यवस्थित सैन्य शक्ति, राष्ट्रीय ध्वज, सरकार और विदेशी मित्र प्रदान किया। यह सत्य है कि केवूर की बुद्धिमत्ता ने मेजिनी की प्रेरणाओं और विचारों को सक्रिय प्रदान की। उसी ने ही गैरीबाल्डी की तलवार को राष्ट्रीय शस्त्र बनाया और पथभ्रष्ट साहसी लोगों की राजनीतिक उछल-कूद को राष्ट्र के शासनयन्त्र का मुख्य साधन बना दिया।" एक अन्य लेखक ने लिखा है "यदि यूरोप की सहानुभूति, विश्वास और सहायता प्राप्त करने के लिए केवूर नहीं होता, यदि यह नहीं माना जाता कि सब विपत्तियों में उसकी बुद्धि स्थिर रहती है तो मेजिनी के प्रयत्न केवल कुछ विद्रोह मात्र ही बन कर रह जाते और गैरीबाल्डी की आश्चर्यजनक वीरता से सारहीन देशभक्ति के इतिहास में एक अध्याय और जुड़ जाता।" कहा जाता है कि केवूर ने मृत्यु शैया पर पड़े हुए कहा था "इटली का निर्माण हो गया, अब सब सुरक्षित है।" केवूर इटली वालों की इटली का निर्माण कर चुका था।'

लार्ड पामर्स्टन के शब्दों में, "केवूर ने अपना नाम एक शिक्षा देने के लिए, एक गाथा को सुन्दर बनाने के लिए छोड़ा है। शिक्षा यह है कि एक प्रतिभाशाली

असीम परिश्रम वाला, ज्वलन्त देशभक्ति वाला व्यक्ति अगम्य कठिनाइयों को पार कर सकता है और अपने देश को महान् और मानव की कल्पना से भी अधिक लाभ पहुँचा सकता है। जिस गाथा से उसकी स्मृति जुड़ी थी वह अत्यन्त अद्भुत तथा संसार के इतिहास में अत्यन्त मनोरंजक है। एक ऐसी जाति जो मृतप्राय थी, मुग्धावस्था की तन्द्रा को तोड़ कर तथा एक नवीन और यशस्वी नव शक्ति से ओत प्रोत जीवन प्राप्त कर चुकी थी।"

गैरीबाल्डी (Garibaldi) (१८०७-८२)—इसका जन्म १८०७ में नाइस में हुआ था। वह मेजिनी से दो वर्ष छोटा और केवूर से तीन वर्ष बड़ा था। इसके माता पिता इसे एक पादरी मात्र बनाना चाहते थे किन्तु इसकी रुचि समुद्री जीवन में थी। बहुत समय तक यह एक नाविक का दुस्साहसी जीवन व्यतीत करता रहा।

वह मेजिनी की 'युवा इटली' का सदस्य बना और १८३४ में मेजिनी द्वारा सवाय में विद्रोह कराने पर उसमें भाग लिया और इसे मृत्युदण्ड दिया गया था। किसी प्रकार यह दक्षिणी अमेरिका चला गया और वहाँ १४ वर्ष देश से निष्कासित रहा। वहाँ पर भी वह अपनी इटली-सेना (Italian Legion) के साथ दक्षिणी अमरिका के युद्धों में भाग लेता रहा था।

जैसे ही उसने १८४८ के विद्रोह का समाचार सुना वह इटली की ओर शीघ्रता से चला यद्यपि उस समय तक भी उसका मृत्युदण्ड रद्द नहीं किया गया था। उसके आने पर आस्ट्रिया के विरुद्ध लड़ने के लिए हजारों व्यक्ति माण्टीविडो का सरदार (Hero of Montevideo) के झंडे के नीचे इकट्ठे हो गए। विद्रोह के असफल होने पर वह १८४९ में रोम के प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए लड़ने के लिए चला गया। जब रोम का पतन होने वाला था तब वह चार हजार सैनिकों के साथ बच निकला, किन्तु आस्ट्रिया की सेना उसका पीछा करती रही और उसने उसे कहीं भी चैन से नहीं बैठने दिया। वनों और पर्वतों में उसका इस प्रकार पीछा किया गया मानो वह कोई शिकारी का शिकार हो। उसके सारे साथी मारे गये और उसकी वीर पत्नी अनिता (Anita) भी युद्ध में काम आई। अन्ततः गैरीबाल्डी किसी प्रकार अमरिका भाग जाने में सफल हो गया और फिर देश निकाल की अवस्था में रहने लगा। किन्तु उसकी वीरता, त्याग, प्रेम से भरे हुए कारनामों ने इटली के निवासियों को प्रेरणा और उत्साह इत्यादि भावनाएँ प्रदान कीं।

१८५४ में वह पुनः इटली पहुँचा और केपरोरा (Caprera) द्वीप में रहने लगा। १८५९ में वह फिर मैदान में आया और स्वयंसेवकों की एक बड़ी सेना आस्ट्रिया के विरुद्ध लड़ने के लिए इकट्ठी की। देश के एक कोने से दूसरे कोने में रहने वाले सैनिकों का वह आदर्श था और हजारों व्यक्ति आँख मूँद कर उसका अनुसरण करने को तैयार थे।

१८६० में सिसली में विद्रोह हुआ था। वह लगभग ११५० साथियों के साथ यात्री-जहाजों में सवार होकर चल पड़ा। इन लाल कुर्ती सैनिकों ने गैरीबाल्डी

को द्वीप का स्वामी बना दिया। इस काय म उनकी सहायता स्थानीय विद्रोहियो ने भी की थी। सिसली स गरीबाल्डी मुख्य द्वीप की ओर आया और उसन नपल्स क राजा को पराजित किया और लगभग पांच महीने के समय म गरीबाल्डी न लगभग ११ करोड की जनसख्या क राज्यो को जीत लिया था।



गेरीबाल्डी

गरीबाल्डी ने रोम पर आक्रमण करने की योजना बनाई किन्तु उस कवूर और विक्टर इमेनुअल ने ऐसा नहीं करने दिया क्योकि इसम फ्रास स युद्ध हो जाने की सम्भावना था। वहाँ १८४६ म फ्रास की सना डेरे डाल पडी थी।

जब केवूर ने फ्रास को आस्ट्रिया के विरुद्ध सहायता के मूल्य के रूप मे नाइस देना स्वीकार किया तो गेरीबाल्डी को पडा क्योकि इस द्वीप का फ्रास को चले जाने का परिणाम यह हुआ कि वह इटली के लिए एक विदेशी नागरिक बन गया था।

विनिशिया (Venetia) (१८६६)—१८६६ म इटली ने प्रशिया से विनिशिया की सुरक्षा के हतु सन्धि की थी। जब प्रशिया और आस्ट्रिया म युद्ध हुआ इटली की सेनाए भी युद्ध क्षेत्र म उतर आई। आस्ट्रिया की सेना ने इन्हे हरा दिया था किन्तु इनके युद्ध म ध्यान से बिस्मार्क का काय हलका पड गया क्योकि आस्ट्रिया को दो मोर्चों पर लडना पडता था। परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया साडोवा (Sadowa) मे युद्ध म हार गया और इसन शस्त्र डाल दिए थ। बिस्मार्क ने पराजित आस्ट्रिया स कुछ नहीं मागा और केवल विनिशिया का इटली को वापिस लौटा देने को कहा था। विनिशिया पुन इटली को द दिया गया था।

रोम (Rome) (१८७०)—१८७० मे जब नेपोलियन को रोम से अपनी सेनाए, जो वहा १८४६ से स्थित थी हटा लेने को विवश कर दिया गया उस समय

इटली का एकीकरण पूर्ण हुआ था। इसका कारण यह था कि नेपोलियन को आस्ट्रिया से युद्ध लड़ना था और इसलिए सारी सेनाओं को इकट्ठा करना आवश्यक हो गया था।

इस प्रकार देशभक्तों के प्रयत्नों, विदेशी सहायता और परिस्थितियों के प्रभाव से १८७० में जाकर इटली एकता प्राप्त कर सका था।

टेलर के विचार में, इटली के एकीकरण ने वह काम पूरा कर दिया जो क्रीमिया के युद्ध ने शुरू किया था—यूरोपीय व्यवस्था का नाश। मेटरनिख की प्रणाली रूस की गारन्टी पर निर्भर थी, यदि उसे एक बार वापस ले लिया जाय तो प्रणाली को हटाया जा सकता था। नेपोलियन ने सोचा कि उसकी अपनी नई योजना उसका स्थान ग्रहण कर रही है। इसमें १८५९ व १८६१ की घटनाओं का गलत समझना निहित था। निस्सन्देह इटली फ्रांस की सेनाओं व ब्रिटेन की नैतिक स्वीकृति के प्रति बहुत ऋणी था, किन्तु इन्हें दो तरफों की सहायता के बिना फलोत्पादक नहीं बनाया जा सकता था—पेरिस की सन्धि के विरुद्ध रूसी विरोध और जर्मनी में आस्ट्रियन आधिपत्य के प्रति प्रशिया की अप्रसन्नता। यदि रूस ने ऐसी नीति का आचरण किया होता जो आस्ट्रिया के प्रति कम शत्रुतापूर्ण होती यदि १८५९ में प्रशिया ने राइन में संग्राम करता तो इटली की रचना न हो पाती। १८६१ के बाद भी रूस का यही लक्ष्य था कि १८५६ के समझौते को उखाड़ फेंका जाय प्रशिया भी आधिपत्य की जगह जर्मनी में समानता चाहता था। दोनों ही आस्ट्रिया के विरुद्ध कार्य करते रहे यह कोई ऐसी गारण्टी नहीं थी कि वह फ्रांस के पक्ष के लिए काम करते रहेंगे। और वस्तुतः यूरोप का नेतृत्व, जिसे नेपोलियन ने इटली के मामले से प्राप्त किया था, पोलैण्ड के प्रश्न के ऊपर दो वर्षों के भीतर ही जाता रहा।'

(The Struggle for Mastery in Europe, pp 124-25)

Suggested Readings

Flenley R.	*Makers of Nineteenth Century Europe*
Garibaldi	*Autobiography*
Holland	*Builders of United Italy*
Johnston R M	*The Napoleon Empire in Southern Italy and the Rise of the Secret Societies 1904*
King Bolton	*Mazzini*
King	*History of Italian Unity*
Marriot	*Makers of Modern Italy*
Martinengo-Cesaresco	*The Liberation of Italy 1815 70*
Mowrer	*Immortal Italy*
Murdock	*Reconstruction of Modern Europe*
Orsi P	*Cavour*
Orsi P	*Modern Italy*
Smith D Mack	*Cavour and Garibaldi*
Taylor A J P	*The Italian Problem in the European Diplomacy (1847-49) 1934*

Thayer	*Life and Times of Cavour*
Thayer	*Dawn of Italian Independence*
Trevelyan G M	*Garibaldi and the Making of Italy*
Trevelyan G M	*Garibaldi and the Thousand*
Trevelyan	*Manin and the Venetian Revolution of 1848*
Trevelyan (Mrs)	*A Short History of Italy*
Zimmern	*Italy of the Italians*

अध्याय १७

जर्मनी का एकीकरण

(Unification of Germany)

जर्मनी के देशभक्तों और सुधारवादियों के विचार से जर्मनी के विषय में वियाना सम्मेलन में हुआ समझौता अत्यन्त निराशाजनक था। उनकी आशा थी कि एक एकीकृत जर्मनी का निर्माण होगा किन्तु इसके विपरीत ३९ राज्यों का एक संघ बना दिया गया। आस्ट्रिया की अध्यक्षता में एक संघीय संसद (Federal Diet) की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक राज्य का शासक अपने क्षेत्र में सर्वाधिकार सम्पन्न था इसलिए स्वायत्तरक्षा की भावना से प्रेरित होकर उसका जर्मनी के एकीकरण तथा उन सब सुधारवादी आन्दोलनों का जिससे एकीकरण हो सकता था, विरोध करना स्वाभाविक था। आस्ट्रिया के अतिरिक्त संघीय संसद में अन्य अजर्मन तत्त्व भी थे। हैनोवर (Hanover) जो इंग्लैण्ड के अधिकार में था, उसे जर्मनी में मिला कर प्रतिनिधित्व दिया गया था। होलेस्टीन की डची (Duchy) को जो डेनमार्क के राजा के अधिकार में थी जर्मन संघ में मिला कर अन्य राज्यों की तरह उसे भी प्रतिनिधित्व दिया गया। इन विदेशी तत्त्वों से जर्मनी के एकीकरण के कार्य में सहयोग देने की आशा नहीं की जा सकती थी। संघ की संसद को सदस्य राज्यों पर कोई अधिकार नहीं था। आस्ट्रिया जर्मनी का भाग्य निर्णायक था। १८१५ के संघ-कानून द्वारा व्यवस्था की गई कि प्रत्येक राज्य में उत्तरदायित्व-पूर्ण संविधान बनाया जाय, किन्तु इसे कभी भी पूरी तौर पर क्रियान्वित नहीं किया गया। १८१५ के बाद समूचे जर्मनी में प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। फ्रेड्रिक विलियम तृतीय (१७९७-१८४०) प्रशा के राजा द्वारा जर्मनी के देशभक्तों और सुधारवादियों के नेतृत्व की आशा थी किन्तु वह भी मेटरनिक के दबाव में आ गया था। परिणामतः उसने देश में राष्ट्रवाद और सुधारवाद की समर्थक शक्तियों का दमन करना प्रारम्भ कर दिया था।

जब जर्मनी में इस प्रकार की परिस्थितियाँ थीं उस समय इस देश के विश्वविद्यालयों ने देश का नेतृत्व सँभाला। जेना (Jena) जर्मनी के सुधारवाद का केन्द्र बन गया और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों ने जो आन्दोलन चलाया वह दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। गम्भीरता, संयम और जर्मनी की एकता के उच्च आदर्शों को जनता के सम्मुख रखा गया। सिबेल (Sybel) के मतानुसार, 'युद्ध से लौटने वाले वीरों ने विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय अपमान की भावना से भर दिया। सारे विश्वविद्यालयों की समितियाँ (Burschenschaften) बना कर उन्होंने जर्मनी के शिक्षित युवकों में एकता, न्याय और स्वतन्त्रता की भावनाएँ भर दीं। इन समितियों

के उद्देश्य मुख्यत सद्धांतिक थे। उनका उद्देश्य तत्कालीन व्यवस्था को उलट देना नहीं अपितु नई पीढ़ी का देशभक्ति की भावना म शक्ति करना था। चरित्र क उत्थान और देशभक्ति की भावना द्वारा वे भविष्य का निर्माण करके राष्ट्रीय एकता का लक्ष्य प्राप्त करना चाहते थे। वास्तव म उनके भविष्य के स्वप्न साधारणत ठोस और कार्य-परिणत हो सकने वाले नहीं थे। तथ्य रूप म कुछ युवा म तो उत्साह उन्मत्तता की सीमा तक पहुँच गया था और व लोग यातनायियो म छुटकारा पाने के लिए शस्त्र उठाने के लिए तैयार थे। किंतु इन उत्साही व्यक्तियों के देश म फैली हुई समितियो म अधिक अनुगामी नहीं थे जो इनकी प्रणाली का अनुसरण करते।

(Foundation of the German Empire Vol I p 67)

विद्यार्थियो के संगठन जेना सफल और दो वर्ष म उन्होंने १६ विश्वविद्यालयो पर नियन्त्रण कर लिया। १८१७ म विद्यार्थियो ने प्रोटेस्टेण्ट सुधार की शताब्दी तथा लिपजिग युद्ध की जयन्ती मनाने का निर्णय किया। वार्टबर्ग म अन्य स्थानो पर



CENTRAL EUROPE AFTER THE CONGRESS OF VIENNA

मनाए जाने वाले उत्सव क कार्यक्रम के अतिरिक्त सनिकवाद के चिह्न नेपोलियन की संहिता की एक प्रति कोटज्ब्यु की पुस्तक की एक प्रति और अन्य कागज पत्र भी जलाए गए। मेटरनिक द्वारा इस उत्सव को बड़ा महत्त्व दिया गया और इसे जर्मनी की जनता मे क्रांतिकारी असंतोष का प्रतीक माना गया। १८१८ म जब ऐक्स ला चेपल म सम्मेलन हुआ उसने शासको को भविष्य-गर्भित भय के प्रति सचेत किया। १८१७ के पश्चात जो घटनाएँ हुई उनसे मेटरनिक के हाथ और भी मजबूत हो गए। जर्मनी म समय-समय पर हत्याएँ होती रही। मार्च १८१९ म कोटज्ब्यु की जिसे रूस का गुप्तचर माना जाता था कार्ल सण्ड (Karl Sand) ने हत्या कर

दी। मेटरनिक ने इसमें पूरा लाभ उठाना चाहा। प्रशिया के राजा की अनुमति से उसने १८१६ में कार्ल्सबाद में जर्मनी के मुख्य राज्यों के मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। कुछ प्रस्ताव स्वीकार किए गए जिन्हें संघ संसद ने भी स्वीकार कर लिया था।

कार्ल्सबाद आज्ञप्तियां (Carlsbad Decrees)—कार्ल्सबाद आज्ञप्तियों के अनुसार प्रत्येक राज्य के शासक का एक विशेष प्रतिनिधि प्रत्येक विश्वविद्यालय के लिए नियुक्त किया गया। इस प्रतिनिधि को विश्वविद्यालय के नगर में रहना था और उसे शासक की आज्ञानुसार बहुत से अधिकारों का प्रयोग करना था। इसका काम इस बात की जाँच करना था कि कानून और अनुशासन का ठीक प्रकार पालन हो रहा है अथवा नहीं। उसे ध्यानपूर्वक यह भी देखना था कि विश्वविद्यालयों के शिक्षक अपने व्याख्यानों में किस भावना को प्रेरित करते हैं। विद्रोह और अव्यवस्थित स्थिति की अवस्था में उसे शासक को सूचना देनी पड़ती थी। शासक का कर्तव्य था कि विद्यार्थियों पर अपने प्रभाव का अनुचित प्रयोग करने वाले तथा विद्यार्थियों में वर्तमान सरकारी व्यवस्था तथा सार्वजनिक नियमों का उल्लंघन करने की भावना को प्रेरित करने वाले शिक्षकों को विश्वविद्यालयों में से तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं में से निकाल दे। निकाले हुए शिक्षकों को अन्य विश्वविद्यालय तथा शिक्षा संस्था कोई पद न दें। गुप्त तथा अनियमित संस्थाओं के विरुद्ध कानून कठोरता से लगाए जाएँ। एक विश्वविद्यालय से निकाले हुए विद्यार्थियों को अन्य विश्वविद्यालय भरती न करें। २० छपे हुए पृष्ठों से अधिक का कोई भी दैनिक पत्र अथवा लेख राज्य अधिकारियों की अनुमति के बिना प्रकाशित न किया जाय। संघ की संसद को संघ में अथवा संघ में शान्ति व्यवस्था को भंग करने वाले लेखों को स्वाधिकार से दमन करने का अधिकार दिया गया। यदि संघ संसद् की आज्ञा से कोई समाचार-पत्रिका बन्द करा दी जाए तो इस पत्र का सम्पादक किसी अन्य पत्र का पाँच वर्ष तक सम्पादन नहीं कर सकता था। सात सदस्यों के एक जाँच आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था थी। इसका काम क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों तथा वाद विवाद करने वाली समितियों तथा उनके उद्गम और विकास का पता लगाना था। यह उन समितियों का भी पता लगाती थी जो वर्तमान विधान आन्तरिक शान्ति तथा भिन्न भिन्न राज्यों के विरुद्ध काम कर रही थीं। इस आयोग को वर्तमान षड्यन्त्रों का पता लगाने का काम सौंपा गया। केन्द्रीय जाँच आयोग को समय समय पर जाँच के परिणामों की सूचना संघ संसद को देनी पड़ती थी।

यह सच कहा जाता है कि कार्ल्सबाद की आज्ञप्तियों के कारण आस्ट्रिया का सम्राट एक सर्वशक्तिमान पुलिस व्यवस्था का स्वामी बन गया। मेटरनिक और भी आगे बढ़ता किन्तु कुछ राज्यों के विरोध ने उसके उत्साह को ठण्डा कर दिया था। वुर्टेमबर्ग के शासक ने चुनौती स्वीकार की और अपनी प्रजा को और भी सुविधाएँ और सुधार प्रदान किए और अपने आपको एक विशुद्ध जर्मन संघ का नेता बना कर आस्ट्रिया और प्रशिया के मुकाबले के लिए तैयार हो गया। परिणामस्वरूप १८२४ ने वियाना सम्मेलन में समझौता हुआ। छोटे-छोटे राज्यों की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। १८२४ में कार्ल्सबाद आज्ञप्तियों को स्थायी रूप दे दिया गया।

ज़ोलवरीन (Zollverein)—कुछ व्यक्तियों ने परोक्ष रूप से जर्मनी के एकीकरण में सहायता की। यहाँ ज़ोलवरीन अर्थात् चुंगी-समिति का उल्लेख किया जाए। १८१८ के पहले प्रशिया के प्रत्येक ज़िले की अपनी चुंगी व्यवस्था थी और अकेले प्रशिया में ६७ चुंगी क्षेत्र थे। इस कारण देश के व्यापार और एकता में बड़ी बाधा थी और प्रशिया ब्रिटेन से प्रतियोगिता नहीं कर सकता था। बहुत से चुंगीघर होने के कारण बहुत सा तस्कर-व्यापार होता था। १८१८ में चुंगी सुधार कानून बनाया गया। इसके अनुसार देश में आने वाले कच्चे माल पर चुंगी हटा दी गई। तैयार माल पर १० प्रतिशत और उपनिवेशों के माल पर २० प्रतिशत चुंगी लगाई गई। आंतरिक चुंगी कर (taxes) समाप्त कर दिए गए। प्रशिया से गुज़रने वाले माल पर बहुत भारी राहदारी चुंगी लगाई गई ताकि अन्य प्रदेश भी प्रशिया के साथ मिल जाएं। १८१८ के सुधार के परिणामत प्रशिया एक स्वतन्त्र-व्यापार का क्षेत्र बन गया और आंतरिक व्यापार के साथ-साथ राज्य का राजस्व भी बढ़ने लगा।

१८१८ का कानून केवल प्रशिया में ही लागू था किन्तु कालान्तर में अन्य जर्मन राज्य भी प्रशिया से सहयोग करने लगे। १८१९ में एक और राज्य (Schwarzburg Sondersbausen) इस व्यवस्था का सदस्य बन गया। १८२२ में छः राज्य और आ मिले।

किन्तु कुछ जर्मन राज्यों ने चुंगी समिति संगठन का विरोध भी किया। १८२४ में बावरिया और वुर्टेमबर्ग के नेतृत्व में दक्षिण में दूसरा चुंगी-समिति-संगठन स्थापित हुआ। मध्य के राज्यों का भी एक संगठन १८२४ में बनाया गया। इसमें सेक्सोनी हैस्सी-कैसल हनोवर ब्रुंसविक और हेमबर्ग ब्रीमन और फ्रैंकफर्ट के स्वतन्त्र नगर थे।

१८३१ में हस्सी-कसल ज़ोलवरीन में मिल गई और मध्य स्थित राज्यों की समिति टूट गई। १८३४ में बावरिया आठ वर्ष की अवधि के लिए ज़ोलवरीन में मिला। संगठन की शर्त यह थी कि समिति की बैठकें बर्लिन तथा अन्य स्थानों पर हुआ करेंगी, बावरिया के माल को विशेष सुविधाएँ दी जाएँगी। इसी वर्ष सेक्सोनी भी ज़ोलवरीन में आ मिला। १८३७ में अधिकांश राज्य इस समिति के सदस्य बन चुके थे। जब भी संधियों की अवधि समाप्त होती उन्हें फिर स्वीकार कर लिया जाता था। केवल हनोवर ओल्डनबर्ग मेकमिलनबर्ग और हैंस के नगर ज़ोलवरीन से अलग रहे। ज़ोलवरीन की मुख्य शर्तें थी कि राज्यों में परस्पर स्वतन्त्र व्यापार होगा चुंगी की दरें भी सीमान्तों पर समान होंगी और चुंगी से प्राप्त धन राज्यों की जनसंख्या के आधार पर बाँट लिया जाएगा। आरम्भ में आस्ट्रिया ज़ोलवरीन के प्रति बिलकुल उदासीन था। मेटरनिक व्यापार को अधिक महत्त्व नहीं देता था। परिणामत उसने भी ज़ोलवरीन के क्रिया-कलापों पर अधिक ध्यान नहीं दिया। किन्तु १८४८ में मेटरनिक के पतन के पश्चात् आस्ट्रिया ने भी ज़ोलवरीन का सदस्य बनने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। प्रशिया ने इसका विरोध किया और सफल हुआ।

१८५३ में ज़ोलवरीन और आस्ट्रिया में एक संधि हुई जिसके अनुसार एक दूसरे को कुछ सुविधाएँ दी गई।

ज़ोलवरीन का महत्त्व कुछ कम नहीं था। मटर्निक और रावटसन के मतानुसार "पहली बार जर्मनी एक व्यापारिक और आर्थिक इकाई बना। ज़ोलवरीन ने जर्मनी के राज्यों को पारस्परिक आर्थिक बंधनों में बाँध दिया था। वे प्रशिया के नेतृत्व में संगठित हो गए थे। इसके द्वारा वे आस्ट्रिया के बिना विशुद्ध जर्मन संस्था के अभ्यस्त हो गए थे। फाइफ (Fyffe) के मतानुसार "इस संगठन को किसी भी प्रकार राजनीतिक रूप नहीं दिया गया किन्तु आर्थिक हितों की रक्षा के लिए इस संगठन में राजनीतिक एकता का बीजारोपण हो चुका था। धैर्य, सूझबूझ और अपने गरीब पड़ोसी राज्यों के प्रति उदारता द्वारा प्रशिया ने चुपचाप आर्थिक हितों के बंधनों के द्वारा उन राज्यों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया जो अब तक आस्ट्रिया को अपना नेता मानते आए थे। ज़ोलवरीन की वृद्धि के प्रत्येक कदम के साथ केवल प्रशिया की प्रतिष्ठा में ही नहीं अपितु जनता की समृद्धि में भी वृद्धि हुई।

डा० वोरिंग के मतानुसार "जर्मन राष्ट्रवाद को केवल आशा और कल्पना के क्षेत्र से निकालकर ज़ोलवरीन ने इसे प्रत्यक्ष और वास्तविक आर्थिक समृद्धि में बदल दिया। ज़ोलवरीन के प्रति जर्मनी की जनता की यह धारणा है कि 'जर्मनीकरण (Germanisation)' के प्रति यह प्रथम कदम था। इसने शत्रुता और विरोध के सबसे शक्तिशाली गढ़ को तोड़ दिया था और व्यापारिक और औद्योगिक हितों के आधार पर इसने राजनीतिक राष्ट्रीयता के लिए मार्ग का निर्माण कर दिया था।

जुलाई क्रान्ति और जर्मनी (July Revolution and Germany)—जुलाई, १८३० में हुई फ्रांस की क्रान्ति का जर्मनी पर भी प्रभाव पड़ा। जर्मनी में उदारवादी संविधान की माँग की जाने लगी और ब्रुंसविक, हेनोवर, सक्सनी और हेस्सी-कैसल के राज्यों में यह माँगें मान ली गई थीं। बावेरिया, वुर्टेम्बर्ग इत्यादि के शासकों ने उस संविधान को लागू कर दिया जो उन्होंने १८१५ में स्वीकार किया था। परिणामतः प्रशिया अपरिवर्तित रहा किन्तु छोटे राज्यों को उदार संविधान प्राप्त हो गया था। किन्तु मटर्निक एक बार फिर जर्मनी पर अपना अधिकार जमाने में सफल हुआ और कार्ल्सबाद की आज्ञप्तियों को लागू कर दिया गया। वियाना में एक सम्मेलन हुआ जिसमें निर्णय किया गया कि समाचारपत्रों और विश्वविद्यालयों की सुधारवादी प्रवृत्तियों का दमन किया जाय। जर्मन राज्यों के शासकों तथा उनकी प्रजाओं के बीच के झगड़ों को निपटाने के लिए एक न्यायालय की स्थापना की गई।

फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ (Frederick William IV) (१८४०-६१)—फ्रेडरिक विलियम तृतीय के लम्बे राज्य-काल में प्रशिया से कुछ विशेष आशा नहीं की जा सकती थी। १८४० में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ उसका उत्तराधिकारी बना। नया राजा शक्तिशाली, आत्मविश्वासी और बुद्धिमान् था, किन्तु उसकी न्याय बुद्धि उसकी विचार-बुद्धि के समान नहीं थी। राज्यकाल के आरम्भ में उसने बहुत से

राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया था। मि० आनडट और डलमन (Arndt and Dahlmann) को बान (Bonn) विश्वविद्यालय में पुनः शिक्षक तथा आचार्य के पद पर नियुक्त किया गया। प्रान्तीय समितियों को नियमित रूप से अपना अधिवेशन करने तथा स्वतन्त्र रूप से विचार विमर्श करने की अनुमति दी गई थी। समाचार पत्रों को स्वतन्त्रता पुनः दे दी गई। किन्तु वह संसदीय प्रणाली का संविधान लागू करने के लिए नहीं माना था। फरवरी १८४७ में फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ ने बर्लिन में सारी प्रांतीय समितियों की एक बैठक बुलाई जिसे संयुक्त प्रांतीय सभा (United Provincial Diet or States General) कहा गया। यद्यपि यह संयुक्त सभा बहुत दिनों तक नहीं चली फिर भी इसके प्रति काफी आकर्षण हुआ।

१८३० से १८४८ के काल में जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों में निरंतर आन्दोलन हो रहे थे। इन आंदोलनों के दो ध्येय थे जर्मनी का संगठन और राज्यों में सांवैधानिक तथा सुधारवादी सरकारों की स्थापना। १८४७ में एक सम्मेलन हुआ जिसमें सुधारवादी कार्यक्रम स्वीकृत हुआ और सामन्तवाद की प्रवृत्तियों का अन्त करने के लिए आन्दोलन आरम्भ हुआ। धार्मिक सहिष्णुता प्रतिनिधित्वपूर्ण सभाओं की प्रत्येक राज्य में स्थापना सामाजिक विशेषाधिकारों की समाप्ति समूचे जर्मनी के लिए एक प्रतिनिधित्व पूर्ण विधान सभा की स्थापना, राज्य सेना की अपेक्षा जनता की सेना की नियुक्ति सेना संविधान के प्रति भक्ति की शपथ ले राजा के प्रति नहीं इत्यादि माँगें की गई। इसी वर्ष एक और सम्मेलन भी हुआ। समूचे देश के लिए एक संसद बनाने की माग की गई।

जब फरवरी क्रान्ति की सूचना जर्मनी पहुँची तब बादीन (Baden) के राजा ने अपनी प्रजा को नया संविधान दिया और वुर्टमबर्ग नासाऊ ब्रुंसविक वीमर डार्मस्टड और हस्सी कैसल के राजाओं ने भी उसका अनुसरण किया। बावेरिया के राजा को राज्य छोडने पर विवश कर दिया गया। हनोवर और सेक्सोनी की प्रजा को भी सुधारवादी संविधान मिल गया।

जहाँ तक प्रशिया का सम्बन्ध था मार्च मास के अन्दर बर्लिन में कुछ झगड़ा हुआ और राजा ने सुधारवादी संविधान को मान लिया। प्रजा और सेनाओं में टक्करें हुई और अन्त में प्रशिया के राजा ने राजधानी से सेनाएं हटा ली। उसने यह भी प्रतिज्ञा की कि वह स्वतन्त्र और नवजात जर्मन राष्ट्र का नेतृत्व करेगा।' राष्ट्रीय संसद की स्थापना करके एक संविधान बनाने का भी निश्चय किया गया था।

हेनरिच फान गेगन ने देश भर के लिए एक अस्थायी सरकार बनाने का सुझाव दिया। ५ मार्च १८४८ को हैडलबर्ग में ५० नेताओं की बैठक हुई और जर्मनी की विभिन्न राज्यों की सभाओं को निमन्त्रण भेजे गए। ३१ मार्च, १८४८ को लगभग ६०० व्यक्तियों ने फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) में एक बैठक में भाग लिया। इस बैठक में यह निर्णय किया गया कि दो सदनों का विधान मण्डल बनाया जाए और जर्मनी के संघ का एक ही प्रमुख हो। इस प्रस्ताव की विशद व्याख्या संविधान

सभा करे जिसमें ५०,००० नागरिकों का एक व्यक्ति प्रतिनिधित्व करे। यह सब व्यवस्था हुई और जनता की सभा या सम्मेलन फ्रैंकफर्ट में हुआ।

फ्रैंकफर्ट संसद में आरम्भ में लगभग ३०० सदस्य थे किन्तु बाद में इनकी संख्या ५८० हो गयी। हेनरिख वान गेगर (Heinrich Von Gagern) को इसका अध्यक्ष चुन लिया गया। इस सभा में विश्वविद्यालयों के शिक्षकों और पत्रकारों का बहुमत था इसलिए बहुत समय केवल सिद्धांतों पर विवाद करने में ही नष्ट हुआ। फ्रैंकफर्ट संसद की स्थापना के ६ महीने तक इसने केवल केन्द्रीय वायमण्डल की स्थापना ही की थी। अस्थायी सरकार (Provisional Government) का अध्यक्ष (Imperial Vicar) आर्क ड्यूक जोन को बनाया गया। १८४८ में दिसम्बर से पहले जर्मनी के नागरिकों के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था हुई। इनमें से कुछ नागरिक और धार्मिक समानता, समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता, पंचायत द्वारा न्याय (Jury), निजाधिकारों की समाप्ति इत्यादि थे।

आस्ट्रिया को जर्मनी में मिलाया जाए अथवा नहीं इस विषय में दो मत थे। 'जन-साधारण' (Little Germans) इसके विरुद्ध था किन्तु उच्च वर्ग (Great Germans) इसके पक्ष में था। परिणामतः जनमत की विजय हुई और आस्ट्रिया को अलग ही रखा गया। वंशपरम्परा के अनुसार राजा तथा जर्मन संघ की स्थापना का निर्णय हुआ। फ्रैंकफर्ट की संसद ने २८ मार्च १८४९ को प्रशिया के राजा विलियम चतुर्थ को राज्य सौंपने का प्रस्ताव रखा किन्तु उसने ३ अप्रैल, १८४९ को यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। इसके कई कारण थे। प्रथम वह स्वभाव से रूढ़िवादी था और फ्रैंकफर्ट संसद की महत्वाकांक्षाओं के प्रति उदार नहीं था। वह 'क्रान्ति का दास (Serf of the Revolution) नहीं बनना चाहता था। उसका राजा के दैवी अधिकारों में विश्वास था अतः वह फ्रैंकफर्ट संसद द्वारा निर्मित संविधान को मानने को तैयार न था। यदि राजाओं ने उसे राजमुकुट पहनाया होता तो सम्भवतः वह स्वीकार भी कर लेता किन्तु प्रजा द्वारा दिए जाने पर स्वीकार नहीं करना चाहता था। सम्भवतः इसका वास्तविक कारण यह था कि वह आस्ट्रिया से युद्ध नहीं करना चाहता था। इस काल में आस्ट्रिया ने अपनी स्थिति संभाल ली थी और यदि प्रशिया के राजा ने फ्रैंकफर्ट संसद् द्वारा राज्य देने के प्रस्ताव को मान लिया होता तो निश्चित रूप से उसकी आस्ट्रिया से टक्कर हो गई होती। इसका आशय युद्ध होता था और दूसरी बात यह थी कि प्रशिया का राजा इसके योग्य भी नहीं था। जर्मनी की जनता ने एक संविधान बनाना चाहा किन्तु उसका प्रयास असफल रहा। उन्होंने अपना बहुमूल्य समय बौद्धिक वाद विवाद में नष्ट कर दिया। यदि उन्होंने आरम्भ में तेजी से काम लिया होता तो सफलता के अधिक अवसर थे। फ्रैंकफर्ट संसद की असफलता से जर्मनी की जनता को निश्चय हुआ कि देश के एकीकरण के लिए अब उन्हें कुछ और साधन प्रयोग में लाने पड़ेंगे।

हेजन के मतानुसार फ्रैंकफर्ट संसद् जिस से देश को बहुत आशाएँ थीं, असफल हुई। किसी हद तक इसकी असफलता के उत्तरदायी इसके सदस्य ही थे। किन्तु इसकी

असफलता का मुख्य कारण जर्मनी के विभिन्न राजाओं द्वारा इसका घोर विरोध करना था। विशेषतः आस्ट्रिया और प्रशिया के राजाओं की परस्पर ईर्ष्या के कारण भी यह प्रयत्न असफल हुआ क्योंकि इनमें से कोई भी सामान्य हितों के लिए अपने स्वार्थों का बलिदान करने के लिए तैयार नहीं था। किन्तु यह संसद एक श्रेष्ठ तथा उच्च मान्यताओं वाला संविधान बनाने में सफल हुई जिसके द्वारा प्रत्येक नागरिक को नागरिक स्वतन्त्रताएं, कानून के समक्ष समानता, केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का जनता के प्रतिनिधियों के हाथ नियन्त्रण इत्यादि दिया गया था।

यद्यपि प्रशिया के राजा ने फ्रैंकफर्ट संसद द्वारा दिए गए राजसिंहासन को नहीं लिया तथापि उसने देश का एकीकृत करने के लिए और कई तरीके अपनाए। उसके मन्त्री रेडोविट्ज (Radowitz) ने जर्मन संघ का संविधान बनाया। प्रशिया के राजा ने आस्ट्रिया को छोड़कर अन्य शासकों द्वारा स्थापित एक कालिज की अध्यक्षता स्वीकार की। मार्च १८५० में इरफर्ट (Erfurt) में जर्मन संसद का अधिवेशन हुआ। किन्तु आस्ट्रिया का नया चांसलर श्वारजेनबर्ग (Schwarzenberg) जर्मनी पर आस्ट्रिया का नियन्त्रण बनाए रखने के लिए और प्रशिया के राजा के इन क्रियाकलापों को रोकने के लिए कटिबद्ध था। ओलमुट्ज (Olmutz) के सम्मेलन के अनुसार प्रशिया के राजा को झुकना पड़ा। उसने इस संघ को भंग करना स्वीकार किया और १८१५ में जर्मन महा-संघ पुनःस्थापित हुआ। १८५० में प्रशिया के राजा ने देश के लिए नया संविधान बनाया जो १९१८ तक चलता रहा।

१८४८-४९ का आन्दोलन असफल रहा किन्तु इसने जर्मनी की जनता को अनेक पाठ पढ़ाए। उन्हें पता लग गया कि जब तक आस्ट्रिया शक्तिशाली रूप से विरोध में है तब तक जर्मनी का एकीकरण असम्भव है। और कि वैधानिक तरीकों से एकीकरण असम्भव है। सुधारवादी कार्यशील व्यक्ति नहीं थे और वे देश की वास्तविक समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा सिद्धान्तों पर विवाद अधिक करते थे। आस्ट्रिया को जर्मनी से तभी निकाला जा सकता था जबकि जर्मनी के पास उससे अधिक शस्त्र शक्ति हो और यह शक्ति केवल प्रशिया ही दे सकता था। एक शक्तिशाली सेना की आवश्यकता सार्वजनिक रूप से अनुभव की गई।

१८५७ में फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ पागल हो गया और उसका भाई विलियम प्रथम संरक्षक बना। १८६१ में विलियम चतुर्थ की मृत्यु के पश्चात् वह प्रशिया का राजा बना।

विलियम प्रथम (William I) (१८६१-८८)—विलियम प्रथम एक दृढ़ प्रतिज्ञ पुरुष था। उसका भाग्य पर तथा प्रशिया के नेतृत्व पर पूर्ण विश्वास था। वह हृदय से कट्टर प्रशियन था। वह मनुष्यों का पारखी तथा अपने विश्वस्त नौकरों को चुन सकता था।

आस्ट्रिया द्वारा प्रशिया के अपमान करने पर उसका दृढ़ विश्वास था कि यदि जर्मनी को मुक्त कराना है तो यह प्रशिया की शक्तिशाली शस्त्र शक्ति से ही हो सकता है। १८४९ में उसने कहा था, 'जो भी व्यक्ति जर्मनी पर राज्य करना चाहेगा उसे

इसे जीतना पडेगा और यह केवल याथे वाक्यों से पूण नहीं होगा।' इसी धारणा को लेकर उसने रून (Roon) को युद्ध-मन्त्री और माल्टके (Moltke) को महा सेनापति नियुक्त किया। इन दो व्यक्तियों ने प्रशिया की सेना का पुनगठन करना प्रारम्भ किया और इसके विकास के लिए योजनाएँ बनाइ। १८६१ म जमन विधान मण्डल ने इसके लिए धन देना स्वीकार किया किन्तु १८६२ म अस्वीकार कर दिया। विलियम सेना के विकास में और विधानमण्डल वैधानिक सुधारों म विश्वास रखता था। इस प्रकार की परिस्थिति म काय रुक गया। इस समय प्रशिया के राजा के सम्मुख तीन माग थ। वह सेना के विकास की योजना को छोड देता। वह राज्य का परित्याग करता अथवा संविधान को स्थगित कर देता। वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। अन्त म परिस म बिस्माक को बुलाया गया कि वह स्थिति को सँभाले। इन परिस्थितियों म बिस्माक को १८६२ म प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। उसने विलियम प्रथम को आश्वासन दिया मैं श्रीमान के साथ नाट हो जाऊँगा किन्तु ससद के साथ इस सघष म आपका साथ नहीं छोडूँगा।



विलियम प्रथम

बिस्माक एक ढीठ पुरुष तथा सर्वाधिकार राजसत्ता का समथक था। उसका एकाधिकार और सैन्यशक्ति म विश्वास था। उसके शब्दो म "आज की हमारी समस्याएँ व्याख्यान देने और बहुमत से प्रस्ताव स्वीकार करने से पूरी नहीं होती अपितु रक्त और लोहे से सुलझेंगी।" वह विलियम प्रथम की इस बात स पूण सहमत था कि जमनी के एकीकरण के लिए जमनी की सेना का पुनगठन अनिवाय है। वह प्रशिया की ससद तक का अन्त करने के लिए तैयार था यदि वह सेना के पुनगठन के लिए धन देने से इन्कार करती। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैधानिक परिपाटी की परवाह नहीं करता था। इसमे कोई आश्चय नहीं कि उसे चार वष तक देश पर विधानसभा की अनुमति के बिना ही जनता से धन प्राप्त करने के लिए निरंकुश शासन करना पडा। इस प्रकार धन प्राप्त करके उसने सेना म सुधारों की योजना को क्रियान्वित किया।

१८६३ म आस्ट्रिया ने 'जमन-सघ के सुधार' के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए जमनी के राजाओं का एक सम्मेलन बुलाया। यदि आस्ट्रिया की चाल सफल

हो जाती तो जर्मनी में आस्ट्रिया का प्रभाव बना रहता। बिस्मार्क ने प्रशिया के राजा पर दबाव डाला कि वह इस सम्मेलन में न जाए। प्रशिया का राजा इस सम्मेलन में उपस्थित नहीं हुआ और परिणामतः यह सम्मेलन असफल रहा।

श्लसविग हाल्सटाइन प्रश्न (Schleswig Holstein Question)—यहाँ श्लसविग हाल्सटाइन के प्रश्न का भी उल्लेख कर देना उचित प्रतीत होता है जिसका बिस्मार्क ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए प्रयोग किया था। श्लसविग (Schleswig) और हाल्सटाइन डेनमार्क के राजा के दो अधिकृत प्रान्त थे। इन राज्यों का डेनमार्क के राजा के साथ व्यक्तिगत मैत्री संगठन था। हाल्सटाइन का राज्य जर्मन बहुधरा का था और यह १८१५ के जर्मन संघ का सदस्य था। श्लसविग में जर्मन और डेन दोनों ही रहते थे। डेनमार्क की जनता इन राज्यों को डेनमार्क में मिलाना चाहती थी। जर्मनी के लोग इसे जर्मन-संघ में मिलाना चाहते थे। १८४८ में इन राज्यों के शासन-यन्त्र को डेनमार्क में मिलाने का प्रयत्न किया गया था, किन्तु जर्मनों के विरोध के कारण अधिक प्रगति नहीं हो पाई। इसका कारण प्रशिया और ड्यूक आफ अगस्टनबर्ग का इन पर अधिक अधिकार था। परिस्थिति अधिक जटिल हो गई और युद्ध की आशंका होने लगी थी। अन्य देशों के हस्तक्षेप के कारण १८५२ में लन्दन संधि के अनुसार समझौता हो गया। डेनमार्क को चेतावनी दे दी गई कि वह इन राज्यों को मिलाने की कोशिश न करे। ड्यूक आफ अगस्टनबर्ग ने अपने अधिकार डेनमार्क के राजा को बेच दिए।

१८६३ में डेनमार्क के सिंहासन पर एक नया राजा बैठा और उसने श्लसविग को डेनमार्क में मिला लिया तथा हाल्सटाइन को अधिक दृढ़ बन्धनों में बाँध लिया। यह व्यवस्था लन्दन संधि का स्पष्ट रूप से अतिक्रमण करने का परिणाम थी। ड्यूक आफ अगस्टनबर्ग ने अपने अधिकारों का दावा किया। बिस्मार्क ने इस अवसर को जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रयोग किया। वह नहीं चाहता था कि ये राज्य डेनमार्क अथवा ड्यूक को प्राप्त हों। वह प्रशिया की पुनर्गठित सेनाओं की परीक्षा भी करना चाहता था तथा डेनमार्क से युद्ध होने पर उसे यह अवसर प्राप्त होता था। उसने आस्ट्रिया से समझौता करके डेनमार्क के विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया जिससे अन्त में युद्ध सम्पत्ति के बटवारे पर आस्ट्रिया से भी युद्ध का बहाना मिल जाए।

इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर डेनमार्क के राजा को युद्ध की चुनौती दी कि वह लागू किए गए संविधान को भंग कर दे। डेन इन संगठित सेनाओं का मुकाबला नहीं कर सकते थे और १८६४ की वियाना की संधि के अनुसार डेनमार्क के राजा ने श्लसविग और हाल्सटाइन के राज्य प्रशिया और आस्ट्रिया को सौंप दिए।

इन राज्यों को प्राप्त करने के पश्चात् इनके बँटवारे का प्रश्न उठा। आस्ट्रिया ने सुझाव दिया कि ये दोनों राज्य ड्यूक आफ अगस्टनबर्ग को दे दिए जाएँ किन्तु प्रशिया ने इसका विरोध किया। अन्ततः गेस्टीन सम्मेलन (१८६५) के निर्णय के अनुसार यह निश्चय हुआ कि पूर्ण निर्णय होने तक आस्ट्रिया हाल्सटाइन पर शासन

करे और प्रशिया इलेसविग पर। इन राज्यों का मामला जर्मन विधान सभा के सम्मुख न लाया जाए। यह उल्लेखनीय है कि गैस्टीन का समझौता बिस्माक की बड़ी भारी कूटनीतिक जीत थी। वह ड्यूक ऑफ़ अगस्टनबर्ग को निकालने में तथा आस्ट्रिया से युद्ध कर सकने की परिस्थिति उत्पन्न करने में सफल हो गया था।

टेलर के मतानुसार 'गस्टीन (Gastein) की संधि, अपनी पूर्ववर्ती शान ब्रन (Schonbrunn) की संधि की तरह [और उसके बाद मई १८६६ के गबलींज (Gablenz) के प्रस्ताव] एक अनन्त विवाद का विषय रही है। कुछ की दृष्टि में बिस्माक का यह घृणित प्रयोजन केवल एक अटल युद्ध की ओर था, दूसरों के विचार में यह उसकी इच्छा का प्रमाण था कि मेटरनिक के दिनों वाली जर्मन साझेदारी का रूढ़िवादी रूप पुनःस्थापित हो जाय। शायद इनमें कोई भी न हो। बिस्माक एक कूटनीतिक शैली था जो युद्ध में गैर अनुभवी था और जो उसके खतरों से घृणा करता था। वह अपनी कूटनीतिक चालों से यह भली प्रकार आशा कर सकता था कि आस्ट्रिया को डचीज (Duchies) से अलग करने, शायद जर्मनी की अध्यक्षता से बाहर भी करने की कोशिश की जाय। इस प्रकार के चमत्कार आगामी जीवन में उसकी शक्ति के बाहर नहीं थे। इस अवधि में उसकी कूटनीति युद्ध की तैयारी करने की अपेक्षा आस्ट्रिया को भयभीत करने की मालूम होती है। उसने फ्रांस को केवल यही प्रलोभन दिया कि यदि प्रशिया को डचीज प्राप्त हो जावें तो वह डेनमार्क को उत्तरी इलसविग पुनः देकर राष्ट्रीयता सिद्धान्त लागू करेगा और इस सब के बदले में उसने केवल परोपकारी निष्पक्षता की मांग की।' (The Struggle for Mastery in Europe, pp 157 58)

गस्टीन सम्मेलन आस्ट्रिया के हित में नहीं था। उसे एक प्रदेश का नियन्त्रण सौंपा गया था जो दोनों ओर से प्रशिया की सीमाओं से घिरा हुआ था। ठीक ही कहा गया है कि यह समझौता दरारों पर कागज चिपकाने के समान था। यह समस्या का समाधान नहीं था। आस्ट्रिया ने अनुभव किया कि हाल्सटाइन में उसकी स्थिति सुरक्षित नहीं है और इसलिए उसने ड्यूक को उकसाना शुरू कर दिया। उसने यह भी निर्णय किया कि इस मामले को जर्मन विधान सभा के सामने रखा जाए। स्पष्टतः इस कदम का अर्थ गस्टीन समझौते को तोड़ना था। बिस्माक ने आस्ट्रिया से कहा कि वह ड्यूक ऑफ़ अगस्टनबर्ग के लिए प्रचार करना बन्द करे। आस्ट्रिया ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और प्रशिया की सेना ने हाल्सटाइन में घुसकर आस्ट्रिया को खदेड़ दिया। बिस्माक जर्मन-संघ में सार्वजनिक मताधिकार द्वारा सुधार करना चाहता था, किन्तु आस्ट्रिया इसका विरोधी था। आस्ट्रिया ने जर्मन-संघ की विधान सभा पर जोर डालकर प्रशिया के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए स्वीकृति ले ली। प्रशिया ने संघ छोड़ दिया और १८६६ में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध घोषणा करने से पूर्व बिस्माक ने केवल सैनिक तैयारियाँ ही नहीं, अपितु आस्ट्रिया को कूटनीति से अकेला कर दिया था। परिणामतः जब युद्ध हुआ तो

आस्ट्रिया का कोई साथी नहीं था। इस विषय में बिस्मार्क के रूस, इटली और फ्रांस के सम्बन्धों का उल्लेख आवश्यक है।

आस्ट्रिया का एकाकीपन रूस (Isolation of Austria : Russia)—बिस्मार्क ने रूस को अपनी ओर करने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी क्योंकि वह यह नहीं चाहता था कि आस्ट्रिया से युद्ध होने पर रूस उसकी सहायता करे जैसे उसने १८४६ में हंगरी के मामले में की थी। १८५६ से १८६२ तक बिस्मार्क प्रशिया की ओर से पीटर्सबर्ग में राजदूत की हैसियत से रहा था। उस अवधि में उसने रूस को प्रशिया की ओर आकर्षित करने का यत्न किया था। बिस्मार्क ने जार को बहलवाया कि प्रशिया दोनों देशों के शत्रुओं के विरुद्ध रूस को भरपूर सहायता देगा। बिस्मार्क संगठित पोलैण्ड के निर्माण को सहन नहीं कर सकता था क्योंकि यह उसका शत्रु और प्रतिद्वंद्वी बन सकता था। इसी कारण उसने पोलैण्ड के विद्रोह का विरोध किया था। उसने एलेक्जेण्डर द्वितीय से समझौता किया कि वह प्रशिया में शरण लेने वाले अथवा प्रशिया से भर्ती करने वाले अथवा किसी भी प्रकार से प्रशिया को अपने कार्यकलापों का केन्द्र बनाने वाले पोलैण्डवासी के विरुद्ध कड़ी कारवाई करेगा। यद्यपि बिस्मार्क के इस कार्य की निन्दा की गई किन्तु उसे केवल रूस की मैत्री की ही परवाह थी अन्य किसी बात की नहीं। इस प्रकार उसने रूस को अपने पक्ष में कर लिया और उसे विश्वास हो गया कि आस्ट्रिया और प्रशिया के बीच युद्ध होने की स्थिति में रूस आस्ट्रिया का साथ नहीं देगा।

फ्रांस (France)—बिस्मार्क ने भी नेपोलियन तृतीय को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। १८६२ में जब बिस्मार्क पेरिस में प्रशिया का राजदूत था उसने नेपोलियन तृतीय से अच्छे सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न किया था। नेपोलियन बिस्मार्क का आदर करने लगा था। अक्टूबर १८६५ में बिस्मार्क नेपोलियन तृतीय से बियारित्ज नामक स्थान पर मिला। यह भेंट गुप्त थी और इसका कोई प्रमाण नहीं रखा गया। इस भेंट के परिणामस्वरूप नेपोलियन ने आश्वासन दिया कि युद्ध होने पर वह तटस्थ रहेगा तथा विजय प्राप्त होने की स्थिति में एल्बी (Elbe) की डचियों (Duchies) को प्रशिया में मिला लेगा। इटली और प्रशिया में सन्धि होने की स्थिति में उसने इटली को विनिशिया लौटा देने का वायदा भी किया। नेपोलियन ने जर्मन-संघ में सुधारों और प्रशिया के तत्त्वावधान में उत्तरी जर्मनी में एक नवीन राज्य के निर्माण का भी विरोध नहीं किया। फ्रांस की तटस्थता के मूल्य के रूप में बिस्मार्क ने थोड़ा-सा सीमान्त प्रदेश देने का आश्वासन दिया यदि उससे जर्मनी और प्रशिया को कोई घाटा न पड़े। वह फ्रांस की तटस्थता तो चाहता था किन्तु इस विषय में कोई दृढ़ निश्चय नहीं करना चाहता था जिससे कि बाद में क्षतिपूर्ति के दावों को निपटाना पड़े। यह सत्य है कि जहाँ तक जर्मनी के एकीकरण का प्रश्न था बिस्मार्क के प्रति नेपोलियन तृतीय पूर्ण सहानुभूति रखता था। वह इटली को विनिशिया भी देना चाहता था। उसका विचार था यदि उत्तरी जर्मनी में एक शक्तिशाली राज्य बन गया तो आस्ट्रिया को बहुत कुछ फ्रांस पर निर्भर रहना होगा। नेपोलियन तृतीय ने यह भी सोचा कि प्रशिया की पराजय की सम्भावनाएँ अधिक

हैं। ऐसी स्थिति मे फ्रांस जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों पर अधिकार कर लेगा। जो भी हो, बिस्मार्क ने फ्रांस को तटस्थता का बनाए रखा और जब आस्ट्रिया के साथ युद्ध शुरू हुआ तो आस्ट्रिया ने फ्रांस से कोई सहायता न मांगी।

इटली (Italy)—बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के स्वाभाविक शत्रु इटली को भी अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न किया। क्योंकि आस्ट्रिया के अधिकार मे अभी भी इटालियन भाषी प्रदेश थे। इटली विनिशिया प्राप्त करना चाहता था किन्तु इस प्रकार का कार्य वह विदेशी सहायता से ही कर सकता था। इटली और प्रशिया मे एक व्यापारिक समझौता हुआ था किन्तु बिस्मार्क एक सामरिक सन्धि करना चाहता था। बिस्मार्क आस्ट्रिया पर दो मोर्चों से अर्थात एक इटली से तथा दूसरा प्रशिया से आक्रमण करने के महत्त्व को समझता था। समझौते मे एक कठिनाई यह थी कि दोनों देश एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते थे। दोनों ही देशों की धारणा थी कि समझौते को आस्ट्रिया से कुछ सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जाएगा। किन्तु अविश्वास होने पर भी अप्रैल १८६६ मे इटली और प्रशिया मे एक सन्धि हो ही गई जिसके अनुसार यह समझौता हुआ कि यदि प्रशिया आस्ट्रिया पर तीन महीने मे आक्रमण कर दे तो इटली आस्ट्रिया पर आक्रमण कर देगा। कहा जाता है कि यह सन्धि पारस्परिक सुरक्षा और आशंका से पूर्ण थी। कुछ भी हो किन्तु आस्ट्रिया के विरुद्ध इटली की सक्रिय सहायता का आश्वासन मिल गया था।

यह बात उल्लेखनीय है कि मार्च, १८६६ मे प्रशिया के राजा ने नेपोलियन तृतीय को एक पत्र लिखा था और नेपोलियन ने इसके उत्तर मे मैत्रीपूर्ण तटस्थता का वचन दिया था। किन्तु उसने इसका मूल्य मांगा था। थीयर्स जैसे फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्ध के दिनों मे तटस्थता की नीति के विरुद्ध थे। एक सम्मेलन का प्रस्ताव रखा गया किन्तु आस्ट्रिया ने इसे अस्वीकार कर दिया था। बिस्मार्क युद्ध की सम्भावना से बड़ा प्रसन्न था।

आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध (Anstro Prussian War) (१८६६)—आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध बहुत थोड़े समय तक चला इसलिए इसे सात सप्ताह का युद्ध कहा जाता है। प्रारम्भ मे ऐसा प्रतीत होता था कि आस्ट्रिया विजयी होगा क्योंकि उसे बावेरिया, सेक्सनी तथा जर्मनी के अन्य छोटे राज्यों की सहायता प्राप्त थी। किन्तु प्रशिया की सेना की व्यवस्था इतनी कुशल थी कि आस्ट्रिया इसका मुकाबला नहीं कर सका। इसके अलावा आस्ट्रिया को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था। उसे केवल प्रशिया से ही नहीं अपितु इटली से भी लड़ना पड़ रहा था क्योंकि इन्होंने भी उसी समय युद्ध आरम्भ कर दिया था। यह सत्य है कि इटली को कुस्टाज्जा की लड़ाई मे और लिसा के समुद्री तट पर जलयुद्ध मे हार हुई थी किन्तु इससे युद्ध के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। प्रशिया ने आस्ट्रिया को साडोवा (Sadowa) युद्ध मे पराजित किया। विजय के पश्चात प्रशिया की सेनाएं वियना पर चढ़ाई करने के लिए जोर देने लगी और इन्हें राजा का समर्थन भी प्राप्त था। किन्तु बिस्मार्क इसके विरुद्ध था और अन्त मे उसकी ही बात मान ली गई। उसने

आस्ट्रिया के सम्मुख बड़ी उदार शर्तें रखीं और इन शर्तों को १८३६ की प्राग (Prague) की संधि में मान लिया गया। इसके अनुसार आस्ट्रिया ने तत्कालीन जर्मन-संघ को भंग करने को माना तथा आस्ट्रिया के बिना जर्मनी के एकीकरण को भी स्वीकार किया। विनिशिया इटली को दे दिया गया तथा युद्ध की क्षतिपूर्ति नाम मात्र को निर्धारित हुई। हनोवर हेस्सी कैसल (Hesse Cassel) नसाऊ, फ्रैंकफर्ट आन दे मेन तथा हाल्सटाइन और श्लेसविग को प्रशिया को दे दी गई। श्लेसविग के उत्तरी जिलों के विषय में यह निर्णय हुआ कि यदि इनकी जनता चाहे तो इन जिलों को डेनमार्क को दे दिया जाए। मेन (Maine) के उत्तर की ओर के राज्यों को प्रशिया के नेतृत्व में उत्तरी-जर्मन-संघ में मिला दिया गया। जर्मनी के दक्षिणी राज्यों को स्वतन्त्र रहने दिया गया था।

युद्ध के परिणाम (Effects of the War)—आस्ट्रिया और प्रशिया के युद्ध के बड़े गम्भीर परिणाम हुए। आस्ट्रिया को जर्मनी से अलग कर दिया गया और प्रशिया जर्मनी का नेता बन गया। यूरोप ने प्रशिया के युद्ध कौशल को मान्यता दी। उसे एक सैनिक शक्ति माना जाने लगा। बिस्मार्क की सफलता के पश्चात् प्रशिया में सुधारवादियों की निन्दा हुई और देश में उदारवाद नष्ट हो गया। विनिशिया मिलने से इटली एकीकरण प्रयास में एक और कदम बढ़ गया। केवल रोम ही इटली से बाहर रह गया था। युद्ध का आस्ट्रिया के साम्राज्य पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। विनिशिया के चले जाने तथा जर्मनी से आस्ट्रिया का पृथक कर देने के कारण आस्ट्रिया को हंगरी की मैग्यार जाति से समझौता करना पड़ा जिसके अनुसार १८६७ में हंगरी और आस्ट्रिया की संधि (Ausgleich) हुई। दुहरी राजशाही की स्थापना हुई। केवल युद्ध और कूटनीतिक मामलों को छोड़कर दोनों देश पूर्णतः स्वतन्त्र हो गए। यह व्यवस्था १९१८ तक चलती रही। दोनों देशों का एक राजा था जिसे आस्ट्रिया में सम्राट और हंगरी में राजा कहा जाता था। दोनों देशों के संयुक्त शिष्ट-मण्डलों के निर्माण की व्यवस्था हुई और यह नवीन स्थिरता १९१८ तक बनी रही।

फ्रांस और प्रशिया का युद्ध (Franco-Prussian War) (१८७०-७१)—१८६६ के युद्ध में आस्ट्रिया की पराजय के पश्चात् भी जर्मनी का संगठन सम्पूर्ण नहीं हुआ। दक्षिणी राज्यों को भी संगठित करना था और यह कार्य बिना शक्ति प्रयोग के पूरा नहीं हो सकता था। किन्तु यदि बिस्मार्क ने ऐसा किया होता तो फ्रांस द्वारा इन राज्यों की सहायता करने की आशंका थी। परिणामतः बिस्मार्क ने इस परिस्थिति को बड़ी सूझबूझ से संभाला। १८६७ से १८७० तक बिस्मार्क दक्षिणी राज्यों को समझौते और सहायता की नीति द्वारा अपने पक्ष में करता रहा। उसने उन्हें अपने सैन्य अधिकारी उनकी सेना को शिक्षित करने के लिए दिए। उसने उन्हें वित्तीय सहायता भी दी। उन पर यह प्रभाव डालने का प्रयत्न किया गया कि प्रशिया उनका मित्र है और उन्हें इससे किसी भी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए।

बिस्मार्क का विश्वास था फ्रांस के साथ युद्ध एक ऐतिहासिक आवश्यकता है और उसने इस घटना के लिए देश तैयार किया। सैनिक तैयारियाँ और तेज़ी

से होने लगीं और अब ओर से इसे कुमार बनाया गया। मोल्टके और रून फ्रांस से युद्ध प्रारम्भ होने के दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

बिस्मार्क फ्रांस को कूटनीतिक रूप से पृथक करने में सफल हुआ। इटली नेपोलियन तृतीय से १८५९ में विश्वासघात करने के कारण नाराज था। प्रशिया ने १८६६ में विनिशिया प्राप्त करने में उसकी सहायता की थी और इसलिए इटली का प्रशिया के प्रति कृतज्ञ होना स्वाभाविक ही था। पुनश्च, १८४८ से फ्रांस की सेनाएँ रोम में पड़ी थीं और इटली का एकीकरण उसी समय पूरा हो सकता था जब फ्रांस की सेनाएँ रोम से चली जातीं। यह उसी समय ही सम्भव था जबकि फ्रांस किसी युद्ध में उलझा हो और उसे अपनी सेनाएँ वहाँ से वापिस बुलानी पड़ें। परिणामतः इटली से आशंका नहीं थी कि वह फ्रांस की ओर से युद्ध में लड़ेगा।

बिस्मार्क रूस की तटस्थता का आश्वासन प्राप्त कर चुका था। रूस क्रीमिया का युद्ध, जिसमें फ्रांस ने उसे हराया था, भूला नहीं था। इसके अलावा बिस्मार्क ने जार को कह दिया था कि जब वह फ्रांस पर आक्रमण करेगा उस समय रूस पेरिस संधि की काला सागर सम्बन्धी धाराओं को तोड़ सकता है।

१८६६ में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को हराने के बाद अत्यन्त उदार शर्तें रख कर अपनी ओर कर लिया था। यद्यपि प्रशिया की सेनाएँ जीत गई थीं तथापि उसने उन्हें वियाना पर आक्रमण नहीं करने दिया था। आस्ट्रिया का युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए बहुत हर्जाना नहीं देना पड़ा था। बिस्मार्क फ्रांस से युद्ध होने पर आस्ट्रिया से तटस्थ रहने की आशा कर सकता था।

यदि बिस्मार्क जर्मनी के संगठन के लिए फ्रांस से युद्ध करना चाहता था तो नेपोलियन तृतीय भी प्रशिया से युद्ध करने का इच्छुक था। फ्रांस में सार्वजनिक रूप से यह धारणा थी कि साडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की हार नहीं अपितु फ्रांस की कूटनीतिक हार हुई थी। इसमें आश्चर्य नहीं कि फ्रांस अपनी हार का बदला लेना चाहता था। पुनश्च फ्रांस में नेपोलियन तृतीय के प्रति विरोध बढ़ता जा रहा था और उसकी धारणा थी कि प्रशिया से युद्ध आरम्भ करते ही वह फ्रांस के सब वर्गों का समर्थन प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार की परिस्थितियों में बिस्मार्क ने अपना जाल बिछाया और नेपोलियन तृतीय इसमें फँस गया।

स्पेन का राज सिंहासन राजकुमार लियोपोल्ड (Leopold) को देने का प्रस्ताव दो बार किया जा चुका था किन्तु उसने इसे स्वीकार नहीं किया था। बिस्मार्क के उकसाने पर उससे एक बार फिर भेंट करने का प्रस्ताव किया गया। फ्रांस के समाचार-पत्रों में इस प्रस्ताव की बड़ी आलोचना हुई। यह कहा गया कि फ्रांस प्रशिया और स्पेन के बीच घिर जाएगा और इस प्रकार उसके अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। यद्यपि लियोपोल्ड ने स्पेन का सिंहासन लेना अस्वीकार कर दिया फिर भी आन्दोलन बराबर चलता रहा। नेपोलियन ने प्रशिया के राजा से यह आश्वासन प्राप्त करना चाहा कि वह लियोपोल्ड को स्पेन के सिंहासन के लिए कभी भी उम्मीदवार नहीं बनाएगा। फ्रांस का राजदूत बनेडिटी (Benedetti) प्रशिया के

इम्स के निवास स्थान पर मिला और जोर डालना चाहा। प्रशिया के राजा ने फ्रांस के राजदूत से अपनी भेंट का विवरण एक तार द्वारा भेजा। बिस्मार्क ने इस तार को इस प्रकार से संक्षिप्त किया कि फ्रांस को यह प्रतीत हो कि उनके राजदूत का अपमान किया गया है और प्रशिया की जनता को यह प्रतीत हो कि उनके राजा का अपमान किया गया है। जब यह सन्देश फ्रांस पहुँचा तो फ्रांस में प्रशिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिए मांग की जाने लगी और युद्ध की घोषणा कर दी गई।

इस युद्ध की सबसे महत्वपूर्ण लड़ाई सीडान (Sedan) की हुई जिसमें नेपोलियन तृतीय हार गया और उसने आत्मसमर्पण किया था। यद्यपि फ्रांस में प्रजातन्त्र की स्थापना हो गई थी तथापि बिस्मार्क पेरिस पर अधिकार करने के हठ पर अड़ा था। क्योंकि फ्रांस की जनता ने यह स्वीकार नहीं किया अतः पेरिस का घेरा आरम्भ हुआ घोर युद्ध हुआ किन्तु पेरिस को आत्मसमर्पण करना पड़ा। १८७१ की फ्रैंकफर्ट की सन्धि के अनुसार शान्ति हुई और फ्रांस को एल्साए और लॉरेन प्रशिया को देने पड़े। उसे बहुत बड़ी धनराशि भी युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में देनी पड़ी। १८७१ में वर्साई के प्रसिद्ध दर्पण-महल (Hall of Mirrors) में एक समारोह हुआ जिसमें प्रशिया के राजा को जर्मनी का सम्राट घोषित किया गया। जर्मनी के दक्षिणी राज्य भी जर्मन संघ में मिल गए। इस प्रकार जर्मनी का एकीकरण परिपूर्ण हुआ।

हेज़न के मतानुसार, '१८७१ के पश्चात् फ्रैंकफर्ट की सन्धि यूरोप का रिसने वाला फोड़ा बन गया। फ्रांस कभी भी अपने घोर अपमान को भूल अथवा क्षमा नहीं कर सकता था। कालान्तर में यह बड़ा हर्जाना तो भूल भी जाता किन्तु इन दो राज्यों का शक्ति प्रयोग द्वारा और एल्साए और लॉरेन की जनता की सर्वसम्मति और कड़े विरोध के होने पर भी अधिकार कर लेना अक्षम्य था और कभी भी भूला नहीं जा सकता था। पुनश्च फ्रांस का पूर्वी सीमान्त अत्यन्त कमज़ोर हो गया था।

फ्रांस और प्रशिया के युद्ध के अन्य भी परिणाम हुए। इसके द्वारा इटली का एकीकरण पूर्ण हो गया। इसका यह कारण था कि जब फ्रांस और प्रशिया का युद्ध आरम्भ हुआ तब फ्रांस की सेनाओं को रोम से हटा लिया गया और इटली की सेनाओं ने रोम में प्रवेश किया। रूस ने भी इस युद्ध से लाभ उठाकर पेरिस सन्धि की काला सागर सम्बन्धी धाराओं को तोड़ दिया। नेपोलियन के साम्राज्य को उखाड़ दिया गया और फ्रांस में प्रजातन्त्र की स्थापना हो गई।

फ्रैंको प्रशियन युद्ध के विषय में प्रो० टेलर का मत है कि "यद्यपि १८७० में फ्रांस के ऊपर विजय ने निस्सन्देह जर्मनी में एकता स्थापित कर दी, पर युद्ध ने आस्ट्रिया के विरुद्ध भवन का अभाव प्राप्त किया। १८६२ और १८६६ के बीच में बिस्मार्क ने निरन्तर दबाव तीव्र किया। आकस्मिक तथा युद्ध चिन्ताओं के होते हुए भी, जब तक आस्ट्रियावासियों ने उसकी शर्तें स्वीकार नहीं की बार बार के संकटों ने युद्ध को अनिवार्य कर दिया। १८६६ और १८७० के बीच में युद्ध की ओर कोई निरन्तर प्रगति नहीं थी, तीन वर्षों से अधिक बाद तक वस्तुतः १८६७ के

लक्जम्बर्ग मामले से लेकर युद्ध के छिड़ जाने तक किसी भी संकट ने फ्रांस व प्रशिया के सम्बन्धों को खतरे में नहीं डाला। न इन वर्षों में बिस्मार्क मिश्रित शासनों (Coalitions) के भय से डरा जिनका उस पर बाद में आधिपत्य जम गया। जब ये अफवाहें फैली कि फ्रांस का इटली तथा आस्ट्रिया हंगरी के साथ संयोग हो गया है तो उसने इन्हें हास्यजनक कूड़ा कहकर हटा दिया और जो वास्तव में हुआ भी। वह फ्रांस व रूस के बीच होने वाले अच्छे सम्बन्धों से बहुत परेशान रहा क्योंकि इनका आधार फ्रांस की पोलैंड के प्रति सहानुभूतियों का त्याग था और प्रशिया इस साझेदारी में केवल तीसरा भागीदार बन सकता था। उसकी अपनी नीति पहले और बाद के किसी समय की अपेक्षा अधिक अप्रत्यक्ष (Passive) रही। यद्यपि उसने रूस के साथ मित्रता की ठोस नींव बनाए रखी, इसकी सीमा पोलैंड के प्रति समान शत्रुता तक थी। उसने रूसियों को कभी भी इतना योग्य नहीं बनाया कि वे उनमें अपने लिए निकट पूर्व में सहायता माँग सकें। अन्ततः उसने आस्ट्रिया-हंगरी व रूस के साथ रूढ़िवादी संधि की आशा की, सिद्धान्त पर आधारित अन्य संधियों की तरह इसका लाभ यह हुआ कि बिना कुछ मूल्य दिए हुए सुरक्षा की व्यवस्था हो गई। लेकिन वह यह जानता था कि उसे तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब तक कि १८६६ की पराजय पर हैप्सबर्ग का विरोध समाप्त नहीं हो जाता।' (The Struggle for Mastery in Europe p 201)

थामसन के विचार में, "इस बात पर इतिहासकारों के बीच काफी मतभेद रहा है कि क्या घटनाओं का लम्बा क्रम, जो १८७१ की नई जर्मन रीश (Reich) में पराकाष्ठा पर पहुँच गया, को एक सम्बद्ध योजना मान लिया जाये, जो बिस्मार्क की महान् बुद्धि में उपजी जबकि वह १८६२ में सत्ताधारी हुआ और जिसने एक निश्चित समय-सारिणी के अनुसार अपनी शक्तिशाली इच्छा शक्ति और कूटनीतिक दूरदर्शिता से उसे लागू किया। बिस्मार्क के जोशीले अनुयायियों व उसके उदार-वादी आलोचकों ने यह दलील देने का प्रयास किया है कि ऐसा ही था। यह प्रमाण का एक विचित्र उदाहरण है जो इस दृष्टिकोण को सहायता देता है। डिजरायली के विचार में, जो १८६२ में लन्दन में एक भोज के समय बिस्मार्क से मिला था और जिसके कुछ ही समय बाद वह स्वयं सत्ताधारी हुआ बिस्मार्क ने उस आधे घंटे की बातचीत में अपनी सारी योजना से अवगत करा दिया। बाद में शाम के समय डिजरायली ने लन्दन में रूसी दूत सेबुरोव को बताया 'क्या यही अद्वितीय पुरुष बिस्मार्क है। वह मुझे पहली बार मिला और उसने मुझे यह सब बता दिया कि वह क्या करने जा रहा है। वह श्लसविग-हाल्सटाइन पर कब्जा करने के लिए डेनमार्क पर आक्रमण करेगा, वह आस्ट्रिया को जर्मन संघ (Confederation) से बाहर करेगा, और फिर वह फ्रांस पर चढ़ाई करेगा—एक अभूतपूर्व व्यक्ति है।" यदि यह कहानी सच्ची है और यदि सेबुरोव तथा डिजरायली दोनों ही के सरकारी जीवनी लेखक इसको अनुमान्य करते हैं तो इसमें कोई सन्देह नहीं होगा कि कम-से-कम एक विशाल —— बिस्मार्क के मस्तिष्क में अवश्य था जबकि उसने अपना पद ग्रहण किया।

"लेकिन बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ के लिए भी इतिहास में यह असम्भव है कि वे दस पन्द्रह पहले से ही सफल योजना बना लें और फिर मसार पर ऊपर उन्हें लागू कर सकें। बिस्मार्क के कुछ आधुनिक जीवनी लेखकों ने यह सन्देह प्रगट किया है कि क्या उस इतना विलक्षण तथा दैवी परिज्ञान से अलंकृत किया जाय। यह कहा जाता है कि मेटरनिक या एलेक्जेण्डर प्रथम की भाँति बिस्मार्क कोई व्यवस्था रचक नहीं था। वह एक योग्य अवसरवादी था जिसकी कार्यविधि सदैव लचीली व अनिश्चित रही जब तक कि अंतिम क्षण न आया और जिसकी नीति उस समय की अपेक्षा अतीत काल में बहुत साफ और सम्बद्ध मालूम होती थी। वह प्रधान रूप से प्रशिया का राष्ट्रवादी था जो यह विश्वास करता था कि प्रशिया के हित यह मांग करते हैं कि वह सारे उत्तरी जर्मनी पर अधिकार जमावे और जर्मन विषयों में से आस्ट्रिया को अलग कर दे। अत डेनमार्क आस्ट्रिया और फ्रांस तक के प्रति उसकी नीति केवल एक ही महान् परीक्षण से जानी जा सकती है—प्रशिया राज्य के हित। बाकी सब केवल विस्तार व विधि की बात थी जो क्षणिक परिस्थितियों से निर्धारित होती थी और जैसा कि वह यूरोप की राजनीति के स्वभाव में अपने तीक्ष्ण परिज्ञान के बल पर समझता था। जर्मनी का एकीकरण प्रशिया के हित से नैमित्तिक और उस दिशा में अनन्त खोज से संलग्न प्रयोजन था। (Europe Since Napoleon, pp 291 92)

Suggested Readings

Clark C W	*Franz Joseph and Bismarck The Diplomacy of Austria before the War of 1866*
Dawson W H	*Evolution of Modern Germany*
Dawson W H	*The German Empire 1867 1914*
Ergang R E	*Herder and the Foundations of German Nationalism 1931*
Friedjung H	*The Struggle for Supremacy in Germany (1859 1866) 1936*
Gooch C P	*Germany*
Headlam	*Bismarck and the Foundation of the German Empire*
Henderson E F	*A Short History of Germany*
Marriott and Robertson	*The Evolution of Prussia*
Oncken H	*Napoleon III and the Rhine The Origin of the War of 1870 71 1892*
Priest	*Germany Since 1740*
Taylor A J P	*The Course of German History*
Valentin V	*1848 Chapters in German History 1940*
Willoughby L A	*The Romantic Movement in Germany 1930*

अध्याय १८

रूस १७९६ से १८७० तक

(Russia from 1796 to 1870)

यद्यपि रूस ज़ार पीटर और कैथरीन महान जैसे व्यक्तियों के कार्यों के कारण महत्ता प्राप्त कर चुका था तथापि यह यूरोप के अन्य प्रगतिशील देशों से पिछड़ा हुआ था। यह इसी दयनीय अवस्था में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक रहा। इसके बाद यहाँ मुज़ारेदारी (Serfdom) समाप्त कर दी गई और देश का उद्योगीकरण हुआ जिसके कारण देश में उदार और क्रान्तिकारी विचारधाराओं का जन्म हुआ। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि रूस ने यूरोप के विदेशी मामलों में महत्त्वपूर्ण भाग नहीं लिया। यह तथ्य है कि रूस को एक महान् शक्ति माना जाता था और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की शतरंज की बिसात पर उसकी प्रत्येक चाल भय, चिन्ता और दिलचस्पी से देखी जाती थी।

ज़ार पॉल प्रथम (Czar Paul I) (१७९६-१८०१)—कैथरीन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् ज़ार पॉल प्रथम १७९६ में रूस के सिंहासन पर बैठा। उसके राज्यारोहण के तुरन्त बाद देश के प्रशासन में बहुत से परिवर्तन किए गए। एक शाही घोषणा हुई कि रूस के सिंहासन पर 'ज्येष्ठाधिकार' के सिद्धान्त के अनुसार उत्तराधिकार होगा। जनता का वेश, आचार और व्यवसाय भी बदल दिए गए। सैनिक अनुशासन कड़ा कर दिया गया। प्रिय दरबारी लोग जो सैनिक पद-सञ्चलन में वर्ष में केवल एक बार भाग लेते थे तथा पुराने सैनिक जो कभी छावनी में गए ही नहीं थे उन्हें नित्यप्रति नियमित रूप से सैनिक क़वायद में शामिल होना पड़ता था। प्रशिया की सेना की शिक्षा पद्धति और वेश को अपना लिया गया। प्रशासन के अधिकारियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। रूस के वित्त विभाग से भ्रष्टाचार को हटाने के प्रयत्न किए गए। ज़ार पाल (Czar Paul) जन्म से ही निर्दय, स्वेच्छाचारी था और पुराने रूसी शान का रूढ़िवादी अनुयायी था। दरबार में शिष्टाचार के नियम लागू किए गए और उनका इतनी कठोरता से पालन किया जाने लगा कि प्रत्येक दिन दरबार की हाज़िरी दरबारियों के लिए एक समस्या बन गई। वे लोग दरबार में जाने से काँपा करते थे। राजकुमारों और महिलाओं को अपनी गाड़ियों से उतरकर बर्फ़ पर खड़ा हो कर गुज़रती हुई शाही गाड़ी को सलाम करना पड़ता था। मास्को में राज्याभिषेक के समय पोलैण्ड के प्रतिनिधियों ने अपने राजा को छज्जे के किनारे, जहाँ खड़ा होने का आदेश दिया गया था खड़े देखा। देश में एक प्रकार का आतंक राज स्थापित हो गया था।

विदेशी मामलों में पाल ने पर्शिया (Persia) और ज्योर्जिया (Georgia) से रूसी सेनाएँ बुला ली। उसने पोलण्ड के प्रमुख माननीय व्यक्तियों को मुक्त कर दिया। उसने स्टेनीस्लास (Stanislas) को सेंट पीटर्सबर्ग बुलाया और उसका राजोचित स्वागत किया। उसने पोलण्ड के नेता से यहाँ तक कहा कि वह व्यक्तिगत रूप से पोलण्ड के विभाजन के पक्ष में नहीं था। उसने शत्रु से मुँह न रखने की नीति की घोषणा की। उसने अनुभव किया कि रूस १७५६ से युद्ध में संलग्न रहा है और अब वह थक गया है और अब वह शान्ति का इच्छुक है। उसने घोषणा की कि वह रूस द्वारा की गई सारी सन्धियों का निबाहना चाहता है और वह सब प्रकार से फ्रांस के प्रजातन्त्र और जैकोबिनवाद का विरोध करेगा। कैथरीन की बाल्टिक नीति का अनुसरण किया गया और डेनमार्क से घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए गए। स्वीडन से भी मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए गए। पाल अपने वचन का पालन करने वाला था। रूस की एक बड़ी सेना वापस बुला ली गई और रहायन नदी के क्षेत्र में ६० हजार सैनिक भेजने की योजना भी छोड़ दी गई। सेना में दमन द्वारा भर्ती रोक दी गई। किन्तु देश में रेल की व्यवस्था ढीली नहीं की गई। फ्रांस क्रान्ति के प्रति उसकी शत्रुता उसके लिए धर्म बन गया था। बाद में जब वह बोनापार्ट का मित्र बना, उसका मुख्य कारण यह था कि उसने नेपोलियन को जैकोबिनवाद का शत्रु माना था। रूसी प्रजाजनों को पश्चिम की यात्राओं से लौट आने की आज्ञा दी गई थी। समाचारपत्रों और नाट्यगृहों पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया गया। फ्रांसीसी नागरिकों का रूस की सीमा में आने से पूर्व बोर्बन वंश के किसी राजकुमार द्वारा मान्य पारपत्र दिखाना पड़ता था। कभी-कभी तो पेरिस के नवीन शिष्टाचार के विरुद्ध पाल का रोष उपहासजनक हो जाया करता था। ऊँचे कालर (collars) को प्रजातन्त्रवाद का प्रतीक माना जाता था। राजधानी में गोल टोपी पहनने वालों का पुलिस पीछा किया करती थी, यहाँ तक कि एक राजदूत को भी अपनी टोपी उतार कर बदलनी पड़ती थी।

पाल जैसी मनोवृत्ति वाला राजा अधिक समय तक बिना विपत्ति में पड़े नहीं रह सकता था। उसकी सबसे प्रथम राजनैतिक पराजय स्वीडन (Sweden) से हुई। वह उससे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना चाहता था, किन्तु उसकी अवहेलना कर दी गई। फ्रांस से भी उसके सम्बन्ध असन्तोषजनक ही रहे। १७९७ में पाल ने नाइटस आफ सैन्ट जान को अपना संरक्षण प्रदान किया। यूरोप भर के सामन्तों को एक सूत्र में पिरोने की एक चाल चली गई ताकि समाज की नींव पर कुठाराघात करने वाले समानता के विचारों के आक्रमण का मुकाबला किया जा सके। वह अठारहवीं शताब्दी का धर्मान्ध व्यक्ति था। यद्यपि उसमें कथेरीन जैसी बनावटी उदारता नहीं थी फिर भी वह यूरोप की कूटनीति में यशस्वी होने की अभिलाषा रखता था। वह 'नाइटस आफ सेंट जान' द्वारा ग्राण्ड मास्टर के पद पर चुना गया। हालण्ड पर इंगलण्ड और रूस का संयुक्त अभियान असफल रहा और रूस को बड़ी हानि उठानी पड़ी। १७९९ में नेपोलियन ने माल्टा द्वीप रूस को दे दिया क्योंकि ज़ार सेण्ट जान का 'ग्राण्ड मास्टर' था। नेपोलियन द्वारा आस्ट्रिया के विरुद्ध मेरिंगो (Marengo)

के युद्ध में विजय प्राप्त करने पर वह उसका आदर करने लगा था। बोनापार्ट ने प्रगट रूप से पॉल का सार्डीनिया, नेपल्स और रोम में दिलचस्पी का माना और इससे भी पाल को बड़ा सन्तोष हुआ होगा।

१८०० में नेपोलियन से बातचीत आरम्भ हुई। माल्टा पर ब्रिटेन ने अधिकार कर लिया और इस द्वीप को पुनः जार को नहीं लौटाया गया। पॉल ने अपना क्रोध १८०० की द्वितीय सशस्त्र तटस्थता सन्धि में व्यक्त किया। रूस, प्रशिया, स्वीडन और डेनमार्क सन्धियों द्वारा परस्पर साथी बन गए। यह निर्णय किया गया कि प्रत्येक तटस्थ देश के जहाज साथी राष्ट्रों की बन्दरगाहों और शत्रु राष्ट्रों के समुद्री तट से यात्रा कर सकेंगे। युद्ध की सामग्री के अतिरिक्त युद्ध-संलग्न राष्ट्रों को जाने वाले माल तटस्थ देशों के जहाजों पर स्वतन्त्रता से जा सकेंगे। तटस्थ जहाजों को पर्याप्त कारणों पर ही पकड़ा जायगा और तुरन्त ही उनके अपराधों की जाँच की जाएगी। समान और शीघ्र न्याय व्यवस्था अपनाई जाएगी। नेपोलियन ने जार से सहयोग किया। १८०१ में जार ने पेरिस में अपना एक प्रतिनिधि भेजा। उसने नेपोलियन को सुझाव दिया कि वह इंग्लैण्ड पर आक्रमण करे। नेपोलियन ने उसका सुझाव स्वीकार कर लिया। उसने नेपोलियन से कहा कि वह पुर्तगाल, स्पेन और संयुक्त राज्य अमेरिका को इंग्लैंड के विरुद्ध करके अपने साथ मिला ले। उसने भारतवर्ष पर आक्रमण करने की योजना बनाई। योजना इस प्रकार थी, कि एक रूसी सेना बुखारा और खीवा के मार्ग से चले। एक फ्रांसीसी सेना डेन्यूब नदी के किनारे से आगे बढ़े। दूसरी फ्रांसीसी सेना हरात (Herat) और कन्धार के मार्ग से आगे चले और ये सब मिलकर भारतवर्ष पर आक्रमण करें। जार ने शत्रु देशों में से होकर इस लम्बी यात्रा के खतरों का अनुमान नहीं लगाया। इसमें क्या आश्चर्य है कि ब्रिटेन ने भी प्रतिरोधात्मक कार्यवाही की हो। १८०१ में रूस, स्वीडन और डेनमार्क के जहाजों पर रोक लगा दी गई। पार्कर और नेल्सन (Nelson) के निरीक्षण में एक जहाजी बेड़ा बाल्टिक सागर भेजा गया। जिन राष्ट्रों का भय हुआ उन्होंने बड़ी तीव्रता से युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। किन्तु इससे पहले ही जार की हत्या कर दी गई।

यह बात उल्लेखनीय है कि हत्या से बहुत महीनों पहले ही जार में पागलपन के लक्षण प्रगट हो गए थे। उसे अकारण असमय रूप से क्रोध के दौरे पड़ते थे। उसके व्यवहार में सामंजस्य नहीं रहा था। लोगों की बिना युक्ति के पदोन्नति और पदावनति होती थी। जरा से सन्देह के आधार पर प्रत्येक वर्ग के लोगों को दण्ड दे दिया जाता था। अंगरक्षक सेना के पदाधिकारियों को छोटे-छोटे अपराधों पर पीटा तथा बन्द कर दिया जाता था। मन्त्रियों को भूल से कहे गए एक ही शब्द पर देश निकाला दे दिया जाता था। अनेक भाग्यहीनों को साइबेरिया भेज दिया गया था। एक-एक करके उसने अपने सारे स्वामिभक्त सेवकों को शत्रु बना लिया था। बहुत से उच्च पदाधिकारियों को डाँट दिया गया, देश से निकाल दिया गया और अपमानित कर दिया गया था। अनेक उसने घृणा किया करते थे क्योंकि वह उनके पदाधिकारियों का अपमान करता था। भयपूर्ण वातावरण असहनीय हो गया था। इन

परिस्थितियों में षडयन्त्र रचा गया और मार्च, १८०१ में जार को निर्दयता से गला घोट कर मार डाला गया।

एलेग्जेण्डर प्रथम (Alexander I) (१८०१-२५)—१८०१ में जार पॉल का उत्तराधिकारी एलग्जेण्डर प्रथम बना और वह १८२५ तक राज्य करता रहा। उसे एक स्विस शिक्षक ने शिक्षा दी थी और उसके प्रभाव के कारण जार के विचार उदार हो गए थे। १८२० तक उसके उसके विचार उदार ही रहे किन्तु उसके पश्चात वह पूर्णत मेटरनिच का अनुयायी हो गया। एलेग्जेण्डर एक आदर्शवादी तथा स्वप्नद्रष्टा था।[1] पवित्र मैत्री (Holy Alliance) उसके अध्यात्मवाद, आदर्शवाद और निरंकुशतावाद का परिणाम थी। उसके विचार महान थे और उसका पूर्ण विश्वास था कि उसके जीवन का उद्देश्य दैवी सिद्धान्तों को राज्य के शासन में क्रियान्वित करना था। वह शासकों से चाहता था कि वे अपनी प्रजा के पिता बनकर उन्हें पुत्रों की भाँति प्रेम करें। इसी कारण लुई अठारहवें के पुनःस्थापन पर उसने जोर डाल कर १८१४ की अधिकार पत्र की घोषणा कराई थी। स्वयं भी उसने पोलण्ड के क्षेत्र को उदार संविधान प्रदान किया था। इसी प्रकार का संविधान वियाना सम्मेलन के पश्चात रूस ने फिनलण्ड को दिया था।



एलेग्जेण्डर प्रथम

यह ध्यान रखने योग्य है कि १८०७ के युद्ध के पश्चात् एलेग्जेण्डर ने नेपोलियन से टिल्सिट की सन्धि करने के पश्चात् महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) को क्रियान्वित करने में नेपोलियन का साथ दिया था। यह व्यवस्था थोड़े समय तक चलती रही। किन्तु अनेक कारणों से एलेग्जेण्डर को नेपोलियन से असहयोग करना पड़ा। १८१२ में नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण कर दिया। इसके पश्चात् उसने यूरोप की अन्य शक्तियों से सहयोग करके नेपोलियन का नाश किया। नेपोलियन के पतन के पश्चात् यह वियाना सम्मेलन (१८१४-१५) में अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति था। उसके पास एक विशाल सेना थी जिसके बल पर वह अपने दृष्टिकोण को अन्य शक्तियों से मनवा सकता था। इसी कारण एलेग्जेण्डर वियाना सम्मेलन में अपने देश के लिये बहुत कुछ प्राप्त कर सका।

वियाना सम्मेलन के पश्चात् एलेग्जेण्डर के विचार तेजी से बदले। १८१८ में वह आस्ट्रिया और प्रशिया से सहयोग करके यूरोप में यथास्थिति (Status quo)

---

१ नेपोलियन ने एलेग्जेण्डर के विषय में लिखा था "मैं एलेग्जेण्डर को चाहता हूँ, उसे भी मुझे चाहना चाहिए। यदि वह स्त्री होता तो मैं उसे प्रेम करने लगता।"

बनाए रखने के लिए तैयार था। १८२० में वह बिल्कुल बदल गया। १८२० में ट्राप्पू (Troppau) सम्मेलन में उसने सार्वजनिक रूप से अपने को मेटरनिक का अनुयायी घोषित किया और कहा कि वह इसको यूरोप में क्रान्तिकारी विचार धारा को दमन करने के लिए मन चाहे रूप से प्रयोग कर सकता है। वह नेपल्ज, पीडमोण्ट और स्पेन के विद्रोहों का दबाने के लिए अपनी सेना भेजने को तैयार था। मेटरनिक रूस की विशाल सैन्य शक्ति से डरता था इसलिए उसने इसका उत्साह कम कराया था। एलेग्ज़ेण्डर शेष जीवन भर प्रतिक्रियावादी (reactionary) ही रहा।

जब ग्रीस ने तुर्की के विरुद्ध विद्रोह किया तो पूरी सम्भावना थी कि रूस अपनी सेनाएँ विद्रोह को दबाने के लिए भेजेगा। एलेग्ज़ेण्डर की भी बड़ी इच्छा थी, और उसे अन्य देशों ने उत्साहित भी किया था किन्तु वह मेटरनिक के प्रभाव में था। उसका विचार था कि सभ्यता के सूर्योदय से पहले ही विद्रोह को जल कर समाप्त हो जाना चाहिए। परिणामतः मॉलडेविया में राजकुमार हिपसिलण्टी (Hypsilanti) का विद्रोह बुरी तरह असफल हुआ। मोरिया द्वीप में जब ग्रीक लोगों ने विद्रोह का झण्डा उठाया उस समय भी एलेग्ज़ेण्डर ने उनकी सहायता न की।

एलेग्ज़ेण्डर अध्यात्मवाद सुधारवाद, स्वेच्छाचारिता और साम्राज्यवाद का अद्भुत मिश्रण था। इसलिए कभी वह उदार और कभी प्रतिक्रियावादी हो जाता था। लार्ड बायरन (Byron) ने उसके विषय में एक कविता लिखी है जो नीचे दी जाती है

' Now half dissolving to a liberal thaw,
But hardened back whenever the morning s raw
With no objection to true liberty,
Except that it would make the nations free

निकलस प्रथम (Nicholas I) (१८२५ ५५)—अपनी मृत्यु से पहले ही एलेग्ज़ेण्डर ने कान्स्टैनटाइन (Constantine) को छोड़कर निकलस प्रथम को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। निकलस प्रथम प्रतिक्रियावादी होने के कारण काफी बदनाम था। इस कारण रूस के सुधारवादियों ने दिसम्बर १८२५ में विद्रोह किया। उनका नारा था 'हम संविधान और कॉन्स्टैनटाइन चाहिएँ'। उन्होंने कान्स्टैनटाइन के शासन की माँग की, जो अपने उदार विचारों के लिए प्रसिद्ध था। जनता इतनी अज्ञानता में थी कि उसने संविधान को कॉन्स्टैनटाइन की पत्नी समझा (They mistook Constitution for wife of Constantine)। दिसम्बर विद्रोह का बड़ी निर्दयता से दमन कर दिया गया और निकलस प्रथम ने ३० वर्ष राज्य किया। प्रतिक्रिया उसके रोम रोम में भरी थी। वह स्वेच्छाचारिता की मूर्ति था। रूस की नीति में तानाशाही का राज्य छा गया। रूस में प्रगतिशील विचारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जनता की आवाज को प्रसारित करने के सारे साधनों पर नियन्त्रण हो गया। विचारों और कार्यों की स्वतन्त्रता के सारे द्वार बन्द कर

दिए गए। १८२६ म उसने शाही कार्यालय का तीसरा विभाग (Third Section of Imperial Chancery) बनाया जिसका काय राजनतिक तथा सामाजिक नवीन ताए प्रचलित करने वालो की खोज करना तथा उन्ह दण्ड देना था। यह बात उल्लखनीय है कि ततीय विभाग का काय रूस के इतिहास म काला अध्याय है। तृतीय विभाग का अध्यक्ष रूस की पुलिस का सचालक था और उसे पकडने, कद करने देशनिकाला देन और बिना रोक-टोक क दण्ड दन क असीमित अधिकार प्राप्त थे। तृतीय विभाग द्वारा फलाए गए आतक का मुकाबला स्तान के धम न्यायालयो के अत्याचार ही कर सकते थे। निकलस ने अपनी प्रजा को पश्चिमी यूरोप क उदार विचारो की छूत स बचाने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य स उसने रूस के नागरिको द्वारा विदेश यात्रा बन्द कर दी। विदेशी पुस्तकें बिना पूरी जाच के देश म नही आने दी जाती थी। विद्यार्थियो को विश्वविद्यालयो म अध्ययन करने स हतोत्साहित किया जाता था। दशन शास्त्र का अध्ययन पाठयक्रम म निकाल दिया गया। युवको को उच्च शिक्षा के लिए विदेशो म भेजना बन्द कर दिया गया। समाचारपत्रो पर बडा कठोर सेसर (Censor) लगाया गया। यदि किसी भी व्यक्ति के पास निषिद्ध पुस्तक मिल जाती अथवा भूल से कोई बात कह देता था तो उसे साइबेरिया के किसी भाग म देशनिकाला देकर भेज दिया जाता था। देश म कोई न्याय व्यवस्था नही रह गई थी।

विदेश नीति के विषय मे वह अपने को तानाशाही का प्रवतक समझता था और सारी प्रगतिशील विचारधाराओ को शत्रु मानता था। १८३१ म वह पोलण्ड के विद्रोह के कारण बोबन (Bourbon) वश की ओर स फास के विद्रोह मे हाथ नहीं डाल सका था। १८३३ म उसन क्रान्तिकारी तथा प्रगतिशील आदोलनो का दमन करने के लिए आस्टिया और प्रशिया के साथ घनिष्ठ सम्बध स्थापित किए। इस त्रिमुखी सधि ने यूरोपीय व्यवस्था म निकलस प्रथम को केन्द्रीय व्यक्ति बना दिया और रूस की प्रतिष्ठा बढ गई। १८४६ म जब हगरी न आस्ट्रिया के विरुद्ध विद्रोह करके स्वय को स्वतन्त्र गणतन्त्र घोषित किया तो निकलस ने अपनी सेनाएँ आस्ट्रिया की सहायता के लिए भेजी। उसने जमनी के राष्ट्रीयता आन्दोलन के विरुद्ध भी हस्तक्षेप करने की धमकी दी। निकलस के आतककारी रुख के कारण ही १८४६ मे फ्रकफट ससद द्वारा प्रस्तावित मुकुट को प्रशिया के विलियम चतुथ ने स्वीकार नहीं किया था।

जिस समय वह सिहासन पर बठा तब ग्रीक लोग अपने स्वातन्त्र्य युद्ध मे सलग्न थे। आरम्भ म उसन इग्लण्ड और फास से सहयोग करके ग्रीको की तुर्की के विरुद्ध सहायता की। रूस के बडे ने नवारिनो (Navarino) के समुद्री युद्ध म भाग लिया और तुर्की और मिश्र के बडे को नष्ट किया। यद्यपि कनिंग की मृत्यु के पश्चात फास और इग्लण्ड न युद्ध बन्द कर दिया तथापि रूस ग्रीस की सहायता करता ही रहा। परिणामत १८२६ म ग्रीस (Greece) की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई। निकलस द्वारा की गई ग्रीस की सहायता का कम महत्त्व नही था।

महमत अली (Mehmet Ali) ने ग्रीक स्वातन्त्र्य युद्ध में तुर्की के सुलतान की सहायता की थी। युद्ध के पश्चात् इसकी सेवाओं के उपहार स्वरूप इसे क्रीट (Crete) का द्वीप दे दिया गया था। मेहमत अली ने इसे पर्याप्त नहीं समझा और सीरिया (Syria) और एशिया माइनर (Asia Minor) पर अधिकार कर लिया। जब वह कुस्तुनतुनिया (Constantinople) की ओर बढ़ने लगा तो तुर्की के सुलतान ने रूस की सहायता मांगी। इन परिस्थितियों में अनक्यार स्कलेस्सी (Unkiar Skelessi) की १८३३ में सन्धि हुई। इसके अनुसार रूस ने तुर्की की सहायता करना स्वीकार किया और यह निर्णय हुआ कि जब भी रूस युद्ध में लगा होगा डारडनालज की बन्दरगाह में अन्य किसी भी देश के जहाजी बेड़े को नहीं रहने दिया जाएगा। इस सन्धि के अनुसार रूस काला सागर का स्वामी हो गया और आक्रमणों से उसकी सुरक्षा हो गई। इसके द्वारा रूस का मार्ग भूमध्यसागर की ओर भी खुल गया।

१८४० में रूस ने ब्रिटेन, आस्ट्रिया और प्रशिया के साथ मिल कर तुर्की की अखण्डता बनाए रखने का निर्णय किया। चारों शक्तियां इंगलैण्ड से मिलीं और सुलतान की सहायता करने का निर्णय किया। चतुर्मुखी संगठन को फ्रांस ने अपना अपमान समझा और युद्ध की सम्भावना बढ़ गई। किन्तु लुई फिलिप ने फ्रांस के प्रधानमन्त्री को पदच्युत कर दिया। यूरोपीय शक्तियों के सामूहिक कार्य के परिणाम स्वरूप महमत अली के पुत्र इब्राहीम को सीरिया से निकाल दिया गया और उसे १८४१ में आत्मसमर्पण करना पड़ा। १८४१ की सन्धि के अनुसार सारी शक्तियों ने डारडनील्स (Dardanelles) और बॉसफोरस के मार्ग से काला समुद्र में रास्ता बन्द करने के अधिकार को मान्यता दी। रूस ने १८३३ की सन्धि को रद्द कर दिया।

१८४४ में निकोलस प्रथम लन्दन गया और उसने तुर्की के विभाजन का प्रस्ताव किया क्योंकि उसे तुर्की के पतन की पूरी आशंका हो गई थी। उसने प्रस्ताव किया कि इंगलैण्ड मिस्र और क्रीट (Crete) पर अधिकार कर ले और उसे अन्तर्वर्ती द्वीपसमूह पर अधिकार करने दिया जाए। उसने यह भी कहा कि वह कुस्तुनतुनिया पर अधिकार नहीं करना चाहता। ब्रिटिश सरकार ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

ब्रिटेन को तुर्की के मामले में न हाथ डालते देखकर उसने अकेले ही यह कार्य करने की सोची। उसने तुर्की के ईसाइयों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। किन्तु उसकी इस चेष्टा का विरोध हुआ। निकोलस ने १८५३ में डन्यूब नदी के प्रदेश पर अधिकार करने की आज्ञा दे दी। इन परिस्थितियों में क्रीमिया युद्ध आरम्भ हुआ। ब्रिटेन, फ्रांस और सार्डीनिया ने सामूहिक रूप से रूस के आक्रमण को रोकने तथा तुर्की की सहायता के लिए सामूहिक मोर्चा लिया। क्रीमिया का युद्ध (Crimean War) १८५४ से ५६ तक चला। इस युद्ध के चलते हुए ही १८५५ में निकोलस की मृत्यु हो गई।

यह स्पष्ट है कि निकलस की विदेश-नीति शक्तिशाली थी और उसका प्रभाव सारे यूरोप पर छाया हुआ था।

हम लिपसन द्वारा की गई निकलस प्रथम और स्पेन के फिलिप द्वितीय की तुलना से चर्चा को समाप्त करेंगे। निकलस फिलिप की तरह उस युग की स्वेच्छाचारिता की मूर्ति था। वह स्वेच्छाचारिता का प्रचारक और उस युग की प्रगति की भावना का प्रतीक था और अत्यन्त कठोर हठधर्मी से मृतप्राय सिद्धान्तों की रक्षा के लिए जी तोड़ कर लड़ने वाला था। जिस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में स्पेन के राजा सुधारों के कट्टर विरोधी थे उसी प्रकार यह भी गणतन्त्रवाद का कट्टर शत्रु था। दोनों ने ही एक जैसे हथियार प्रयुक्त किए यथा स्पेन ने धर्म-न्यायालय (Inquisition) और रूस ने तृतीय विभाग। उन्होंने अपनी विचारधाराओं को यूरोप में फैलती हुई प्रगतिशील विचारधाराओं में जानबूझ कर बरबस अछूता रखा था। किन्तु स्पेन की तरह रूस में भी राजशाही की नींव प्रजा की अखण्ड स्वामिभक्ति और उपेक्षा पर आधारित थी। किन्तु यह उनकी दुर्बलता का भी प्रतीक था। क्योंकि एक बार जनता में राजनैतिक जाग्रति हो जाने पर इसका सारा भवन चूर चूर होकर गिर जाना स्वाभाविक था। १८५५ तक यह जाग्रति रूस में नहीं आई किन्तु क्रीमिया के युद्ध का रूस की जनता पर वही प्रभाव हुआ जो स्पेन में स्पेन के जहाज़ी बेड़े के नष्ट हो जाने पर हुआ था। इससे उनका तत्कालीन राज्य-व्यवस्था तथा देश की अजय शक्ति में विश्वास समाप्त हो गया था।

एलेग्जेण्डर द्वितीय (Alexander II) (१८५५-८१)—क्रीमिया युद्ध के दौरान में ही एलेग्जेण्डर द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसे ही सन्धि वार्ता करके १८५६ की अपमानजनक पेरिस सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े थे। जहां तक काला सागर का सम्बन्ध है आगामी चौदह वर्षों में रूस का प्रभाव पूर्णतः नष्ट हो गया।

क्रीमिया युद्ध के समाप्त हो जाने पर उसने आन्तरिक व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। देश में बड़ा असन्तोष था। जनता में देश के स्वेच्छाचारी शासन के प्रति घोर कटुता थी क्योंकि इसके ही कारण क्रीमिया के युद्ध में पराजित होकर १८५६ की अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी थी। इसलिए जनता को शान्त करने के लिए कुछ सुधार करने का निर्णय किया गया।

मुज़ारेदारी की समाप्ति (Abolition of Serfdom)—एलेग्जेण्डर द्वितीय द्वारा सबसे बड़ा सुधार मुज़ारेदारी को १८६१ में समाप्त कर देना था। रूस मुख्यतः एक खेतिहर देश था और देश में बहुत बड़ी संख्या मुज़ारों की थी। रूस की खेती का दस में से नौ भाग भूमि या तो राजा की थी या शाही परिवार अथवा अन्य लगभग १ लाख शाही परिवारों की थी। मुज़ारे इस भूमि पर काम करते थे और जन्मस्थान को बिना अपने स्वामी की आज्ञा के छोड़ नहीं सकते थे। जागीरों के बिकने के साथ साथ मुज़ारे भी बिक जाया करते थे। मुज़ारे अपने अपने स्वामी को कर देते शारीरिक परिश्रम करते और उनके प्रति स्वामि भक्ति रखते थे। कभी-कभी जागीरदार अपने मुज़ारों को नगरों में कमाने के लिए भेज देते थे और उनकी मजदूरी का

कुछ भाग जागीरदार को मिलता था। कभी मुजारों को घरेलू नौकरों का काम करना पड़ता था। अतः कभी-कभी उनकी अवस्था गुलामों जैसी हो जाया करती थी। बहुत कम जागीरदार उदार और कृपालु होते थे। अधिकांश अत्याचारी ही होते थे। मुजारे गरीब, निरक्षर और अस्वस्थ रहा करते थे। उनकी अवस्था बड़ी दयनीय थी।

एलेग्जेण्डर ने अपनी आज्ञा शाही जागीरों में काम करने वाले मुजारों को मुक्त करके लागू की थी। यद्यपि स्वार्थी जागीरदारों ने विरोध भी किया किन्तु जार ने मार्च, १८६१ में एक राजाज्ञा द्वारा सारे रूसी साम्राज्य में मुजारदारी समाप्त कर दी थी। मुजारों पर जागीरदारों के सारे अधिकार समाप्त कर दिए गए। वे इच्छानुसार कहीं भी जा सकते थे। इस प्रकार की व्यवस्था की गई कि मुजारेदारी की अवस्था में जितनी धरती पर वे लोग खेती करते थे उससे आधी धरती उन्हें खेती के लिए मिल जाए। धरती को सरकार खरीद कर किसानों को ४९ वार्षिक किश्तों पर देती थी। किन्तु खेती की धरती किसानों को व्यक्तिगत रूप में नहीं अपितु ग्रामों की मीर (पचायतों) को दी गई थी। मीरों को किसानों से राजस्व और किश्तें उगाहने का काम सौंपा गया। मुजारों की मुक्ति जार का महान मानव हित का कार्य था। यदि रूस प्रगति करना चाहता था तो मुजारदारी चल नहीं सकती थी। मुजारेदारी की समाप्ति के कारण बहुत से लोग रूस के कारखानों में काम करने लगे थे। इस प्रकार देश के उद्योगीकरण को भी प्रोत्साहन मिला था। खेती की भूमि में बढ़ोत्तरी हुई और उपज भी बढ़ गई। धरती की कीमत भी बढ़ गई। राज्य को करों से अधिक आय होने लगी। माल विदेशों में भेजा जाने लगा। किसानों की हालत भी सुधर गई।

मुजारेदारी की समाप्ति केवल वरदान ही नहीं थी। अनेक किसानों की हालत पहले से भी खराब हो गई। उन्हें दी गई धरती इतनी थोड़ी थी कि उनका जीवन यापन भी कठिन था। राज्य को दी जाने वाली किश्तों का भार भी उन पर बहुत था। जागीरदारों के अत्याचार समाप्त हुए तो मीर के अत्याचार सहन करने पड़ते थे। उन्हें कर उगाहने वाले और केन्द्रीय सरकार की पुलिस तंग करती थी। राज्य के अधिकारियों का बर्ताव कठोर था। आलोचक कहते हैं कि जार ने किसानों को जागीरदारों की मुजारदारी से मुक्त करके राज्य के मुजारेदार बना दिया था।

न्यायिक सुधार (Judicial Reforms)—१८६२ में न्याय प्रणाली में भी कुछ सुधार किए गए। दीवानी और फौजदारी के मुकद्दमों को नामकों से हटा कर पाश्चात्य प्रणाली पर बनाए गए न्यायालयों को सौंप दिया गया। न्यायाधीशों का चुनाव जनता को सौंप दिया गया। जिला और प्रान्तों में भी न्यायाधीश नियुक्त किए गए। सीनेट को सर्वोच्च न्यायालय बना दिया गया। दण्ड ने कानूनों की महिमा बनाने की आज्ञा दी गई। राज्य की ओर से भी वकील नियुक्त किए गए। फौजदारी मुकद्दमों का न्याय करने के लिए जूरी प्रणाली अपनाई गई। मुकद्दमे गुप्त रूप से न होकर खुली अदालतों में किए जाने लगे थे। केवल राजनैतिक अपराधों के विषय

म भाई व्यवस्था नहा हुई थी। अपराधियो का अब भी बिना मुकदमे के दण्ड दिया जाता था।

जम्स्टवोस (Zemstvos)—१८६४ की एक राजाज्ञा के अनुसार रूस को ३४ प्रशासनिक प्रान्तो म बाँट कर घोषणा की गई कि प्रत्येक प्रान्त म एक सभा अर्थात् जम्स्टवास होगी। इसम जागीदारो किसानो और नागरिको के प्रतिनिधि होंगे। इसका काय सार्वजनिक निर्माण चच स्कूल, जलखानों, जन-स्वास्थ्य और गरीबों की सहायता इत्यादि की व्यवस्था करना होगा। इसे कर लगान का अधिकार दिया गया। प्रान्तो के राज्यपालो को जम्स्टवास के निणयो को रद्द करने का अधिकार दिया गया। यद्यपि इन सभाओ का काय क्षेत्र और अधिकार सीमित थे ये सभाए जनता के लिए राजनीतिक शिक्षा प्राप्त करने के स्थान थ। यह स्वायत्त शासन और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा म महत्त्वपूर्ण कदम था।

पोलण्ड का विद्रोह (१८६३) (Polish Revolt of 1863)—१८६३ म जार की सुधार नीति को बडा धक्का पहुँचा। इस वष पोलण्ड की जनता ने रूस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उन्हे नेपोलियन तृतीय तथा यूरोप के अन्य देशो से सहायता की आशा थी। किसी भी देश स सहायता न मिलने तथा अपने साधन पर्याप्त न होने के कारण उनके विद्रोह को बडी कठोरता से दमन कर दिया गया। बिस्मार्क ने रूस को सहायता देने के लिए कहा किन्तु उसने अपना काम बिना किसी की सहायता के ही कर लिया था। विद्रोहियो तथा सन्देहास्पद व्यक्तियो को बडे कठोर दण्ड दिए गए। स्कूलो और विश्वविद्यालयो म पोलिश भाषा की शिक्षा बन्द कर दी गई। पोलण्ड के अधिकारियो को पदच्युत करके रूसी अधिकारी नियुक्त कर दिए गए। पोलण्ड निवासियो को सारे अधिकारो से वंचित कर दिया गया। पोलण्ड का रोमन कथोलिक चच जो देशवासियो की धार्मिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता था उससे सारी सुविधाए छीन ली गइ। विद्रोही जागीरदारो को बुरी तरह कुचल दिया गया। पोलण्ड के विद्रोह ने एलेक्जेण्डर द्वितीय को पूरी तरह प्रतिक्रियावादी बना दिया और वह जीवन भर कट्टर बना रहा। समाचारपत्रो पर कडा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। गुप्तचर पुलिस की संख्या बढा दी गई और शिक्षा को हतोत्साहित किया जाने लगा।

पोलण्ड क विद्रोह के ध्वसावशेषो पर बिस्मार्क के महान् काय के भवन तथा जार के साम्राज्य म रूसीकरण के काय का निर्माण हुआ। इसका आशय यह था कि पोलण्ड के विद्रोह के कारण बिस्मार्क रूस को अपना सहयोगी बना सका था। यह उसने रूस को पोलण्ड के विरुद्ध सहायता देकर किया था। इस उपयुक्त अवसर पर सहायता देकर बिस्मार्क १८६६ और १८७० म क्रमश आस्ट्रिया और फ्रास के विरुद्ध युद्धो क मौको पर रूस के तटस्थ रहने पर विश्वास कर सकता था। पोलण्ड के विद्रोह ने जार को सुधारवाद का कट्टर शत्रु बना दिया था। वह केवल प्रतिक्रियावादी ही नहीं बना अपितु उसने रूसी साम्राज्य म अल्पमत जातियो म रूसीकरण

राष्ट्रीयता की भावना को कुचल देना तथा उन्हें रूस में आत्मसात कर लेना था।

विदेश नीति (Foreign Policy)—रूस की विदेश नीति क्रीमिया युद्ध के समय तक बताई जा चुकी है। १८६५ में एलेग्जेण्डर ने क्रीट के यूनानियों को तुर्की के विरुद्ध विद्रोह करके ग्रीस के एकीकरण की माग करने को कहा था। १८७० में उसने बलगार जाति को कुस्तुन्तुनिया के प्राचीन चर्च से पृथक एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय प्राचीन चर्च की स्थापना करने के लिए उकसाया था। १८७० में एलेग्जेण्डर द्वितीय पेरिस सन्धि की कालासागर सम्बन्धी धाराओं को भंग करने में समर्थ हुआ। उसने सेबस्टोपाल (Sebastopol) की मोर्चेबन्दी करके कालासागर में अपना बेड़ा खड़ा कर दिया था।

बलकान प्रदेश के ईसाइयों पर तुर्की का राज्य बड़ा दमनपूर्ण था। इसके कारण बोसनिया और हर्जीगाविना में विद्रोह हुए थे। १८७५ में बलगेरिया में विद्रोह हुआ। इन विद्रोहों को इतनी कठोरता और अत्याचार से दबाया गया कि चारों ओर से यह माँग होने लगी कि बलकान से तुर्की को आमूल उखाड़ कर फेंक दिया जाए। यद्यपि ब्रिटेन ने बलकान में क्रिश्चियनों की सहायता नहीं की थी तथापि रूस ने उनकी सहायता की थी और इसके कारण १८७७-७८ में रूस और तुर्की में युद्ध छिड़ गया। थोड़े समय मुकाबला करने के बाद तुर्की हार गया और उसे रूस से १८७८ में सान स्टीफनो (San Stefano) की सन्धि करनी पड़ी। विशाल बलगेरिया का निर्माण हुआ। सुलतान को बोसनिया और हर्जीगाविना में सुधार करने पड़े। जार को विशाल युद्ध-क्षतिपूर्ति के साथ आर्मीनिया (Armenia) का थोड़ा-सा भाग तथा डाब्रुजा (Dobrudja) का भाग भी मिला।

सान स्टीफनो की सन्धि को अन्य यूरोपीय शक्तियों ने नहीं माना। ब्रिटेन और आस्ट्रिया तो रूस से युद्ध करने पर उतारू हो गए और कहा कि इस सन्धि को यूरोपीय शक्तियों के एक सम्मेलन के विचारार्थ रखा जाए। रूस युद्ध से श्रान्त था इसलिए मान गया। परिणामतः बर्लिन सन्धि के अनुसार बलगेरिया को दो भागों में बाँट दिया गया और रूस को उसके द्वारा प्राप्त सारे लाभों से वंचित कर दिया गया।

रूस के उदारवादियों ने एलेग्जेण्डर (Alexander) द्वितीय की नीति का समर्थन नहीं किया और देश भर में इसके विरुद्ध प्रचार करते रहे। परिणामतः अनेक गुप्त राजनैतिक दल बन गए। देश के उद्योगीकरण के कारण भी देश में बहुत असन्तोष फैला। इसका परिणाम यह हुआ कि क्रान्तिकारियों द्वारा फेंके गए एक बम से १८८१ में एलेग्जेण्डर की मृत्यु हो गई।

Suggested Readings

Beazley	*Russia from the Varangians to the Bolsheviks*
Rose	*Development of European Nations*
Skrine	*Expansion of Russia.*
Wallace	*Russia.*

अध्याय १६

पूर्व का प्रश्न

(The Eastern Question)

मिल्लर के मतानुसार पूर्व के प्रश्न की परिभाषा यूरोप में तुर्कों के साम्राज्य के लुप्त हो जाने के कारण उत्पन्न हुए शून्य की पूर्ति की समस्या कहा जा सकता है। जब तुर्क अपनी सत्ता के चरम शिखर पर थे, वे बलकान एशिया माइनर सीरिया मेसापोटामिया अरब मिस्र और अफ्रीका के लगभग सारे उत्तरी समुद्री तट पर शासन करते थे। किन्तु तुर्की साम्राज्य का शनैः शनैः पतन होने लगा। १६६६ की कार्लोविट्ज़ की संधि को ठीक ही ओटोमान साम्राज्य का प्रथम अंग भंग कहा जाता है। यह इतिहास के उस क्रम का प्रथम चरण था जो दो शताब्दियों से भी अधिक काल तक चलता रहा। यह सत्य है कि कुछ अवसरों पर तुर्कों को कुछ अस्थायी रूप से लाभ हुआ किन्तु वास्तविक रूप से छिन्न भिन्न होने का क्रम निरन्तर चलता रहा और अंत में बलकान और उत्तरी अफ्रीका में ओटोमान साम्राज्य पूर्णतः समाप्त हो गया। जहाँ तक बलकान राज्यों का सम्बन्ध है वहाँ बहुत सी ईसाई जातियाँ थी यथा सब बल्गारियन ग्रीक और रूमानियन इत्यादि। तुर्कों का शासन बड़ा अत्याचारी था और कभी-कभी ईसाइयों की सामूहिक हत्याएं कर दी जाती थीं। शासित जातियों को तुर्कों की सैन्य-शक्ति के ह्रास तथा कुछ राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत होने के कारण अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रोत्साहन मिला। रूस उनका सहायक था और कभी-कभी अन्य शक्तियों से यथा फ्रांस और इंग्लैण्ड से भी सहायता मिलती रहती थी। लार्ड मार्ले ने पूर्व के प्रश्न को एक अस्थिर तथा बुरी तरह विरोधी स्वार्थों का उलझा हुआ गोरखधन्धा बताया है जिसमें वैमनस्य रखने वाले धार्मिक विश्वास और ईर्ष्या करने वाली जातियाँ उलझी हुई थीं। यह प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक बार प्रकाश में आया और इन अवसरों को पूर्व के प्रश्न के विभिन्न पहलू कहा जा सकता है।

ओटोमान साम्राज्य के पतन का इतिहास १६६६ में आस्ट्रिया द्वारा हंगरी को हथिया लेने के समय में आरम्भ होता है।

सर्बिया (Serbia)— सर्ब जाति ने तुर्कों के शासन के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊँचा उठाया। उन्होंने काराजार्ज नाम के जन्म से किसान व्यक्ति के नेतृत्व में १८०४ में अपना संघर्ष आरम्भ किया। रूस ने १८१२ तक इस आन्दोलन का समर्थन किया था। किन्तु नपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण कर देने के कारण ज़ार को

तुर्की म १८१२ में संधि करनी पडी थी। तुर्कों ने अवसर से लाभ उठाकर पुन सर्बिया पर अपना अधिकार जमा लिया। किन्तु मिलाश ओब्रेनोविच के नेतृत्व में पुन विद्रोह हुआ और सुलतान ने १८२० में ओब्रेनोविच को सर्बिया की जनता का शिरोमणि मान लिया। ओब्रेनोविच ने रूस की सहायता से सर्बिया की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष चालू रखा। १८३० के प्रारम्भ होने तक सर्बिया और तुर्की के संबंध केवल नाममात्र के रह गए थे। सर्बिया पर ओब्रेनोविच वंश के सामन्त वंशक्रमानुगत परिपाटी के अनुसार शासन करते रहे।

ग्रीक स्वातन्त्र्य युद्ध (Greek War of Independence)—इसके पश्चात



तुर्की से विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाने वाले ग्रीक थे। उन पर बहुत भारी कर लगाए गए और अन्य प्रकार से भी उन पर बड़ा अत्याचार होता था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ग्रीक जाति में राष्ट्रीयता की भावना पुनः जाग्रत हुई। प्राचीन ग्रीक साहित्य का उत्थान हुआ और प्राचीन साहित्यिक ग्रीक भाषा को जनसाधारण द्वारा बोली जाने वाली अपभ्रंश भाषा के स्थान पर पुनः प्रयोग पर लाने का प्रयत्न किया गया। पूर्व पुरुषों के प्राचीन यश ने उन्हें प्रोत्साहन और आशा की प्रेरणा दी तथा उनमें स्वतन्त्रता प्राप्त करने की उग्र भावना को उत्पन्न किया। १८१४ में ओडिस्सा के ग्रीकों ने 'हिटेरिया फिलाइक' (Hetairia Philike) नाम की एक गुप्त संस्था बनाई। इसका उद्देश्य ग्रीस से तुर्कों को निकाल कर देश की स्वतन्त्रता की स्थापना करना था। कालान्तर में यह संस्था जनप्रिय तथा शक्तिशाली बन गई।

राजकुमार एलेग्जेण्डर हेप्सीलान्टे (Alexander Hypsilanti) के नेतृत्व में १८२१ में ग्रीकों ने विद्रोह किया। एलेग्जेण्डर बड़ी कठिनाई में फँस गया था। ग्रीक चर्च के संरक्षक, दलित जातियों के समर्थक तथा तुर्कों के परम्परागत वंशानुगत शत्रु होने के नाते उसका ग्रीकों की ओर से हस्तक्षेप करना स्वाभाविक था। दूसरी ओर एलेग्जेण्डर संसार भर के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का घोर शत्रु था। इसी समय रूस का भी तुर्की से झगड़ा था और वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ग्रीकों के विद्रोह से लाभ उठाना चाहता था किन्तु ज़ार के रुख का निर्णय मेटरनिक ने किया क्योंकि उसका ज़ार पर पूरा नियन्त्रण था। मेटरनिक का निजी रुख यह था कि सभ्यता के उपाकाल से पहले ही इस विद्रोह की अग्नि को जलकर स्वयं ही राख हो जाने दिया जाए। ज़ार ने हेप्सीलान्टे के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई और उसे तुरन्त रूस लौट आने की आज्ञा दे दी। उसने विद्रोहियों को आज्ञा दी कि वे सुलतान के आगे आत्मसमर्पण कर दें अन्यथा उन्हें उसका कोपभाजन बनना पड़ेगा। ज़ार के "व्यवहार ने हेप्सीलान्टे के भाग्य का निर्णय कर दिया"। वह पराजित हुआ और सारा जीवन उसे बन्दीगृह में ही बिताना पड़ा।

१८२१ में ही ग्रीकों ने मोरिया (Morea) में विद्रोह किया था। कुस्तुनतुनिया के प्रमुख पादरी की और ग्रीक ईसाइयों की हत्या हो जाने के कारण रूस उत्तेजित था। डर था कि वह तुर्की पर एकदम आक्रमण कर देगा। इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया ने तुर्की में रूस के हस्तक्षेप का बचाव कर दिया। कुछ समय तक कैनिंग और मेटरनिक सिद्धान्त रूप में सहमत रहे। ग्रीकों और तुर्कों का परस्पर संघर्ष किसी अन्य देश से सम्बन्धित नहीं था इसलिए महान् शक्तियों का यह कर्त्तव्य था कि वे इस मैदान में किसी अन्य शक्ति को न आने दें और हस्तक्षेप न करने दें। कैनिंग का विचार था कि यदि रूस को ग्रास में हस्तक्षेप करने दिया गया तो ग्रीस उसका प्रथम ग्रास और दूसरा ग्रास तुर्की होगा। १८२० से १८२५ की अवधि में यही स्थिति बनी रही। ग्रीक और तुर्क दोनों ही निर्दयता में समान थे। बायरन और कैनिंग, दोनों का ग्रीकों के प्रति मित्र भाव था और उनका उद्देश्य था कि

किसी प्रकार तुर्की ग्रीका से सुलह कर ले जिससे कि जार इस कठिन समय में अपना स्वार्थ पूरा न कर सके। कहा जाता है कि मोरिया युद्ध मुसलमानों का युद्ध था। ग्रीकों का नारा था 'तुर्कों का अब मोरिया अथवा सारी पृथ्वी पर जीवित नहीं रहना चाहिए।' थिस्साले मेसिडोनिया, एशिया माइनर और चिओस में ईसाइयों की सामूहिक हत्याएं की गई थी। एक बार जार ने तुर्कों को चुनौती भी दी थी और ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध अवश्यम्भावी है।

किन्तु ग्रीक स्वातन्त्र्य युद्ध मे एक भारी परिवर्तन आया। तुर्की के सुलतान ने मिस्र के पाशा मेहमतअली से सहायता मांगी। मेहमतअली ने एक विशाल स्थल सेना तथा समुद्री बेडा अपने पुत्र इब्राहीम के नेतृत्व में भेज दिया। १८२४ में इब्राहीम ने क्रीट को विजय करके नष्ट कर दिया और १८२५ में मोरिया में आकर उतरा। इब्राहीम चारों ओर विनाश और हत्याएँ करता हुआ मोरिया के भाग से होता हुआ आगे बढ़ा। इस युद्ध मे लार्ड बायरन की भी मृत्यु हुई।

रूस में भी स्थिति बदल गई। जार एलेग्जेण्डर जो पूर्णत मेटरनिक के नियन्त्रण में था १८२५ में मर गया। उसका उत्तराधिकारी निकलस प्रथम एक बिलकुल भिन्न विचारधारा और शिक्षा वाला व्यक्ति था। वह मेटरनिक के प्रभाव में नहीं था इसलिए स्वतन्त्र नीति का अनुसरण करने में पूर्णत स्वतन्त्र था। कहा जाता है कि यद्यपि वह ग्रीकों की विशेष परवाह नहीं करता था किन्तु वह सुलतान का रूस के साथ मनमाना उद्दण्ड व्यवहार करने देने के लिए भी तैयार नहीं था।

इस अवसर पर इंग्लण्ड के विदेश मन्त्री कैनिंग ने ड्यूक आफ वेलिंगटन को एक विशेष राजदूत के रूप में पीटर्सबर्ग भेजा। अप्रैल १८२६ में ब्रिटेन और रूस में एक समझौता हुआ और दोनों देशों ने तुर्की को अपनी संयुक्त मध्यस्थता का प्रस्ताव भेजा। इसके अनुसार यह योजना बनाई गई कि ग्रीस तुर्की को कर देगा किन्तु वास्तविक रूप से स्वतन्त्र रहेगा।

जार निकलस ने सुलतान को चुनौती भेजी और सुलतान ने उन्हें प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करके जार को भेज दिया। सुलतान ने आपीरा को छोड़ने, सर्बिया को कुछ विशेष छूटें देने तथा हर मामले में जार की इच्छानुसार कार्य करने की प्रतिज्ञा की। किन्तु इसमें ग्रीस की कोई चर्चा नहीं थी। सुलतान इस विषय में इस बात पर पक्के रहने के लिए तैयार हुआ कि उसके साथ शक्ति का प्रयोग नहीं किया जायगा। जुलाई, १८२७ में ब्रिटेन, फ्रांस और रूस में लन्दन सन्धि हुई। तीनों देश इस बात पर सहमत हुए कि यदि तुर्की युद्ध को बन्द करने के लिए तैयार न हो तो शक्ति का प्रयोग किया जाए। ग्रीकों का रक्षात्मक युद्ध दुर्बल होता जा रहा था और १८२७ में एथेन्स के पतन के पश्चात उनकी पराजय की पूरी आशंका हो गई थी। यह भी अफवाह थी कि इब्राहीम युद्ध में पकड़े गए सारे ग्रीकों को दास बनाकर एशिया या अफ्रीका में भेज देगा। अगस्त १८२७ में ग्रीस ने तीनों शक्तियों की मध्यस्थता स्वीकार की थी। तुर्की अपने को मजबूत समझता था अतः उसने इसे स्वीकार नहीं किया।

जलसेना के सेनापति कॉडिंगटन को आदेश दिया गया कि वह 'ग्रीस के विरुद्ध सेना अथवा शस्त्र ले जाने वाले मिस्री जहाजों को बिना युद्ध किए ही मार्ग में ही रोक ले। ब्रिटेन और फ्रांस के जलसेना के सेनापतियों ने इब्राहीम को सूचना दी कि उसके एक भी जहाज को नवारिनो की बन्दरगाह के भाग से नहीं जाने दिया जाएगा। इब्राहीम ने क्रोध में भरकर मोरिया के बचे हुए आत्मसीन नागरिकों की हत्या करने का प्रयत्न किया। सेनापतियों ने इब्राहीम को विरोधपत्र भेजा और उत्तर में तुर्कों ने ब्रिटिश बेड़े पर गोलाबारी आरम्भ कर दी। नवारिनो की लड़ाई २० अक्टूबर १८२७ को आरम्भ हुई। सूर्यास्त से पहले तुर्की और मिस्र के सारे जहाज लुप्त हो गए और नवारिनो की खाड़ी उनके खण्डों से भर गई थी। नवारिनो की लड़ाई इस युद्ध की सबसे अधिक निर्णायक लड़ाई थी और इसका अन्तिम परिणाम ग्रीकों की स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेना था। किन्तु नवारिनो के विजेताओं को उनकी सफलता का कोई श्रेय नहीं मिला। कैनिंग की अगस्त, १८२७ में ही मृत्यु हो गई थी और उसके उत्तराधिकारी वेलिंगटन ने इस अप्रत्याशित घटना के लिए खेद प्रगट किया था।

ब्रिटेन ने युद्ध छोड़ दिया और फ्रांस ने भी उसका अनुसरण किया। तुर्की बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने ग्रीकों से अपने तरीकों से निपटने का निर्णय किया। इन परिस्थितियों में ज़ार का तुर्की के विरुद्ध की गई घोषणा करना आश्चर्यजनक कार्य नहीं था। ज़ार ने प्रुथ (Pruth) पार करके डारडेनीलिस पर अधिकार कर लिया। रूस का जहाजी बेड़ा भी डारडेनीलिस में घुस आया। रूस के इस कार्य से कैसलरे और कैनिंग के प्रयत्न विफल होते प्रतीत हो रहे थे क्योंकि इन्होंने बलकान में रूस के प्रभाव को रोकने का भरसक प्रयत्न किया था। एक ओर ग्रीक तुर्की की दया पर थे और दूसरी ओर ज़ार से तुर्की की स्वतन्त्रता को खतरा उत्पन्न हो गया था। रूस का बड़ा प्रतिरोध हुआ किंतु वे रूस से जीत नहीं सकते थे। सितम्बर १८२९ में रूस और तुर्की की संधि हो गई।

इंगलैण्ड और फ्रांस मेहमतअली और इब्राहीम से परामर्श करके उनकी सेनाएँ मोरिया से हटाने में सफल हुए। तुर्की की सेना के चले जाने के पश्चात् फ्रांस ने वहाँ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। लन्दन में हुए समझौते के अनुसार मोरिया और ग्रीस को अन्य शक्तियों के संरक्षण में रख दिया गया। निर्णय हुआ कि ग्रीस को स्वशासित बना दिया जाए किन्तु उसे शक्तियों द्वारा निर्वाचित किसी राजा का कर दाता राज्य बनना पड़ेगा। नए राज्यों की सीमाओं की व्याख्या भी कर दी गई। यह व्यवस्था १८२९ की एड्रियानोपल की सन्धि द्वारा स्थायी बना दी गई। इस प्रकार ग्रीस की स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई।

फ्रांस और इंगलैण्ड को भय था कि ग्रीस रूस का अधिकृत राज्य बन जाएगा। इसलिए वेलिंगटन ने इसको दो टुकड़ों में विभाजित कर देना चाहा जिससे यह अत्यन्त छोटा और शक्तिहीन रहे। एबरडीन ने इनसे भी आगे बढ़ कर ग्रीस को तीन टुकड़ों में विभाजित करने का प्रस्ताव किया था। किन्तु वेलिंगटन और एबरडीन को पच्युत

कर दिया गया और इनके उत्तराधिकारी पामर्स्टन और ग्रे ने इनसे भिन्न नीति का अनुसरण किया। १८३२ में ग्रीस की सीमाएँ बढ़ा दी गई। ग्रीस को स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया तथा उसे ऋण देने का और राजा चुनने का आश्वासन भी दिया गया। रूस, इंग्लैण्ड और फ्रांस ने ग्रीस की स्वतन्त्रता को मान्यता दी। ग्रीस रूस के प्रभाव से मुक्त हो गया।

यह ध्यान रखने योग्य है कि ग्रीकों के प्रयत्नों के प्रति फ्रांस में बहुत सहानुभूति थी और फ्रांस की जनता ने उनकी बहुत कुछ सहायता भी की थी। आस्ट्रिया में मेटरनिक का विचार था कि ग्रीक विद्रोही हैं और इसलिए उन्हें उनके भाग्य पर छोड़ देना चाहिए। ग्रीकों का विरोध एक रोग है। आस्ट्रिया को इसकी छूत से बचे रहना चाहिए। यद्यपि मेटरनिक ने आरम्भ में रूस को रोक लिया किन्तु रूस ने अपना कार्य पूरा किया और १८२८ के पश्चात् वह अकेला ही लड़ता रहा। प्रशिया ने आस्ट्रिया का अनुगमन किया था। इंग्लैण्ड की ग्रीकों के उद्देश्य से पूरी सहानुभूति थी। ग्रीकों को यूरोपीय सभ्यता का जन्मदाता माना जाता था और उन्हें यथासम्भव सहायता भी दी गई थी। स्वयं कैनिंग एक ग्रीक विद्वान् था। फिशर के मतानुसार 'उस समय इंग्लैण्ड के उच्चवर्गीय नागरिकों में कोई भावना नहीं थी। वे इंग्लिश राष्ट्रीयता का उपभोग करते थे। उन्होंने आयरलैण्ड की राष्ट्रीयता की भावना का दमन कर दिया था। भारतीय राष्ट्रवाद उस समय एक दूर भविष्य की बात थी। शिक्षा ने उन्हें नागर बना दिया था, सामाजिक जीवन ने उन्हें संसदीय प्रणाली का विद्वान् बना दिया था, इसलिए एक छोटी-सी जाति के स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष के प्रति उनकी सहानुभूति एक मनोरंजन से अधिक कुछ नहीं थी। जब मिस्सोलोंघी में लार्ड बायरन की मृत्यु ग्रीस की सहायता करते समय हुई, तो ग्रीस के प्रति इंग्लैण्ड के नागरिकों में एक महानुभूति का ज्वार आ गया और यह भावना जनसाधारण में फैल गई। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में युवकों को जिस प्राचीन ग्रीस की वीरता के विषय में बताया जाता था और जिसका वे लोग अत्यन्त भक्ति से अध्ययन करते थे, उसके विषय में कोई भी यह नहीं पूछता था कि अब उस यश का कितना अंश ग्रीस के ग्वालों, दुस्साहसी व्यक्तियों तथा इसके समुद्री लुटेरों में शेष रह गया है। ग्रीस का नाममात्र ही पवित्र बन गया था। यद्यपि तुर्की अभी भी औपचारिक रूप से मित्र था और पूर्व में रूस की चालों के लिए एक रोक का कार्य करता था तथापि इंग्लैण्ड की साधारण जनता जार्ज कैनिंग की समर्थक थी, जब उसने ग्रीक विद्रोहियों को देशभक्त मानकर फ्रांस और रूस से सहयोग करके इसे सर्वनाश से बचाने का प्रयत्न किया था।

मेहमतअली और पोर्ट (Mehmet Ali and Porte)—महमतअली अल्बानिया का एक दुस्साहसी निवासी था। यह अपने प्रयत्नों से उन्नति करके मिस्र का राज्यपाल बन गया था। यद्यपि वह असभ्य और अशिक्षित था तो भी उसे पाश्चात्य सभ्यता के गुणों की परख थी। यद्यपि वह नाममात्र को पोर्ट के प्रति स्वामिभक्ति रखता था तो भी उसने प्रशासनिक विशेषज्ञों की नियुक्त करके **मिस्र को** एक मर्यादियानी तथा शक्तिशाली राज्य बना दिया था। १८२४ में

मेहमतअली की मिस्री सेना ने लगभग सारे ग्रीस पर पुनः विजय प्राप्त कर ली थी। रूस, ब्रिटेन और फ्रांस के हस्तक्षेप के बिना ग्रीस सदा के लिए पूर्णतः नष्ट हो गया होता। ग्रीस के स्वातन्त्र्य-युद्ध के पश्चात तुर्की ने उसकी सहायता के बदले पुरस्कार रूप में क्रीट का द्वीप मेहमतअली को दे दिया। उसने इस पुरस्कार को अपर्याप्त समझा। वह तुर्की की कमजोरियों से भी परिचित हो चुका था। अब उसका विचार पोर्टे के आधिपत्य से स्वतन्त्र हो जाने का हुआ और वह इसके लिए उचित बहाने की खोज करने लगा। १८३२ में उसके पुत्र इब्राहीम ने सीरिया पर आक्रमण किया और वहां से एशिया माइनर की ओर बढ़ने लगा। तुर्की हार गया और आक्रान्ता के लिए कुस्तुनतुनिया का मार्ग खुल गया।

सुलतान महमूद द्वितीय ने यूरोपीय शक्तियों से सहायता की याचना की। उसने ब्रिटेन से अपील की किन्तु वह उस समय बेल्जियम के झगड़े में व्यस्त था। उसने फ्रांस से अपील की किन्तु वहां जनमत मेहमतअली के प्रति सहानुभूति रखता था। हताश होकर सुलतान को रूसी सहायता का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। सुलतान ने आरम्भ में घोषणा की थी कि जो भी उसे मेहमतअली का सिर काट कर ला देगा वह उसे कुस्तुनतुनिया और अपना साम्राज्य दे देगा किन्तु अब रूस की सहायता लेने के पश्चात उसे अनुभव हुआ कि उसे वास्तव में अपना वचन पूरा करना पड़ेगा। रूस की सरकार तुरन्त ही सहायता के लिए तैयार हो गई। रूस का जहाजी बेड़ा बासफोरस पहुँच गया और रूस की सेना ने एशिया के तट पर पड़ाव डाल दिया। कुस्तुनतुनिया के निकट एक स्थान पर रूस के पाँच हजार सैनिकों ने छावनी डाल दी।

मेहमतअली के झगड़े के आरम्भ होने के क्षण से ही फ्रांस को रूस के हस्तक्षेप का डर हो गया था। फ्रांस को मेहमतअली से विशेष लगाव था और वह उसे अपना समझता था। फ्रांस की सरकार ने मेहमतअली को युद्ध करने से रोका था। युद्ध आरम्भ हो जाने पर फ्रांस ने एक शिष्ट-मण्डल इस दृष्टि से कुस्तुनतुनिया भेजा कि वह रूस का इस मामले में हस्तक्षेप करने से रोके। किन्तु फ्रांस सफल नहीं हुआ। ब्रिटेन और आस्ट्रिया सफल हुए थे। उन्होंने सुलतान को मना लिया कि वह सीरिया और अदन मेहमतअली को दे दे (१८३३)। इस प्रकार मिस्र के झगड़े की समाप्ति हुई और रूस पीछे हट गया।

अनकियार स्केलेसी की संधि (Treaty of Unkiar Skelessi)—रूस ने पीछे हटने से पहले तुर्की से एक संधि की थी। १८३३ की रूस और तुर्की की संधि एक सुरक्षात्मक संधि थी। यह संधि आठ वर्ष के लिए की गई थी। रूस ने तुर्की को संकट काल में सहायता देने का वचन दिया। इस संधि में यह व्यवस्था भी की गई थी कि यदि रूस का अन्य किसी यूरोपीय शक्ति से युद्ध हो जाए तो तुर्की डारडनेलिस (Dardanelles) की बन्दरगाह को बन्द करके काला सागर की ओर से रूस को सुरक्षित कर देगा। रूस का जहाजी बेड़ा डारडेनलिस के मार्ग से भूमध्यमहासागर में जाने तथा अपनी इच्छानुसार सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए स्वतन्त्र

होगा। इस व्यवस्था का आशय रूस द्वारा तुर्की की विदेश नीति पर नियन्त्रण रखना था। इससे तुर्की एक प्रकार का संरक्षित देश बन गया। निकोलस ने विजय और विभाजन की नीति छोड कर घुसपैठ और नियन्त्रण की नीति अपनाई थी।

अनक्यार स्कलसी की संधि व्यवस्था को इंग्लैण्ड और फ्रांस सहन नहीं कर सकते थे। जार ने किसी प्रकार आस्ट्रिया और प्रशिया की सहमति प्राप्त कर ली थी। यद्यपि जार ने मेटरनिक को आश्वासन दिया था कि वह आस्ट्रिया की मध्यस्थता को स्वीकार किए बिना संधि की व्यवस्था का प्रयोग नहीं करेगा तथापि यह संधि यूरोप के लिए खतरा बनी रही। कई महीनों तक युद्ध का वातावरण छाया रहा। ब्रिटेन भी रूस से उतना ही पीड़ित था जितना तुर्की क्योंकि पार्टे द्वारा रूसी बेड़े का मार्ग देना १८०६ की तुर्की इंग्लैण्ड की संधि के विरुद्ध था। पामर्स्टन ने संधि के विरुद्ध एक औपचारिक विरोध पत्र भेजा था। इंग्लैण्ड का जनमत इस विषय पर अत्यन्त उत्तेजित था। यदि इंग्लैण्ड की सरकार ने कड़ी कार्यवाही की होती तो उसे पर्याप्त समर्थन भी मिल जाता। किन्तु पामर्स्टन ने बड़ी सावधानी से काम किया।

इस सावधानी का मुख्य कारण यह था कि पामर्स्टन को फ्रांस की सरकार के रुख के विषय में विश्वास नहीं था। फ्रांस ने तुर्की में रूस का विरोध करने के प्रश्न पर इंग्लैण्ड से भले ही सहयोग कर लिया होता किन्तु स्पेन के विषय में वह इंग्लैण्ड का विरोधी था इसलिए इंग्लैण्ड को अविश्वास था। १८३४ में पामर्स्टन ने स्पेन और पुर्तगाल की सरकारों से संधि की और फ्रांस भी इस संधि में सम्मिलित हो गया। यह चतुर्मुखी संधि २२ अप्रैल १८३४ को हुई। यह एक बड़ी कूटनीतिक सफलता थी। पामर्स्टन ने इसे 'अपने सारे कार्यों में सबसे अधिक श्रेष्ठ कार्य' कहा था। इस प्रसिद्ध संधि ने पामर्स्टन का थोड़ा सा संकोच भी समाप्त कर दिया और अब वह तुर्की और रूस के प्रश्न को दृढ़ता से सुलझा सकता था। दुर्भाग्य से मेलबार्न मंत्रिमण्डल, जिसका पामर्स्टन सदस्य था नवम्बर १८३४ में समाप्त हो गया किन्तु ड्यूक ऑफ वेलिंगटन ने उसकी नीति का अनुसरण किया। १८३५ में पामर्स्टन पुन: पदासीन हुआ। उसका विचार था कि युद्ध में रूस सरलता से हराया जा सकेगा। उसने टेम्पल को लिखा था 'तथ्य यह है कि रूस धोखेबाज है। यदि इंग्लैण्ड ने रूस से युद्ध किया तो हम युद्ध में रूस को पचास वर्ष पीछे धकेल देंगे।' किन्तु वास्तव में युद्ध का इच्छुक कोई भी नहीं था। रूस ने कुस्तुनतुनिया में अपना प्रभाव नहीं जमाया, शान्ति बनी रही और चार वर्ष के लिए युद्ध टल गया।

१८३६ में फ्रांस के मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन हुआ। थीयर्स प्रधान मन्त्री बना। यद्यपि पार्टे के विचार से थीयर्स इंग्लैण्ड के प्रति मैत्री भाव रखता था किन्तु उसका झुकाव केन्द्रीय शक्तियों की ओर अधिक था। ड्यूक ऑफ ओरलीन्स का आस्ट्रिया की राजकुमारी से विवाह करने का प्रस्ताव हुआ। थीयर्स को उसकी उग्र नीति के कारण लुई फिलिप ने पदच्युत करके उसके स्थान पर मोले को नियुक्त कर दिया।

इस अवधि में सुल्तान और मेहमतअली अंतिम संघर्ष के लिए तैयारियाँ कर रहे थे। महमूद द्वितीय अपनी सेना को पश्चिम की प्रणाली पर संगठित कर रहा था। माल्टके उसका सलाहकार था।

मिस्र में भी व्यवस्था ठीक नहीं थी। १८३७ में सीरिया ने अपनी शक्ति को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया था। १८३८ में उसने ब्रिटिश राजदूत को बताया कि वह स्वतन्त्र होने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था। पामस्टन को इस पर बड़ा आश्चर्य था। उसे पूरी तरह मालूम था कि तुर्की पराजित होगा और १८३३ की अक्यार स्केलसी संधि के कारण रूस इसमें हस्तक्षेप करेगा। फ्रांस द्वारा मेहमत अली की सहायता करने की भी सम्भावना थी। पामस्टन की नीति के तीन उद्देश्य थे अर्थात् मेहमत अली द्वारा तुर्की साम्राज्य को नष्ट होने से रोकना, अक्यार-स्केलसी की संधि को निष्क्रिय कर देना और फ्रांस और रूस के संगठन को न होने देना। पामस्टन ने इस जटिल स्थिति को एक कुशल कूटनीतिज्ञ की तरह संभाला। तुर्की और मिस्र की सेनाएँ एक-दूसरे के सामने युद्ध-सामग्री से सुसज्जित होकर तैयार खड़ी थीं।

कुछ अन्य तत्त्व ऐसे भी थे जिनके कारण शान्ति बनी रही। पाँच महान् शक्तियाँ युद्ध नहीं करना चाहती थीं। उन्होंने दोनों पक्षों को शान्ति से समझौता करने का परामर्श दिया, किन्तु दोनों ही पक्ष समझौते के लिए तैयार नहीं थे। अतः जून १८३९ में युद्ध प्रारम्भ हो गया। कुछ ही दिनों में महमूद की सेनाएँ हार गईं और वह मारा गया। तुर्की का सेनापति अपने जहाजी बेड़े के साथ एलग्जेण्ड्रिया में मेहमतअली के साथ जाकर मिल गया। तीन सप्ताह में तुर्की अपने सुलतान, स्थल सेना और जहाजी बेड़े से वंचित हो गया।

सुलतान की मृत्यु और निसिबि की लड़ाई से पामस्टन की धारणा दृढ़ हो गई कि उसे अब कड़ा कदम उठाना चाहिए। उसका विश्वास था कि इस मामले में इंगलैण्ड और फ्रांस का सहयोग बना रहेगा। उसने ब्रिटिश जलसेना को मेहमत अली पर दबाव डालने के लिए आज्ञा देने का विचार किया। फ्रांस ने मेहमत अली के प्रति मनोभाव रखने के कारण सहयोग देने से इन्कार कर दिया। मेहमत अली द्वारा सुलतान से स्वेच्छानुसार अपनी माँगें पूरी करा लेने की सम्भावना थी। इस स्थिति से बचने के लिए अन्य शक्तियों ने पोर्ट को परामर्श दिया कि वह मेहमत अली से कोई समझौता न करे।

पामस्टन को मेहमत अली पर दबाव डालने में फ्रांस का सहयोग नहीं मिला इसलिए उसने फ्रांस से सम्बन्ध तोड़कर, इस मामले को पाँच शक्तियों के सम्मेलन के सामने विचारार्थ रखने का निर्णय किया। इस सम्मेलन का उद्देश्य था कि यदि मेहमत अली तुर्की का जहाजी बेड़ा न लौटाए तो पाँचों शक्तियाँ सीरिया का मार्ग बन्द कर दें। पामस्टन इस झगड़े को सम्मेलन द्वारा सुलझाने के लिए इस कारण इच्छुक था क्योंकि इस योजना द्वारा १८३३ की संधि के अनुसार वह तुर्की और रूस के संगठन को रोक सकता था। रूस भी युद्ध से बचना

चाहता था। ज़ार ने इब्राहीम पाशा की प्रगति को रोकने के लिए फ्रांस के सहयोग के बिना भी इंग्लैण्ड के साथ कार्यवाही करने का प्रस्ताव किया। पामर्स्टन ने फ्रांस की सरकार को सूचित किया कि "इंग्लैण्ड रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया के साथ इस मामले में सहयोग करने को इच्छुक है, उसे फ्रांस का सहयोग प्राप्त हो या न हो किन्तु इंग्लैण्ड को इस बात का बड़ा खेद होगा कि इस कार्यवाही में फ्रांस ने सहयोग नहीं दिया।

पामर्स्टन को इसी समय एक भयानक सूचना मिली कि फ्रांस के सम्राट ने किसी विदेशी मंत्री को बताया था कि सम्भवतः फ्रांस को एक दो वर्ष में इंग्लैण्ड से युद्ध करना पड़ेगा और इसलिए वह महमत अली की रक्षा कर रहा है। फ्रांस को इस युद्ध में भूमध्य महासागर में महमत अली के जहाजी बेड़े की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। पामर्स्टन ने फ्रांस के सम्राट को 'एक ऐसा व्यक्ति बताया जिस पर किसी भी प्रकार का विश्वास नहीं किया जा सकता।' फ्रांस ने शिकायत की कि उसे अकेला छोड़ा जा रहा है, किन्तु फिर भी उसने सीरिया के मामले में महमत अली की सहायता करना बन्द नहीं किया। फ्रांस का शिक्षित जनमत मेहमत अली का कट्टर समर्थक था इस कारण फ्रांस की सरकार उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती थी। फ्रांस की सरकार भ्रम में थी कि इंग्लैण्ड और रूस का सहयोग कभी भी नहीं हो सकता किन्तु वास्तव में दोनों देशों में समझौता हो चुका था।

मार्च, १८४० में फ्रांस में थीयर्स (Thiers) पुनः सत्तारूढ़ हुआ। उसकी नीति थी इंग्लैण्ड से मैत्री रखना, पाँच शक्तियों के संगठन में फ्रांस की सदस्यता को अक्षुण्ण रखना और साथ में सीरिया के मामले में महमत अली का समर्थन करना। पामर्स्टन महमत अली की शक्ति को तोड़ना चाहता था और थीयर्स इस विषय में सहमत नहीं था। इसलिए गतिरोध उत्पन्न हो गया।

इस अवसर पर तुर्की के राजदूत ने लन्दन में पाँचों शक्तियों से माँग की कि वे १८४९ की संधि के अनुसार अपने वचन का पालन करें और तुर्की की सहायता दें। पाँचों इस मामले को सुलझाने के लिए मिस्र के राज्यपाल का पद भी महमत अली को देने को तैयार थे। थीयर्स और उसकी सरकार ने लन्दन वार्ता की उपेक्षा कर दी। कारण यह था जिस समय लन्दन में वार्ता हो रही थी उसी समय फ्रांस के राजदूत के माध्यम से कुस्तुनतुनिया में अलग बातचीत चल रही थी। १८४० में शक्तियों के प्रतिनिधियों ने संधि पर हस्ताक्षर किए जिस पर तुर्की के राजदूत ने भी हस्ताक्षर किए थे। इस सन्धि के अनुसार महमत अली को मिस्र का वंशपरम्परागत राज्यपाल नियुक्त किया गया, उसे अक्के और दक्षिणी सीरिया का जीवन भर दन के लिए फैसला किया गया। इस व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए मेहमत अली को कुछ समय दिया गया। सीरिया के विषय में उससे दस दिन में तथा मिस्र के विषय में बीस दिन में उत्तर माँगा गया था। चारों शक्तियों ने मेहमत अली पर दबाव डालने के लिए उसका मार्ग बन्द करने का भी निर्णय किया। कुस्तुनतुनिया की ओर उसकी प्रगति को रोकने के लिए संगठित कार्यवाही का निर्णय भी किया गया। तुर्की चारों शक्तियों के संरक्षण में रहेगा और १८३३ की रूस-तुर्की संधि रद्द कर दी गई।

इस व्यवस्था से पेरिस में बड़ी उत्तेजना फैली। यह कहा गया कि फ्रांस का अपमान किया गया है। कुछ महीनों तक फ्रांस और यूरोप के देशों में युद्ध के होने की सम्भावना बनी रही। फ्रांस युद्ध करना चाहता था और थीयर्स उनका मुख्य नेता था। थीयर्स केवल इस हिचकिचाहट में था कि वह पहले इंग्लैण्ड पर आक्रमण करे अथवा रूस पर। फ्रांस में देशभक्ति की भावना को उभारा गया। पामर्स्टन ने फ्रांस की सरकार को कहा 'यदि आपने युद्ध के लिए चुनौती दी तो हम इसे स्वीकार करने में संकोच नहीं करेंगे।'

सीरिया में घटनाचक्र बड़ी तेजी से चल रहा था। महमत अली ने शक्तियों के प्रस्ताव को ठुकरा दिया अतः शक्तियों ने उस पर दबाव डालने का निर्णय किया। सीरिया के तट का मार्ग बन्द किया जाने लगा। नेपियर ने बेरुत पर बम बारी करके इस पर अधिकार कर लिया। उसने अन्य भी लड़ाइयाँ जीतीं। सुलतान ने मेहमत अली को पदच्युत कर दिया। शान्ति की कोई सम्भावना नहीं रही। लुई फिलिप ने थीयर्स की लड़ाकू नीति का अनुमोदन नहीं किया। पामर्स्टन ने अक्टूबर १८४० में लिखा था 'यदि फ्रांस हम एक मैत्रीपूर्ण सन्देश वर्तमान स्थिति पर शान्ति से समझौता करने उद्देश्य से भेजेगा तो हम सहर्ष उस पर उसी भावना से विचार करेंगे।'

सौभाग्य से पेरिस में शान्ति के समर्थकों की जीत हुई और थीयर्स को पदच्युत कर दिया गया। नई सरकार ने इस सन्देश का उत्तर मैत्रीपूर्ण ढंग से भेजा। इस अवधि में नेपियर ने आक्रे पर अधिकार कर लिया था और मेहमत अली को सीरिया से पीछे हटना पड़ा था। नेपियर अलेक्जण्ड्रिया गया और वहाँ अपनी इच्छानुसार शान्ति की शर्तें पेश कीं। शर्तों के अनुसार मेहमत अली को सीरिया छोड़ देना पड़ा तथा उसके मिस्र पर स्थायी रूप से अधिकार करने की व्यवस्था की गई। चारों शक्तियों ने सन्धि की शर्तों का अनुमोदन किया था।

फरवरी १८४१ में सुलतान पर दबाव डालकर उससे मेहमत अली को पदच्युत करने की आज्ञा को रद्द कराया गया और एक फरमान द्वारा उसे मिस्र का वंशपरम्परागत राज्यपाल नियुक्त किया गया। १८४१ में लन्दन के सम्मेलन में पुराने निर्णयों को स्थायी रूप दिया गया।

यह अन्तिम व्यवस्था पामर्स्टन की महत्त्वपूर्ण विजय समझी गई। ब्रिटेन का सम्मान बढ़ गया और अनक्यार स्कलेसी की संधि बिना युद्ध के रद्द हो गई।

क्रीमिया युद्ध (१८५४-५६) (The Crimean War)—सर जे० ए० आर० मेरियट के मतानुसार क्रीमिया युद्ध के कारणों के विषय में दो भिन्न भिन्न मत हैं। सम्राज्ञी विक्टोरिया का मत था कि यह युद्ध केवल एक व्यक्ति (निकलस प्रथम) अथवा उसके अनुचरों की स्वार्थपरता और महत्त्वाकांक्षाओं का परिणाम था। किंगलेक (Kingslake) ने नेपोलियन तृतीय पर इसका उत्तरदायित्व सौंपा है। किन्तु दोनों ही मतों को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता यद्यपि दोनों में ही सत्य का कुछ अंश है। यद्यपि नेपोलियन तृतीय इस युद्ध का प्रत्यक्ष कारण नहीं

था तथापि पूर्व के संघर्ष में वही चिंगारी फैलने वाला था। १७४० की एक संधि के अनुसार फ्रांस ने तुर्की से जेरुसलम के निकट के कई तीर्थस्थानों का कब्जा ले लिया था। लेटिन साधुओं ने अपने अधिकारों के प्रति उदासीनता दिखाई और परिणामस्वरूप ये स्थान ग्रीक साधुओं के अधिकार में आ गए। १८५० में नैपोलियन तृतीय ने फ्रांस के पादरियों का समर्थन प्राप्त करके इन स्थानों का अधिकार लेटिन साधुओं को दिलवाने का प्रयत्न किया। इस मामले में उसे आस्ट्रिया, हंगरी, स्पेन और अन्य रोमन कैथोलिक देशों का समर्थन प्राप्त था।

सीमन (Seaman) के मतानुसार "उन लोगों के साथ सहमति प्रकट करना युक्तियुक्त ही है कि क्रीमिया का युद्ध जितना यूरोप में शक्ति संतुलन के लिए संघर्ष था उतना ही यह युद्ध पूर्व की समस्याओं को सुलझाने के लिए भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व था। ग्रीक और सीरिया के मामलों में जो अनुभव प्राप्त हुआ उसे ध्यान में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि यदि पूर्व के प्रश्न को भी पूर्व और पश्चिम की राजनीतिक प्रणाली के संघर्ष को महत्त्व दिए बिना शान्ति से सुलझाया जाता तो निश्चित रूप से यह युद्ध टल जाता। इसलिए पूर्व की समस्या मूलतः अन्तर्राष्ट्रीय थी और यदि इसे उसी स्तर पर निपटाया जाता तो युद्ध न होता। इस समस्या में प्रजातन्त्रवादी इंगलैण्ड तथा नैपोलियनवादी फ्रांस का रूस से अनेक अन्य समस्याओं पर चलते हुए संघर्ष का जुड़ जाना ही युद्ध का कारण था।

'इसके अलावा ज़ार ने जिस समय मोलडाविया और वलाचिया पर आक्रमण किया, उसे पता था कि वह यूरोप की इच्छानुसार काम कर रहा है। किन्तु जब १८५३ में उसने बलकान पर अपना दावा किया तो उसे इस बात की बिलकुल आशा नहीं थी कि उसे इंगलैण्ड का समर्थन मिल जायगा। रूस के इन जागीरों को छोड़ देने के पश्चात् सिवाय इस बात के कि, ज़ार को उसकी उद्दण्डता का दण्ड दिया जाए, युद्ध का अन्य कोई कारण नहीं रह गया था। तुर्की के साम्राज्य की रक्षा के लिए बलवान युद्ध युक्तियुक्त था किन्तु इसको वहाँ से क्रीमिया के प्रायद्वीप में घसीट कर ले जाना तो नितान्त युक्तिहीन बात थी। इस परिवर्तन का अर्थ यह हुआ कि जिस युद्ध की योजना तुर्की साम्राज्य की रक्षा के लिए बनाई गई थी, वह युद्ध के आरम्भ होने से पहले ही रूस के विरुद्ध युद्ध का रूप धारण कर चुका था।'

प्रो० फाइफ (Fyffe) के मतानुसार "प्रतिद्वन्द्वी साधुओं के द्वारा, कुंजियों, मूर्तियों और दीपकों के दावों को कोई भी अनुभवी प्रबन्धक सरलता से सुलझा सकता था किन्तु इन साधारण बातों के परस्पर एक दूसरे का नीचा दिखाने में संलग्न कूटनीतिज्ञों के हाथ में आ जाने के कारण ये इतना विकराल रूप धारण कर गई कि सारे यूरोप की शान्ति खतरे में पड़ गई।' फ्रांस और रूस के पादरी पोर्ट पर निर्णय के लिए दबाव डाल रहे थे। १८५२ में पोर्ट ने दोनों पक्षों को समान अधिकार दे दिए थे। १८५३ में तुर्की ने फ्रांस के कुछ दावों को स्वीकार कर लिया तथा रूस के दावों को अस्वीकार कर दिया।

निकोलस प्रथम ने तुर्की के इस कार्य को अपने विरुद्ध अपमान समझा। उसने प्रतिशोध लेने की सोची। १८५३ में उसने ब्रिटिश राजदूत सर सेम्यूर से पीटर्सबर्ग में कहा "यह समय आ गया है कि इंग्लैण्ड और रूस में स्पष्ट रूप से समझौता हो जाना चाहिए। रूसी सेनाओं का कुस्तुनतुनिया पर अधिकार करना आवश्यक हो सकता है किन्तु ज़ार इस पर स्थायी अधिकार नहीं रखेगा। वह बासफोरस पर अन्य किसी देश का अधिकार नहीं होने देगा। वह ओटोमान साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट करके यूरोप के मेजिनी और कास्सुथों का शरण स्थान नहीं बनने देगा। डेन्यूब की रियासतें रूस के संरक्षण में पहले ही स्वतन्त्र हैं। बलकान के उत्तर में सुलतान के अधिकृत राज्य भी स्वतन्त्र किए जा सकते हैं। इंग्लैंड मिस्र और क्रीट पर अधिकार कर सकता है। ब्रिटिश सरकार ने ज़ार के साथ किसी भी प्रकार का समझौता करने से इन्कार कर दिया। इसके पश्चात् निकोलस प्रथम ने राजकुमार मेन्शीकोफ को कुस्तुनतुनिया भेजा कि वह पोर्ट से केवल तीर्थस्थानों के मामले का निर्णय करने के लिए ही नहीं अपितु एक सन्धि की मांग करे। इस सन्धि में तुर्की से ग्रीक चर्च को उसके प्राचीन अधिकारों तथा पोर्ट द्वारा अन्य ईसाइयों को दी गई सारी सुविधाएँ देने की भी मांग की गई थी।

इस सन्धि से सुलतान सदा के लिए ज़ार के अधिकार में हो जाता और सुलतान की ग्रीक मतावलम्बी सारी प्रजा के किसी भी व्यक्ति की सुविधाओं पर आघात होने की स्थिति में रूस को इस विषय में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो जाता। १७७४ की कुटचुक कैनाडजी सन्धि के अनुसार सुलतान ने ईसाई धर्म और चर्चों की रक्षा की प्रतिज्ञा की थी। किन्तु यदि इस सन्धि के अनुसार रूस को ग्रीक चर्च की रक्षा के विषय में साधारणतः हस्तक्षेप का अधिकार मिल गया था तो यही अधिकार रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट चर्चों के लिए अन्य नरेशों को भी दिए गए थे। किन्तु ज़ार ने कभी भी इस बात का दावा नहीं किया था कि उसे कुटचुक कैनाडजी की सन्धि से ये अधिकार प्राप्त हो गए हैं। इस सन्धि में केवल एक ही चर्च का नाम था जिसके पुजारियों की ओर से सुलतान ने रूस के प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया था। इस विषय में व्यवस्था थी कि सुलतान परम्परा अथवा कानून द्वारा इस चर्च के विशेष अधिकारों का सम्मान करेगा किन्तु इस विषय में किसी भी देश ने विरोध प्रकट नहीं किया था। रूस के दावे की नवीनता यह थी कि उसने इस व्यवस्था को रूस के साथ एक सन्धि का विषय बना दिया था। रूस की मांग का महत्त्व इस बात से सिद्ध होता है कि मेन्शीकोफ ने तुर्की के मन्त्रियों को इस सन्धि की शर्तों को अन्य देशों पर प्रगट करने से मना कर दिया था। निकोलस प्रथम ने ब्रिटिश सरकार को यह सूचना भिजवाई थी कि शिष्टमण्डल केवल तीर्थ स्थानों का मामला सुलझाने के लिए भेजा गया था। तुर्की में रहने वाले ग्रीक ईसाइयों पर रूस के संरक्षण के दावे के विषय में लार्ड क्लेरण्डन ने लिखा कि कोई भी प्रभुत्वसम्पन्न राजा अपने सम्मान और स्वतन्त्रता का ध्यान रखते हुए राजकुमार मेन्शीकोफ द्वारा अस्पष्ट प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता था तथा सन्धि के द्वारा अन्य शक्तिशाली राजा को अपनी प्रजा के बहुत बड़े भाग की रक्षा का अधिकार नहीं

सौंप सकता था चाहे इन अधिकारों की परिभाषा संधि में नहीं की गई थी। वास्तविक स्थिति यह थी कि प्रस्तावित सनद की अस्पष्ट भाषा में रूस को तुर्की के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार दे दिया गया था। पोर्ट की ग्रीक प्रजा होने के साथ वे लोग अपने धर्म की दृष्टि से पूर्णतः रूस के संरक्षण में थे। इसका आशय यह था कि एक करोड़ चालीस लाख ग्रीक सुलतान के प्रति औपचारिक स्वामिभक्ति दिखाते हुए रूस के ज़ार को ही अपना सर्वोपरि रक्षक मानने लगे और सुलतान की स्वतन्त्रता क्रमशः घट कर एक आश्रित राज्य जैसी हो गई।

पोर्ट रूस के दबाव को सहन नहीं कर सकता था किन्तु कुस्तुनतुनिया स्थित ब्रिटिश राजदूत लार्ड स्ट्रैटफोर्ड डी रेडक्लिफ (De Radcliffe) के वहां पहुंच जाने से स्थिति एक दम बदल गई। रेडक्लिफ कुशल व्यक्ति था और उसके सामने रूस का राजकुमार एक बालक के समान था। रेडक्लिफ ने बलकान में कूटनीतिक सेवा में एक युग व्यतीत किया था और उसने स्थिति को पूरी तरह समझ लिया था। इंगलैण्ड बलकान में दिलचस्पी रखता था। भारतवर्ष पर नियन्त्रण रखने की चिन्ता के कारण उसे रूस की निकट पूर्व में गतिविधि पर ध्यान रखना पड़ता था। कैनिंग की असमय मृत्यु के कारण रूस उस स्थिति से अकेला ही लाभ उठा रहा था। १८२९ की एड्रियानोपल (Adrianople) की संधि ने बलकान में रूस का प्रभाव और सम्मान बढ़ा दिया था। अनक्यार स्केलसी (Unkiar Skelesse) की संधि से उसकी शक्ति और भी बढ़ गई थी। पामर्स्टन (Palmerston) के प्रयत्नों के कारण रूस के प्रभाव में कुछ कमी हुई और १८४१ में अनक्यार स्केलसी की संधि रद्द हो सकी थी। १८४४ में निकलस ने लन्दन की यात्रा की और वहां यूरोप के बीमार की सम्पत्ति को बाँटने के लिए ब्रिटेन के विदेश मन्त्री एबर्डीन (Aberdeen) से परामर्श किया। किन्तु उसे वहाँ प्रोत्साहन नहीं मिला। ब्रिटिश सरकार ने १८५३ में दूसरी बार रूस से पूर्व के प्रश्न पर बातचीत करने से इन्कार कर दिया। इससे स्पष्ट हो गया कि ब्रिटेन बलकान में रूस के प्रभाव को बढ़ने देने के लिए तैयार नहीं था।

लार्ड स्ट्रैटफोर्ड (Stratford) ने अपना कार्य कुशलता से किया। उसने मेन्शीकाफ (Menschikoff) को पवित्र मन्दिरों के प्रश्न को और ईसाइयों के साधारण संरक्षण के प्रश्न से अलग कर देने के लिए राजी कर लिया। यह महत्वपूर्ण परिवर्तन कराने के पश्चात् उसने तुर्की को ईसाई मन्दिरों के संरक्षण के विषय में रूस की माँग मान लेने को प्रोत्साहित किया था। मन्दिरों की समस्या हल हो गई। किन्तु फिर भी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों पोर्ट नम्र होता गया त्यों-त्यों मेन्शीकाफ का रुख उत्तरोत्तर कठोर होता गया यद्यपि उसकी स्थिति कमज़ोर होती जा रही थी। उसे अनुभव हुआ कि स्ट्रैटफोर्ड ने उसे धोखा दिया है। स्ट्रैटफोर्ड ने पोर्ट को सलाह दी कि वह मेन्शीकाफ के संरक्षण के दावे को अस्वीकार कर दे। परिणामतः मेन्शीकाफ मई १८५३ में कुस्तुनतुनिया से चला गया। उसके चले जाने के एक सप्ताह पश्चात् पोर्ट ने मुख्य शक्तियों को एक पत्र भेजा जिसमें उसने पवित्र स्थानों

निकलस प्रथम ने तुर्की के इस कार्य को अपने विरुद्ध अपमान समझा। उसने प्रतिशोध लेने की सोची। १८५३ में उसने ब्रिटिश राजदूत सर सम्यूर से पीटर्सबर्ग में कहा 'यह समय आ गया है कि इंग्लैण्ड और रूस में स्पष्ट रूप से समझौता हो जाना चाहिए। रूसी सेनाओं का कुस्तुनतुनिया पर अधिकार करना आवश्यक हो सकता है किन्तु जार इस पर स्थायी अधिकार नहीं रखेगा। वह बॉसफारस पर अन्य किसी देश का अधिकार नहीं होने देगा। वह ओटोमान साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट करके यूरोप में मेजिनी और कास्सुथों को शरण स्थान नहीं बनने देगा। डेन्यूब की रियासतें रूस के संरक्षण में पहले ही स्वतन्त्र हैं। बल्कान के उत्तर में सुलतान के अधिकृत राज्य भी स्वतन्त्र किए जा सकते हैं। इंग्लैंड मिस्र और क्रीट पर अधिकार कर सकता है। ब्रिटिश सरकार ने जार के साथ किसी भी प्रकार का समझौता करने से इन्कार कर दिया। इसके पश्चात निकलस प्रथम ने राजकुमार मेन्शीकोफ को कुस्तुनतुनिया भेजा कि वह पोर्ट से केवल तीर्थस्थानों के मामले का निर्णय करने के लिए ही नहीं अपितु एक सन्धि की मांग करे। इस सन्धि में तुर्की से ग्रीक चर्च को उसके प्राचीन अधिकारों तथा पोर्ट द्वारा अन्य ईसाइयों को दी गई सारी सुविधाएं देने की भी मांग की गई थी।

इस सन्धि से सुलतान सदा के लिए जार के अधिकार में हो जाता और सुलतान की ग्रीक मतावलम्बी सारी प्रजा के किसी भी व्यक्ति की सुविधाओं पर आघात होने की स्थिति में रूस को इस विषय में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो जाता। १७७४ की कुटचुक कैनाडजी सन्धि के अनुसार सुलतान ने ईसाई धर्म और चर्चों की रक्षा की प्रतिज्ञा की थी। किन्तु यदि इस सन्धि के अनुसार रूस को ग्रीक चर्च की रक्षा के विषय में साधारणतः हस्तक्षेप का अधिकार मिल गया था तो यही अधिकार रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट चर्चों के लिए अन्य शक्तियों को भी दिए गए थे। किन्तु जार ने कभी भी इस बात का दावा नहीं किया था कि उसे कुटचुक कैनाडजी की सन्धि से ये अधिकार प्राप्त हो गए हैं। इस सन्धि में केवल एक ही चर्च का नाम था जिसके पुजारियों की ओर से सुलतान ने रूस के प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया था। इस विषय में व्यवस्था थी कि सुलतान परम्परा अथवा कानून द्वारा इस चर्च के विशेष अधिकारों का सम्मान करेगा किन्तु इस विषय में किसी भी देश ने विरोध प्रकट नहीं किया था। रूस के दावे की नवीनता यह थी कि उसने इस व्यवस्था को रूस के साथ एक सन्धि का विषय बना दिया था। रूस की माँग का महत्त्व इस बात से सिद्ध होता है कि मेन्शीकोफ ने तुर्की के मन्त्रियों को इस सन्धि की शर्तों को अन्य देशों पर प्रकट करने से मना कर दिया था। निकलस प्रथम ने ब्रिटिश सरकार को यह सूचना भिजवाई थी कि मिशन केवल तीर्थ स्थानों का मामला सुलझाने के लिए भेजा गया था। तुर्की में रहने वाले ग्रीक ईसाइयों पर रूस के संरक्षण के दावे के विषय में लार्ड क्लेरेन्डन ने लिखा कि कोई भी प्रभुत्वसम्पन्न राजा अपने सम्मान और स्वतन्त्रता का ध्यान रखते हुए राजकुमार मेन्शीकोफ द्वारा अस्पष्ट प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता था तथा सन्धि के द्वारा अन्य शक्तिशाली राजा को अपनी प्रजा के बहुत बड़े भाग की रक्षा का अधिकार नहीं

सौंप सकता था चाहे इन अधिकारों की परिभाषा संधि में नहीं की गई थी। वास्तविक स्थिति यह थी कि प्रस्तावित 'सनद' की अस्पष्ट भाषा में रूस को तुर्की के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार दे दिया गया था। पोर्ट की ग्रीक प्रजा होने के साथ वे लोग अपने धर्म की दृष्टि से पूर्णतः रूस के संरक्षण में थे। इसका आशय यह था कि एक करोड़ चालीस लाख ग्रीक सुलतान के प्रति औपचारिक स्वामिभक्ति दिखाते हुए रूस के जार को ही अपना सर्वोपरि रक्षक मानने लगे और सुलतान की स्वतन्त्रता कम घट कर एक आश्रित राज्य जैसी हो गई।

पोर्ट रूस के दबाव को सहन नहीं कर सकता था किन्तु कुस्तुनतुनिया स्थित ब्रिटिश राजदूत लार्ड स्ट्रटफोर्ड डी रेडक्लिफ (De Radcliffe) के वहां पहुँच जाने से स्थिति एक दम बदल गई। रेडक्लिफ कुशल व्यक्ति था और उसके सामने रूस का राजकुमार एक बालक के समान था। रेडक्लिफ ने बलकान में कूटनीतिक सेवा में एक युग व्यतीत किया था और उसने स्थिति को पूरी तरह समझ लिया था। इंगलैण्ड बलकान में दिलचस्पी रखता था। भारतवर्ष पर नियंत्रण रखने की चिन्ता के कारण उसे रूस की निकट पूर्व में गतिविधि पर ध्यान रखना पड़ता था। कॉनिंग की अकाल मृत्यु के कारण रूस इस स्थिति से अकेला ही लाभ उठा रहा था। १८२९ की एड्रियानोपल (Adrianople) की संधि ने बलकान में रूस का प्रभाव और सम्मान बढ़ा दिया था। अनक्यार स्केलसी (Unkiar Skelesse) की संधि से उसकी शक्ति और भी बढ़ गई थी। पामर्स्टन (Palmerston) के प्रयत्नों के कारण रूस के प्रभाव में कुछ कमी हुई और १८४१ में अनक्यार स्केलसी की संधि रद्द हो चुकी थी। १८४४ में निकलस ने लन्दन की यात्रा की और वहां यूरोप के बीमार' की सम्पत्ति को बांटने के लिए ब्रिटेन के विदेश मन्त्री एबर्डीन (Aberdeen) से परामर्श किया। किन्तु उसे वहां प्रोत्साहन नहीं मिला। ब्रिटिश सरकार ने १८५३ में दूसरी बार रूस से पूर्व के प्रश्न पर बातचीत करने से इन्कार कर दिया। इससे स्पष्ट हो गया कि ब्रिटेन बलकान में रूस के प्रभाव को बढ़ने देने के लिए तैयार नहीं था।

लार्ड स्ट्रटफोर्ड (Stratford) ने अपना काम कुशलता से किया। उसने मेन्शिकाफ (Menschikoff) को पवित्र मन्दिरों के प्रश्न को ग्रीक ईसाइयों के साधारण संरक्षण के प्रश्न से अलग कर देने के लिए राजी कर लिया। यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कराने के पश्चात् उसने तुर्की को ईसाई मन्दिरों के संरक्षण के विषय में रूस की मांग मान लेने का परामर्श दिया था। मन्दिरों की समस्या हल हो गई। किन्तु फिर भी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों पोर्ट नम्र होता गया त्यों-त्यों मेन्शीकाफ का रुख उत्तरोत्तर कठोर होता गया यद्यपि उसकी स्थिति कमजोर पड़ती जा रही थी। उसे अनुभव हुआ कि स्ट्रेटफोर्ड ने उसे धोखा दिया है। स्ट्रटफोर्ड ने पोर्ट को सलाह दी कि वह मेन्शीकाफ के संरक्षण के दावे को अस्वीकार कर दे। परिणामतः मेन्शीकोफ मई १८५३ में कुस्तुनतुनिया से चला गया। उसके चले जाने के एक सप्ताह पश्चात् पोर्ट ने मुख्य शक्तियों को एक पत्र भेजा जिसमें उसने पवित्र स्थानों

के प्रश्न के समझौते तथा तुर्की व रूस के नियन्त्रण का रोकने के विषय में अपनी दृढ़ता की सूचना दी।

जुलाई, १८५३ में रूस की सेनाओं ने प्रुथ (Pruth) पार करके निकट की रियासतों पर अधिकार कर लिया। साधारण परिस्थितियों में इस प्रकार की कार्यवाही के परिणाम को युद्ध की घोषणा माना जाता। ज़ार ने घोषणा की कि इन रियासतों पर अधिकार करने से उसकी इच्छा शान्ति भंग करने की नहीं है। तुर्की को भी युद्ध न करने का परामर्श दिया गया। दिसम्बर १८५२ में लार्ड एबर्डीन इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री था। फाईफ़ (Fyffe) के शब्दों में 'इंग्लैण्ड में एबर्डीन से बढ़कर शान्त स्वभाव तथा रूस से मैत्री चाहने वाला अन्य कोई व्यक्ति नहीं था। ज़ार ने सदा रूप से एबर्डीन के स्वभाव पर भरोसा किया था। पामर्स्टन रूस के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। उसका विश्वास था कि इंग्लैण्ड की जागरूकता दिखाने का एकमात्र मार्ग यही था कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के संयुक्त जहाज़ी बेड़े को बासफोरस भेज दिया जाए और यदि आवश्यकता पड़े तो इसे कालासागर भी जाने दिया जाए। किन्तु फिर भी एबर्डीन ने सुलतान को यही सलाह दी कि वह रूस के आक्रमण का शान्ति से समझौता करने के सारे साधनों को प्रयुक्त किए बिना शक्ति से मुकाबला न करे। पामर्स्टन को पूरा विश्वास था कि पहले ही बहुत देर हो चुकी है और रूस इंग्लैण्ड की प्रकट कायरता से लाभ उठाकर आगे बढ़ता जा रहा है।

पामर्स्टन और एबर्डीन में मतभेद होने पर भी लार्ड स्ट्रटफोर्ड का आरम्भ से ही पूर्ण विश्वास था कि रूस और तुर्की के युद्ध में ब्रिटेन को ओटोमान साम्राज्य की ओर से ही युद्ध करना पड़ेगा। स्ट्रटफोर्ड ने अपना विचार स्पष्ट रूप से प्रगट नहीं किया, किन्तु जो पत्र-व्यवहार उसने सुलतान से किया उसका यही आशय समझा जा सकता था। यदि इंग्लैण्ड का जहाज़ी बेड़ा सुलतान की रक्षा न करता तो उसे यह विश्वास दिलाना कि राजदूत की आज्ञानुसार बेड़ा यथास्थान पहुँच जाएगा घोर विश्वासघात और धोखा देना था। इस प्रकार का धोखा देना स्ट्रटफोर्ड के स्वभाव के विपरीत था। जिस दिन स्ट्रटफोर्ड सुलतान के महलों में गया था उस दिन से ही इंग्लैण्ड अपने प्रतिनिधि द्वारा दिए गए आश्वासनों को पूरा करने के लिए वचनबद्ध हो चुका था।

केन्द्रीय शक्तियों ने युद्ध के भय से बचने का प्रयत्न किया था। इंग्लैण्ड फ्रांस, आस्ट्रिया हंगरी और प्रशिया के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन जुलाई में विएना में हुआ और सब की अनुमति से एक प्रस्ताव का मसविदा बनाया गया जो रूस और तुर्की दोनों को मान्य हो सकता था। रूस ने मसविदे को स्वीकार किया यद्यपि जिस धारणा से मध्यस्थ ने इसे तैयार किया था रूस ने उसे स्वीकार नहीं किया था। तुर्की ने इसे बिना संशोधन के मानने से इंकार कर दिया। तुर्की अपने आन्तरिक मामलों में रूस के हस्तक्षेप करने के अधिकार को मान्यता देने के लिए तैयार नहीं था।

तुर्की के मुख्य सेनापति उमरपाशा ने रूस को ललकारा कि रियासतों को खाली कर दे। किन्तु रूस ने इससे एकदम इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप युद्ध की घोषणा हुई। नवम्बर, १८५३ में तुर्की के जहाजी बेड़े को सिनोपे के स्थान पर नष्ट कर दिया गया। सिनोप का हत्याकाण्ड यूरोपीय युद्ध की भूमिका थी। ग्राहम लिखता है 'मैं रूस के साथ शांति बनाए रखने का अंतिम क्षण तक बड़ा कट्टर समर्थक था किन्तु सिनोप पर आक्रमण और अभी हाल की घटनाओं ने सारी स्थिति को मूलत परिवर्तित कर दिया है। मुझे लगता है कि रूस से अब पृथक होना अनिवार्य हो गया है।"

एबर्डीन मन्त्रिमण्डल की शान्तिप्रियता और इसके सदस्यों का परस्पर मतभेद ब्रिटेन की अस्थिर और निर्बल नीति का उत्तरदायी था। मेरियट का कथन है कि यदि मन्त्रिमंडल वास्तव में एकमत होता और एबर्डीन अपने मन्त्रियों पर अपनी इच्छा का प्रभाव डाल सकता तो सम्भवत युद्ध टल गया होता। स्टैटफोर्ड कुस्तुनतुनिया नहीं गया होता। तुर्की को इंग्लैण्ड की सहायता पर निर्भर न रहना पड़ता और सम्भवत जार ने भी अपनी माँगों को कम भी कर दिया होता। फिर यदि पामर्स्टन प्रधानमन्त्री के पद पर होता तो जार ने मेन्शीकोफ को भेजने और एक ऐसे विवाद को उकसाने पर पुनर्विचार किया होता जिसमें ब्रिटेन का बीच में आ जाना अवश्यभावी था। नेपोलियन तृतीय और स्ट्रैटफार्ड के व्यवहार से दुःखी होकर जार को एबर्डीन और इंगलैण्ड के शान्तिप्रिय दल पर अपने ही द्वारा पैदा की हुई कठिनाइयों से निकालने के विषय में विश्वास करना पड़ा। युद्ध की घोषणा हो जाने के पश्चात भी एबर्डीन को आशा थी कि वह शांति बनाए रखने के लिए कोई युक्ति निकाल लेगा। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके मन्त्रिमण्डल ने जहाजी बेड़े को कालासागर में भेजने का निर्णय किया। आदेश दिए जाने के बाद भी नेपोलियन को जार के नाम पत्र लिखने की अनुमति दे दी गई जिसमें उसने जार को अपनी मध्यस्थता का प्रस्ताव किया था। किन्तु इसका उत्तर अत्यन्त रूखा मिला। यद्यपि आस्ट्रिया और प्रशिया रूस पर कूटनीतिक दबाव डालने में फ्रांस और इंगलैण्ड के साथ सहयोग कर रहे थे तथापि जब इंग्लैण्ड तुर्की की ओर से युद्ध में आ गया तो वे तटस्थ हो गए।

क्या क्रीमिया का युद्ध न्यायोचित था? (Was the Crimean War Justified?)—मेरियट (Marriott) लिखता है कि घटना के पश्चात की आलोचना से प्रतीत होता है कि यह युद्ध यदि अपराध नहीं था तो एक महान् भूल अवश्य थी। इसे नहीं होने देना चाहिए था तथा इसे टाला जा सकता था। सीटान-वाटसन के शब्दों में 'यदि इतिहास में कभी भी अल्पसूचना के आधार पर न्यायोचित बुद्धि को छोड़कर कभी भी कोई युद्ध हुआ तो वह क्रीमिया का युद्ध था। यह घटना सर्वसाधारण की इस धारणा को असत्य सिद्ध करती है कि जनता सदा शान्तिप्रिय होती है और केवल राजनीतिज्ञ और धनवान व्यक्ति ही युद्धप्रिय होते हैं। (*Britain in Europe*, p 359)

एक प्रसिद्ध महान् कूटनीतिज्ञ का दृढ़ विचार है कि क्रीमिया के युद्ध में ब्रिटेन ने गलत घोड़े पर दाव लगा दिया। अन्य लोगों का विचार है कि एक कूटनीतिज्ञ के कहने पर इग्लैण्ड का दमन और कुशासन के लिए कुख्यात शक्ति की सुरक्षा के लिए युद्ध में घसीट लिया गया था। ड्यूक श्राफ श्रारगायल युद्ध को न्यायोचित बताता है। किंग्सलेक के विचार से इग्लैण्ड एक सिद्धान्तहीन दुस्साहसी व्यक्ति के बिना कारण के उकसाए हुए युद्ध के आधार पर अपना राजसिंहासन बनाए रखने के लिए व्यक्ति के हाथों में खिलौना बन गया था। यह सत्य है कि नेपोलियन तृतीय अपने शासन को लुई फिलिप के शासन से अच्छा शासन सिद्ध करने को उत्सुक था। तो भी मरियट का विचार है कि स्ट्रैटफोर्ड या एबर्डीन को उसकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन कहना अनुचित है। सत्य यह है कि इग्लैण्ड के विचारशील नागरिकों को पूरा विश्वास हो गया था कि जार की महत्वाकांक्षाओं को दबाना आवश्यक है। रूस की पिछले १५० वर्ष की नीति के आधार के विषय में कोई त्रुटि नहीं हो सकती। अजाव की संधि से बलग्रेड की संधि तक, कैनार्डजी से जस्सी बुखारेस्ट से एड्रियानोपल तक और वहाँ से अनक्यार-स्केलसी तक रूस की प्रगति धीमी किन्तु निरंतर होती रही थी। क्या तुर्की का अंत केवल उत्तराधिकारी के लाभ की प्राप्ति के लिए आवश्यक था? क्या जार को कालासागर को एक रूसी झील बना लेने दिया जाता? क्या उसे मध्यमहासागर पर एकछत्र और खतरनाक आधिपत्य जमा लेने दिया जाता? यह तुर्की के सुशासन या कुशासन का प्रश्न नहीं था। वास्तव में प्रश्न था कि क्या साधारणतः सारा यूरोप और विशेषतः इग्लैण्ड इस बात के लिए तयार थे कि वे रूस को पोर्ट पर एक ऐसा बन्धन लगाने दें जिससे यह पोर्ट की सारी ईसाई प्रजा का संरक्षक और अतएव तुर्की के भाग्य का अकेला निर्णायक बन जाय? इग्लैण्ड के जनसाधारण का विचार था कि रूस के प्रभाव को किसी भी मूल्य पर रोकना चाहिए।

युद्ध की घोषणा होने के पश्चात् मित्रराष्ट्रों ने अपनी सेनाएं क्रीमिया भेजी थीं। इस युद्ध की महत्वपूर्ण लड़ाइयाँ एल्मा (Alma), बलाक्लावा (Balaclava) और इन्करमन (Inkermann) की थीं। १८५४-५५ में बहुत सरदी पड़ी। कहा जाता है कि जार ने कहा था कि मेरे दो सेनापति हैं जनरल जनवरी और जनरल फरवरी जो मुझे कभी भी धोखा नहीं दे सकते। क्रीमिया की कड़ी सर्दी में बड़ी कठिनाइयाँ हुईं। सेवेस्टोपोल की छावनी बलाक्लावा की बन्दरगाह से ६-७ मील दूर थी। तूफान के बाद सड़कों पर चलना असम्भव हो गया। चारे की कमी से घोड़े कमजोर हो गए थे। वे कीचड़ में से गाड़ियों को नहीं खींच सकते थे। सैनिक और पशु सर्दी से मर गये। यद्यपि गृह सरकार ने खूब रसद भेजी थी किन्तु उस छावनी में सैनिकों तक नहीं पहुँचाया जा सका। खाद्यान्न आधी जम गई थी। सेनाओं के पास कपड़ों और खाने की कमी थी। परिणामतः हजारों सैनिक बुखार, हैजे और कमजोरी से मर गए। लगभग ६,००० व्यक्ति मर गए और

१३००० को अस्पतालों में दाखिल कर दिया गया। स्कुटारी (Scutari) की छावनी के अस्पताल का प्रबन्ध बड़ा खराब था।

क्रीमिया में ब्रिटिश सिपाहियों की दुर्दशा से जनमत जाग उठा। सहायता के लिए अपील की गई और जनता ने खूब सहायता की। किन्तु जनता सरकार की कार्यवाही और भूलों से बहुत नाराज थी। १८५५ में मिस्टर रोबक ने एक विरोध प्रस्ताव रखा कि वह सेबस्टोपोल में ब्रिटिश सेना की परिस्थिति तथा सेना की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उत्तरदायी विभागों के कार्यों की जाँच के लिए एक विशिष्ट समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव रखने वाला है। परिणामतः रस्सल (Russell) ने त्याग-पत्र दे दिया। पामस्टन ग्लैडस्टोन और साथियों ने उसके कार्य की निन्दा की। २९ जनवरी १८५५ को रोबक (Roebuck) के प्रस्ताव को १४८ के विरुद्ध ३०५ मतों से संसद ने स्वीकार कर लिया और एबर्डीन ने त्यागपत्र दे दिया। लार्ड डर्बी को नया मन्त्रिमण्डल बनाने का निमन्त्रण दिया गया। उसका प्रयत्न असफल रहा और रस्सल (Russell) को भी सफलता नहीं मिली। कोई भी उसके साथ काम करने को तैयार नहीं था। इन परिस्थितियों में पामस्टन को मन्त्रिमण्डल बनाने



लार्ड पामस्टन

के लिए कहा गया और उसने यह कार्य सफलता से पूरा किया। क्रीमिया युद्ध की शेष अवधि में पामस्टन ने ही देश की सरकार चलाई। शक्तिशाली जनमत उसका समर्थक था।

ही १८४६ म हगरी के विद्रोह के अवसर पर रूस ने आस्ट्रिया की सहायता करके रूसी सेना की सहायता स विद्रोह का कुचल दिया था। किन्तु क्रीमिया के युद्ध मे यह मैत्री समाप्त हो गई। रूस ने आस्ट्रिया की विरोधात्मक तटस्थता को बहुत बुरा माना और मत्री के पुराने बन्धन टूट गए। बिस्मार्क ने रूस और आस्ट्रिया के मनमुटाव से लाभ उठाकर रूस स मित्रता कर ली। १८६३ म विशेषत पोलण्ड के विद्रोह के समय बिस्मार्क ने पोलैण्ड के विरुद्ध रूस की सक्रिय सहायता करके रूस को पूर्णत अपनी ओर कर लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि १८६६ म जब आस्ट्रिया और प्रशिया का युद्ध हुआ तो रूस तटस्थ रहा और आस्ट्रिया को अकेले ही लडना पडा। नि सन्देह यह क्रीमिया युद्ध का परोक्ष परिणाम था।

सीमन (Seaman) के मतानुसार पेरिस सधि की सबसे महत्त्वपूर्ण धाराएँ एक प्रकार से गुप्त थी जिनकी हस्ताक्षर करने वाली शक्तियो ने कल्पना भी नहा की थी। यदि ये देश अवसर का लाभ उठाने का प्रयत्न करते तो इनकी अवस्थाओ ने जमनी और इटली म आस्ट्रिया की शक्ति को नष्ट करने का सुनहला अवसर प्रदान किया था। क्रीमिया के युद्ध से बिस्मार्क और केवूर को बडा लाभ हुआ अन्यथा न इटली राज्य ही बनता और न जमनी का साम्राज्य। १८४८ से नही अपितु पेरिस सधि के द्वारा मेटरनिक की समाप्ति हुई। क्योकि क्रीमिया युद्ध के कारण ही ये महान राजनीतिक परिवतन सम्भव हो सके, जिनको मेटरनिक दीघ काल से टालने की आशा करता रहा था।

क्रीमिया युद्ध का एक परोक्ष परिणाम यह भी हुआ कि जनता की सदभावना प्राप्त करने के लिए एलेग्जण्डर द्वितीय को रूस के शासन मे अनेक सुधार करने के लिये विवश होना पडा था। दास मुक्तिदारी प्रथा की समाप्ति हुई थी। अलावा इसके यूरोप की ओर रूस की प्रगति रुक जाने के कारण इसकी गति का प्रवाह मध्य एशिया की ओर हो गया और परिणामस्वरूप रूस के बढते हुए प्रभाव के कारण भारतवष की सरकार को बडी चिन्ता होने लगी थी।

यह ध्यान म रखना चाहिए कि १८५६ से १८७८ तक समय-समय पर १८५६ की सधि की व्यवस्था का निरन्तर उलघन होता रहा था। मोलडेविया और वालाचिया पेरिस सधि के द्वारा स्वशासित राज्य बना दिए गए थे किन्तु इनकी जनता उसी जाति का अश थी और वही भाषा बोलती थी। दोनो ही अपने को रूमानिया देश के अश मानते थे। दोनो राज्यो की जनता एक ही सरकार के शासन मे सगठित होना चाहती थी। १८५९ मे दोनो ही राज्यो ने एक ही व्यक्ति को अपना शासक चुना। इग्लण्ड, आस्ट्रिया और तुर्की ने रूमानिया के सगठन का विरोध किया क्योंकि यह पेरिस सधि के समझौते के विपरीत था। किन्तु नपालियन तृतीय रूमानिया की जनता की राष्ट्रीयता की भावना का समथक था और उसने अन्य शक्तियो से भी वालाचिया और मोलडेविया को सगठित हो जाने की अनुमति प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार रूमानिया के राज्य का जन्म हुआ।

इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया की सहायता से सर्बिया ने १८६७ में तुर्की से अपने दुर्ग खाली करवा लिये। इस प्रकार सर्बिया भी तुर्की से स्वतन्त्र हो गया।

१८६५ में रूस ने क्रीट की जनता को तुर्की के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उकसाया। १८७० में उसने बल्गारिया की जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायता दी थी। जब १८७० में प्रशिया और फ्रांस का युद्ध आरम्भ हुआ, रूस को प्रशिया ने कालासागर सम्बन्धी धाराओं को भंग करने में प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार उसे १८७० में सेवेस्टापोल की मोर्चेबन्दी करने का तथा कालासागर में रूसी जहाजी बेड़ा रखने का अवसर प्राप्त हो गया।

ग्रांट और टम्परले (Grant & Temperley) का मत है कि "क्रीमिया के युद्ध का उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के इतिहास में विलक्षण स्थान है। इस युद्ध में प्रयुक्त साधन, मोर्टके और प्रशिया प्रणाली की अपेक्षा नेपोलियन युग की युद्ध प्रणाली से अधिक मिलते हैं। भाप से चलने वाले जहाजों का प्रयोग होने लगा था किन्तु उनके महत्व को पूरी तरह नहीं पहचाना गया था। विएना में तार प्रयोग आने लगा था किन्तु कुस्तुनतुनिया और क्रीमिया अभी भी पहुँच से बाहर थे। सेनाओं के भोजन और सफाई की सारी प्रणाली मध्यकालीन थी। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों की सहायता के बिना लड़ा गया, यही अन्तिम महायुद्ध था और यदि इसके तरीके और साधन आधुनिक विद्यार्थी के लिए अनोखे प्रतीत होते हैं तो इसके उद्देश्य और कूटनीति और भी धाम्य प्रतीत होती है। धार्मिक प्रश्न भी जो धर्मयुद्धों के युग की बात थी, इस युद्ध के कारणों में से एक था। विजेताओं को इस युद्ध से कोई लाभ नहीं हुआ। वास्तविक रूप में तुर्की की अक्षुण्णता की रक्षा भी नहीं हो सकी। रूस की प्रगति पर स्थायी रूप से रोक नहीं लगाई जा सकी। १८१४ के युद्ध में फ्रांस और इंग्लैण्ड ने लाखों व्यक्तियों का तथा करोड़ों के धन का व्यय इसलिए किया था कि वे क्रीमिया युद्ध के कुछ परिणामों के प्रभाव को समाप्त कर दें, जिस युद्ध को उन्होंने इतना खून और धन नष्ट करके जीता था। तथापि यह युद्ध कई प्रकार से बड़ा दिलचस्प था। इससे हमें एक ऐसा अद्वितीय शिक्षाप्रद उदाहरण मिलता है जिससे हमें यह पता लगता है कि युद्ध किस प्रकार प्रारम्भ किए जाते हैं और इसके प्रमुख नायकों की प्रणाली का स्पष्ट रूप से पता लगता है। तथा साधारणतः जिन असत्य उद्देश्यों की आड़ में कूटनीतिज्ञ सदा शरण लिया करते हैं वे हमारे सम्मुख नग्न रूप में उपस्थित हो जाते हैं।

Suggested Readings

Crawley C. W	*The Question of Greek Independence 1930*
Davis W S	*A Short History of the Near East*
Fyffe	*History of Modern Europe*
Henderson G B.	*Crimean War Diplomacy and other Historical Essays 1947*
Marriott J A. R.	*The Eastern Question*
Miller W	*The Ottoman Empire and Its Successors 1934*